५६
चीरफाड़की जरूरतवाले रोग : (पृष्ठ १३०३—१३१४)

५७
कष्टसाध्य प्रसव : मूढ़गर्भ : (पृष्ठ १३१४—१३५३)

५८
साधारण ज्ञातव्य बातें और शब्द परिचय : (पृष्ठ १३५४—१३८८)

शास्त्रीय और पारिभाषिक शब्द : (पृष्ठ १३८९—१४०६)

जीवाणुकी गोष्ठी और रोगोंका वर्गीकरण : (पृष्ठ १४०७—१४०८)

अनुक्रमणिका—पुस्तकके अन्तमें

चित्रोंकी सूची

चित्रोंकी सूची

मानचित्र विकर्षक लगेंगे। पर एक बार राह खुल जानेसे और शास्त्र पढनेकी रुचि हो जानेसे यही सब आकर्षक हो जायेंगे। पशुशरीरके भीतर होनेवाली विभिन्न कार्यप्रणाली रोचक और रोमहर्षक है। वह अद्भुत हैं। मांसल भाग और विभिन्न अवयवोंकी आधार ठठरी, मढा चमड़ा, हृदय, फेफड़ा, पेड़ू, चार भागवाला पेट यह सब पशुकी आवश्यकताके अनुसार ऐसे विभिन्न तरहसे सजाया हुआ है कि, साफ मालूम होता है कि, भीतरी और बाहरी अंग पशु जिस वातावरणमें रहता और वंशवृद्धि करता है उसे सोच कर बनाये गये हैं।

भाग ६

इस विभागमें औषधि और उसकी निर्माण विधिका वर्णन है। विषयोंको संक्षेपमें लिखा गया है। क्योंकि कुछ चुनी चुनाई औषधियाँ ही ली गयी हैं। साधारण तौरपर निघंटुमें सैकड़ो औषधियाँ रहती हैं। उनकी असली गिनती तो हजारसे ऊपर है। कुछ ही लोग सभी दवाओंकी परीक्षा कर सकते हैं। फिर भी उन्हें शामिल करनेकी रीति हो गयी है। पशुचिकित्साका निघंटु मनुष्यके निघंटु जैसा ही है। पशुचिकित्सकाके लिये कोई अधिकारी निघंटु अलग नहीं बना है। अपने कामके लिये मैंने कुछ ही दवाओं पर विचार किया है और केवल उन्हींका वर्णन किया है। गाँवका साधारण गो-वैद्य विभिन्न बूटियोंके गुण जानता है और उनका उपयोग कर फायदा उठाता है। इस तरहकी किताबोंमें उनको शामिल करनेके पहले उनकी शास्त्रीय परीक्षा और प्रयोगकी जरूरत है। भेटेरिनरी कालेजों और सेंट्रल रिसर्च इनस्टिट्यूटका यह काम है कि, इन्हें हाथमें लें, इनका प्रयोग करें। इनकी बनावट और लाभका पता लगावें तब पशुचिकित्सकों और जनताको उनके बारेमें कहें। अभी इस दिशामें कुछ किया नहीं गया है। इसलिये जिन प्रसिद्ध औषधियोंको मनुष्यके रोगोंमें बर्तते हैं वही हमारे इस कामके लिये हैं। इनमेंसे कुछ ही शामिल की गयी हैं। जो आसानीसे मिल सकती हैं और देशी हैं उन्हें तर्जीह दी गयी है।

भाग ७

सातवें भागमें विकार और चिकित्सा हैं। कोई अलग विभाग नहीं किया गया है। विभिन्न श्रेणीमें पहले रोगका विकार तब चिकित्साका विचार किया गया

है। पहली श्रेणीमें छूतवाले रोग हैं। इसके बाद विभिन्न अंगोंके रोगोंका वर्णन है।

सौभाग्यसे गायका जीवन सहज और स्वास्थ्यपूर्ण है। यदि उसे छूतसे बचा लिया जाय, पोषक आहार और आश्रय दिया जाय तो रोग कम होते हैं। इनमें से अधिककी व्यवस्था कठिनाईके बिना हो सकती है। छूतके रोगोंको क्षमता पैदा करनी होगी या उभाड़नी होगी। इसके लिये टीका, सचारण (इनअकुलेशन) और सीरमकी सूई उपाय हैं। ढोरके रोगों पर विचार करते समय इनके बारेमें सबसे जादे कहा गया है। विभिन्न अंगोंके रोग सक्रामक बीमारियोंकी तरह नहीं है। इनका इलाज धीरे धीरे हो सकता है। दवाओं और उपचारकी सहायतासे पशुको निरोग करनेके लिये बहुत कुछ किया जा सकता है।

साधारण कामोंके लिये चीरफाड़ (शल्य-चिकित्सा) का कुछ ज्ञान होना चाहिये। इसके लिये एक पूरा अध्याय है।

मूढ़-गर्भ (डिस्टोकिया) बहुत महत्वका विषय है। इसका प्राथमिक ज्ञान कराना ही चाहिये। इसके लिये कामका अनुभव होना चाहिये। पर प्रसवमें अच्छी तरह सेवा करनेके लिये शास्त्रका ज्ञान भी चाहिये। इसलिये मूढ़-गर्भ पर एक अध्याय है।

कुछ ऐसी चीजें हैं जो इस किताबकी संक्षिप्त चिकित्सा-प्रणालीके क्रममें शामिल नहीं की जा सकीं। इसलिये साधारण ज्ञानके लिये एक अध्याय जोड़ दिया गया है। इसमें शास्त्रके पारिभाषिक शब्दोंकी एक सूची भी सम्मिलित है। इस अंतिम अध्यायमें कुछ ऐसी बातें भी जोड़ी गयी हैं जिन पर पुस्तकमें अन्यत्र विचार करना छूट गया है।

खादी प्रतिष्ठान,
सोदपुर, ता० १८-८-४५

सतीश चन्द्र दास गुप्त

भारतमें गाय

दूसरा खंड

पाँचवा भाग

गायका शरीर

चित्र ६१. गायकी देहके बाहरी भाग।
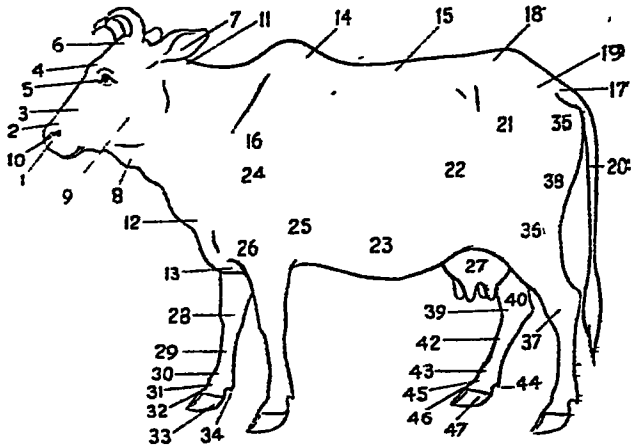
1. थूथन, 2. नाक. 3. मुखमडल, 4. कपाल, 5 आँख और भौहें, 6 चाँदी, 7. कान, 8. निचला जबड़ा, 9, गाल, 10. नकुना, 11 गर्दन, 12. झालर, 13. छाती, 14. पुट्ठा. 15. पीठ, 16. पसलियाँ 17. पूँछकी जड़, 18. कमर, 19 नितम्ब, 20. पूँछ 21. कुल्हा, 22 बगल. 23. पेट, 24. कंधा, 25. कुहनी, 26 बाँह, '27 थन, 28. घुटना. 29. करभ. 30 टखनेका जोड. 31 कलाई, 32. खुरका ऊपरी भाग, 33. खुर, 34. टखना, 35. कुल्हा, 36. जाँघ, 37. घुट्ठी, 38. चूतड़, 39. पिछली घुट्ठीका भीतरी हिस्सा, 40. पिछला घुटना, 42. करभ, 43. टखनेका जोड़, 44 टखना 45 कलाई. 46. खुरका ऊपरी भाग, 47. खुर।

अध्याय ३१

ठठरी या कंकाल

१२४२. कंकाल

बैलकी देह मोटे तौर पर नीचे लिखे भागोंमें बांटी जा सकती है :—

सिर, गर्दन, पीठ, कटि (कमर), त्रिक (sacral), श्रोणि (pelvic) और पूँछ। छाती और पेड़ू, आगेके अग और पीछेके अग।
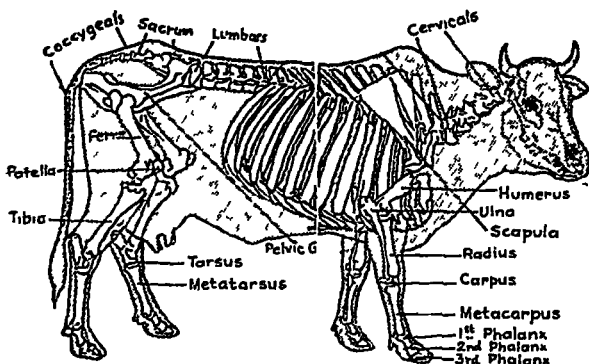
चित्र ६७. गाय और उसके अग।

Cervical—ग्रीवादेश, Thoracic—पृष्ठदेश, Lumbar—कटिदेश, Sacrum—त्रिकदेश, Coccygeal—पुच्छ, Femur—ऊरुअस्थि, Patella—जान्वस्थि, Tibia—जघास्थि, Tarsus—पाद कूर्चास्थि, Metatarsus—पादांगुली मूल शलाका, Pelvic Girdle—श्रोणि चक्र, Humerus—प्रगंडास्थि, Ulna—अतः,प्रकोष्ठास्थि, Scapula—अशफलक, Radius—वहिः प्रकोष्ठास्थि, Carpus—कूर्चास्थि, Metacarpus—करभास्थि, Phalanx 1st. 2nd. 3rd. अगुलीनलक।

सिरके बाद गर्दन और तब पीठ होती है। पीठके बाद कमर या कटिदेश है, इसके बाद त्रिकस्ति भाग है जिसके नीचे श्रोणि लगी रहती है। त्रिक भागके आगे पूँछ होती है।

गर्दनके बाद पीठके नीचे छाती और पेड़ होते हैं। छातीमें हृदय और फेफड़े होते हैं। पेड़ूके भीतर पाचन और मलेन्द्रियां होती हैं। छाती और पेड़ूका अगरेजीमें सम्मिलित नाम भिसेरा (viscera) है।

छातीके सामने अगले अंग होते हैं। और कमरेके पीछे पिछले अग।

इन सभी अंगोंका आधार हड्डियोंकी वनी ठठरी है। ठठरी सारे शरीरको ही थामे हुए ही नहीं, जोड़ोंका काम भी उससे चलता है।

ऊपरके चित्रमें (चित्र—६२) देख सकते हैं कि, ठठरीकी हड्डियां देहको कैसे समाले हैं और एक ढांचा वनाती हैं।
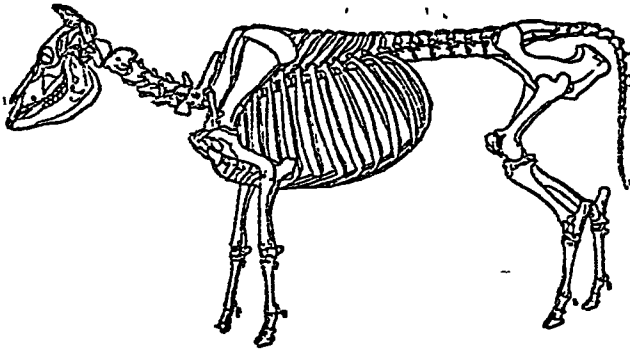
चित्र ६३. गायका कंकाल।

सिरके अतिम भागके पाससे मेरुदड शुरू होता है। देहका मुख्य आधार यही है। मेरुदड वहुतसी हड्डियोंसे वनता है। इन हड्डियोंको मास पेशियां एक दूसरेसे जोड़ती हैं। इन हड्डियोंके बीच बीच गद्दी रहती है जिससे कि, मेरुदंडकी शृंखला सुदृढ रहे। पर फिरभी कुछ कुछ वह हिल डुल सकती है। शरीरके बड़े ढांचेको मेरुदड सँभालता है और यह ढांचा अगली और पिछली टांगों पर है।

सिरसे पूँछ तकका भाग ठठरीका धुरीभाग (axial) कहा जाता है और चारो पैर शाखायें (appendicular parts)।

१२४३. ठठरीका धुरी और शाखा भाग

बैलकी ठठरीमें कुल १७९ हड्डियाँ (अस्थि) नीचे लिखे अनुसार हैं :—

सिरमें	...	१०
चेहरेमें	...	२०
रीढमें	...	५१
पसलियाँ	...	२६
चारों पैरमें	...	१८×४ = ७२ जिसमें श्रोणि और अशफलक भी शामिल हैं।
	कुल—	१७९

१२४४. खोपड़ीकी अस्थियाँ

सिरकी ठठरीको खोपडी कहते हैं। खोपड़ीके दो भाग हैं, कूर्पर (cranium) और चेहरा (face)। मस्तिष्क और उसकी झिल्लियाँ जिस अस्थिके बीचमें हैं उसे कूर्पर कहते हैं। चेहरा कूर्परके सामने है। चेहरेका ढाँचा कई हड्डियोंका बना होता है।

मनुष्यके हड्डियोंके जो नाम हैं उसी तरहकी बैलकी हड्डियोंके भी प्रायः वही नाम हैं। बैलके कूर्पर भागमें नीचे लिखी अस्थियाँ होती हैं :—

पश्चिम कपाल (occipital)	..	१
पार्श्व कपाल (parietal)	.	२
शंखास्थि (temporal)	.	२
अन्तर पार्श्व (inter-parietal)	..	१
पुरः कपाल (frontal)	..	२
जतूकास्थि (sphenoid)		१
झर्झरास्थि (ethmoid)		१
	कुल—	१० अस्थियाँ

घोड़ेके कूर्परमें भी यही १० अस्थियाँ होती है। चित्र ६४ मे मनुष्यका कूर्पर दिखाया गया है और उसके आठ भाग भी बताये गये हैं।

चित्र ६४. मनुष्यकी खोपड़ी।

A. पश्चिम कपाल १
B. पार्श्व कपाल २
C. पुरः कपाल १
D. शखास्थि २
E. जतूकास्थि १
F. झर्झरास्थि १
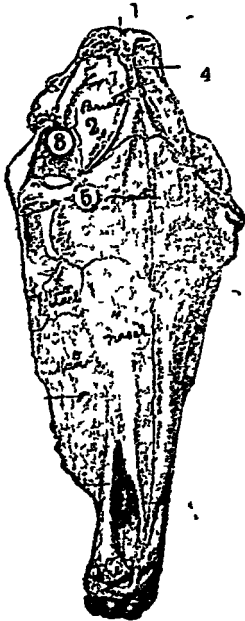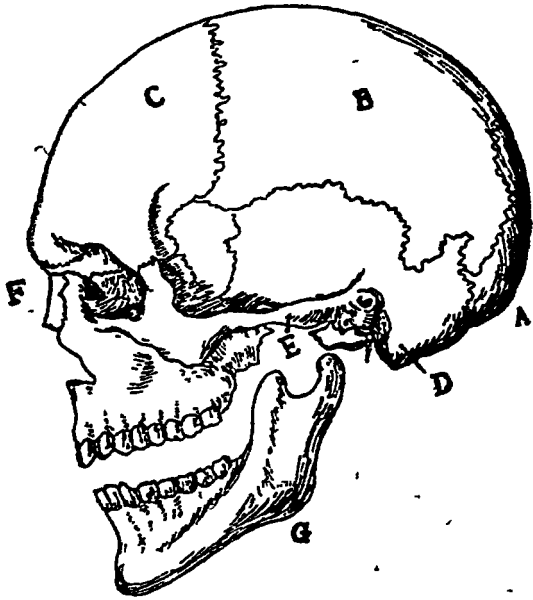
चित्र ६५. घोड़ेकी खोपड़ी।

1. पश्चिम कपाल,
2. पार्श्व कपाल,
3. शंखास्थि,
4. अंतर पार्श्व,
5. पुरः कपाल।
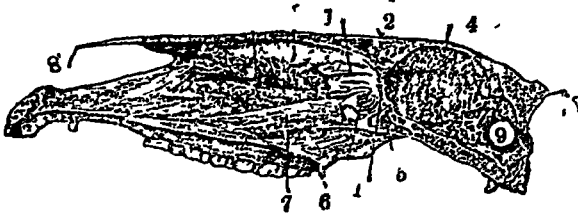
चित्र ६६. घोड़ेकी खोपड़ीका मध्यभाग। 1. झर्झरास्थि, 2. पुरः कपाल. 3. जतूकास्थि, 4. बृहत् मस्तिष्कका कोठा, 5 पश्चिम कपाल, 6. जतूका चरण, 7. सोरिका, 8. नासास्थि, 9. लघु मस्तिष्कका कोठा।
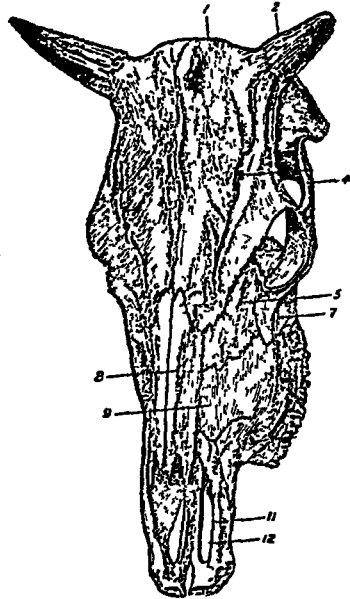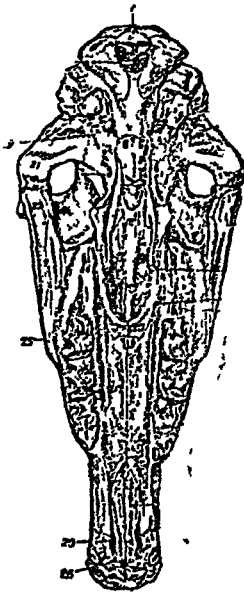
चित्र ६७. घोड़ेकी खोपड़ी (पिछला दृश्य)। 1 पश्चिम कपाल, 9 शखास्थि, 18. सीरिका, 20. तालवीय, 22. गडास्थि, 23 ऊर्ध्व हन्वस्थि, 25 शंखास्थि और हन्वस्थिकी सन्धि, 26. पुरो हनु, 29. कर्तनक अस्थि।

चित्र ६८ बैलकी खोपड़ी (पीछे और बगलका दृश्य)। 1. पुरः कपाल, 2 सींगका जड़, 4 शखास्थि, 5. अश्रु पीठास्थि, 7. गडास्थि, 8. नासास्थि, 9. ऊर्ध्व हन्वस्थि, 11. पुरो हनु, 12 कर्तनक अस्थि।

बैल और घोड़ेकी खोपड़ीकी बनावटसे आदमीकी खोपड़ीकी बनावटमें बहुत भेद है। आदमीके कूर्परकी अस्थियाँ बहुत कुछ बाहरसे मालूम की जा सकती हैं।

आदमीके बाद घोड़ेके कूर्परकी कई अस्थियाँ बाहरसे मालूम की जा सकती हैं। पर बैलकी खोपडीकी बनावट बहुत भिन्न है। उसपर सींगें होती हैं। इसलिये पुरः कपाल अर्थात् ललाटकी हड्डी उभड़ी रहती है। इसलिये कूर्परकी अन्य महत्वकी अस्थियाँ दबी रहती हैं।

बैल और घोड़ेकी खोपड़ीके आगेकी ओरकी सूरत दिखायी गयी है। इन चित्रोंकी सहायतासे (चित्र—६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९) बैल, घोडा और आदमीकी खोपड़ीका तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

चित्र ६९. बैलकी खोपड़ी (पीछेसे)।

2. पश्चिम कपाल,
5. सींगका जड़,
12. शंखास्थि,
18. जतूका चरण,
19. सीरिका,
20. गंडास्थि,
21–22. तालवीय,
25. अश्रुपीठास्थि,
26. ऊर्ध्व हन्वस्थि,
28. कर्तनक अस्थि।
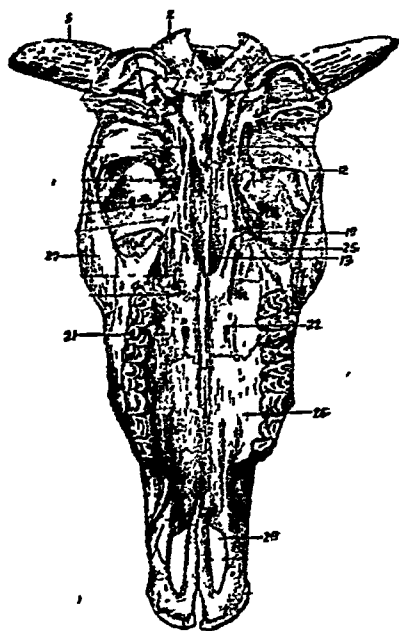
कूर्परकी अस्थियोंका वर्णन

खोपडीकी पीठ और निचला हिस्सा **पश्चिम कपाल** (.ccipital) का बना होता है। निचले हिस्सेमें एक छेद रहता है जिससे होकर सुषुम्ना शीर्षक (medulla oblongata) निकलता है। कपालके दोनों बगलमें दो **पार्श्वकपालास्थियाँ** (parietal) होती हैं। बैलकी खोपडीको ठीक आगेकी

ओर से देखने पर इन हड्डियोंकी अगली कोरके अलावा और कुछ नहीं दिखायी पड़ता। प्रत्येक पार्श्वकपालास्थि इतनी मुडी रहती हैं कि, वह समकोणके लगभग हो जाती है। इसका ऊपरी भाग दूसरी पार्श्व अस्थिके ऊपरी भागसे जुड़ा रहता है। और निचला भाग शखास्थिके गढेमें झुका रहता है। ऊपरी भाग चपटा फलक होता है। यह पुरः कपालकी हड्डियोंमें सींगकी जड़ोंके पीछे होता है।

दोनों शंखास्थियाँ (temporal) कपाल कोटरकी दोनों बगलकी दीवालका काम करती हैं। यह पार्श्व कपालके पीछे होती हैं। हरेक शखास्थिके दो भाग
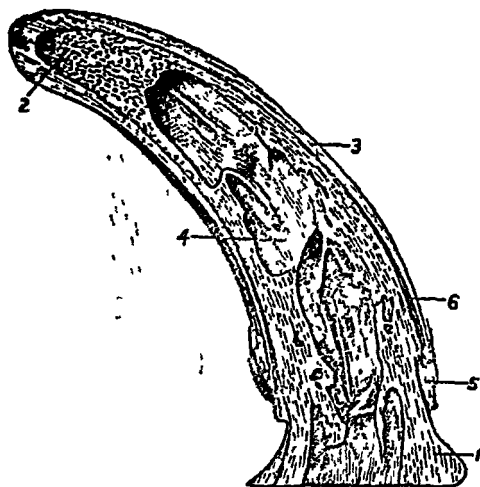
चित्र ७०. गायके सींगका अंश।

1. शृंगमूलका आधार,
2. सींगकी नोक
3. शृंगमूल कोटर,
5. त्वचा,
6. सींग और मूलके बीचकी मुलायम चीज।

होते हैं। एक शखचक्र (squamous) जिसमें मछलीकी सी चोइयाँ (scales) होती हैं और दूसरा अश्मकूट (petrous)। यह पत्थरसा कड़ा चौखूँट होता है। अश्मकूटमें ही भीतरी कान रहता है।

ललाट पुरः कपाल (frontal) अस्थियोंका बना होता है। मनुष्यका पुरः कपाल एक ही अस्थिका होता है। पर घोड़ा और बैलका दो अस्थियोंका जो आपसमें जुडी रहती हैं। बैलकी खोपड़ीकी आकृति मुख्यतः इसी हड्डीके आकार प्रकारके कारण है। खोपडीके अगले भागके बीचसे जरा नीचे सिर पर यह रहती है। कपालके सारे अगले भागकी सीमा रेखा इन्हीं दोनो सयुक्त अस्थियोकी होती है। अनेक नस्लके ढोरोंमें इन्हीं अस्थियो पर शृंगमूल होते हैं। सींगोंके आधार यही

हैं। सींगकी लबाई और पुरः कपालकी हड्डियोंके बांकपनकी कमी बेशीमें ढोरकी नस्लके कारण अंतर होता है।

अंतर पार्श्व कपोल (inter-parietal) घोड़ा और बैलकी विशेषता है। मनुष्यकी खोपड़ीमें यह नहीं होता है। यह हड्डी कपालके अग्रभागके बीचमें होती है ओर दोनो पार्श्व कपालको जोड़ती है।
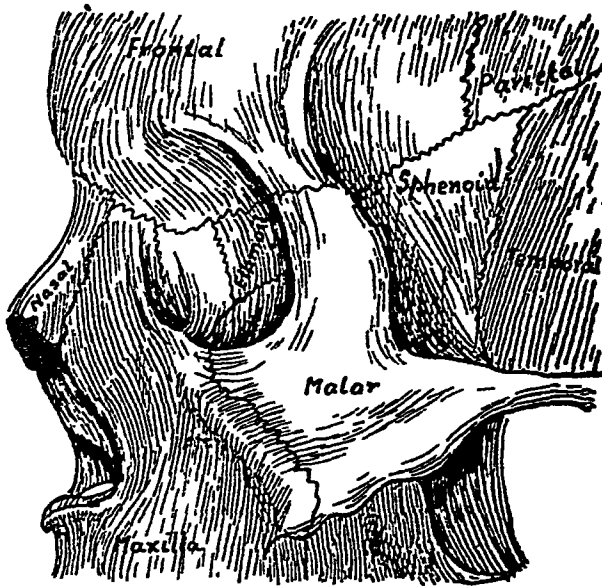
चित्र ७१ मनुष्यके खोपड़ी और चेहरेकी हड्डियाँ।

खोपड़ीकी हड्डियाँ :—Parietal—पार्श्व कपाल, Frontal—पुरः कपाल, Temporal—शखास्थि, Sphenoid—जतूकास्थि और Ethmoid—झर्झरास्थि।

चेहरेकी हड्डियाँ :— Malar—गडास्थि, Maxilla—हन्वस्थि, Nasal—नासास्थि,

जतूकास्थि (sphenoid) पर खोपड़ीका आधार है। इसका मध्यभाग पश्चिम कपालके मूलसे नीचे होता है। खोपड़ीकी विभिन्न हड्डियोंको यही जोड़ती है।

झर्झरास्थि (ethmoid) नाकको जड़में होती है। इसमें चलनीकी तरह बहुतसे छेद होते हैं। इससे होकर नाड़ियाँ नाकमें घुसती हैं। इसके चार भाग होते हैं। मध्यफलक (horizontal plate), चालनी पटल (vertical plate) और दो पार्श्वपिण्ड (lateral masses)। गायकी खोपड़ीके दोनों पार्श्वपिण्ड बहुत बड़े होते हैं।

चित्र ६६ में घाड़ेको खोपड़ीका मध्यभाग दिखाया गया है। ब्यौरेकी बातोंमें बैल और इसकी खोपड़ोमें भेद है। पर साधारण क्रम समान ही है। कपाल कोटरके दो भाग किये जा सकते हैं एक बृहत् मस्तिष्क (cerebrum) और दूसरा लघु मस्तिष्क (cerebellum)। ये दोनों विभाग इस चित्र (चित्र—६६) में ४ और ९ नम्बर मे दिखाये गये हैं। खोपड़ा कोटरका अदाज इसीसे लगाया जा सकता है। मनुष्यको खोपड़ोमे मस्तिष्कको प्रधानता रहती है। उसकी तुलनामें घोड़ा और बैलकी खापड़ीके कोटरमे मस्तिष्ककी जगह बहुत कम रहती है। मुख अपेक्षाकृत बड़ा होता है। इस बड़ेपनका कारण यह है कि इन्हे मोटा और रूखा आहार अधिक चबाना होता है।

१२८५. मुखमडल (चेहरा) की अस्थियाँ

बैल और घोड़ेकी अपेक्षा मनुष्यका मुखमडल छोटा होता है। बैलके चेहरसे घोड़ेका चेहरा लबा है। मनुष्यके मुखमडलमें नीचे लिखी हड्डियाँ होती है —

नासास्थि (Nasal)	२
अश्रुपीठ (अश्रु) (Lachrymal or tear)	२
गडास्थि (गाल) (Malar or Cheek)	२
नाल्वस्थि (Palate)	२
हन्वस्थि (ऊपरी जबडा) (Maxilla or upper jaw)	२
अधो हन्वस्थि (निचला जबड़ा) (Mandible or lower jaw)	१
सीरिका (Vomer) ...	१
शुक्तिकास्थि (सीपकी तरह) (Inferior turbinated) ...	२
कुल—	१४ अस्थियाँ

बैलके मुख मडलमें नीचे लिखी ९ जोड़ी और २ इकहरी, कुल २० अस्थियाँ हैं :—

जोड़ी अस्थियाँ :— जतूका चरण (Pterygoid), नालवीय (Palatine), ऊर्ध्वहन्वस्थि (Superior maxilla), अश्रुपीठास्थि (Lacrymal), गडास्थि (Malar), नासास्थि (Nasal), पुरोहनु (Premaxilla), ऊर्ध्व शुक्तिकास्थि (Anterior turbinated) और अधः शुक्तिकास्थि (Posterior turbinated)।

इकहरी अस्थियाँ :— सीरका (Vomer), अधोहन्वस्थि (Inferior maxilla)।
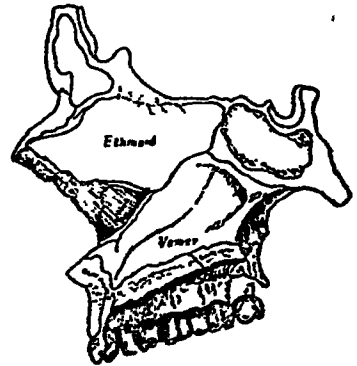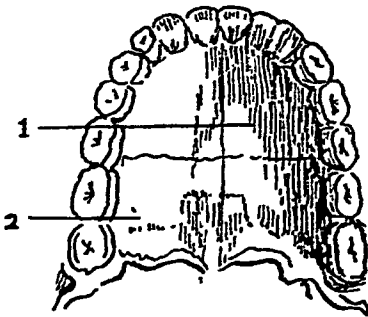
चित्र ७२. मनुष्यकी तालवीय अस्थि। 1. कठिन तालु 2. मृदु तालु।

चित्र ७३. मनुष्यकी खोपडीकी नाक होकर अश जिस होकर सीरिका दीख रहा है।

जोड़ी अस्थियां :

१. जतूका चरण। (चित्र ६६ में ६ और चित्र ६९ में १८)। यह अस्थि छोटी और कुछ ऐंठीसी है। यह गलेमें नाकके द्वारके बगलमें होती है। इसका बाहरी भाग सीरिका और जतूकासे जुड़ा रहता है। इसका ऊपरी छोर नुकीला होता है और जतूका और उसकी जडमें घुसा रहता है। कंटमें नाकके द्वारके बगलमें प्रायः पूरी तौर पर यह होती है। निचला छोर खाली रहता है और घिरनीकी तरहका होता है।

२. तालवायं। (चित्र ६७ में २० और चित्र ६९ में २१-२२)। यह अस्थि नाकके कठद्वारके दोना तरफ एक एक होती है। कठिन तालु (hard palate) का लगभग एक तिहाई भाग इसी अस्थिका होता है।

३. ऊर्ध्व हन्वस्थि। (चित्र ६७ में २३ और चित्र ६८ में ९)। यह जोड़ी मुख मडलके दोनों बगलमें रहती है। इसमें ऊपरवाले चर्वणक दांत होते हैं।
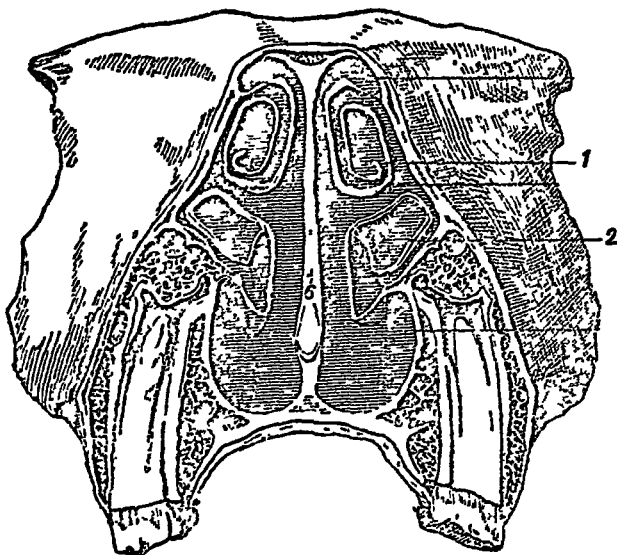
चित्र ७४. नासाखात होकर खड़ा भाग।

1. अगली शुक्तिकास्थि, 2. पिछली शुक्तिकास्थि,

6. नासिका पटल (नाकके बीचकी दीवाल)।

नीचेके जवड़ेकी हड्डी (यह एक ही हड्डीका होता है) को छोड़ ऊर्ध्व हन्वस्थि खोपड़ीकी सबसे बड़ी हड्डी है। इस अस्थिपिंडकी भीतरी सतहसे तालु पटल निकलता है।

४. अश्रु पीठास्थि। (चित्र ६८ में ५)। यह हड्डी आँखके कोटरके निचले भागमें होती है। मुँहकी ओरका इसका हिस्सा घोड़ेकी इसी हड्डीसे कहीं बड़ा होता है।

५. गण्डास्थि (गालकी हड्डी)। (चित्र ६७ में २२, चित्र ६८ में ७ ओर चित्र ६९ में २०)। यह हड्डी अश्रुपीठास्थिके ठीक पीछे रहती है। यह हड्डी घोड़ेकी अपेक्षा बैलके मुखमडल पर अधिक फैली होती है।

६. नासास्थि। (चित्र ६६ में ८ और चित्र ६८ में ८)। नासास्थियाँ मुखमडलके ऊपरी सतहमें होती हैं। मध्य रेखाकी दोनों ओर एक एक होती है। आगेकी ओरसे नासाखातको यही घेरे रहती हैं। प्रत्येक अस्थि कुछ वक्र और पतली पट्टीसी होती है। घोड़ेकी अपेक्षा बैलकी यह हड्डी छोटी और सकीर्ण होती है। ये पुरः कपालमें जुड़ी रहती हैं।
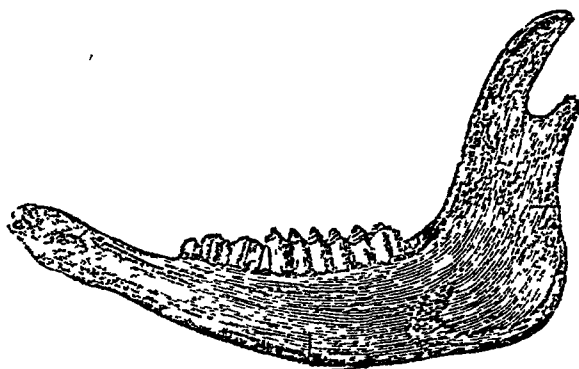
चित्र ७७. गायका अधोहन्वस्थि।

७. पुरोहनु। (चित्र ६८ में ११)। मुखमडलके निचले भागमें यह अस्थियाँ होती हैं। यह अस्थि पतली और आगेकी ओरसे पीछेको दबी होती है। गायके ऊपरी कर्तनक दाँत नहीं होते। यह अस्थि कर्तनी अस्थि भी कहाती है।

८. ऊर्ध्व शुक्तिकास्थि। (चित्र ७४ में १)। यह दो होती हैं, एक एक दोनो ओर। यह अस्थि शंकुकी तरह दिखाई पड़ती है। इसकी भीतरी सतह नासिका पटल (septum) द्वारा बँटी हुई है।

९. अधः शुक्तिकास्थि। (चित्र ७४ में २)। यह पहली शुक्तिकास्थिसे बहुत बड़ी है। यह नासास्थि और अश्रुपीठास्थि तथा पुरः कपालसे भी लगी होती है। इस अस्थिका खात नाकके मध्य छिद्रसे मिला होता है।

ऊपरकी ये ९ जोडी हड्डियाँ मुखमडलकी हैं। वाकी की इकहरी हड्डियाँ सीरका और अधोहन्वस्थि हैं। इन सबको मिला कर २० अस्थियाँ होती हैं। इकहरी अस्थियाँ :

१. **सीरका**। (चित्र ६७ में १८ और चित्र ६९ मे १९)। यह अस्थि मुखमडलके बीचमें होती है। नाककी सुरगको दो हिस्सोंमें बाँटनेमें इस हड्डीका भी कुछ भाग लगता है। यह एक छोटे फलककी तरहका होता है जो नाकके छेदसे गले तक रहता है। यह ऊर्ध्वहन्वस्थिसे जुड़ा रहता है और नीचेकी ओर काफी दूर तक वेलाग रहता है।

२. **अधोहन्वस्थि** (चित्र ७५) या नीचेका जवड़ा खोपडीकी ऐसी अस्थि है जो जुड़ी रहने पर भी चलायमान है। इस अस्थिपिण्डमें खूब सटे सटे आठ खात हैं जिनमें चर्वणक दाँत होते हैं।

१२४६ खोपड़ीकी साधारण रचना

गायकी खोपडी चिपटी अस्थियोंकी वनी होती है। विभिन्न अस्थियाँ जुडी होती हैं। कोई जोड हिल डुल नहीं सकते है। जन्मके वाद सयाना होने तक अस्थियोंकी वाढमें ये जोड वाधक नहीं होते। सयाना होने पर अस्थियाँ सट जाती हैं और जोड क्षीण हो जाते हैं। नवजात पशुकी खोपडीमें खासकर कपाल पर वहुतसे जोड या रोक दिखायी पडते हैं।

पश्चिम कपाल खोपडीके पृष्ठ भागमें मस्तिष्क खातकी पीछेकी दीवालकी तरह होता है। इससे हो कर सुषुम्नाकाड (brain cord) महाविवर (foramen magnum) से निकलता है। महाविवर के ऊपर एक वडी शक्तिशाली पेशी है जो सिरको थामे है। इस विवरके दोनों ओर गेंद जैसे उभाड हैं। जिनका आधार पहला कशेरु (vertebra) है। पश्चिम कपालका निचला भाग मस्तिष्कके आधारके साथ साथ आगे वढ कर **जतूकास्थि** से मिलता है। जतूकाको पखवाली अस्थि (wing bone) भी कहते है। जतूका मस्तिष्क के मूलमें है। इसलिये जीते प्राणियों के सिरमें वाहरसे छूकर नहीं जानी जा सकती। दो पखवाले पिंडकी तरह इसकी सूरत है। इसकी सूरत पीछेकी ओर दोनों टाँगें किये हुये उड़ते हुये पक्षीकी तरह मानी गयी है। पश्चिम कपालके आधार के वरावर जतूका पिंड है जो मस्तिष्क आधारका काम देता है।

झर्झराश्थि नासा सुरंग और मस्तिष्क खातके बीचमें होती है। नाक और मस्तिष्कके बीच चलनी जैसी दीवाल है। इसके छेदों से गंध नाड़ियाँ आरपार जाती हैं।

अंतरपार्श्व कपालस्थि दोनों पार्श्वकपालास्थियों के बीच होती है। इसमें उभाड़ होते हैं जो बृहत् और लघु मस्तिष्कको कुछ कुछ अलग करते हैं।
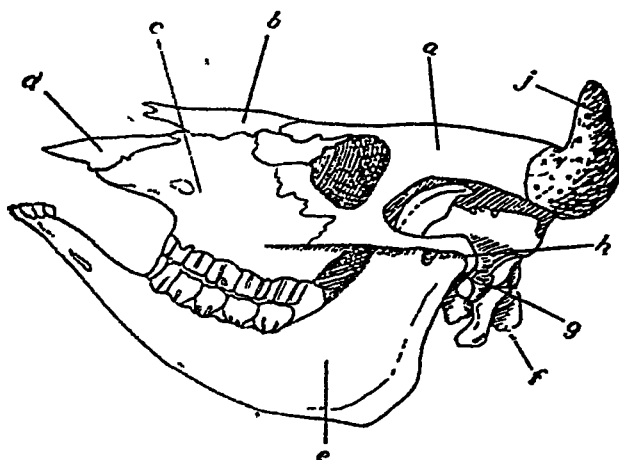
चित्र ७६. बैलकी खोपड़ीकी बनावट दिखानेवाला रेखा चित्र।

a. पुर-अस्थि जो आगे बढ़कर शृंगमूल—j. बन जाता है, b. नासास्थि, c. ऊर्ध्व हन्वस्थि, d. कर्तनक अस्थि या पुरो हनु, इसमें काटनेवाले दांत नहीं होते, e. अधो हन्वस्थि (जबड़ा), f. पश्चिम कपाल, g. अश्मक अस्थि, h. अधोहन्वस्थि की जोड़।

पार्श्वअस्थियाँ दोनों बगलमें होती हैं। दोनों पार्श्व अस्थियोंके बीच पीछेकी ओर पुरः कपाल और आगेकी ओर नासास्थि होती है। ललाट का अधिक भाग पुर कपाल अस्थिका बना होता है। दोनों पार्श्व अस्थियों से आंखके अस्थिमय कोटर बनते हैं। पुर• कपालसे शृंगमूल उभरते हैं।

शंखास्थियाँ दोनों कानोंके मूलमें एक एक दोनो ओर होती हैं। इन अस्थियों का एक एक भाग घना और पत्थरसा कड़ा होता है। इनमें सुरंगें खुदी

रहती हैं जिसमें सुकमार श्रवणयन्त्र रहते हैं। दूसरा भाग छिलका या चोइयांदार होता है। यह बगली दीवालका काम देता है। चोइयांवाले भागमें ही वह जगह होती है जहाँ जबड़े की जोड होती है।

मुखमंडलकी अस्थियोंमें **ऊर्ध्व हन्वस्थि** मुँहकी दोनों ओर होती है। ऊपरी जबड़ेका अधिक भाग इसका होता है। इनका लगाव मुखमंडलकी प्राय· सब अस्थियों से है. ऊपरके चौआ दांत इसीमें होते हैं। अस्थियों से भीतर की ओर कड़े फलक जैसे उभार होते हैं। उन्हींसे कठिन तालु, मुँहकी छत और नाककी सुरंगकी जमीनका अधिकाश बनता है। ऊर्ध्व हन्वस्थिके बाहरकी ओर एक बड़ी मजबूत हलुकूट कर्पणी (चर्वणी) पेशी (masseter muscle) लगी होती है। चबानेके काममें इस पेशीका महत्व बड़ा है।

ऊर्ध्व हन्वस्थि में आगेकी ओर **कर्तनी अस्थि** (incisor bone) होती है। यह आगे निकली रहती है। कठिन तालुके पिछले भागमें **ताल्वस्थियाँ** होती हैं। नथुनोंकी (नाकका छेद) अधिकाश हदबन्दी इन्हींसे होती है और बाकीको **जतूकाचरणकी** एक पतलीसी पट्टी पूरा करती है। **नासास्थियों** से ही नाक उठी रहती है। दोनों **अश्रुपीठ** आंखके कोटरके आगेके किनारे पर होते हैं। **शुक्तिकास्थियाँ** झिल्लियोंसे मढ़ी होती हैं। इसके कारण फेफड़ेमें हवा गरम और नम हाकर जाती है। सोरका या हलके आकारवाली अस्थि नकुनोंके नीचे होती है। ये नकुनोंके पिछले भागको एक दूसरे से अलग करती हैं। जबड़ा कुलका कुल **अधो हन्वस्थिका** बना होता है। खोपड़ीकी हड्डियोंमें हिलनेवाली यही एक है।

जीभकी जडमें एक अस्थि और होती है। इसे **कंठिकास्थि** (hyoid) कहते हैं। जीभ और कठ (स्वरयन्त्र) (larynx) का आधार यही है।

१२४७. मेरुदण्ड या पृष्ठवंश अथवा रीढ़ (Vertebral Column)

पीठ पर गर्दनसे लेकर कमरके नीचे तक हड्डियोंकी एक जजीर होती है जिसे मेरुदड कहते हैं। यह बहुतसी हड्डियोंको बनी होती है। इसकी एक एक हड्डिको कशेरुका, कशेरु या मोहरा कहते हैं। इस जजीरके कई भाग हैं। ये क्रमसे **ग्रीवा कशेरु** (cervical), **पृष्ठ कशेरु** (thoracic), **कटि कशेरु** (lumbar), **त्रिकास्थि** (sacral), **अनु त्रिकास्थि** (गुदास्थि या पुच्छास्थि)
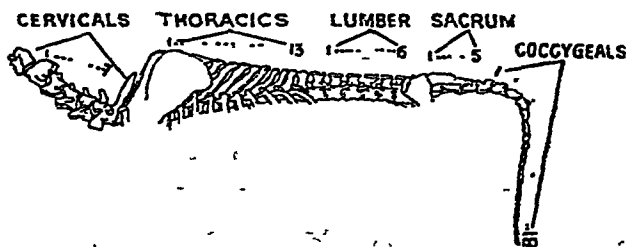
चित्र ७७. वैलका मेरुदंड।

CERVICALS—ग्रीवा कशेरु, THORACICS—पृष्ठ कशेरु, LUMBER—कटि कशेरु, SACRUM—त्रिकास्थि कशेरु, COCCYGEALS—अनुत्रिकास्थि कशेरु।

(coccygeals or caudal) कहे जाते हैं। इस तरह मेरुदण्ड गर्दनसे पूँछ तक है। गर्दनके पहले कशेरुको चूड़ावलय (atlas) कहते हैं। पश्चिम कपालके दो उभारोंके जरिये सिर चूड़ावलयसे नथा है। गर्दनसे पूंछतक गायके कशेरुओंकी संख्या निश्चित है। मेरुदण्डमें नीचे लिखे कशेरु हैं :—

१.	ग्रीवा कशेरु ये गर्दनमें हैं इनकी संख्या	७ है।
२.	पृष्ठ कशेरु ये पीठमें है " "	१३ है।
३.	कटि कशेरु ये कमरमें है " "	६ है।
४.	त्रिकास्थि ये कमरके नीचे श्रोणि देशमें	५ हैं।
५.	अनुत्रिकास्थि ये पूँछमें	१२ से २० हैं।
		कुल—४९ से ५१।

चित्र ७८. वैलका चूड़ावलय (atlas)।

चित्र ७९. वैलका दन्तचूड़ा कशेरु (axis)।

चित्र ८०. वैलका ग्रीवा कशेरु (cervical vertebra)।

प्रत्येक कशेरु का सबसे निचला भाग ठोस होता है इसे पिंड कहते हैं। इसके ऊपर कशेरु चक्र होता है। इसके बीचमें सुषुम्ना छिद्र होता है जिसमें होकर सुषुम्ना नाड़ी (spinal cord) जाती है। प्रत्येक कशेरुके बीचमें एक चकती (disc) होती है जिसके कारण गतिमें बाधा नहीं पड़ती। सुषुम्ना छिद्र चूड़ावलयमें सबसे बड़ा है। इसके बादवाले ग्रीवा कशेरुओंमें छिद्र इससे कहीं छोटे हैं। ग्रीवाके अंतिम तीन और पृष्ठके पहले दो कशेरुओंके छिद्र फिर बड़े हो जाते हैं। इसके बाद पीठके बिचले भाग तक वह बहुत छोटे हो जाते हैं। कटि देशमें यह
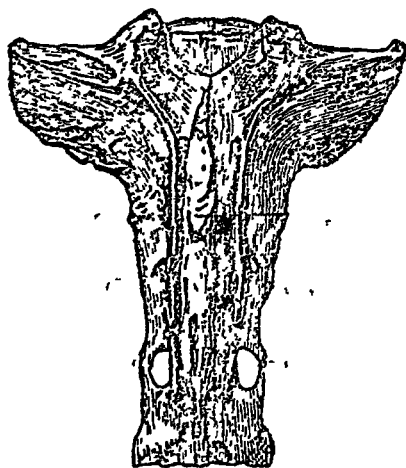
चित्र ८१. बैलकी त्रिकास्थि।

छिद्र फिर बड़ा हो जाता है। पर आखिरवाले कटि कशेरुमें एकाएक छोटा हो जाता है और आखिरी पुच्छ कशेरुमें वह बन्द हो जाता है। जिन जगहोंमें छिद्र बड़ा हो जाता है वहाँ सुषुम्नाको छेड़े बिना मेरुदंड अधिक हिलाया जा सकता है।

कशेरुओंके सिरे पर कांटे जैसे उभाड (प्रवर्धन) होते हैं। इनमें कुछ बड़े कुछ छोटे होते हैं। गर्दनके कशेरुओंके कांटे (कण्टक) बहुत छोटे होते हैं। गर्दनके बाद पीठ परके कण्टक बहुत बड़े होते हैं। बैल या घोड़ेकी ठठरीमें देख सकते हैं कि, उनके कंधोंकी आकृति इन्हींके कारण है। 1218

१२५८. उरःपंजरकी अस्थियाँ

छातीका कोठा पसलियोंसे (पर्शुकाओंसे) बनता है। पसलियोंका आधार रीढ़ है। पसलियोंके ऊपरी छोर पर रीढ़ और निचली छोरपर उरःफलक होती है। पर सभी पसलियाँ उरःफलकसे जुडी नहीं होतीं। पसलियाँ कशेरुओंकी दोनों ओर जोड़ी जोडी लगी हैं। एक जोडी पसलीके सिरे पर कशेरु और नीचे उरःफलक इस तरह मिलकर एक वृत्तसा बन जाता है। बैलको
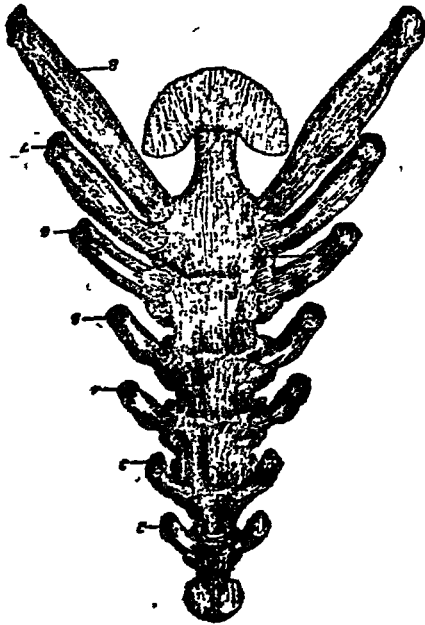
चित्र ८२ बैलका उरःफलक।
2 से 8 पसलियाँ।

१३ जोड़ी पसलियाँ होती हैं। छातीका कोठा (खाना) इन्हीं पसलियोंके वृत्तसे बनता है। यह शंकुके आकारका होता है और बगलसे दबा रहता है। शंकुकी चोटी गर्दनमें होती है। जो पसलियाँ उरःफलकसे जुड़ी रहती हैं उन्हें सउरः-फलकीय (sternal) कहते हैं। कुछ पसली उरःफलकसे नहीं जुड़तीं, पर हरेक पसली अपने पहलेकी पसलीसे उपपार्शुका द्वारा जुडी रहती है। इन्हें

अउरः फलकीय (asternal) पसली कहते हैं। सउरः फलकीय पसली ८ जोड़ी और अउरः फलकीय ५ जोड़ी हैं।

हरेक पसली लंबो, बाँकी और बहुत लचीली होती है। पहली पसली सबसे छोटी और कमसे कम बाँकी होती है। पसलियोंका बाँकपन पहलीसे आखिर तक क्रमसे बढ़ता जाता है। नवीं पसली सबसे लबी है। जो इसके आगे या बादमें हैं सब क्रमसे छोटी हैं। इसी तरह छोटी पसली सबसे ज्यादे चौड़ी है और इससे आगे पीछेकी क्रमसे सँकरी होती गयी हैं। बैलका उर.फलक चपटे
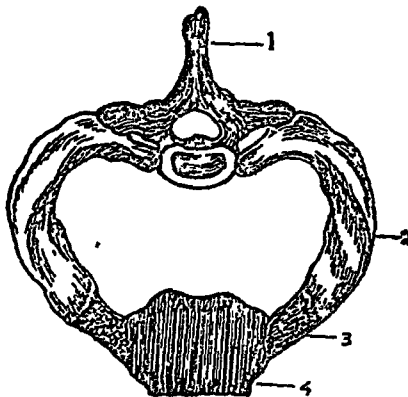
चित्र ८३. दो पसलियोंसे बना घेरा।
1 कशेरु 2. पसली, 3. तरुणास्थि, 4. उरःफलक।

पेंदवाली नावके आकारका होता है। आदमीकी तरह बैल और घोड़ेको हँसुली (collar bone) नहीं होती पसलीकी पहली जोड़ी हँसुलीका काम देती है।

१२४६. कंकालका लटकता भाग (शाखा)

दोनों अगली शाखा और श्रोणि चक्र (pelvic girdle) सहित दोनों पिछली शाखा ककालके लटकते भाग हैं। अगली शाखा यानी दोनों अगले पैर आदमीके दोनों हाथके मुकाबले हैं और दोनों पिछले पैर तो आदमीके पैरको जगह पर हैं ही।

सभी शाखाओंकी अस्थियोंकी साधारण बनावट आदमीकी अस्थिकी तरह ही है। बड़ा फर्क यह है कि, आदमीको तो ५ उँगलियां होती हैं पर बैल और घोड़ेको नहीं होती। पर उँगलियोंकी अस्थिका मूलरूप इनमें भी होता है। फिर भी जहाँ आदमीके ५ उँगलियाँ हैं वहाँ बैलको सिर्फ २ और बाकी उँगलियोंकी जगह उनका मूलरूप होता है।

१२५०. अगली शाखा

अगली शाखामें अंशफलक (scapula) और पांच उप शाखायें प्रगंड (arm), प्रकोष्ठ (fore-arm), जानु (knee or carpus), करभास्थि (metacarpus) और पैर (foot) हैं। अंशफलक तिकोना अस्थिफलक है। देहके साथ इसे बांधनेवाली पेशियोंके लिये इसमें बहुत जगह होती है।

चित्र ८४. गायकी अगली शाखा।
Humerus—प्रगंडास्थि, Ulna—अंतः प्रकोष्ठास्थि, Scapula—अंशफलक, Radius—बहिः प्रकोष्ठास्थि, Carpus—कूर्चास्थि, Metacarpus—करभास्थि, 1st, 2nd, 3rd, Phalanx—प्रथम, द्वितीय, तृतीय अंगुली नलक।
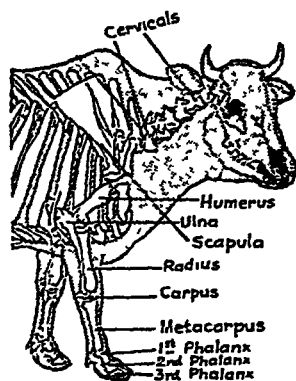
८४ और ८५ नं० के चित्रोंमें अंशफलक, प्रगंडास्थि (humerus), बहिः प्रकोष्ठास्थि (radius), अंतः प्रकोष्ठास्थि (ulna), कूर्चास्थि (carpus). करभास्थि (metacarpus), अंगुली नलक (phlanges) का सिलसिला देखा जा सकता है।

आदमीमें प्रगंडास्थिसे बहिःप्रकोष्ठास्थि और अंतःप्रकोष्ठास्थि की संधिको कुहनी कहते हैं। गायमें इस जगह को अंतःप्रकोष्ठास्थिका सिर जिसे कूर्परकूट (olecranon) कहते हैं, होता है।

कूर्चास्थि मनुष्यकी कलाई है। पर बैलकी कूर्चास्थि देखनेमें घुटना जैसी मालूम होती है। यद्यपि यह है कलाई ही फिरभी लोग घुटना ही कहते हैं। उसी तरह करभास्थि से आदमीकी हथेली बनती है जिसमें ५ अस्थियां होती हैं। पर बैलकी करभास्थि एक सीधी हड्डी या दो जुड़ी हुई
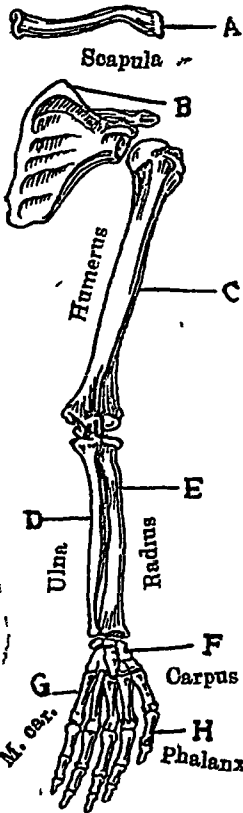
चित्र ८५. मनुष्यकी उत्तर शाखा या हाथ।

B—अंशफलक, C—प्रगठास्थि, D—अतः प्रकोष्ठास्थि, E—वहिः प्रकोष्ठास्थि, F—कूर्चास्थि, G—करभास्थि, H—अंगुली नकल।

पैरकी हड्डीकी तरह मालूम होती है। मनुष्यके हाथमें अंगुली नलक होते हैं। बैलको भी इसी तरह उँगली की ३ हड्डियाँ होती हैं। फर्क यही है कि, आदमीमें इनसे उँगली बनती है और गायमें खुर और टखना। आदमीको ५ उँगलियाँ होती है, बैलको ५ के बदले २ खुर होते हैं।

अगली शाखाकी पहली अस्थि **प्रगंडास्थि** है। इसका ऊपरी छोर गोल होता है जो अंशफलकके घाटमें रहता है। इसकी सन्धि मसीनके बौल और सौकेट (*ball and socket*) की तरह रहती है।
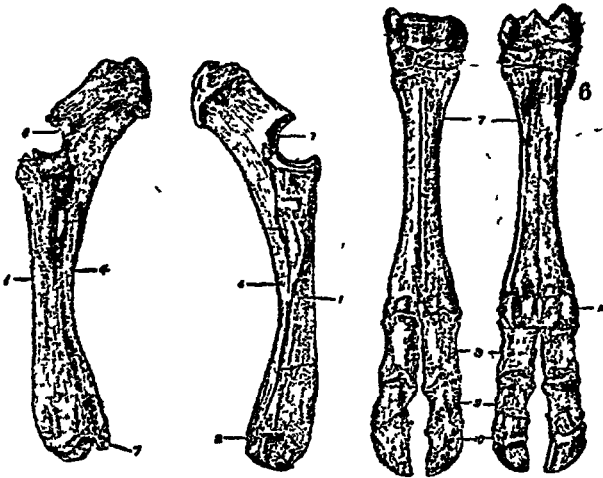
चित्र ८६. चित्र ८७. चित्र ८८. चित्र ८९.

चित्र ८६. बैलकी अंतः और बहिः प्रकोष्ठास्थि (बाहरी बगल)।
1. बहिः प्रकोष्ठ, 4. अंतः प्रकोष्ठ,
6. प्रगंडास्थिके मिलनेकी खात,
7. अंतः प्रकोष्ठका निचला छोर।

चित्र ८७. बैलकी अंतः और बहिः प्रकोष्ठास्थि (भीतरी बगल)।
7. प्रगडास्थिके मिलनेकी खात.
8. अंतः प्रकोष्ठका निचला छोर।

चित्र ८८. बैलकी पुरः शाखाका हाथवाला भाग (सामनेका दृश्य)।
7. करभास्थि, 8. 9. 10. तीन अंगुली नलक।

चित्र ८९. ऊपरके चित्रका पिछला दृश्य।
6. कूर्चास्थि, 11. चणकास्थि।

इसका निचला छोर बहुत कुछ चौड़ी घिरनीसा होता है। कुहनी पर बहिः और अंत. प्रकोष्ठास्थि की इससे सन्धि होती है। आदमीमें अंतः और बहिः प्रकोष्ठास्थि दो जुदी जुदी हड्डियां हैं। बहि. प्रकोष्ठास्थि अंतः प्रकोष्ठास्थि पर सरक सकती है। इससे कलाई इधर उधर घूम सकती है। बैलकी ये दोनों अस्थियाँ

आपसमें जुड़ी हैं। अंतः प्रकोष्ठास्थिका वाहरी छोर उभरा हुआ है जो कि कूर्परकूट या कुहनीकी नोक है। वहिः प्रकोष्ठास्थि गात्रका भार संभालती है। इसका निचला छोर कूर्चास्थियों से मिलता है। ये गिनतीमें ६ हैं।
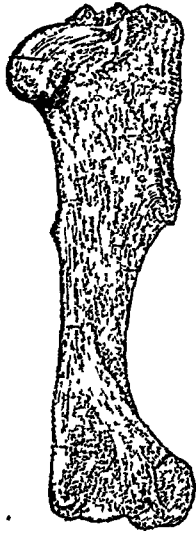
चित्र ९०.
घोड़ेकी प्रगंडास्थि।
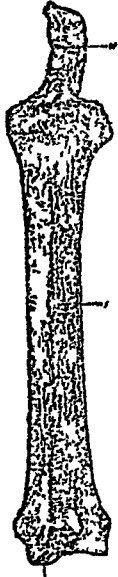
चित्र ९१.
घोड़ेकी अंतः और वहिः प्रकोष्ठास्थि।
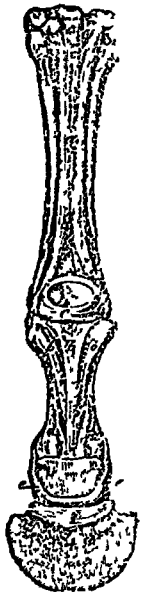
1　वहिः प्रकोष्ठ,
9　निकली सन्धिका स्थान,
11　कूर्पर कूट।

चित्र ९२.
घोड़ेका वायाँ हाथ।
(पीछेका दृश्य)

४ ऊपरी पंक्तिमें और २ निचलीमें। यह वैलका घुटना कहा जाता है। कई छोटी अस्थियोंकी ऐसी रचनाके कारण गड़वड़ी के विनाभी वह लच सकती हैं। इन अस्थियोंकी जगह शलाकाधिष्ठान (cannon region) या मणिवंध कही जाती है। मनुष्योंमें यही कलाई मणिवन्ध है।

कूर्चास्थियाँ दो करभास्थियों पर मिलती हैं। करभास्थि मनुष्यकी हथेलीमें होत है। आदमीकी ऊर्ध्व शाखा अर्थात् हाथमें ५ करभास्थियाँ होती हैं। उनकी जग बैलमें २ कूर्चास्थियाँ हैं। इनके निचले छोरसे टखनेका जोड़ (fetlock) बनता है बैलकी दोनों करभास्थियाँ आपसमें घुली मिली हैं। पर नीचेकी ओर फटी हुई हैं कटा भाग अपनी अपनी ओरके अँगुलीनलकों से मिला रहता है। आदमीका अंगू छोड उसकी चार उँगलियोंकी तरह बैलके चार उँगली होती हैं। इनमें दो ह भार झेलती हैं बाकी दो मूल रूपमें और टखनेकी जोड़के पीछे होती हैं। भा झेलनेवाली २ उँगलियाँ ३ अँगुलीनलकोंकी बनी हैं। इनका अंतिम बैलक पंजा है।

आदमीकी ऊपरी शाखा, बैल और घोड़ेकी अगली शाखा (चित्र ८४ से ८९) के चित्रों से यह भेद साफ हो जायगा।

१२५१. श्रोणि

अगली शाखा जैसे अंशफलकसे लगी हुई है वैसेही पिछली शाखा **श्रोणिसे**। अंसफलक कशेरुसे जुड़ा हुआ नहीं है लेकिन श्रोणि है। श्रोणि दो अस्थियोंकी बनी है। ये आपसमें कसकर जुडी हुई हैं जिससे इसकी गढ़त गमलेसी हो जाती है। यह त्रिक कशेरुसे उभड़ती है। श्रोणिकी दोनों अस्थियों में प्रत्येक तीन तीन अस्थियोंके जुड़नेसे बनी है। गायका बच्चा व्यानके समय श्रोणिके छेद से बाहर आता है। गायका दुधारपन श्रोणिके आकार पर बहुत कुछ निर्भर है। बड़ी श्रोणि होने से पिछला भाग चौड़ा होता है इस कारण थनको फैलनेकी जगह मिल जाती है।

बैल और गायकी श्रोणिमें बड़ा भेद होता है। गायकी श्रोणि कहीं ज्यादे फैलावकी और बडी होती है। जुड़े त्रिक कशेरुसे लगा हुआ, श्रोणि चक्रका भाग चौड़ा और बहुत कुछ तिकोना होता है। श्रोणिके दोनों बगल कटोरीके आकारकी एक खात होती है। उरुअस्थि इसीमें घुसी रहती है जिससे कमरकी जोड़ (कटिसंधि) बनती है। बड़े कदकी गायकी श्रोणिके छेदकी लंबाई चौड़ाई ९॥ इंच × ७ इंच है।
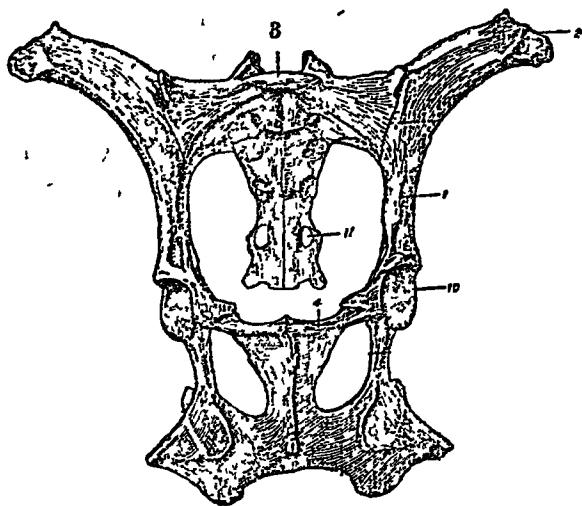
चित्र ९३. श्रोणि

1 जघन कपाल (ilium) का डडा, 2. कुल्हा (haunch) का कोण, 3 पहली त्रिकास्थिकी चोटी, 4 भगास्थि (pubic bone), 10 उरु अस्थिके मिलनेका स्थान, 11 त्रिकास्थि ।

चित्र ९८. गायकी पिछली शाखा । इसमे श्रोणिचक्र (Pelvic G), उरु अस्थि (Femur), जंघास्थि (Tibia), पाद कूर्चास्थि (Tarsus) और पदागुली मूल शलाका (Metatarsus) दिखाये गये है ।

1218
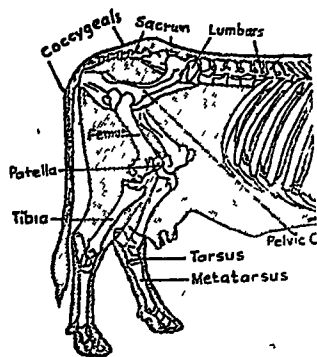
१२५२ पिछली शाखा

अगलीकी तरह पिछली शाखामें भी पांच भाग होते हैं, यथा उरुअस्थि (femur), जंघास्थि (tibia), अनुजंघास्थि (fibula), पाद कूर्चास्थि (tarsus), पादांगुली मूलशलाका (metatarsus) और अंगुली नलक (phlanges) या पदतलकी अस्थियां। उरुअस्थि अगली शाखाकी प्रगडास्थिकी तरह है और जंघास्थि तथा अनुजंघास्थि, अतः और वहिः प्रकोष्ठास्थि की तरह हैं। यहां
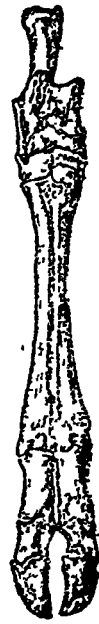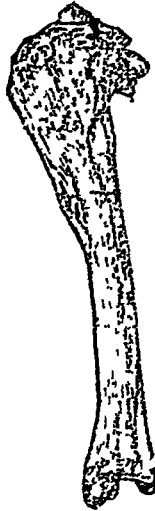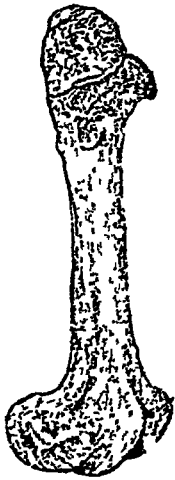
चित्र ९५. बैलकी उरु अस्थि। चित्र ९६. बैलकी जंघास्थि। चित्र ९७. चित्र ९८ बैलका पैर (बगल और सामनेका दृश्य)।

जंघास्थि अधिक बड़ी अस्थि है। जंघास्थिका ऊपरी छोर घुट्ठी (stifle) अर्थात तरुणास्थीय चकतीके नीचे रहता है और धीरे धीरे शकुला (गावदुम) होता हुआ कूर्च तक आता है। अनु ज़घास्थि विकसित नहीं हुई है। पाद कूर्चकी अस्थियां ५ हैं। पिछली शाखाका पाद कूर्चसे नीचेका भाग (पैर) अगली शाखा (हाथ) की तरह ही है।

अध्याय ३२

पेशी और सन्धि

१२५३. पेशियाँ

पेशी साधारण तौरपर मास कही जाती है। इन्हींसे स्नायु तन्तु बनते हैं। स्नायु कुंचित हो सकते हैं। इसी गुणके कारण बड़े जतुओंमें सब तरहकी गतियाँ हो सकती हैं।

पेशी एक स्नायु है और शरीर स्नायुओंका बना कहा जा सकता है। प्राणीका शरीर एक कोषसे आरभ होता है। इसलिये कोष सबसे छोटो जीवित इकाई है। अनेक कोषोंकी सहनि स्नायु कही जाती है। देहमें कई तरहके स्नायु हैं :—

१. पृष्ठाच्छादक तन्तु (epithelial tissue),
२. बध तन्तु (connective tissue),
३ मास तन्तु (muscular tissue),
४. नाड़ी तन्तु (nervous tissue),
५. रक्त और रक्तवहा (blood and blood vessels),
६. अस्थि तन्तु (bony tissue), ।

पेशियोंके दो मुख्य वर्ग हैं।—स्वतंत्र (involuntary) और परतंत्र (voluntary)। हृदयकी पेशी स्वतत्र वर्गकी कही जा सकती है। यह बात और है कि दूसरी स्वतत्र पेशियों और उसमें भेद है। इसलिये उसका एक अपना अलग वर्ग किया जा सकता है।

परतत्र पेशियाँ धारीदार (straited) भी कही जाती हैं। क्योंकि, अनुवीक्षण यत्रमें देखनेसे हरेक पेशीमें एक दूसरेको काटती हुई धारी साफ दिखाई देती है। पर स्वतत्र पेशीमें यह धारी नहीं होती।

परतन्त्र पेशियाँ ककालका मुख्य आवरण हैं। आमिष भोजी जो मांस खाते हैं वह यही है। पेशियाँ बहुत छोटे छोटे प्रायः $\frac{1}{600}$ इंच लम्बे तंतुओंकी बनी होती हैं। हरेक तन्तु अपने ही वेठनसे ढका रहता है। तन्तुमें मूल कण (nuclei) दिखायी देते हैं। वेठन सूक्ष्म सौत्रिक तन्तु (fibre-tissues) से जुडा रहता है। यह एक पेशी तंतुको दूसरेसे बाँधता है।

पेट, अँतडी, सिरा, धमनी, गर्भाशय, वस्ति, मूत्रमार्ग आदि देहके खोखले भागका अधिकांश स्वतन्त्र पेशियोंका बना होता है। इस पेशीके तन्तु परतन्त्रसे छोटे होते हैं। स्वतन्त्र पेशीके तंतुका छोर नुकीला होता है जिसके बीचमें अंडाकार मूलकण होता है। इन तंतुओंके गुच्छे होते हैं और एक प्रकारकी बाँधनेवाली चीजसे आपसमें चिपके रहते हैं।
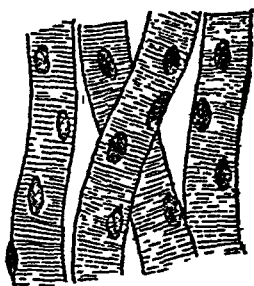
चित्र ९९. परतंत्र पेशी बनानेवाले तन्तु।

हृदयकी पेशियोंमें उभाड होते हैं जो मिले रहते हैं जिनसे जालसा बन जाता है।

औसत पशुके शरीरकी कुल तौलका एक तिहाई परतंत्र पेशी या मांस होता है। जो पेशियाँ जोडोंको मोड़ती हैं उन्हे **नमनी** (flexors) और जो मुडे जोड़ोंको सीधा करती हैं उन्हे **प्रसारणी** (extensors) कहते हैं। जो पेशियाँ अगोंको अपनी जगहसे हटाकर मध्य रेखासे दूर ले जाती हैं उन्हें **नायनी** (abductors) कहते हैं। जो पेशियाँ अंगोंको घुमाती या मरोड़ती हैं उन्हें **विवर्तनी** (pronators या supinators) कहते हैं। छेदोंको छोटा बडा करनेवाली पेशीको **संकोचनी** (sphincter) कहते हैं। ये स्वतन्त्र हैं पर इनमेंसे कुछ

परतंत्र भी हैं। कुछ पेशियोंके आखीरी छोर पर कंडरा (tendons) होती है जो बहुत मजबूत तनुओंकी बनी होती है। कंडरा अस्थियोंसे जुड़ी रहती है।

बैलके देहमें कई सौ पेशियाँ हैं। उनमेंसे कुछ प्रसिद्ध पेशियोंका वर्णन यहाँ किया जायगा।

चित्र १००. छोटी आँतकी दीवालसे निकाला हुआ स्वतंत्र पेशियोंका हिस्सा।
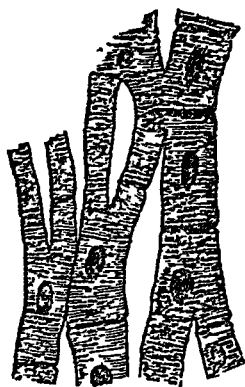
चित्र १०१. हृदयकी पेशियोंके तन्तु।

१२५४. कंधा और अगली शाखाकी पेशियाँ

पृष्ठच्छदा (Trapezius) : ये पेशियाँ असफलकसे लगी हुई हैं। इन्हीं के कारण उसमें गति हो सकती है।

अंसच्छदा (Deltoid) : यह पेशी प्रगण्डको ऊपर उठाती है। यह कंधोंको सिकोड़ती भी है।

द्विशिरस्का (Biceps) : यह पेशी कुहनीको मोड़ती है और बाँहकी पेशीको ढकनेवाली झिल्ली (fascia)—प्रावर्णी—को कड़ा करती है।

अंसपृष्ठिका उत्तरा (Supraspinatus) : यह कंधेकी जोड़ाको फैलानेवाली है।

अंसपृष्ठिका अधरा (Infraspinatus) : यह प्रगण्डास्थिको चलाती और नीचेकी ओर मोड़ती है।

कूर्पर द्विशिरस्का (Brachialis) : यह कुहनीको मोड़ती है।

त्रिशिरस्का (Triceps) : यह द्विशिरस्काके सामने रहती है और कुहनी फैलाती है।
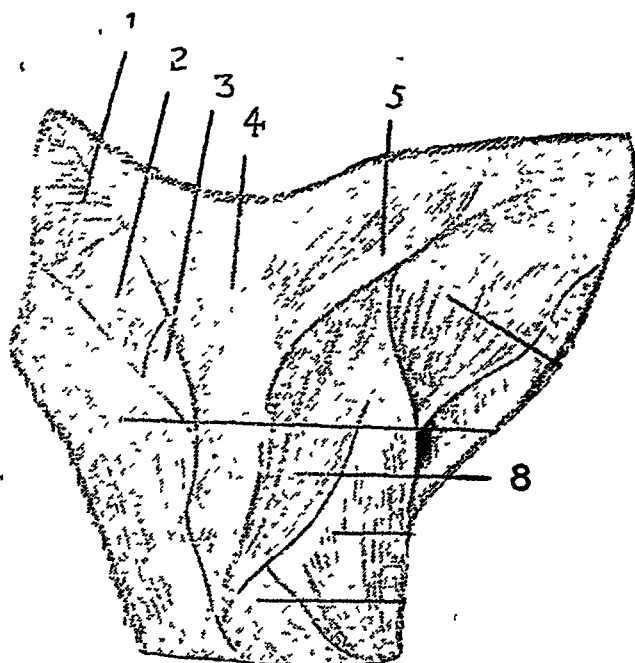
चित्र १०२. कंधेकी पेशियाँ (घोड़ेकी)।
1. शिरोग्रीव विवर्त्तनी, 2. अंसोन्नमनी, 3. उरच्छदा,
4 और 5. पृष्ठच्छदा, 8. अंसच्छदा।

कुहनीकी बाहरी ओर सामने करभ नमनी (metacarpi magnus) और प्रसारणी (extensor pedis) के कारण पेशीका एक बड़ा पुज बन जाता है। भीतरकी ओर द्विशिरस्काकी कण्डरा टटोल् कर देखी जा सकती है।

करभ नमनी (Flexor metacarpi) : ये पेशियाँ हाथको भुकाती हैं।
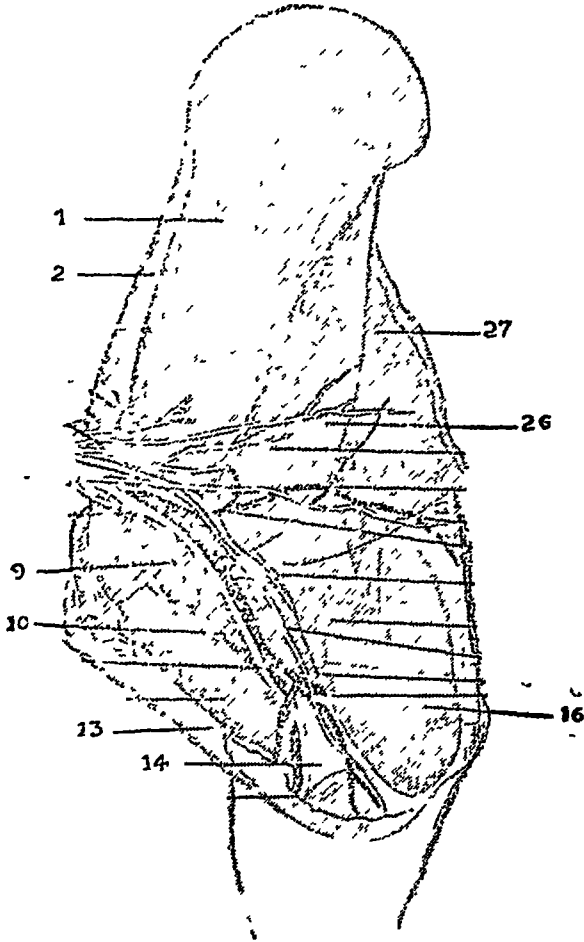
चित्र १०३ कन्धा और बांहकी पेशियाँ।

1. अशांतरिका, 2. असपृष्ठिका उत्तरा, 9. उरच्छदा, 10. मध्य प्रकोष्ठिका नाडी, 13. प्रगंडास्थिका प्रवर्धन, 14. वहिः प्रकोष्ठास्थिकी पिछली धमनी, 16. अश और अ—ः प्रकोष्ठाच्छादनी पेशी।

चित्र १०४. अगली शाखाकी पेशियां।
(घोड़ेकी)

2. असच्छदा, 7. करभनमनी, 19. प्रसारणी, 20. करभ प्रसारणी, 21. द्विशिरस्का, 24, अंसपृष्ठिका अधरा, 25. अंसपृष्ठिका उत्तरा।
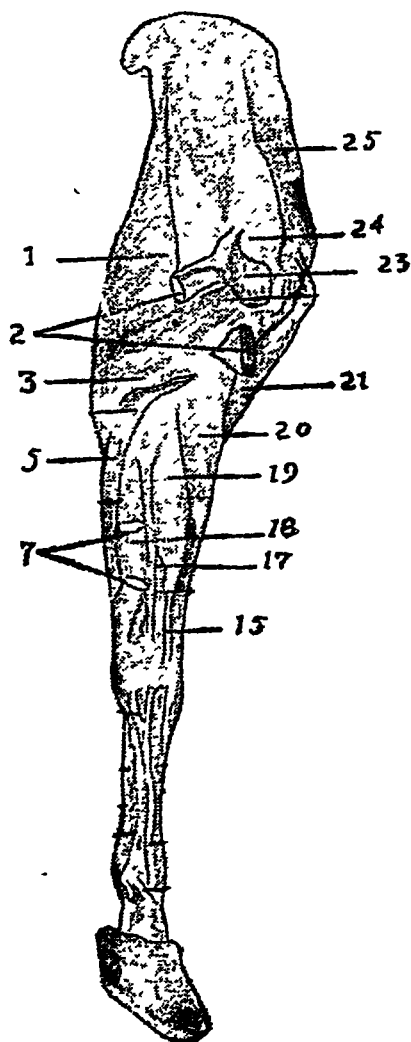
अंगुली नमनी और प्रसारणी (Digital flexor and extensor) : ये कूर्च और इसनेको सफलताके साथ झुकाती और फैलाती हैं।
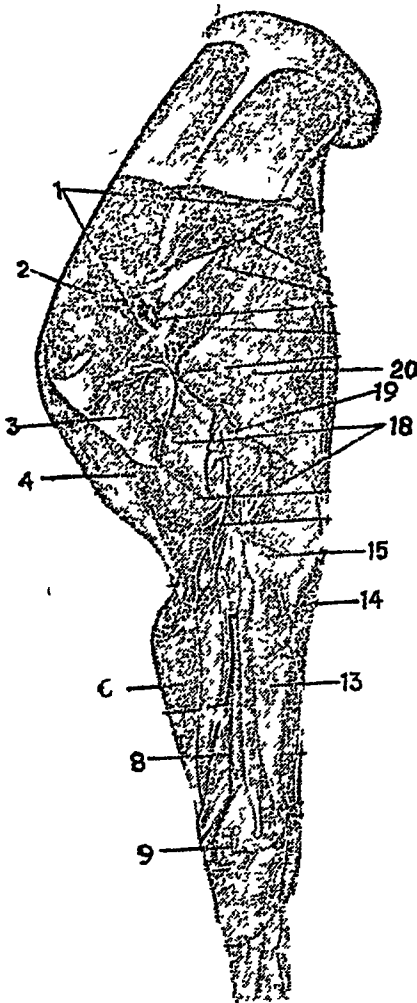
चित्र १०७ कधा, बाँह और हाथकी पेशियाँ (घोडेकी)।

1. असप्रृष्ठिका अधरा, 2 अंसप्रृष्ठिका उत्तरा 3. असच्छदा, 4 द्विशिरस्का, 6. करभ प्रसारणी, 9. प्रसारणी, 13. करभ नमनी।

१२५५. पिछली शाखाकी पेशियाँ

नितम्ब पिण्डिका मध्यमा (Middle gluteus): इस पेशीका आकार और ताकत बहुत बड़ी है। यह कमरको हिलाती है। इसकी क्रियासे उरु

अस्थि और उसके साथ पूरा अंग आगे पीछे होता है। पर यदि उरु अस्थि स्थिर हो जाय तो नितम्ब पिण्डिका पशुके धड़को तान देगी, जिससे वह अपनेको सँभाल नहीं सकेगा।

द्विशिरस्का और्वी (Biceps femoris) : सबसे बड़ी पेशियोंमें यह एक है। यह त्रिककशेरुसे उत्पन्न होती है और कुछ उरु अस्थिसे जुड़ी रहती है।
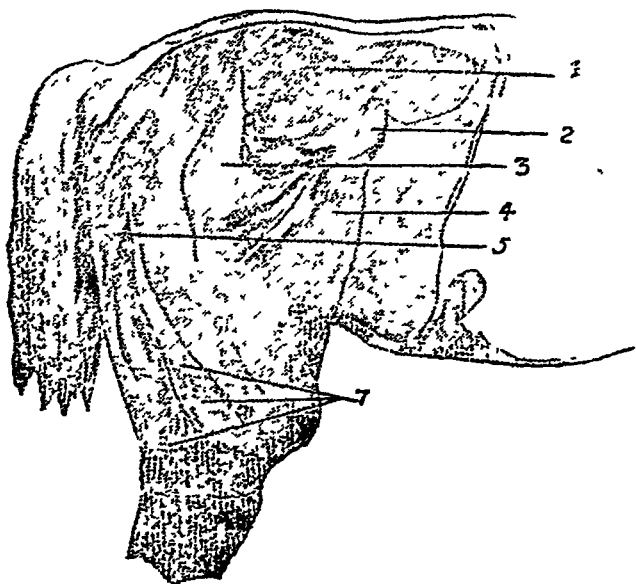
चित्र १०६. पिछली शाखाकी अस्थियाँ (घोड़ेकी)।

1. नितम्ब पिडिका मध्यमा 2. जघन कपालका बाहरी कोण, 3. नितम्ब पिंडिका वहिस्था, 4 उरुकंचुका कर्पणी, 5. जानु कर्पणी, 7. द्विगिरस्का और्वी।

यह कुछ जान्वस्थिसे जुड़ी रहती है। इस कारण कमरकी नमनी और घुट्टीको प्रसारणी है।

पिण्डिका (Gastroconemius) : इसे दो मासल मुण्ड होते हैं जो एकही कंडरामें मिल जाते हैं। आदमीकी एड़ीसे ऊपरकी ओर जानेवाली दृढ़ कण्डराकी तरह यह है।
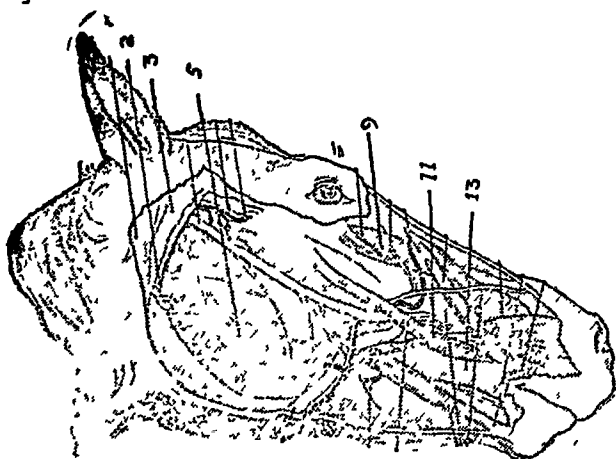
चित्र १०७ मुखमंडलकी पेशियाँ।
(घोड़ेकी)
2. हनुपेशि वाहक, 3. अग्रिम कर्णमूलिक ग्रन्थि, 5. चर्वणी।
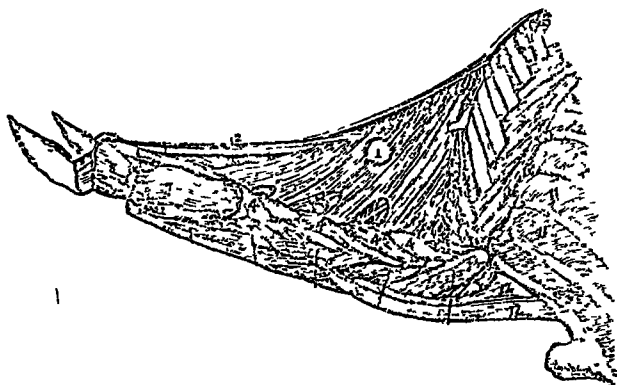
चित्र १०८. शिरोग्रीव वध।
1 और 2 शिरोग्रीव वध।

१२५६. मुखमंडलकी पेशियाँ

चर्वणी (Masseter): यह पेशी अधोहन्वस्थिको ढके रहती है। यह पेशी चिपटी, अर्ध चन्द्राकार, मोटी और मजबूत है। यह गण्डास्थि और अधोहन्वस्थि से उत्पन्न होती है और नीचेके जबड़ेसे जुडी है। यह निचले जबड़ेको उठाती है जिससे निचले दाँत ऊपरके दाँतसे मिलते हैं। इस तरह यह चबानेमें मदत करती है।

शिरोग्रीववंध (Ligament nuchæ): शरीरमें यह सबसे बड़ा बंध है। यह गर्दनके बीचोबीच कशेरुओंसे ऊपर उसकी दोनों ओर है। सिर इसीकी मदतसे बंधा है। जब सिर झुलता है तो उसे फिर उठानेमें पेशियोंकी मदत यही करता है।

१२५७. पीठकी पेशियाँ

मध्यपृष्ठिका (Longissimus Dorsi): देहमें यह सबसे लंबी और मजबूत पेशी है। त्रिकसे गर्दन तक सारे मेरुदण्ड पर यह फैली है। कमरमें पेशी और कण्डराओंका एक बड़ा पिण्ड यह बनाती है। रीढ़के पास कमरका यह प्रसरण करती है।

१२५८. सन्धि और बन्ध

दो या अधिक तरुणास्थियोंके जोडको सन्धि कहते हैं। साधारण तौरपर दो अस्थियाँ जुड़ती हैं। पर कभी कभी, सन्धिमें तरुणास्थियाँ भी भागीदार हो जाती हैं। सन्धि चल या अचल हो सकती है। अचल सन्धियोंके कारण जुड़ी अस्थियाँ एक मालूम होती हैं। जैसे कि, खोपड़ीकी अस्थियाँ।

जहाँ दो अस्थियोंकी चल-सन्धि होती है वहाँ सन्धि-स्थल पर तरुणास्थियोंकी एक तह (स्तर) होती है। दोनों अस्थियोंको बन्ध बाँधे रखते हैं। बन्ध सौत्रिक तंतुओंकी (fibre tissue) मजबूत पट्टियाँ हैं। यह रस्सी या कभी कभी फीतेकी तरह ही हैं।

सन्धि पर बन्द मुँहकी झिल्लीकी थैली होती है। इस झिल्लीको श्लेष्मधरा कला (synovial membrane) कहते हैं। इसमें श्लेष्मद द्रव (synovial) निकलता है जिससे सन्धियाँ चिकनी रहती हैं। इनके अलावे और पेशियाँ भी हैं जो सन्धियोंका प्रसारण या नमन करती हैं।

सन्धियोंका प्रकार : (१) सरकनेवाली या प्रतर सन्धि, (२) खड़्कोर सन्धि, (३) उदूखल (ball and socket) सन्धि ये साधारण प्रकार हैं। सरकनेवाली संधिकी हड्डियों का तल चिपटा होता है। उसमें थोड़ी ही गति हो सकती है। कशेरु, कलाई, पाद कूर्चकी सन्धियाँ सरकती हैं।
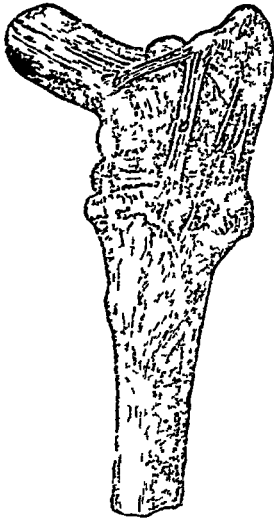
चित्र १०९. बायें घुट्टीकी सन्धि, जिसमें बन्धोंकी पट्टियाँ दिखायी गयी हैं।

खड़्कोर संधिमें हड्डियाँ किवाड़की तरह घुम सकती हैं। इस संधिसे जुड़े भाग कुहनी, टखना, इधरसे उधर किवाड़की तरह फिर और खुल सकते हैं।

उदूखल सन्धिमें अस्थिका एक छोर गोल रहता है, यह दूसरी अस्थिके उदूखलमें (उखली) घुसा रहता है। अशफलक और प्रगण्डास्थिकी कंधेपरकी सन्धि, उरु अस्थि और श्रोणिकी कमरपरकी सन्धि उदूखल संधिके उदाहरण हैं।

अध्याय ३३

गायकी इन्द्रियाँ

१२५९. इन्द्रियाँ

ककाल अस्थिमय ढाँचा है। इस पर पेशियाँ लगी हुई हैं जिनका काम इसे जोड़ना, ढाँकना और तरह तरहकी गति लाना है। यह गति एक देशीय या सारे शरीरकी हो सकती है।

ककाल और उसके परिच्छदके ढाँचामें विभिन्न इंद्रियाँ अलग अलग हैं। सिर और गर्दनकी इन्द्रियाँ अलग अलग हैं। इसके बाद छाती और पेटकी बडी खात है। कधा और गलेके पास उरःपंजरकी चोटीसे एक खात शुरू होती है जो श्रोणिमें खतम होता है। इसमें इन्द्रियाँ भरी पड़ी हैं। पेशियोंका एक पर्दा महाप्राचीरा (diaphragm) है। महाप्राचीरा छाती और पेटकी खातको पूरी तौर अलग करनेवाला पर्दा या दीवार है।

१२६०. उरःपंजरकी इन्द्रियाँ

छातीमें मुख्य रूपसे हृदय और फेफड़ा होता है। पर पेटके कोठेमें पाचक और कुछ मलत्यागकी तथा दूसरी इन्द्रियाँ भी होती हैं। पहले हमलोग उरःपजर या छातीकी इद्रियोंका विचार करें।

छाती और पेटके बड़े खातमें छातीका कोठा गरदन के सबसे पास है। पसलियों का बना यह पिंजरे जैसा है। पसलियोंकी दो पक्तियाँ इसकी दोनों ओर हैं। ऊपरमें गरदनके कशेरुसे येह निकलते हैं और नीचे उरःफलक पर मिलते हैं। महाप्राचीरा इस खातके आधारका काम करती है। खातकी चोटी गरदनमें घुसी रहती है।

पसलियोंके बीच पर्शुकान्तरिका पेशियाँ (inter-costal muscles) होती हैं। इनकी दो तहें होती हैं जो एक दूसरेसे समकोण बनाती हैं। सारा बाहरी भाग छोटी बड़ी पेशियों से मढा है। बड़ी पेशियाँ कधे पर हैं। अशफलक बाहरकी ओर पसलियोंसे ऊपर है।
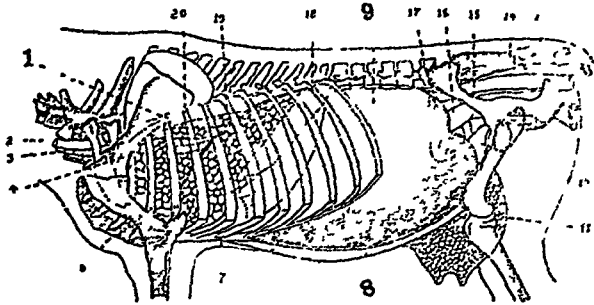
चित्र ११०. गायकी भीतरी इन्द्रियाँ।

1 महाधमनी, 2. अन्नवह, 3. क्लोम नलिका, 4. याकृत धमनी, 6. हृदय, 7. जालाशय, 8 और 9. रोमन्थाशय, 11. थन, 12 वस्ति, 13 भग, 14 गुदनलिका, 15. गर्वीनी, 16. गर्भाशय, 17. बायां डिम्बकोष, 1' प्लीहा, 20 महाशिरा।
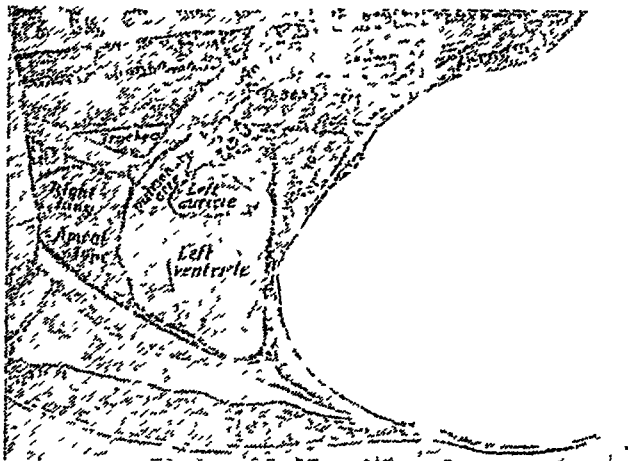
चित्र १११. छातीका चित्र जिसमें हृदय, पेफड़ा और महाधमनी अन्नवह, क्लोम नलिका, महाप्राचीर दिखाये गये हैं।

छातीमें दोनों ओर एक एक फेफड़ा होता है। फेफड़ेमें क्लोमनलिका या श्वासनलिका (trachea) और क्लोमशाखा (bronchus) ये दो नलियाँ घुसती हैं।

फेफड़ोंके बीच वायीं ओर झुकता हुआ हृदय है। कितनी ही धमनियाँ, नाड़ियाँ और अन्नवह छातीमें हो कर महाप्राचीराके उस पार जाती हैं। हरेक फेफड़ा उरस्या या फुस्फुसधरा कला (pleura) से ढका है। हृद्कोष (pericardium) नामक एक विशेष थैलीके बीच हृदय रहता है।

फेफड़े साँस लेनेकी इंन्द्रियाँ हैं। साँस खींचने पर हवा फेफड़ेमें जाती है और रक्तके साथ उसका संसर्ग होता है। शुद्ध करनेके लिये हृदय फेफड़ोंमें रक्त भेजता है। शुद्ध रक्त फिर हृदय में लौट जाता है और मैल उल्टी साँसमें बाहर निकल हवामें मिल जाता है।

शरीरमें रक्त संचार करनेकी जो क्रिया होती है उसे रक्त संचारी संस्थान कहते हैं। उसका केन्द्र हृदय है। श्वास प्रश्वासके द्वारा रक्तकी शुद्धिका जो प्रबन्ध है उसे श्वास संस्थान कहते हैं। उसका केन्द्र फेफड़ोंमें है। छाती में रक्त संचारी केन्द्र हृदय और साँसके केन्द्र फेफड़े हैं। चित्र १११ में हृदय, फेफड़े और दूसरी कई इन्द्रियोंकी यथाक्रम स्थिति दिखायी गयी है।

१२६१. उदरकी इन्द्रियाँ

उदर, उरःपंजर और श्रोणिके बीच है। उरःपंजर आगे और श्रोणि पीछेकी ओर है। यह धड़का बिचला भाग है। उदरकी दीवारका कुछ अंग पसलियोंके पिंजरे और महाप्राचीरासे बनता है। यह उदरके दोनों बगलोंमें होता है। पसलियोंके बीच उदरकी कुछ इन्द्रियाँ होती हैं। उनकी रक्षा पसलियों से होती है।

उदरमें मुख्य रूपसे पाचक इन्द्रियाँ जैसे आमाशय (stomach), अन्त्र (intestine), यकृत (liver), अग्न्याशय (pancreas), और वृक्क (kidney) तथा प्लीहा (spleen) होती हैं। रोमन्थ करनेवाले पशुओंकी ये पाचक इन्द्रियाँ अन्य पशुओंसे भिन्न हैं। गाय रोमन्थ करनेवाले पशुओंमें है। इन्हें ४ आमाशय होते हैं। पर घोड़ेकी तरहके पशुओंको एक ही आमाशय होता है। इसके कारण उदरकी इन्द्रियोंकी स्थितिमें बहुत भिन्नता होती है। गायके चार आमाशय ये हैं :— रोमन्थाशय (rumen), जालाशय (reticulum), पूर्वाशय

(omasum), और पश्चातआशय (abomasum)। पहला रोमन्थाशय महाप्राचीरासे लेकर श्रोणि तक उदरके कुल बायें भागमें रहता है और कुछ हद तक
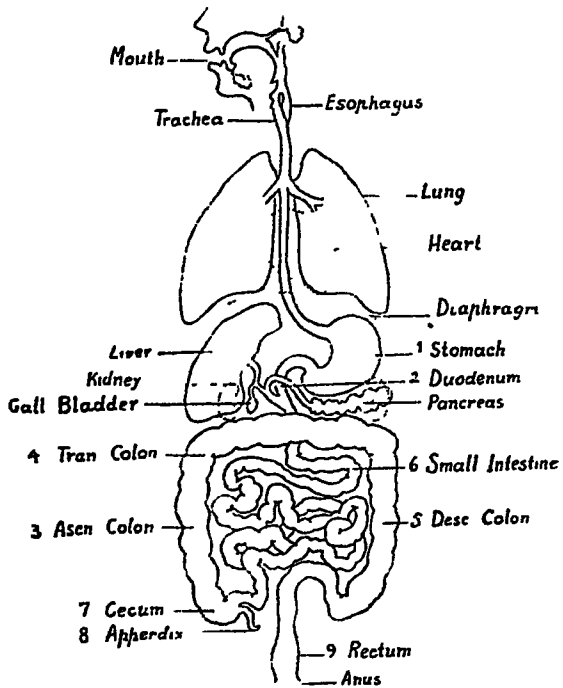
चित्र ११२ मनुष्यके छाती और उदरकी इन्द्रियाँ।
श्वास और सचारकी इन्द्रियाँ महाप्राचीराके उपर
और उदरकी उसके नीचे हैं।

Mouth-मुँह, Esophagus-अन्नवह, Trachea-क्लोम नलिका, Lung-फेफड़ा, Heart-हृदय, Diaphragm-महाप्राचीरा, 1-आमाशय, 2-ग्रहणी, Pancreas-अन्याशय. Liver-यकृत, Kidney-वृक्क, Call Bladder-पित्तकोष, 6-छोटी अँतडी, 3, 4, 5-बड़ी अँतडी 7 उण्डुक, 9. गुद नलिका, Anus-मलद्वार।

दाहिनी ओर भी बढ़ा रहता है। प्लीहा इसके बाहरी तल पर ऊपरकी ओर होती है। इसको छोड बायीं ओर कोई दूसरी इन्द्रिय नहीं है। यह र. जा

सकता है कि प्लीहा ही दूसरी इन्द्रिय है जो वायीं ओर है। वायां वृक्क और जालाशयका कुछ वायीं ओर है, लेकिन जब रोमन्थाशय भरा रहता है तो इन्हें दाहिनी ओर ठेल देता है। जालाशय गरदन और रोमन्थाशयके बीचमें नीचेकी ओर रहता है। नारंगीके आकारका पूर्वाशय दाहिनी तरफ ७ वीं और ११ वीं पसलीके सामने रहता है। पश्चातआशय लम्बी थैलीके आकारका है और उदरकी दाहिनी निचली दिवाल पर रहता है। यह ग्रहणीमें (duodenum) खुलता है जिसमेंसे क्षुद्रान्त्र आरम्भ होती है। यह आंत १३० फूट लम्बी नली है। आदमीका क्षुद्रान्त्र कुल २१ फुट लम्बी है। इस आँतकी अन्तिम छोर वेरके ऐसा आकार
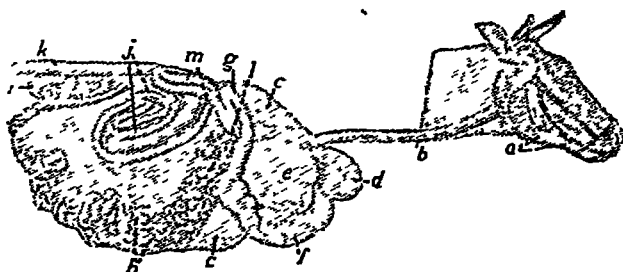
चित्र ११३. गायकी पाचन इन्द्रियाँ।

a-लालाग्रन्थि, b-अन्नवह, c-रोमन्थाशय (इसका थोड़ा अंशही यहाँ दीख पड़ता है, पिछला भाग अँतड़ियोंसे ढका है), d-जालाशय, e-पूर्वाशय, f-पश्चातआशय, g-ग्रहणी, h-क्षुद्रान्त्र वन्धनी, i-उडुक, j-वृहदन्त्र, k-गुद नलिका, l-ग्रहणीमें पित्त नलिकाके घुसनेकी जगह, m-ग्रहणीमें अग्न्याशय नलिकाके घुसनेकी जगह।

का होता है जिसे उण्डुक (cæcum) कहते हैं। वृहदन्त्र यहींसे आरम्भ होती है। उण्डुकसे वृहदन्त्रकी दुहरी कुन्डली निकलती है। कुछ कुंडली केन्द्रकी ओर जाती है और दूसरी केन्द्रसे वाहर निकलती है। वृहदन्त्रका अधिकांश मेरुदन्ड और उदर तलके वीच पर दाहिनी ओर है। यकृत दाहिनी ओर जालाशय और पूर्वाशयके वीच महाप्राचीराके सहारे है। यकृतको पित्तकोष (gall bladder) भी होता है। यहां भी वैल और घोड़ेमें भेद है। घोड़ेको पित्तकोष नहीं होता।

अगन्याशय ग्रहणी और यकृतके बीच महाप्राचीराके पास होता है।

दोनों **वृक्कोंमें** दाहिनी तरफवाला आखरी पसलीके नीचे रहता है। बायें वृक्कमें यह विशेषता है कि उसे परिस्थितिके अनुसार इधरसे उधर होना होता है। जब **रोमन्थाशय** भरा नहीं रहता तब यह वृक्क बायीं ओर रहता है। पर जब चारेसे रोमन्थाशय भर जाता है तब यह ठिलकर मध्यरेखाकी दाहिनी ओर दाहिने वृक्कके नीचे चली आती है। वृक्कोंमें खट (lobes) होते हैं। **प्लीहा,** बायीं उदर प्राचीरा और रोमन्थाशयके ऊपरी दाहिने भागके बीचमें होती है।

आहार सामग्री मुँहसे होकर अन्नवहमें जाती है। अन्नवहके बगलमें **श्वास नलिका** रहती है। खानेकी चीज श्वास नलिकामें न चली जाय, इसकी हिफाजतके लिये श्वास नलिका पर एक ढक्कन होता है, जिसे **ग्रीवाप्रच्छदा** (epiglottis) कहते हैं। खानेकी चीज यदि श्वास नलिकामें घुसने लगती है तो यह ढक्कन लग जाता है।

निगला हुआ चारा रोमन्थाशयमें जाता है। वहाँसे वह और अधिक चबाकर पचन लायक बनानेके लिये फिर मुँहमें आता है।

रोमन्थके बाद चारा जालाशयमें जाता है। वहाँसे पूर्वाशयमें और अन्तमें पश्चातआशयमें। इस आशयसे ग्रहणी आरम्भ होता है जो आशयसे बाहर निकलनेका द्वार है। ग्रहणीके पास आहारमें यकृतसे पित्त और अग्न्याशयसे अग्नेय रस मिलते हैं। इनसे खाना पचनेमें मदत मिलती है। इसके बाद १३० फूट लम्बी आंतमें खाना चलता है। इस सारे समयमें परिवर्त्तन होता ही रहता है। इसके बाद खानेकी चीज उडुकमें पँहुचती है। यह छोटी और बडी आंतके मिलनेकी जगह है। उडुकमें पँहुचते पँहुचते खानेकी चीजमें सब तरहका रासायनिक और जैविक परिवर्तन हो चुका रहता है और सोखने लायक आहार सोख लिया जाता है। बृहदन्त्रमें बाकी आहार रस और पानी सोखा जाता है। जैसे जैसे आहार पचता है सोखने लायक अंश जमा होकर प्रतिहारिणी शिरा (portal vein) द्वारा यकृतमें जाता है। उदरमें यकृत एक बडा कारखाना है। इसका एक काम घुलने लायक चीनीको नहीं घुलने लायक मधुरक (glycogen) रूप देकर जमा करना है। जब खूनमें आहार या चीनीकी कमी होती है तब मधुरक घुलकर खूनमें मिल जाता है। यकृत नहीं घुलने लायक कुछ मलद्रव्यको खूनसे अलगकर वृक्कोंमें भेज देता है।

प्रतिहारिणी शिरासे मिले रक्तसे यकृत पित्त बनाता है। यह पित्तकोष नामक थैलीमें जमा होता है। जब आहार ग्रहणीमें पहुंचता है तब पित्तकोष उसमें पित्त डालता है। वृक्कोंमें रक्तका फालतू पानी और घुलने लायक मल अलग होता है। इस वस्तुको मूत्र कहते हैं। रक्तसे अलग होनेके बाद फालतू पानी, विषैला मल गवनो (ureters) नामकी नालियोंसे मूत्राशयमें आता है। यह मूत्र जमा करनेका बरतन है।

प्लीहा दूसरी एक इन्द्रिय है जो शक्तिखर्च हुए रक्त-कणिकाओंको (corpuscles) रक्तसे लेकर यकृतमें पित्त बननेके लिये भेजती है।

१२६२. सिरकी इन्द्रियां

मस्तिष्क, कान, आंख, नाक और मुंह ये सिरकी इन्द्रियां हैं।

१२६३. मस्तिष्क

करोटी (खोपडी) की पेटीमें **मस्तिष्क** रहता है। इसके दो भाग हैं—वृहत् मस्तिष्क (cerebrum) और **लघु मस्तिष्क** (cerebellum)। **सुषुम्ना**
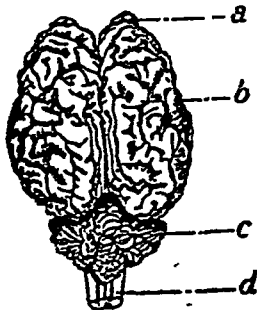
चित्र ११४ मस्तिष्ककी ऊपरी दिशा।
a-घ्राण कन्द b-वृहत् मस्तिष्क गोलार्ध, c-लघु मस्तिष्क, d-सुषुम्ना शीर्षक।

शीर्षक (medulla oblongata) का सम्बन्ध दोनोंसे है। वृहत् मस्तिष्क नामके अनुरूप ही मस्तिष्कका सबसे बड़ा हिस्सा है। मस्तिष्क-तत्व (brain matter) सुषुम्ना शीर्षकमें अंत होता है। यह **महाविवर** (foramen magnum) होकर मस्तिष्कसे निकलता है और कशेरुओंकी बनी नलीमें होकर आगे तक चला जाता है। यदि मस्तिष्क-तत्वका कोई भाग भग हो जाता है तो मस्तिष्कके उस भागमें जिस कार्यका पीठ है वह काम होना रुक जाता है।

१२६४. कान

शखास्थियोंकी वहुत कड़ा और पच्चीकारी की हुई खातमें **कान** होते हैं। अस्थिकी एक सुरग (कर्णाजली) वाहरी कानमें (कर्णशकुली) शुरु होकर कुछ गहराई तक जाती है। वहाँ **कर्ण पटह** (drum) नामकी झिल्लीका पर्दा इसका रास्ता रोक देता है। कर्ण पटह तक ही **वाहरी कान** माना जाता है। पटहके आगे भी सुरग जाती है। वहाँ फिर दूसरी झिल्ली मिलती है। इस भागको मध्य कर्ण या **विचला कान** कहते हैं। अस्थि खातमें इसके वाद स्वर ग्रहण करने
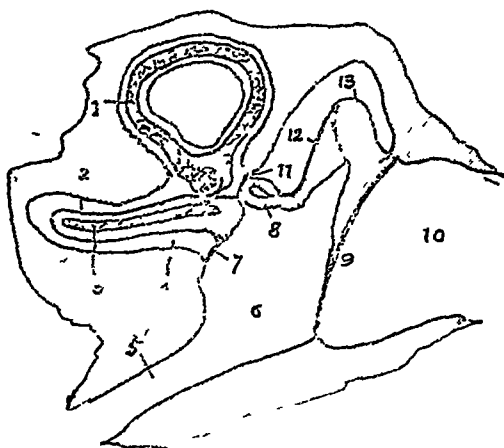
चित्र ११. कान।
6-मध्यकान 9-कर्ण पटह, 10-वाहरी कर्णाजली।

और वहाँ पर लगी नाड़ीके छोरोंको उसका सम्वाद देनेके लिये वहुत सुकुमार यत्र है। इस भागको **भीतरी कान** कहते हैं। इसमें गहन (labyrinth) होता है।

१२६५ आँख

आँखकी गोलीको कोआ कहते हैं। यह हड्डीकी वनी खातमें रहती है। इस खातको **अक्षि कोटर** (orbit) कहते हैं। आँखको खिड़की माना जा सकता है। यह प्रकाश ग्रहण कर उसके विम्व दिमागको भेजती है।

इसका सवसे वाहरी भाग स्वच्छमंडल (cornea) है। यह पारदर्शी है। इसके पीछेकी जगह पारदर्शी तरल पदार्थसे भरी रहती है। स्वच्छमडलके वाद एक रगीन पर्दा है। इसे तारामंडल (iris) कहते हैं। कम या जादे प्रकाश भीतर जानेके लिये इसमें एक छेद होता है जो घट वढ सकता है। उस छेदको तारा या पुतली (pupil) कहते है। इसके पीछे ताल (lens) होता
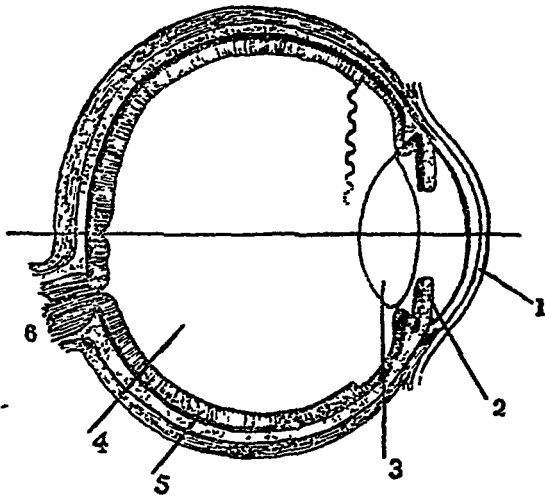
चित्र ११६. आँख।

1-स्वच्छमडल, 2-तारामंडल, 3-ताल, 4-मेदोजल, 5-दृष्टिमंडल, 6-दृष्टिनाड़ी।

है। तालके पीछे वडा कोठा है जिसमें गाढा पारदर्शी तरल पदार्थ भरा रहता है, इसे मेदोजल (vitreous humour) कहते हैं। यह दृष्टिमडल (retina) के पर्देके आगे रहता है। इस मंडलका काम प्रकाश विम्वका ग्रहण करना है। दृष्टिमडलके पीछे नाड़ियोंके छोर हैं। यहांसे सभी नाडियां इकट्ठी होकर सुतलीसी वन कर दिमागमें जाती है। इसे दृष्टि नाड़ी (optic nerve) कहते हैं।

१२६६. नाक

फेफड़ोंमें साफ हवा भरने और गन्दीको निकालनेके लिये नाकका रास्ता है। नाक फेफड़ोंमें जानेवाली हवाको गरम करनेका काम भी करती है। इसमें अनेक नसे हैं। भीतर जानेवाली हवा इनके सम्पर्कसे गरम हो जाती है। नाक घ्राणेन्द्रिय भी है। इसमें घ्राण नाड़ी (Olfactory nerve) होती है।
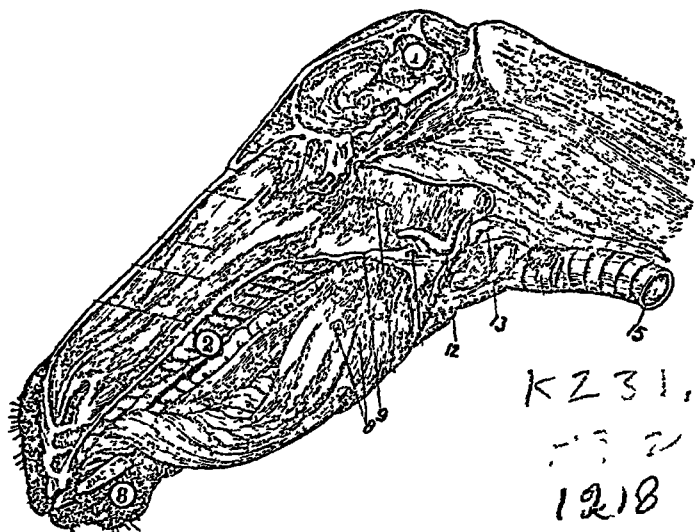
चित्र ११७ घोड़ेके सिरका अंग जिसमें मुँह दिखाया गया है।
1-कूर्पर या करोटि, 2-दाँत, 3-ओठ, 8-जीभ, (स्थानान्तरित), 9-कोमल तालु, 12-स्वरयन्त्र, 13-अन्न नलिका, 15-श्लेष्म नलिका।

१२६७. मुँह

आहार सबसे पहले मुँहमें जाता है। आहार पचनेके लिये चबा और लार मिलाकर निगलने लायक यहीं बनता है। कौन पशु कैसे अपना आहार ग्रहण करता है, इसी सुबीतेके मुताविक उनके मुँहकी बनावट होती है। मासभोजी पशुओंका मुँह बहुत चौड़ा होता है। जबड़े बहुत ज्यादे खुल सकते है और बहुत बड़े टुकड़े

भी दांतो तले आ सकते है। आहारके अनुरूप ओठ भी होते हैं। घोड़ोंके ओठ बहुत बडे होते हैं और उनमें गति भी बहुत हो सकती है। गायके ओठ इससे छोटे होते हैं। मुँहमें ऊपरकी ओर तालु होता है और नीचे जीभ और उसके उपाग। अगल बगलकी दीवालसे गाल बनते हैं। दांत उभाड़के साथ जड़े होते हैं। मुँहमे श्लैष्मिक कलाका अस्तर लगा है और हवा आनेके लिये तालुके पीछेसे एक रास्ता है जो मुँहको नाकसे मिलाता है। हवा क्लोमनलिका (œsophagus) होकर जाती है और आहार अन्ननलिका (trachea) होकर। ये दोनो गलेमें हैं।

अध्याय ३४

गायकी इन्द्रियोंका कार्य

१२६८. रक्तसंचारी संस्थान

रक्तसचारी सस्थानकी केन्द्रीय इन्द्रिय हृदय है। यह उर-पन्जरकी खातमे आगेकी ओर निचले हिस्सेमें रहता है। यह फेफडोके बीच दाहिनेकी अपेक्षा बायीं
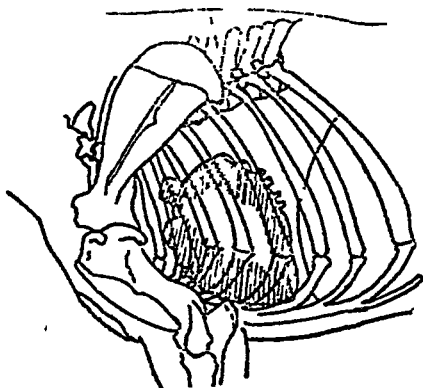
चित्र ११८. छातीकी हड्डियोंमे हृदय।

ओर अधिक निकला रहता है। जब पशु अपने दोनों अगले पैरको सीधा करके खडा होता है तब वह दोनों कुहनियोंके बीच रहता है। दोनों कुहनीको मिलानेवाली
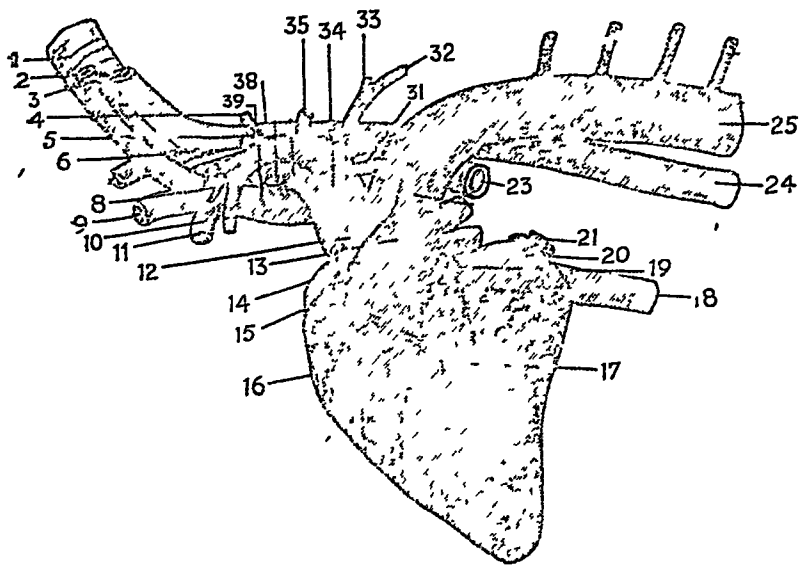
चित्र ११९ हृदय और बड़ी नसें।

1-क्लोम नलिका, 2-मन्याशिरा, 3-महामात्रिका धमनी, 4-मस्तिष्क मातृका धमनी,
5-मस्तिष्क मातृका शिरा, 6-वामा रसकुल्या, 8-वामा महा धमनी, 9-कक्षा
धरा शिरा, 10-वामा धमनी, 11-दक्षिण शिरा, 12-महा मातृका धमनी,
13-फुस्फुसाभिगा धमनी, 14-दाहिने अलिन्दकी चोटी, 15-दाहिनी हार्दिकी धमनी,
16-दक्षिण निलय, 17-वाम निलय, 18-अगली महाशिरा, 19-वायीं हार्दिकी
धमनी, 20-वायीं अलिन्दकी चोटी, 21-फुस्फुसाभिगा शिरा, 23-वायीं क्लोम
शाखा, 24-अन्न नलिका, 25-अगली महा धमनी, 31-वामा रसकुल्या 32-पार्श्ववर्ती
धमनी, 33-पृष्ठीय धमनी, 34-पिछली धमनी, 35-ऊर्द्ध ग्रिवा धमनी, 38-वामा
कक्षाधरा धमनी, 39-पिछली महाशिरा।

रेखा हृदयकी चोटी होकर निकलेगी। इसका पादतल तीसरीसे छठी पसलीके सामने रहता है (चित्र-११८) और चोटी उरःफलकके आखिरी टुकड़ेके ऊपर। जब साँस छोड़ने पर हृदयका कोठा सिकुड़ता है तो हृदय महाप्राचीराके बहुत सम्पर्कमें आ जाता है। साँस लेने पर जब महाप्राचीरा पीछे हटती है तब वह हृदयकी चोटीसे दूर हट जाता है।

बैलके पेट और हृदयके बीच बहुत कम अन्तर है। इसलिये पेटकी बीमारीसे हृदय पर उसका प्रभाव पड़नेकी संभावना रहती है। ऐसे उदाहरण भी हैं कि

चित्र १२०. बायीं ओरसे देखनेपर हृदय।

A-बामा अलिन्द, B-बामा निलय, C-बन्द दक्षिण निलय, D-हृदय कोष, 1-बायीं अलिन्दकी चोटी, 2-फुस्फुसाभिगा शिरा, 4-द्विपत्र कपाटिका, 6-फुस्फुसाभिगा धमनी, 7-इसकी अर्धेन्दु कपाटिका, 8-साधारण महाधमनी, 8′ और 8″-आगे और पीछेकी धमनी, 10-दक्षिण अलिन्दकी परिशिष्ट, 11-बायीं हार्दिकी धमनी।
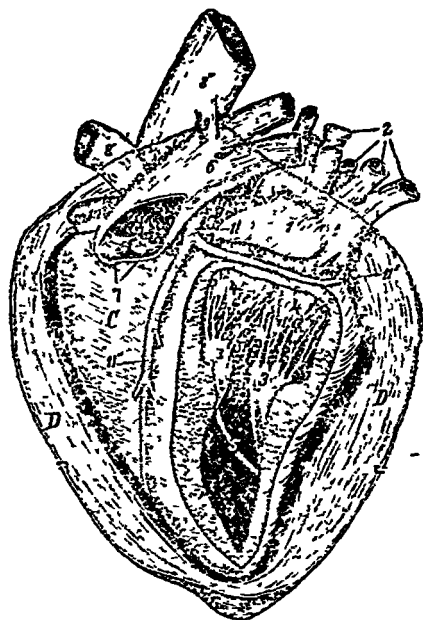
हेयरपिन (केशका कांटा) या कील जैसी बाहरी वस्तु यदि गाय निगल गयी है तो वह जालाशयमें जाकर अटकती है और उसको छेदकर हृदयमें चुभ जाती है जिससे धीरे धीरे मौत हो जाती है।

हृदय एक मुलायम थैलीमें रहता है। इसे हृद्कोष (pericardium) कहते हैं। यह हृदयके पेंदेमें लगा रहता है जहां नसें घुसतीं हैं। हृदय अद्भुत शक्तिशाली पम्प है। साधारण पम्पोंकी तरह इसमें पिस्टन (piston—डंडा) नहीं

रहता। हृदयकी पेशियोंके ढीली होनेसे एक खात बन जाता है जिसमें खून दौड जाता है। यह खात जैसेही भरता है हृदय पेशियाँ सिकुडती हैं जिससे खातकी दीवाल दबती है और खून निचुड़कर बाहर हो जाता है। रक्तसचार बराबर होते रहनेका कारण कपाटिकाकी (valves) सही व्यवस्था है।
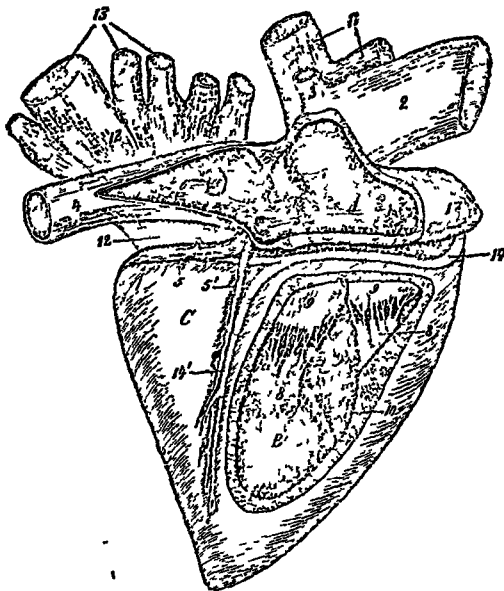
चित्र १२१ दाहिनीओरसे देखनेपर हृदय।

A-दक्षिण अलिन्द, B-दक्षिण निलय, C-चन्द वाम निलय, 1-दक्षिण अलिन्दकी चोटी, 2-उत्तरा महाशिरा, 4-अधरा महाशिरा, 5′-बायाँ हार्दिकी शिरा, 5-त्रिपत्र कपाटिका, 11-उत्तरा और अधरा महा धमनी, 12-वाम अलिन्द, 13-फुस्फुसाभिगा शिरा, 14-दाहिनी हार्दिकी धमनी, 14′-दाहिनी हार्दिकी शिरा और धमनी।

वास्तवमे हृदयमें दो पम्प होते हैं जो अगल बगल हैं। एक पम्प शिराओंसे लौटे हुए रक्तको लेकर फेफड़ेमे फेंकता है। जहाँ साँसमे आयी हुई ऑक्सीजनमें मिलकर वह शुद्ध होता है। दूसरा पम्प फेफड़ेसे आया ऑक्सीजन-मिश्रित रक्त ग्रहण कर धमनीकी राह सारे शरीरमें दौडानेके लिये है। इसलिये हृदयका हरेक

कोठा दो भागोंमें बँटा है। एक रक्त ग्रहण करनेके लिये और दूसरा उसे बाहर निकालनेके लिये। ग्रहण करनेवाला कोठा **अलिन्द** (auricle) और बाहर भेजनेवाला **निलय** (ventricle) कहाता है। दाहिनी तरफके कोठे दक्षिण और बायीं तरफके वाम कहाते हैं। इसलिये **दक्षिण अलिन्द** और **दक्षिण निलय** तथा **वाम अलिन्द** और **वाम निलय** होते हैं। पूरे जवान बैलके हृदयकी तौल ५ से ७ रत्तल है।

जिन मुख्य नलियोंसे दक्षिण अलिन्दमें रक्त लौटता है उन्हें **महाशिरायें** (vena cava) कहते हैं। दक्षिण अलिन्दसे सीधी जुड़ी दो महाशिरायें हैं। **उत्तरा महाशिरा** (superior vena cava) ऊपरी और **अधरा महाशिरा** (inferior vena cava) निचली इन्द्रियोंसे आती हैं।

चित्र १२२. हृदयके अंगका चित्र। इसमें खूनकी राह और कपाटिकाओंकी व्यवस्था दिखायी गयी है।

RA-दक्षिण अलिन्द, RV-दक्षिण निलय P-फुस्फुसाभिगा धमनी, LA-बायां अलिन्द, LV-बायाँ निलय, A-महाधमनी।
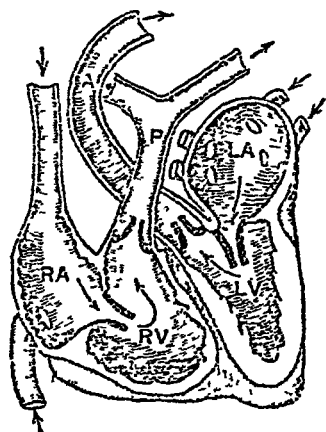
जिस राहसे दक्षिण हृदयका रक्त दोनों फेफड़ोंमें जाता है उसे **फुस्फुसाभिगा धमनी** (pulmonary artery) कहते हैं और बायें हृदयमें शुद्ध रक्तके लौटनेकी राहको **फुस्फुसीया शिरा** (pulmonary vein) कहते हैं। बायें हृदयसे रक्त भेजनेवाली मुख्य नलको **महाधमनी** (aorta) कहते हैं।

यह ऊपरको उठती है जहां देहके अगले भागके लिये इसकी दो शाखायें निकलती हैं और फिर एक धनुषके आकारमें नीचेको मुड़ जाती है और आगे बढ़ती है। इसमेंसे शाखायें निकलती रहती हैं जिन्हें धमनी कहते हैं जो हृदयके नीचेकी इन्द्रियोंको आहार (रक्त) पहुँचाती हैं।

पम्पकी किसी मशीनमें कपाटिका होना जरूरी है। हृदयमें भी वह है। ये कपाटिकायें मजबूत झिल्लियोंको बनी खीसे (पॉकेट) के आकारकी होती हैं। इनमें होकर खून एक ही ओर जा सकता है। हृदयके दाहिनेसे बायें कोठेमें कोई राह नहीं है। यद्यपि दोनोंका सकोच और प्रसार साथ ही होता है फिर भी दोनो बिलकुल अलग अलग हैं।
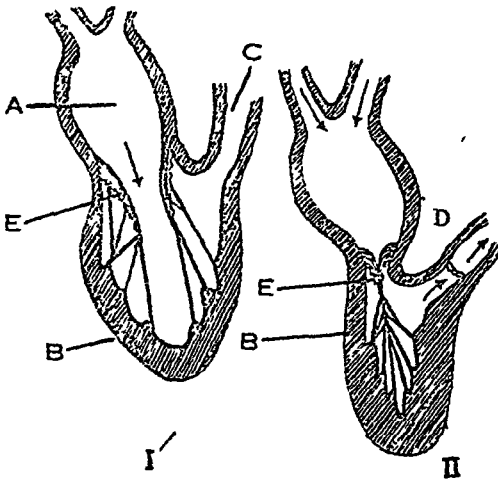
चित्र १२३ हृदयका कार्य प्रणाली।

I-द्विपत्र कपाटिका खुलती हैं और रक्त निलयमें जा रहा है। II-निलयसे रक्त निचुड़ कर बाहर निकल रहा है, द्विपत्र बन्द होता है और अर्धेन्दु कपाटिका खुलती है। A-अलिन्द, B-निलय, C-महाधमनी, L-अर्धेन्दु कपाटिका, E-द्विपत्र कपाटिका।

चित्र १२३ (I) में दिखाया गया है कि, अलिन्दकी कपाटिका निलयमें खुल रही है। हृदयके बायीं ओरकी अलिन्द और निलयके बीचकी कपाटिका खुलती है और बायें निलयमें खून जाता है। महाधमनीमें जानेका द्वार अर्धेन्दु कपाटिकासे बन्द होता है।

चित्र १२३ (II) में वाँयाँ निलय भरा दिखाया गया है। जैसे ही यह भरता है वैसे ही सिकुड़ना शुरू कर देता है। इससे **द्विपत्र** कपाटिका वन्द हो जाती है जिससे वायें अलिन्दसे निलयकी राह वन्द हो जाती है। साथ ही महाधमनी और निलयके वीचकी तीनों अर्धेन्दु कपाटिकायें खुल जाती हैं जिससे खून महाधमनीमें दौड़ जाता है। निलयका बूँद बूँद खून जव तक वाहर नहीं हो जाता तव तक वह सिकुड़ता है। निलयमें जव यह काम होता रहता है उसी समय अलिन्दमें फुस्फुसीया शिरासे फेफड़ेका रक्त भरता रहता है।
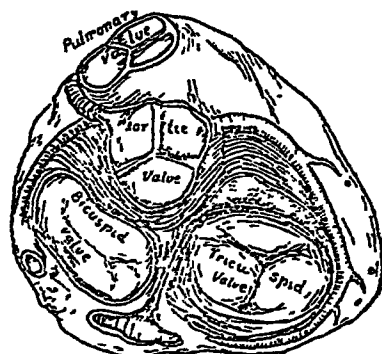
चित्र १२४. निलयका तल, इसमें महाधमनी, द्विपत्र और त्रिपत्र कपाटिका दिखायी गयी है।

चित्र १२५. अलिन्द होकर हृदयका अंग।

1-फुस्फुसाभिगा कपाटिका, 2-द्विपत्र कपाटिका, 3-त्रिपत्र कपाटिका, 4-महाधमनी कपाटिका।
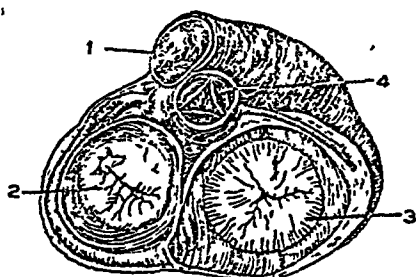
हृदयकी कपाटिका सफेद तन्तुओंसे वँधी रहती हैं जो उन पर होकर निलयकी प्राचीरके ऊपरके छोटे छोटे उभारों तक आती हैं। महाधमनी और धमनियोंकी प्राचीरें मजवूत और कड़ी हैं। वह वैठ नहीं सकतीं।

हृदयसे जितनी वार रक्त वाहर निकलता है उतनी वार हृदयमें धुकधुकी होती है। प्रत्येक धुकधुकी पर हृदयनल छातीकी दीवालसे टकराता है। **छातीकी**

दीवालसे हृदयतलकी टक्कर सुनायी पड सकती है। धुकधुकीमें दो आवाजें सुनायी पडती हैं। पहली मन्द और लम्बी और दूसरी तीव्र और छोटी। एकके बाद दूसरी आवाज बहुत जल्दी होती है इसके बाद थोड़ी देरका विराम होता है। ये दोनों आवाज "लब" और "डब" की तरह हैं। पहली लम्बी आवाज 'लब' तब होती है जब निलय सिकुड़ने लगता है। इस आवाजका कारण द्विपत्र और त्रिपत्र कपाटिका पर दबाव पडनेसे कम्पन और पेशियोंकी चरमराहट है।

महाधमनोकी अर्धेन्दु कपाटिका और फुस्फुसाभिगा धमनीके बन्द होनेसे जो कम्पन होता है उससे दूसरा स्वर 'डब' निकलता है।

धमनियोंका रक्त अनेक शाखाओंसे होकर बहता है। अन्तमें वह केशिकाओंमें (capillaries) चला जाता है। इसके बाद आगेके बहावकी प्रणाली रुक जाती है और लौटनेको प्रारम्भ होती है।

केशिकायें सचारण और प्रत्यावर्तन दोनों प्रणालियोंके मिलनके स्थान हैं। केशिकाओंमें रक्तका निरन्तर प्रवाह, फालतू उपजात वस्तुओंका रक्तमें घुलना और पेशियोंका रक्तके कुछ शुद्ध द्रव्य ले लेना यह एक जटिल क्रिया है। धमनीका रक्त अपने मार्ग केशिकाओंमें ही रहता हुआ अपनी राह छोड़े बिना यह सारा विनिमय करता है। रक्तके किसी द्रव्य या उसके किसी नमकीन घोलके कारण यह होता है। किसी दूसरे नमकीन घोलके सपर्कमें झिल्लियोंके छिद्रसे यह आचूषण होता है। इस क्रियाका नाम अगरेजीमें **ओसमोसिस** है। केशिकायें इतनी पतली होती हैं कि उन्हे एक तरहसे द्रवपदार्थकी प्राचीरें कह सकते हैं। साबुनके पानीमे यदि फूक मारें तो बुलबुले उठते हैं। ये बबूले कोप हैं जिनकी प्राचीरें द्रव पानी की हैं। यहाँ द्रव बबूलेकी दीवाल (प्राचीर) का काम करती है। केशिकाओंकी दीवालें भी प्राय• इसी बनावटकी हैं। जो हो, केशिकाओंकी रक्तकी प्रतिक्रिया उसके चारों तरफके मासपिड पर होती है जिसमे **प्लाजमा** (रक्तरस) होता है। केशिका प्लाजमासे कारबन-डाइऑक्साइड सोख लेते हैं। रक्तके कारण पेशियों पर ऑक्सीजनकी जो प्रतिक्रिया होती है उससे करबन-डाइऑक्साइड पैदा होता है। कारबन-डाइऑक्साइडसे रक्तका रंग नीला हो जाता है और फिर प्रत्यावर्तन शुरू हो जाता है। केशिकाओंका मुँह बड़े बड़े छेदवाली नसोंमें खुलता है जिन्हें शिरा कहते हैं। इनसे रक्त हृदयमें लौटता है।

कुछ प्रधान सिरायें : अगली शाखाकी दाहिने और बाँयें अगसे

आनेवाले शिराओंको **अक्षाधरा** (subclavion) कहते हैं। सिर और गर्दनकी शिराओंको **अधिमन्या** (ext. jugular) कहते हैं। सिर गर्दन और अगली शाखाकी शिरायें मिलकर **उत्तरा महाशिरा** (superior vena cava) बनती है। देहके पिछले भागकी शिरायें मिलकर **अधरा महाशिरा** (inferior vena cava) बनती है। पिछली शाखाकी शिरायें हृदयमे सीधी नहीं जातीं। यह उदरने पाचन और मलत्याग सम्बन्धी कुछ काम कर लेतीं हैं।

वृक्कोंसे निकली अनुवृक्का शिरायें और महाप्राचीराके पासकी यकृतसे निकली याकृत (hepatic) शिरायें अधरा महाशिरामें अपना अपना रक्त गिराती हैं। आमाशय, आँतें, प्लीहा, अग्न्याशय आदि दूसरी सब इन्द्रियोंकी शिरायें एकमें मिल जाती है। इसे **प्रतिहारिणी महाशिरा** (portal vein) कहा जाता है। प्रतिहारिणी शिरा यकृतका रक्त वहा ले जानेके लिये उसमें नहीं घुसती है। **महाधमनीसे** आये लाल रक्तवाले केशिकाओंसे वहाँ मिल जाती है। वहाँ यह अचरजकी अनेक प्रक्रियायें करती है इसके बाद याकृती शिराके द्वारा अपना रक्त अधरा महाशिरामें डालती है।

शिराओंमे खीसे (पॉकेट) जैसी कपाटिकायें होती हैं जो एकही ओर खुल सकती हैं। इसलिये शिराका रक्त फिर लौट नहीं सकता।

१२६६. रक्त चाप

लचकोली धमनियों पर रक्त सवाहनके लिये पडे चापको रक्त चाप (blood pressure) कहते हैं। जीवित हालतमें इन नलिकाओंमें सदा रक्त भरा रहता है। इन पर सदा चाप रहता है इसलिये ये फूली रहती हैं। इस चापका नाम रक्त चाप है। हृदयकी हर धडकनके बाद कुछ नया रक्त महाधमनीमें जाता है। धमनियां सदा फूली रहती हैं और धडकनें उन्हें और भी फुलाये रहती हैं। धमनी और केशिकाओंमे अतिरिक्त रक्त लहरियोंके रूपमे बहता है। इन लहरोंके कारण धमनियोंमे फड़कन होती है जिन्हें **नाड़ी चलना** कहते हैं। नाड़ीकी इस चालको सुबोनेकी किसी धमनीको दबाकर देख सकते हैं। गायके **निचले जबड़े** या पूँछकी जड़के नीचेकी धमनीमें सुबीतेके साथ यह फड़कन जानी जा सकती है।

नाड़ीसंस्थानके द्वारा धमनियोंका छेद स्वय सचालित है। आमाशयमें जब आहार पहुँचता है तब उसे अधिक रक्तकी आवश्यकता होती है। जब उसे अधिक

काम करना नहीं होता तब इतने रक्तकी जरूरत उसे नहीं होती है। अधिक रक्तकी आवश्यकता होने पर रक्त ले जानेवाली नसें अपने आप फैल जाती हैं और आमाशय होकर अधिक रक्त बहने लगता है। इस तरह दूसरी इन्द्रियोंको अनुपातमें कम रक्त उस समय मिल पाता है। नाड़ियोंके कलपुर्जे धमनीके छेदका नियन्त्रण कर यह सब करते हैं।

१२७०. रक्तकी बनावट

स्तनपायी प्राणियोंका रक्त लाल रंगका गरम तरल पदार्थ है। यह देहके हर हिस्सेमें पोषक द्रव्य ले जाता है। यह एक जातीय क्षारयुक्त और नमकीन होता है। यह धमनी, केशिका और शिराओंमें होकर बहता है। ऑक्सीजन-कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, स्नेह और नमक जैसी पोषक वस्तुओंको यह कोषों और ततुओंको देता है। ततुओंसे कारबन-डाइऑक्साइड और यूरिया जैसे त्यक्त पदार्थोंको रक्त हटा ले जाता है।

गायके रक्तका आपेक्षिक गुरुत्व १०६० और मलद्वार पर गर्मी १०२ डिग्री फा० है। गायकी देहकी कुल तौलका १३ वाँ भाग या ७ ७१ सैकड़ा रक्त है। देह और विभिन्न इन्द्रियोंका हर हिस्सा खूनमें सराबोर रहता है।

रक्तमें श्वेत और लाल रक्त कणिकायें और प्लाजमा होता है। प्लाजमा तरल पदार्थ है। प्लाजमा, **एलब्युमिन**, नमक और **फाइब्रीनका** मिश्रण है।

यदि चमड़ीमें कहीं सूई चुभायी जाय तो वहाँ तुरत खून निकलने लगेगा। पर तुरतही निकलना बन्द हो जायगा। अपनी नलियोंसे बाहर आने पर खून तुरत जम जाता है, यह चाहे देहके भीतर हो या बाहर। घावसे अधिक खूनका बहना इस **जमाव** के कारणही रुक जाता है। कैलशियम साल्ट खूनके जमनेकी शक्ति कुछ हद तक बढ़ा देता है।

यदि खूनको जमने दिया जाय तो थोड़ी देरके बाद उसमेंसे एक तरल पदार्थ अलग होने लगता है। यही **रक्त वस्तु** या सिरम है। जमे रक्तमें लाल रक्त कणिका और **फाइब्रीन** होती है। इसलिये रक्तवस्तु फाइब्रीन हीन प्लाजमा या रक्तरस है। फाइब्रीनके कारण खून जमता है। किसी सलाईसे चलाने पर जिस खूनसे फाइब्रीन अलग हो जाय वह नहीं जमेगा। जलोदर और कुछ दूसरे रोगोंमें जो पानी जमा हो जाता है वह रक्तवस्तु है जिसमें पानी नमक और एलबुमिन हैं।

रक्तकी श्वेत कणिकायें अद्भुत पदार्थ हैं। इन्हें अनुवीक्षण यन्त्रसे देख सकते हैं। जीवित पशुके रक्तमें यह एमीवा (amoeba) जैसे आचरणके होते हैं। अनुवीक्षण यन्त्रसे देखा जा सकता है कि, इसकी आकृति वदलती रहती है। बहुत सूक्ष्म तन्तुओंसे होकर जानेमें जब इन्हें कठिनाई होती है तब यह सिमट सिकुड कर उस छेदके लायक बन जाती हैं। श्वेत कणिकायें विष, जीवाणु आदि से लड़ती और अपनी देहसे उन्हें घेर कर नष्ट कर देती हैं। अन्दाज है कि, ५०० लाल कणिकाओंके पीछे एक श्वेत कणिका होती है। इनका अनुपात १ : ३०० से १ : ७०० तक है। जिन रोगोंमें भीतरी छूत लगती है, श्वेत कणिकाओंको संख्या बढ जाती है।

गायको लाल कणिका चिपटी युगल-नतोदर (bi-concave) चकती है। इनमें मूलकण नहीं होते हैं। एक वर्ग मिलीमीटर खूनमें ५० लाख कणिकायें होती हैं। संक्षेपमें कहे तो रक्त नीचे लिखे काम करते हैं :—

(१) तन्तुओंसे फेफड़े तक ऑक्सीजन ले आना और ले जाना। (२) हानिकर बीजाणुओंको नष्ट करना। (३) सारी देहमें पोषण तत्वका वितरण। (४) तन्तुओंसे अनिष्ट उपजातोंका हटाना।

१२७१. लसीका संस्थान

रक्तवहाओंसे निकले द्रवको **लसीका** या **रस** कहते हैं। तन्तुओंमे यही वस्तु प्रवाहित होती है। यह माना जा सकता है कि इसी वस्तुके द्वारा तन्तुओंका पोषण प्रत्यक्षरूपसे होता है और अनिष्ट वस्तु तन्तुओंसे इकट्ठी होकर रक्त वहाओंमे जाती है। ऐसे कुछ तन्तु हैं जिनको रक्त नहीं मिलता केवल रक्त लसीका मिलती है। रक्त श्रोतसे ही लसीका प्राप्त होती है।

लसीका, तन्तुओंके कोषोंके बीचकी जगहमें रहती है। इनका प्रवाह सूक्ष्म नलिकाओंके एक जालसे होता है जिन्हें **रसायनी** (lymphatic vessels) कहते हैं। इन रसायनियों द्वारा तन्तुओं या इन्द्रियोंसे लसीका ले जायी जाती है। ये रसायनियाँ आपसमें मिलकर थोड़ीसी मुख्य रसायनी रह जाती हैं। देहकी रसायनियाँ एक दूसरे से जुड़ी हैं। मुख्य रसायनी रीढ़के सामने पेटमें है। इसे **बायाँ रसकुल्या** (thoracic duct) कहते हैं। विभिन्न रसकुल्यायें महाशिरामें गिरती हैं। इस तरह खूनसे रिसकर आयी हुई लसीका कोषोंका पोषण

कर फिर खूनमें वापस मिल जाती हैं। केशिकाओंसे निकला हुआ रक्तरस (प्लाजमा) कोषोंका पोषण करता है और अतिरिक्त लसीकाग्रन्थियों और रसकुल्याओंसे होकर निकल जाता है।

१२७२. लसीका या रस ग्रन्थि

रसकुल्याओंकी राहमें सेमके बीजकी तरहके पिन्ड मिलते हैं। रसकुल्यायें इसमें एक ओर से घुस दूसरी ओर से निकल जाती हैं। ये **रसग्रन्थियाँ** हैं। इनमें से शुरूमें रक्तके विवर्ण कोष बनते हैं। कई तन्त्रोंकी क्रियामें इन ग्रन्थियोंका महत्व है।

१२७३. श्वास संस्थान

केशिकायें सूक्ष्मतम रक्तवाहक हैं। बाहरी वायु या तरलोंको अपने भीतर कर लेने या बाहर कर देनेकी शक्ति इनमें है। इसी शक्ति पर रक्त संवहन और श्वासतन्त्र अवलम्बित हैं। यदि खून निकाल कर उसे किसी रासायनिक वस्तुके योगसे जमने नहीं दिया जाय और किसी थैलीमें भर कारबन-डाइऑक्साइडके बीच टांग दिया जाय तो पता चलेगा कि इस गैसके असरसे थैलीका खून नीला हो चला है। थैलीसे खून तो बाहर नहीं रिसता पर चौतरफा गैस उसमें घुस अपना काम करती है। नमकदार तरलकी यही गति है। यानी थैलीमें भरे दूसरे नमकीन घोल पर इनकी क्रिया और प्रतिक्रिया होती है, यदि वह इनके सम्पर्कमें हों। केशिकाओंमें बराबर यही होता है। रक्त केशिकाओंकी प्राचीरके भीतर रहता हुआ तन्तुओंको ऑक्सीजन देता है और अपनेमें अनिष्ट पदार्थ और आसपासकी तन्तुओंके पुष्टि ग्रहण करनेके बाद छोडी कारबन-डइऑक्साइड लौटा लेता है। कारबन-डाइऑक्साइड लाल रक्तको नीला कर देती है। धमनीके रक्तमें ऑक्सिजन रहता है। उसकी तन्तुपदार्थों पर प्रतिक्रिया होती है। इससे उसमेंका ऑक्सीजन खतम हो जाता है। यह ऑक्सीजन तन्तुओंको जलाता है जिससे कारबन-डाइऑक्साइड गैस पैदा होती है जो केशिकाओंमें लौट शिरा होकर फेफड़ेमें जाती है। यह नीला खून तन्तुओंको और पुष्ट करने या जलाने लायक नहीं रहता, इसलिये इसको फिरसे ठीक करनेके लिये किसी उपायकी जरूरत है कि इसका कारबन डाइऑक्साइड बाहर निकाल उसमें नया ऑक्सीजन भरा जाय। यह उपाय सांस है।

दाहिना हृदय फेफड़ेमें शुद्धिके लिये रक्त भेजता है और बायाँ हृदय शुद्ध रक्त ग्रहण कर संवाहनके लिये महाधमनी और धमनियोंके द्वारा भेजता है।

१२७८. फेफड़ा

फेफड़े स्पजकी तरह हैं जिनमें हवा घुस सकती है। बैलके फेफड़े एक समतोलमें नहीं हैं। उनके आकारमें बहुत फर्क है। दाहिना फेफड़ा तौलमें बाँयेंसे 1½ गुनाके लगभग है। गहरी दरारोंसे वह पिंडोंमें बँटे हैं। बाँयेंमें तीन पिन्ड हैं और दाहिनेमें चार या पाँच। उरखातकी बांयी ओर हृदय है। यह जितनी जगह छेंकता है उसके कारण बाँयें फेफड़ेको कम जगह बचती है।

चित्र १२६. घोड़ेका फेफड़ा। a-चोटी, b-हृदयके लिये खाँचा, h-बाहरी भागपर पसलियोंके दबावसे बनी नालीदार धारी।
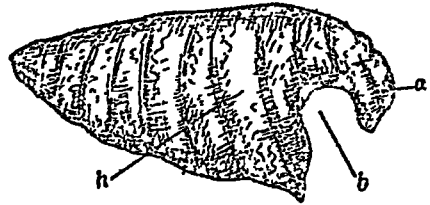
चित्र १२७. घोड़ेका फेफड़ा। a-चोटी, b-हृदयके लिये खाँचा, c-बायीं फुस्फुसाभिगा धमनी, d-बांया क्लोम शाखा, e-अन्ननलिका की नालीदार धारी, f-महाप्राचीरा स्तर, g-फुस्फुसाभिगा शिरा।
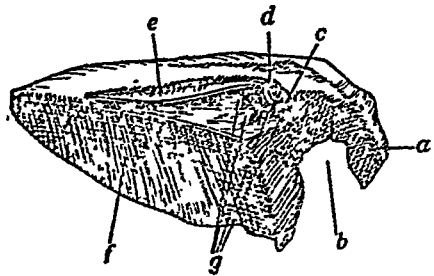
फेफड़े अपनी जगह पर दृढ हैं। उनकी जड़ें हृदय, क्लोमनलिका और उरस्या (pleura) में जमी हैं। उरस्या फेफड़ेको घेरकर उसकी लम्बाईमें रहती है। वायुकोषों (alveoli) में हवासे रक्तका सम्पर्क होता है जो उनकी अगल बगलमें फैली केशिकाओंमें रहता है। रक्त वायुकोषोंसे ऑक्सीजन लेता और कारबन-डाइऑक्साइड छोड़ता है। और फिर शुद्ध होकर लाल रक्त बन बाँयें अलिन्दमें लौटता है। यहांसे तुरत ही महाधमनी और धमनियोंकी राह

केशिकाओंमें भेज दिया जाता है कि वह तन्तुओंका पोषण करें और अनिष्ट पदार्थोंको वहा ले आवे।

श्वास क्रियामें **साँस लेना** और **साँस छोड़ना** ये दो बातें हैं। सांस लेने पर शुद्ध हवा फेफड़ेमें भरती है जिससे वह फूल उठता है। छोड़ी सांसमें हवा रक्तके कारबन-डाइऑक्साइडको लेकर बाहर आती है। सांस छोड़ने पर फेफड़ा पिचकता है। यह क्रिया साधारण तौर पर अपने आप होती है। इस क्रियाके नियन्त्रणके लिये शरीरके भीतर एक व्यवस्था है जो तन्दुरुस्त फेफड़ोंको जरूरतके मुताबिक तालसे चलाती है। आदमी अपनी इच्छाके अनुसार कुछ मिनट ही अपनी सांस तेज कर सकता या बन्द कर सकता है।

सांस लेनेमें जो इन्द्रियां सहायक होती हैं अब हम उनकी जांच करें। हवा नाकसे खींची जाती है। **नाकके** भीतर दो सुरंगें है। इन्हींमें होकर हवा जाती है और नाकको दीवालोंके सम्पर्कसे गरम हो जाती है, क्योंकि नाककी दीवालोंकी कलाओंमें इसी कामके लिये रक्त वहता रहता है। नाकमें कुछ केश भी होते हैं जो हवाके साथ जानेवाले कचरे और धूलको छान लेते हैं।

१२७५. क्लोमनलिका

नाकमें होकर हवा जाती है और **गल (ग्रसनिका)** (pharynx) से टकरा कर कन्ठके **स्वर यन्त्र** (larynx) में आती है। इसके बाद वह **क्लोमनलिका** (trachea) या मुख्य श्वास नलिकामें घुसती है। नाकके बालसे बच कर आये छोटे धूलकण आदि ग्रसनिकाके चिपचिपे स्तर पर चिपक रहते हैं। क्लोमनलिका बरुनदार पाइपकी तरह है। इसमें तरुणास्थियोंके खुले छल्ले रहते हैं। क्लोमनलिका शाखाओंमें विभक्त है जिनमें होकर फेफड़ोंमें हवा जाती है। दो **क्लोमशाखायें** (bronchi) दोनों फेफड़ोंके लिये है। बैलको एक तीसरी क्लोमशाखा होती है जो छोटी होती है और दाहिने फेफड़ेके बहुत भीतरी पिंडमें सीधी जाती है।

हवा मुँहसे भी ली जा सकती है। मुँहकी छत तालू है। नाक और मुँहको अलग करनेवाली दीवाल यही है। तालूके बाद कोमल तालू है। यह बहुत पतली पेशी है। कोमल तालू पर्देकी तरह टँगी है। यह मुँह और गलको अलग अलग कर सकती है। गलमें टकराने पर हवाको दो राहें दीख पड़ती हैं।

एक अन्ननलिका और दूसरी स्वर यन्त्र। भीतर जानेवाली हवा फेफड़ेके खिंचावसे स्वर यन्त्रमें होकर क्लोमनलिकामें जाती है। क्लोमनलिकामें केश जैसे उभार हैं जिन्हें **पक्ष्म** (cilia) कहते हैं। ये सीधे तन कर नीचे झुक जाते हैं। अपनी इस क्रियासे यह भीतरके तरल पदार्थको मुंहकी ओर ठेलते हैं। जीवित पशुके पक्ष्म सदा क्रियाशील रहते हैं। छोटीसे छोटी क्लोमशाखाओंकी पतलीसे पतली प्रशाखायें हो गयी हैं। जैसे जैसे नलिकायें पतली होती गयीं तरुणास्थियोंका उनका आवरण अधूरा होता हुआ अन्तमें सबसे पतली नलोमें निःशेष हो गया है। सबसे महीन क्लोमनलिकाके अन्तमें उसकी प्रशाखाओंका पुंज फैला रहता है। इन्हें
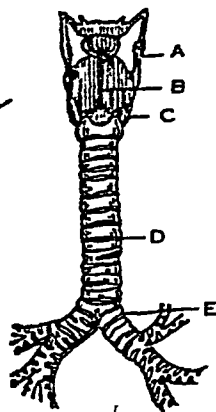
चित्र १२८. क्लोमनलिका और क्लोमशाखा।
A-कंठ, D-क्लोम, E-क्लोमशाखा।
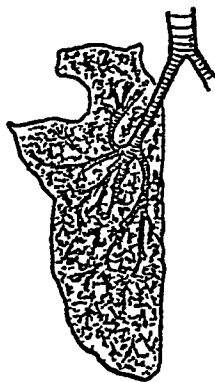
चित्र १२९.
समूचे फेफड़ेमें क्लोमशाखाओंके विस्तारका नक्शा।

क्लोमकाण्डिका (infundibula) कहते हैं। क्लोमकाण्डिकामें बहुतसे प्रकोष्ठ होते हैं जिनसे **वायुकोष** (alveoli) बनते हैं। क्लोमशाखा इन्हींमें हवा भरती है।

फेफड़ा असंख्य वायुकोषोंका बना है। ये वायुकोष जोड़नेवाले तन्तुओंसे बंधे हैं। पूरा फेफड़ा **उरस्यावकला** (pleura) से ढका है। वायुकोषोंकी प्राचीरें महीन लचीले तन्तुओंकी बनी हैं, उन पर रक्तवाहिनियोंका जालसा बिछा है। हवा और खूनकी क्रिया प्रतिक्रिया यहीं होती है।

उरःदरीमें हवा नहीं है और न उसमें वायुमण्डलका चाप ही। पर फेफड़ा हवासे भरा रहता है और उसका वायुमण्डलसे निर्बाध आवागमन है। उरपंजरमें

फेफड़ा पर वाहरी हवाका दवाव नहीं है पर भीतरसे दवाव है इसलिये वह फूटबौलके ब्लैडरकी तरह हवा भरने पर फल जाता है। जिस तरह फूले ब्लैडरसे फूटवौलका कोठा भर जाता है बहुत कुछ उसी तरह फूले फेफड़ोंसे उरःपंजरका कोठा भर जाता है।
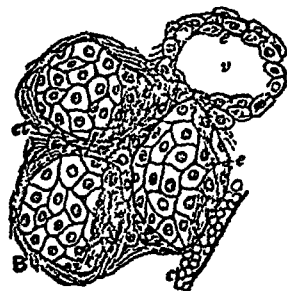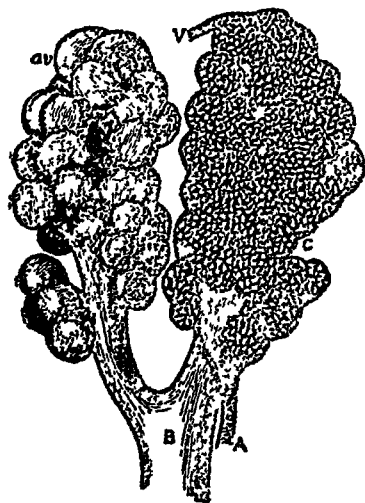
चित्र १३०. फेफड़ेके एक पिंडमें दो क्लोमकाडिकाओंका वाहरी हिस्सा। A-वायुकोषोंपर फैली फुस्फुसाभिगा धमनीकी शाखा प्रशाखायें, B-पिंडको छोटी क्लोम शाखा, C-केशिकायें, av-वायुकोष, V-क्लोमशाखा कोष।

चित्र १३१. फेफड़ेकी केशिकायें और वायुकोष। A-वायुकोषके चारों ओर केशिकाओंका घना समूह, B-चिपटे कोष जिनसे वायुकोष बनता है।

यदि फूटवौल वड़ा हो सके तो ब्लैडर और फूल कर वड़ी जगह भी घेर सकता है। चमड़ेका फूटवौल वढ़ नहीं सकता। पर फेफड़ोकी पेटी उरःदरी घट वढ सकती है। यह घटना-वढ़ना पसलीकी पेशियों और महाप्राचीराके शिखर करते हैं। इसलिये जब उरःदरी फैलती है तब फेफड़े भी फैलते हैं और उनमें वाहरसे क्लोमकी

राह हवा भरती है। उरःदरीके सिकुड़ने पर दवावसे फेफड़ेकी हवा क्लोमकी राह बाहर निकल वायुमण्डलमें मिल जाती है।

उरःदरीका संकोच और विकाश श्वास क्रियाकी मशीन है। उरःदरी पसलिया और महाप्रचीरासे घिरी है। पसलियां तिरछे तिरछे जुड़ी हैं जिससे उनका पिंजरा तिरछा है। जब पसलियां धक्के से ऊपर उठकर कम तिरछीं होती है तब छाती चौड़ी हो जाती है। महाप्राचीरा सीधा पर्दा नहीं है। उसमें गुम्वज (शिखर) है। गुम्वज उरःदरीमें है इससे उसकी जगह घिरती है। यह पर्दा जब सिकुड़ता है तब गुम्वज दब जाता है और सारीकी सारी महाप्राचीरा नीचे दब जाती है। इससे उरःदरीमें दबाव अधिक हो जाता है। इस मिले जुले कामसे **साँस लेनेकी**

चित्र १३२. अदमीकी उरःदरी।
पसलियोका पिंजरा दवावसे फैलता है इससे दरी फैलती है और सिकुड़नेपर दरी सिकुड़ती है।
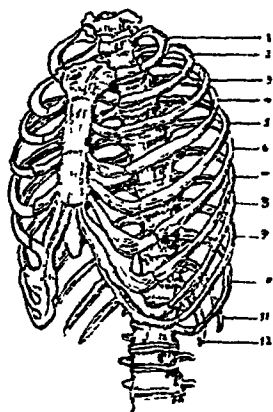
क्रिया पूरी होती है। इसके बदले जब पसलियां अपनी पहली हालतमें हो जाती हैं और महाप्राचीरा ढीली पड़ती है तब फेफड़ोंको जगह कम मिलती है। इससे फेफड़ोंको सिकुड़ कर कम जगहमें होना पड़ता है। जब यह होता है तब **साँस छोड़नेकी क्रिया (प्रश्वास)** होती है।

जीवनमें यह क्रिया अपने आप और निरन्तर होती रहती है। इस क्रियाका नियत्रण नाड़ियां करती हैं जिनका केन्द्र शुषुम्ना शीर्षमें है। इस केन्द्रको श्वास केन्द्र कहते हैं। चुपचाप खड़े रहनेकी हालतमें गाय प्रति मिनट १२ से १६ सांस लेती है। मेहनतके समय सांस जल्दी चलती है क्योंकि, तन्तुओंको अधिक ऑक्सीजनकी जरूरत होती है, और इसके लिये हृदय तथा फेफड़ोंको ज़ादे काम करना पड़ता है।

उल्टी साँसमें अशुद्ध वायु बाहर निकलती है। हवा फेफड़ोंमें घुस उसे ऑक्सीजन देती और कारबन-डाइऑक्साइड ले लेती है। इससे उल्टी साँसमें शुद्ध हवासे अधिक कारबन-डाइऑक्साइड होता है। यदि वही हवा बार बार साँसमें जाय तो उसकी ऑक्सीजन चुक जायगी और वह प्राण-पोषणके लायक नहीं रहेगी। आग जलने पर भी यही घटना घटती है। यानी हवाकी ऑक्सीजन खपती है।

उल्टी साँसके समय फेफड़े अपने भीतरकी हवाका बहुत बड़ा हिस्सा रख लेते हैं। साधारण तौर पर हर उल्टी साँसमें १० सैकड़ा हवाका उलट फेर होता है। हर साँसमें इस आने जानेवाली वायुको वेलावायु (tidal air) कहते हैं। मझोले कदके घोड़े या बैलको विश्रामकालमें ७ पाइन्ट हवा उल्टी साँसमें निकलती है। घंटे भरमें घोड़ा या बैल ८० से ९० घनफूट हवा साँसमें ले लेगा। इस एक घंटेमें
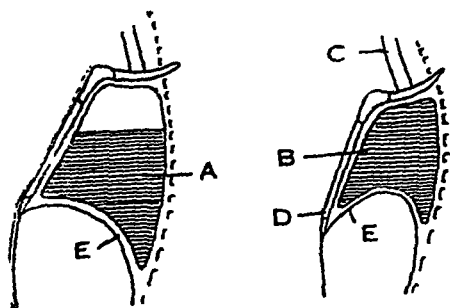
१३३. छाती और पेटकी दीवारका नक्सा। इसमें साँस लेने और छोड़नेसे हुआ परिवर्तन दिखाया गया है।

A-साँस लेना, B-साँस छोड़ना, C-क्लोम, D-उर:फलक, E-महाप्राचीरा।

औसत पशु वेलावायुकी ३॥ घनफूट ऑक्सीजन पी जायगा और लगभग ३ घनफूट कारबन-डाइऑक्साइड पैदा करेगा।

यह कहा जा चुका है कि यदि वही हवा बारबार साँसमें ली जाय तो उसकी ऑक्सीजन चुक जायगी और वह प्राणपोषणके योग्य नहीं रहेगी। साधारण तौर पर कारबन-डाइऑक्साइडका कुछ प्रतिशत परिमाण स्थिर किया जा सकता है। इससे फाजिल कारबन-डाइऑक्साइड साँस लेनेके लायक नहीं मानी जा सकती। साधारण तौर पर हवामें ·०२ सैकडा कारबन-डाइऑक्साइड होता है। सीधी साँसमें प्रतिशत इतना ही है। पर उल्टी साँसमें यह ४·३८ प्रतिशत होता है।

स्वास्थ्य ठीक बना रहे इसके लिये हवाके आने जानेका प्रवन्ध ऐसा रहे कि वायुमडलमें कारवन-डाइऑक्साइड ०५ सैकडासे जादे न हो। इस बातकी दिलजमईके लिये प्रत्येक बैलको १५,००० घनफूट हवा मिलनी चाहिये। यदि यह माना जाय कि हवाके आने जानेके ठीक इन्तजामसे कमरेकी हवामें प्रति घटा १० परिवर्तन होंगे तो थान पर प्रत्येक घोड़े या बैलको १,५०० घनफूट जगह देनी चाहिये। यदि जगह कम दी गयी है तो हवाका और अधिक परिवर्तन होना चाहिये। पर प्रति घटा १० वायु परिवर्तन स्वास्थ्यके लिये लाभकारी नहीं है। इससे हवामें जादेसे जादे जितनी कारवन-डाइऑक्साइड रहनी चाहिये उसके लिये बहुत अधिक शुष्कता हो जायगी।

साँसकी राह श्लैष्मिककलासे मढी है। कलामें प्रदाह होने पर बहुत कफ निकलता है और सूजन भी हो जाती है। जुकाम, सर्दी भी एक तरहका प्रदाह है। यह छूतका रोग है और जीवाणुमूलक है। हानिकर जीवाणु शायद नाकके एक न एक भागमे सदा रहते हैं। अनुकूल कारण होने पर जीवाणु अपनी शैतानी शुरू कर देते हैं। यदि जीवाणु छिटफुट और कम सख्यामें हों तो साधारण तौर पर इनके आक्रमणसे बचाव रहता है। सर्दीके प्रदाहसे नाकका नासूर हो सकता है। नाकके पानीकी छूत ठट्ठके दूसरे पशुओंको लग सकती है। सर्दीसे इन्फ्लूएजा बुखार हो जाता है। शुरूकी हालतमें जरासी सावधानीसे रोग भयकर नही हो पाता। छूतका स्थान नाक है। इसे जीवाणु नाशक दवा लगाकर छूतसे बचाना चाहिये। जैसे तेलमें घुले अजवाइनके सत्त (thymol)से। कठिन रोगोंमें छूत गहरे श्वास तत्र तक जाती है जिससे ब्राकइटिस (bronchitis) हो जाती है या इससे भी जादे फेफड़ोंमें निमोनियाके जीवाणुओंके द्वारा निमोनियाँ भी हो सकता है। यह भयंकर कठिन रोग है। यह रोग अपना भुगतान भुगता कर मिट सकता है या पशुका प्राण भी ले सकता है। निमोनियांका एक आक्रमण फेफडोंको निमोनियाके नये आक्रमण या फेफड़ोंको अन्य रोगोंके लिये ग्रहणशील बना देता है। श्वासकी इन्द्रियोंकी निरोधक शक्ति ही वास्तवमें अनेक श्वासतत्रके रोगोंको दूर रखती है।

हवाकी धूल जलन पैदा करती है। इससे सर्दी हो सकती है और इसके बाद अनेक कठिन रोगोंका सिलसिला लग सकता है।

१२७३. पाक संस्थान

पाकतंत्र मुँहसे शुरु होकर गुदामें समाप्त होता है। आहार मुँह ग्रहण करता है। जिस पशुको जैसे आहारकी जरूरत है उसका मुँह उसी अनुसार बनाया गया है। गाय शाकाहारी प्राणियोंमें है। शाकभुकोंके मुँहकी कई विशेषतायें हैं। ये विशेषतायें कौर लेने और निगलनेके पहलेकी क्रियाओंकी हैं। इन्हीं विशेषताओंमे शाकभुकों और मांसभुकोंका भेद मालूम होता है। ये विशेषतायें पचनेकी सभी अवस्थाओंमें भी देखी जा सकती हैं।
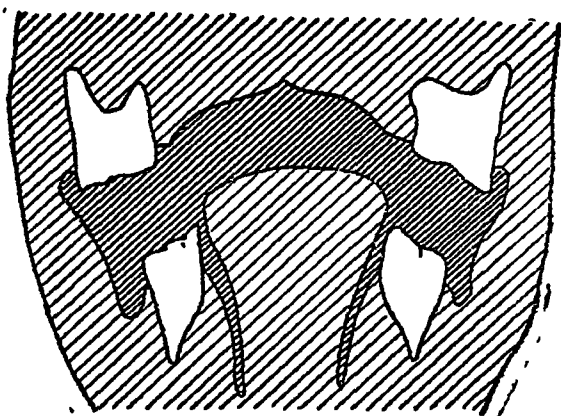
चित्र १३४.
बैलके ऊपरी और निचले जबड़ेकी चोड़ाई दिखानेवाला नक्सा।

पाचन तंत्रके इतने भाग किये जा सकते है :– मुँह, अन्नवह या अन्ननलिका, आमाशय, अँतड़ियाँ, और पूरक पिंड जैसे लाला ग्रन्थि, यकृत और अग्न्याशय।

ओठ, जीभ और दाँत आहार ग्रहण करने और चबानेकी इन्द्रियाँ है। घोड़ेके ओठ मोटे चलनसार हैं और उनमें चेतनता बहुत घनी है। पर गायके ओठ मोटे और अचल हैं। घोड़ेकी जीभ चिकनी है और चोटी पर चौड़ी। वह शायद ही कभी बाहर निकलती है, पर गायकी जीभ गावदुम होती है और चलनसार है। यह आसानीसे बाहर निकलती है। गायकी जीभ खुरखुरी और मजबूत है। गावदुम आकार, बाहर निकलनेकी शक्ति, चलनसार होना और खुरखुरेपनके कारण

गाय घासको अधिक अच्छी तरह पकड़ सकती है। खुरखुरेपनके कारण जीभ चरनेके समय किसी तरहकी चोटसे बच सकती है। गायके मुँहमें अनुजिह्वा (papillae) होती है। इसकी ढाल भीतरकी ओर है। मुँहसे आहार सरक कर न गिरे इसे यह रोकती है। गायके नीचेके जबड़ेके कर्तनक दांत विरल जड़े होते हैं और मसूड़ेमें तिरछे लगते हैं। इससे मसूड़ोंमें चोट नहीं लगती। मुँहके अस्थि-प्रकरणमें बताया जा चुका है कि, गायके ऊपरी जबड़ेमें अगले दांत नहीं होते। जहां दांत होते वहां सिर्फ कड़ा फलक होता है। घोड़ेके ऊपरी और निचले दोनों जबड़ोंमें कर्तनक होते हैं। चरनेमें इन्हींसे घास कुतरी जाती है। घोड़ा गायसे जादा जमीनमें सटाकर घास कुतरता है। इसीलिये जिस गोचरमें घोड़ा चर लेता है
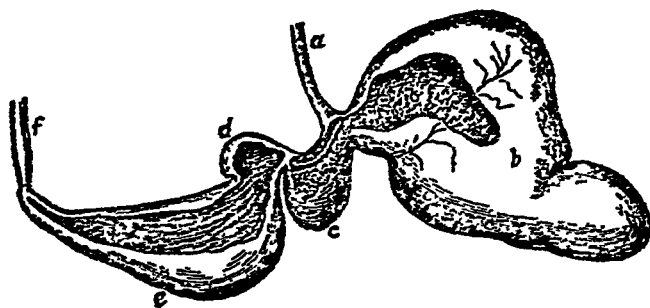
चित्र १२५. पागुर करनेवाले पशुके आमाशयका नक्सा।
a-अन्नवह, b-रोमन्थाशय, c-जालाशय, अन्नवहके खांचेके साथ, d-पूर्वाशय, e-पश्चात्‌आशय।

उसमें गायके लिये कम ही बचता है। उसी तरह भेड़ और बकरियां अपने पतले ओठके कारण जमीनसे और जादा सटाकर घास चर सकती हैं। इसलिये भेड़ बकरीकी चरी घास घोड़ेके लिये कम ही बचती है और गायके लिये तो और भी कम।

शाकभुकोंमें ऊपरी और निचला जबड़ा केवल ऊपर नीचे ही नहीं चलता। ऊपरी अचल जबड़ेमें निचले जबड़ेकी जटिल सन्धिके कारण चबानेके समय जबड़े ऊपर नीचे ही नहीं हो सकते, अगल बगल और कुछ हद तक आगे पीछे भी हो सकते हैं। यह मुक्त क्रिया या गति घोड़ेसे जादे गायमें प्रगट है।

शाकभुकोंका निचला जबड़ा ऊपरीकी अपेक्षा संकुचित होता है जिससे ऊपर नीचेके एक तरफके चर्वणक जब मिलें तो दूसरी तरफके न मिल सकें। इसलिये चवानेका काम एक ही गालमें चाहे दाहिने या बायेंमें हो सकता है। चवानेके समय दाँतोंकी अगल बगलकी गतिके कारण निचले चर्वणक दाँतका भीतरी भाग और ऊपरीका बाहरी भाग अधिक घिसता है और उनका तल ढलुआँ हो जाता है।

लाला ग्रन्थि : मुँहमें तीन जोड़ी लाला ग्रन्थिसे श्राव होता है। इन्हें कर्णमूलिक (parotid), हन्वधरीय (submaxillary) और जिह्वाधरीय (sublingual) कहते हैं।

अन्नवह प्राचीर पेशीमय है, इसमें चोइयोंकी तरह का अस्तर है। घोड़ेके अन्नवहका दछे पाकाशयमें घुसनेके पहले अपेक्षाकृत छोटा हो जाता है। लेकिन गायकी अन्नवहका छेद घोड़ेकी अपेक्षा अधिक चौड़ा और फैलनेवाला है।

पाकाशय वास्तवमें अन्नवहका विस्तार है। गायके अन्नवहमे चार विस्तार हैं। इन्हें चार आमाशय कहा जाता है। पर असली मानेमे चौथा ही आमाशय है। यह चार आमाशय **रोमन्थाशय, जालाशय, पूर्वाशय** और पश्चातआशय है। यह चौथा ही असली आमाशय है।

रोमन्थाशय बडा थैलासा है। इसमे गायके आकारके अनुसार ३० से ५० गैलन तक अँट सकता है। इसकी दीवालमे बडी पेशीकी पट्टियाँ हैं जिससे वह सिकुड़ कर भीतरकी चीजोंको ठेलती है। रोमन्थाशय देहकी बायीं तरफ है और पेटका सारा बायाँ भाग छेके रहता है और कुछ हद तक दाहिनी तरफ भी फैला रहता है। यह बड़ा थैलासा है। इसके दो भाग हैं, एक ऊपरी थैला और दूसरा निचला। हरेकके छोर पर एक अधा थैला होता है। थैलेमें श्लैष्मिककलाका अस्तर रहता है और ऊपर धारीदार चोइयां। रोमन्थाशयका आरम्भ अन्नवहसे और अन्त जालाशयमें होता है।

१२७७. रोमन्थाशय

रोमन्थाशयमें आया आहार उसमें तब तक रहता और मथा जाता है जब तक गाय सुबीतेके अनुसार पागुर नहीं करे। पागुर करनेमें आहार थोड़ा थोडा करके रोमन्थाशयसे मुँहमें आता है तब वह अच्छी तरह चबता है। गाय सरीखे रोमन्थकारी पशु आहारको पहले निगल जाते हैं। निगलनेके पहले उसमें इतना

थूक -मिला देते हैं कि निगलनेमें सुवीता हो। जल्दी जल्दी निगलकर गाय अपना भोजन तुरत कर लेती है। इसके बाद आरामसे थोडा थोड़ा करके पागुर करती और उसे फिर रोमन्थाशय या जालाशयमें भेजती है। रोमन्थाशयसे अन्ननलिकामें जाते जाते आहार पूरी तरह चवा लिया जाता है। एक कौर चवानेमें $\frac{१}{२}$ से १$\frac{३}{४}$ मिनट तक लगता है। इतने समयमें गाय ३० से ४० बार चवा लेती है। इसके बाद जीभ आहारको समेट उसका गोला बनाती है और उसे निगल जाती है। गायको रोमन्थाशय होता है और वह पहले निगले आहारका पीछे पागुर कर सकती है
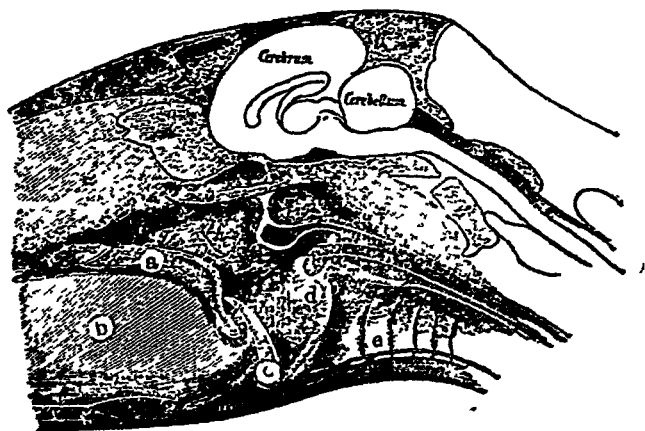
चित्र २३६. घोड़ेके सिरका एक अंश।
a-लम्बा कोमल तालु, b-जीभ. c-अधिजिह्विका, e-क्लोम।

इसलिये गाय घोड़ेसे ३ गुना जल्दी खा सकती है। घोड़ेको निगलनेके पहले पूरी तरह चवाना होता है। पागुरवाले पशुओंकी अन्ननलिकामें एक तरहका खांचा होता है जो विभिन्न आशयोंमें खुलता है।

यह देखनेकी बात है कि, खानेके बाद जब पशुको आराम और शान्ति मिलती तभी वह पागुर करता है। रोग या तकलीफमें लार या लाला स्राव और पागुरकी क्रिया रुक जाती है। ऐसी हालतमें आहार सूखा रहता है। इससे प्रदाह हो सकता है।

इसलिये यदि बीमारीकी हालतमें पशुका मुँह थूक चलनेसे भीगा मालूम पड़े और वह पागुर करना शुरू कर दे तो इससे यह समझना चाहिये कि, इस समय उसे आराम है और रोगकी बेचैनी खतम हो गयी है।

दिनके २४ घंटोंमें गाय ७ घंटे पागुर करनेमें लगाती है। पागुर करनेके लिये गाय एक बारमें ३३/४ आउन्सका (१०० ग्रामका) कौरका गोला पेटसे मुँहमें लाती है। इसे चबाकर फिर निगलनेमें १/२ से ११/४ मिनट लगता है। फिर भी साधारण तौर पर १ मिनटसे कम समयमें ही यह काम गाय कर लेती है। खायी चीज रोमन्थाशयसे फिर मुँहमें लानेमें गायकी एक विशेषता है। वह रोमन्थके लिये मुँहमें कौरका गोला ले आ सकती है पर रोमन्थाशय जादे भर जाय और तकलीफ दे तो कै करके उसे खाली नहीं कर सकती। कहा जाता है कि, गायके दिमागमें कै का केन्द्र विकसित नहीं है।

रोमन्थाशयमें आहारका मथन होते समय उसमें कोई पाचक स्राव नहीं होता। आहारमें केवल मुँहका क्षारीय थूक ही मिला रहता है।

सूखा आहार खाने पर गाय दिन भरके २४ घंटोंमें १० गैलन थूकका स्राव कर सकती है। रोमन्थकारियोंमें थूकका स्राव सचमुच बहुत जादे है।

स्टार्च (श्वेतसार) युक्त भोजन करनेवाली मानव जातिके थूकमें "टाइलिन" (ptylin) होती है। मुँहमें आहारका संपर्क होते ही इसकी प्रतिक्रिया शुरू हो जाती है। पर गायके थूकमें शायद ही टाइलिन पाचक हो।

रोमन्थकारियोंमें प्रकृतिने रोमन्थका विधान किया है, इस बारेमें एक सिद्धान्त है। वह यह कि रोमन्थकारियोंको प्राकृतिक अवस्थामें चरनेके समय अपनेसे बड़े मासभुकोंका डर सदा रहता है। इसलिये उनमें रोमन्थाशयका विकास हुआ। इसमें वह जल्दी जल्दी आहार भर कर अपेक्षाकृत शान्त और निरापद स्थानमें जा आरामसे पागुर करते और पाचन क्रिया शुरू करते हैं। पर यह केवल सिद्धान्त ही है। अबतकके ज्ञात शास्त्रीय ज्ञानसे इसकी पुष्टि नहीं होती। रोमन्थाशय जरूरी चीज है। पागुरवाले पशु पालतू हालतमें खानेके समय आरामसे पागुर कर सकते हैं। पर वह ऐसा नहीं करते। वह तो पहले निगल कर रोमन्थाशय भरते और बादमें पागुर करते हैं। यद्यपि रोमन्थाशयमें कोई पाचक रस नहीं है फिर भी लाखों जीवाणु तो हैं ही जिनकी प्रतिक्रिया आहार पर होती है। जीवाणुदल आहारके सेल्यूलोज पर प्रहार कर उसे विभिन्न जैविक या सेन्द्रिय अम्लोंमें तोड़

देते हैं। खासकर एसिटिक और बियूट्रायरिक स्नेहाम्लोंमें। इनका मेल थूकके क्षारसे होता है। इस संयोगसे उपजात नमकको अँतड़ियाँ शक्तिके लिये सोख लेती हैं। यह अंदाज किया जाता है कि, आहारका ६० सैकड़ा सेल्यूलोज रोमन्थाशयमें विश्लिष्ट (टूटता) होता है। सेल्यूलोजके टूटने पर कोषकी वस्तु मुक्त हो जाती है और उनका संयोग पाचक प्रणालीके विभिन्न भागोंमें पाचक रसोंसे होता है।

रोमन्थाशयमें सेल्यूलोजके अलावे स्टार्च और चीनी भी टूटनेके लिये फफदनी है। नाइट्रोजनवाले पदार्थोंको भी जीवाणु तोड़ डालते हैं और उनसे अपने लिये जीववस्तुके (protoplasm) लिये प्रोटीन तैयार करते हैं। जब घुलनशील नाइट्रोजन पूरी मात्रामें मिलती है तब जीवाणु वृद्धि और उनका कार्यकलाप बढ जाता है। तब निर्धारित कालमें और जादे सेल्यूलोज टूटता है।

खानेके आध घंटे बाद पागुर शुरु होता है और शायद तब तक जारी रहता है जब तक मोटा आहार फिरसे चब न जाय और पशुकी शान्तिमें बाधा न पड़े। बैलों और खासकर भारवाही और हल के बैलोंके पालनमें यह बात ध्यान देनेकी है। खिलानेके बाद कमसे कम दो घंटेका आराम उन्हें देना चाहिये। छेड़छाड़ करनेसे पागुरमें बाधा पड़ती है। इससे पेटकी गडबड़ी, दुष्पोषण और रोग होते हैं।

जन्मके समय बछड़के आशयोंके कोठे विकशित नहीं होते। बछड़का स्वाभाविक आहार दूध है। दूध, बछड़के अविकशित पहले दोनों आशयोंके सामनेसे निकल सीधा तीसरे या चौथेमें चला जाता है। रोमन्थाशयका काम रूखा चारा पचाना ही है। इसलिये बछड़के पिये दूधका रोमन्थाशयसे आगे बढ जाना जरूरी है। बछड़के अन्नवहमे रोमन्थाशयका ढकना कस कर बन्द रहता है। वह इसलिये कि, दूध रोमन्थाशय या जालाशयमें न जा सीधा तीसरे या चौथे आशयमें चला जाय। बछड़की उमर बढ़ने पर दूसरे या तीसरे महीनेमें अन्नवहका ढक्कन ढीला पडता है, कसकर बन्द नहीं हो सकता कि, दूधको रोमन्थाशयके सामनेसे निकल जाने दे।

पहले ऐसा माना जाता था कि, पिसा आहार (पुष्टिकर) और पानी सीधा तीसरे चौथे पेटमें जाता है। पर अब इसका खंडन हो गया है। यह देखा गया है कि, पानी और पिसा हुआ पुष्टिकर आहार रोमन्थाशय और जालाशयमें जाता है।

इसलिये यदि खानेके समय अन्नके दाने बिना चबे रह जाते है तो वह पशुः लिये तभी आते हैं जब रूखे चारेके बीच पड गये हो। ऐसे दाने पूरी पाचन-प्रणालीसे बिन टूटे निकल जा सकते हैं। इसलिये यदि अन्नको पीस दिया जाय और रूखे चारेके साथ खिलाया जाय तो पुष्टिकर चारेकी काफी बचत होती है।

जब कोई मोटी घास रोमन्थाशयमे पहुँचती है तो वह अपने हलकेपनके कारण आशयके तरल पदार्थमें पहले नहीं डूबती। पेशियोंके सकोचसे वह सब रोमन्थाशय के पिछले भागमें ठेल दी जाती है। इस बीच वह धीरे धीरे तरल पदार्थको सोखती है और अन्तमे डूबकर दूसरी चीजोंसे मिल जाती है।

रोमन्थाशयके निचले भागमे अधिक भारी आहार पिंडोंमे गति आगेकी ओर, जहाँ रोमन्थाशयका मुह जालाशयमे खुलता है होती है। इन दोनों आशयोंकी क्रमिक गतिसे आहार पूरी तरह मिल जाते और मुलायम हो जाते हैं।

१२७८. जालाशय

बैल जैसे रोमन्थकोंके दूसरे आशयका नाम **जालाशय** है यह पहले आशयके सामने और उसके पिंडके कुछ नीचेकी तरफ होता है। पहले आशयकी ओर इसका प्रवेश द्वार चौडा होता है और तीसरे आशयकी ओर कुछ छोटा। इसके श्लैष्मिककलाके अस्तरमें छोटे खीसे या कोप होते हैं। इनमेंसे कुछ चौकोर और कुछ तिकोने होते हैं। इनमें कुछके भीतर छोटे छोटे कोप हैं। जालाशयमें तरल पदार्थ होना जरूरी है। इसे तरल पदार्थोंका खजाना मान सकते हैं। इसमेंसे जरूरत पड़ने पर अन्य आशयोंमें तरल पदार्थ जाते है। ऊँटके जालाशयमें ही पानीके थैले या कोष होते हैं जिनमे वह भविष्यके लिये पानी भर लेता है।

१२७९. पूर्वाशय

रोमन्थकोंका तीसरा आशय **पूर्वाशय** है। यह पेटकी दाहिनी तरफ चौथे आशयसे कुछ ऊँचे पर होता है। इसका सरोकार दोनोंसे है। इसे बहुपत्रक भी कहते है। पूर्वाशयमे पत्तोंकी तरह उभार होते हैं, जो रेतीकी तरह खुरदुरे होते हैं हर पत्तेके मध्य पेशियोंकी एक पट्टी होती है। इसके कारण जब पत्ती सिकुड़ती तब रेती चलनेसी क्रिया होती है। हर पत्ती अपने दोनो तरफकी पत्तीसे रग

खातीं हैं। इस क्रियासे सारा आहार पिस जाता है और चौथे आशयमें जो बादकी क्रिया होगी उसके लिये तैयार होता है।

१२८०. पश्चात्आशय

पूर्वाशयमें पिस आनेके बाद आहार चौथे या **पश्चात्आशय** आता है। पूर्वाशयसे आनेके बाद यह कुछ देर तक क्षारीय रहता है। यहां जीवाणु चीनीको तोड़ कर दुग्धाम्ल बना देते हैं। दूसरे क्रियाशील रस स्टार्चका चीनो बना लेते हैं। पर और किसी क्रियाके होनेके पहले इस आशयमें जोर से मंथन होने लगता है। इसका फल यह होता है कि, पाचक रस आहारमें पूरी तरह मिल जाते हैं और उसे तोड़ देते हैं। बैलका आशय मुख्य रूपसे आहारको तैयार करनेका काम करता है। जैसे उसे गरम करना, उसमें पाचक रस मिलाना, नरम करना और इसके बाद सबको एक रूप कर देना। फिर भी इस एक रूप पिंडमें खाये हुए विभिन्न आहारोंके कण देखे जा सकते हैं।

आशयमें पाचक रसके इस काम को दो कालमें बांट सकते है। (क) एमीलोलीटिक काल और (ख) प्रोटियोलीटिक काल। एमोलोलीटिक काल अर्थात् स्टार्च टूटनेका काल पूरा होनेके पहले की प्रोटियोलीटिक अर्थात् प्रोटीन टूटनेका काम पेउपसीन नामक क्रियाशील रसके द्वारा शुरू हो जाता है।

पेटमें दूधकी केसीन पहले थक्काके रूपमें जमती है इसके बाद बदल कर पेप्टोन (peptone) हो जाती है। थक्का होना (coagulation) पाचक रसके रेनिन (renin) नामक किण्वके कारण होता है।

रेनेट एक पदार्थ है जिसमें रेनिन होती है। यह केसीनोजेनको (caseinogen) बदल कर एक नयी कड़ी और थक्कादार चीज केसीन बनाता है। पनीर बनानेमें इस चीजसे कड़ा दही जमाया जाता है। बछड़ेके पेटसे निकाले रेनेटसे पनीरके लिये दूध जमाया जाता है। सयाने पशु जिन्हें दूध या उसके उपजात नहीं खिलाये जाते उनके पाचक रसमें रेनेट हो भी सकता है और नहीं भी। पेटमें आहारके पहुँचते ही केवल पाचक रस और क्रियाशील रसका ही श्राव नहीं होता इसके साथ ही मर्दन क्रिया भी होती है। आशयकी प्राचीरके बिचले भागसे सकोच शुरू होता है। इस सकोचकी लहर एक के बाद दूसरी पिछले ओर तक जाती है। पहले तो आशयका बहिर्द्वार जिसे मुद्राद्वार (pylorus) कहते हैं, संकोचकी इस

लहरके पहुँचने पर नहीं खुलता। इसलिये लहर टकरा कर पेटके पहले भागकी ओर लौट जाती है। इससे पेटकी सब चीजें पूरी तरह मिल जाती हैं। पर जब पाचक और क्रियाशीलकी प्रतिक्रिया काफी बढ जाती है तब यह सकोच लहरी जितनी बार मुद्राद्वार पर आती है इसमेंसे थोडासा अर्ध-तरल पदार्थ बाहर निकल आता है। यह पेशियोंके ढीली होनेसे होता है। अँतडीमें कुछ अश आ जाने पर मुद्राद्वार बन्द हो जाता है। यह क्रिया फिर फिर होती है और अधिक देर तक आमाशयमें रहने पर जैसे जैसे उसमे हाइड्राक्लोरिक अम्ल और पाचक अम्लके श्रावसे अधिक अम्लता बढ़ता है यह क्रिया जोरदार होती जाती है। दो आहारके बीच आमाशय कभी पूरी तरह खाली नहीं होता। हाइड्रोक्लोरिक अम्लकी जीवाणुनाशक और कोथघ्न (ॲन्टिसेप्टिक) प्रतिक्रिया प्रत्यक्ष है। कुछ जीवाणु इस अम्लमे मरते नहीं फिर भी उनकी वृद्धि रुक जाती है। पर ये आँतोंमें चले जाते हैं और फिरसे क्रियाशील हो जाते हैं।

१२८१. अँतड़ियाँ

आमाशयके बादका महाश्रोतका (alimentary canal) भाग अन्त्र या आँत कहा जाता है। आँतोंमें ही अधिकाश आहारका पाचनक्रिया और आचूषण होता है। अन्त्रोंके दो भाग हैं :– एक वृहत अन्त्र और दूसरा क्षुद्र अन्त्र। वृहत और क्षुद्र अन्त्रके बीच एक भाग है जिसे उण्डुक (Cæcum) कहते हैं। छोटी और बड़ी आँतके जोड़ पर यह लगा हुआ है। घोड़ेका यह बहुत बड़ा होता है और वही काम करता है जो बैलमें रोमन्थाशय करता है। बैलका उण्डुक इससे कहीं छोटा होता है।

बैलकी छोटी आँत १३० फूट लम्बी है और उण्डुक २½ फूट। इसके बाद बडी आँत है जो लगभग ३५ फूट है। घड़ीकी कमानी की तरह बडी आँत सजायी रहती है। यह पेटके दाहिनी ओर रीढ़ और उदर तलके बीच होती है। आखिरी कुडली कटिदेश तक पहुँच सीधी नली हो जाती है। यही गुद नलिका (rectum) है।

आँतोंकी दीवारमें तीन स्तर होते हैं। बाहिरी स्तर उदर्यावृति (peritoneum) कहा जाता है। बिचला स्तर पेशियोंका है, यह पेशीवृति

(muscular coat) है। भीतरी स्तर श्लैष्मिककलाका है। तीनों स्तरोंकी सबसे अधिक मुटाई आध इञ्चके लगभग है।

वाहरी उदर्यावृति मुद्राद्वार से गुदा तक लगातार है। इससे श्राव होते हैं जिससे यह तर रहती है और दूसरी इन्द्रियोंसे कम रगड़ खाती है।

पेशीवृतिसे आँतोंमे संकोच और प्रसार होता है। इस क्रियाके द्वारा आहार टूटता, मिलना और आगे ठिलता है। आहार सामिग्रीको निचोड़ निचोड कर आगे
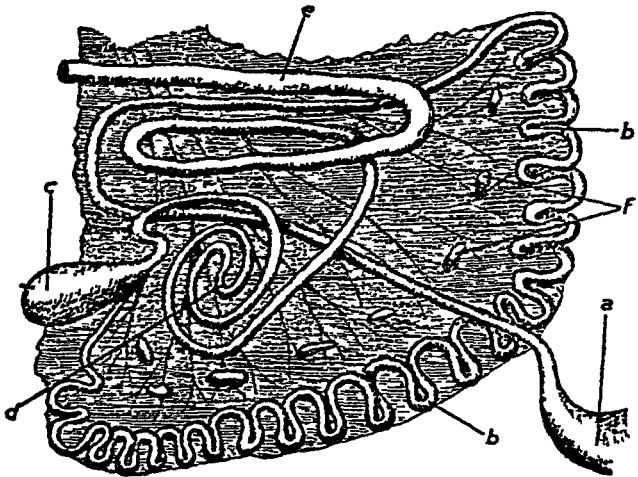
चित्र १३७ गायकी आँतका नक्सा।
a–चौथे आशयका छोर ग्रहणीमें मिलता है, b–छोटी आँतकी कुन्डली, c–उन्डुक, d–बडी आँतका चक्कर, e–गुद नलिका, f–लसीका ग्रन्थि।

ठेलनेकी क्रियाका क्रिमिगमन (peristalsis) कहते हैं। आँतोंकी दीवालकी पेशियाँ यह किया करतीं हैं।

तीसरे स्तर श्लैष्मिककलाका ही सपर्क आहार सामग्रियोंसे होता है। इस स्तर पर विभिन्न रक्त प्रणालियाँ फैली रहतीं हैं जिनसे पाचन क्रियाके लिये आवश्यक रक्त च शु- रहता है। छोटी आँतमे इस कला पर अंकुरिका (Villi) नामके केश पहले तो आशय- होते हैं। इनमें केशिकाओंका जालसा बिछा रहता है जो

आचूषणका काम करते हैं। इन अकुरकाओंके बीच आँतोंकी अनेक ग्रन्थियां होती हैं जिनसे आँतोंका स्राव होता है।

उदर्याकलाकी तहोंके कारण आँतें अपनी जगह पर रहतीं है। उदर्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे इन्हें उदरकी प्राचीरके किसी भागमें बाँधती है। जिस तहमें छोटी आँतका मुक्त भाग टँगा रहता है उसे **अन्त्र बंधनी** (Mesentery) कहते हैं। इन्हींमें होकर रक्त और लसीका प्रणालीयाँ आँतोंमे घुसती हैं। छोटी आंतमें कलावृत्तिकी ग्रन्थियोंसे स्राव होता है। इस स्रावमे कई क्रियाशील रस होते हैं। जो चीनी या पेप्टोन अभी तक पचनेसे छूट गये हैं वह यहाँ टूट जाते हैं। यहाँ भी क्रियाशील रस चीनीका ग्लूकोज जैसे पदार्थ बनाते हैं कि, उनका रक्तमें आचूषण हो सके।

चित्र १२८ छोटी आँतकी श्लेष्मिककला होकर एक अश। इसमें तीन अकुरिकायें दिखायी गयी हैं।
1-अकुरिका ढाकनेवाला कोष, 2-इसमें लसीका प्रणाली दिखायी गयी है, 3-रक्तकेशिकाओंका जाल, L-नलीके आकारकी ग्रन्थियां जिससे अ त्ररस निकलता है।

आँतोंमें पाचनक्रिया प्रायः पूरी हो जाती है। बड़ी आंतमें पहुँचे इसके पहले ही अधिकाश पोषकका आचूषण इसी छोटी आँतमें हो जाता है।

अकुरियोंकी क्रिया आचूषणमें बहुत सहायक होती है।

बड़ी आँत : बिन पचा और आचूषित नहीं हुआ पदार्थ बड़ी आंतमें चला जाता है। यहाँ पाचन क्रिया कुछ ही होती है। पचे पोषकोंका पूरा आचूषण बड़ी आंतमें हो जाता है।

आमाशय और छोटी आँतके पाचक रसके अम्लसे अधिकाश जीवाणु मर जाते हैं।

वड़ी आंतमें जो सामिग्री आती है उसे वहाँ देर तक रुकना होता है। जो जीवाणु अभी तक बचे रहते हैं उनकी वृद्धि जोरोंसे यहाँ होने लगती है। खासकर निर्वायु जीवीकी। यदि आहारमें जीवाणु नहीं हुए तो वड़ी आंतके जीवाणु इस नये आहार पर अधिकार कर लेते और अपनी संख्या बढ़ाते हैं। साधारण तौरपर यह जीवाणुक्रिया हानिकारी नहीं है। पर यदि मल अधिक देर तक आंतमे रहे जैसे कि, कब्जियतकी हालतमें तो उससे हानिकर पदार्थ बन कर रक्तश्रोतमें मिल जा सकते हैं।

वडी आंतमें शेप आहारका पानी निचुड़ जाता है और मलमें साधारण गाढापन आ जाता है। बैलका उण्डुक छोटा होता है और कोई महत्वका काम नहीं करता। पर घोड़ेका यह बडा होता है और बहुत कुछ वही काम करता है जो रोमन्थकोंमें रोमन्थाशय करता है। घोड़ेके उण्डुकमें जो आहार पहुँचता है उस पर क्रियाशील रस और जीवाणु दोनोंकी क्रिया होती है। जिससे आचूपणके योग्य पोषक तैयार होते हैं।

मलद्वारको **गुद** या पायु (anus) कहते हैं। इसका नियंत्रण **गुदोष्ठ** (sphincter ani) करता है। साधारणतः यह सिकुडा रहता है। मलत्यागके समय स्थानीय नाड़ी अपना नियंत्रण ढीला कर देती है जिससे पायु ढीला पड़ता है और मल निकल जाता है।

आंतमे आमाशयसे आंशिक रूपमें पचा आहार आता है। हम देख चुके हैं कि, रोमन्थाशयमें सेल्युलोज और चीनीको जीवाणुक्रिया तोडकर सरल अम्ल और समास (यौगिक) बना देता है। आमाशयमें अम्ल रस अन्य आहार द्रव्योंको आचोषणीय बना देते हैं। पर स्नेहों पर अब तक कोई प्रतिक्रिया नहीं हो सकी और प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेटका पाचन भी पूरा नहीं हुआ। आंतोंमें पाचनका काम आमाशयसे भी अधिक जोरसे होता है। यहां सब तरहके पोषक पदार्थों पर क्रिया होती है। आंतके ऊपरी भागमें जहाँ वह मुद्राद्वारसे शुरू होती है यकृत और अग्न्याशयसे पाचक द्रव आते हैं। पाचक रसका आमाशयकी प्राचीरसे ही स्राव होता ह।

जिस समय आहार आंतमें आता है उस समय वह अम्लयुक्त रहता है। पर अग्नेयरस और यकृतका पित्त और आंतोंके श्राव सब ही क्षारीय हैं। इसलिये आंतमें आनेके बाद धीरे धीरे आहारकी अम्लता नष्ट होने लगती है। जो प्रतिक्रिया अम्लसे ही हो सकती है वह कम कम होती है और अतमें अधिकाधिक क्षार मिलते

रहनेसे बंद हो जाती है। पर पेपसिनकी क्रिया किसी तरह जारी ही रहती है और तब रुकती है जब आहारमें काफी क्षार हो जाता है। आँतोंकी दीवालें सिकुड़ती और ढीली पड़ती हैं इससे उनमें खास तरहकी गति मिलानेका काम होता है।

१२८२. अग्न्याशय

अग्न्याशय से अग्नेयरस निकलता है। अग्न्याशय ग्रन्थि है जिसका काम पाचन क्रिया करना है। यह उदरमें वृक्कोंके बराबर जरा आगे और कुछ नीचे है। इसका रंग गुलाबी है। ग्रन्थि लालाग्रन्थिकी तरह है। अग्न्याशयमें नलिका रहती हैं जो आँतोंमें उस जगह घुसी रहती हैं जहाँ यकृतकी पित्त नलिका घुसती है। अग्न्याशय रक्तस्रोतमें सीधे ही सर्व-शरीर-पाचक-रस (इंसुलीन-insuline) डालता है जिसका काम मूतसे चीनी निकलनेका नियंत्रण

चित्र १३९ आदमीका अग्न्याशय और प्लीहा दिखानेवाला नक्सा।
A-प्लीहा,
B-अग्न्याशय,
C-अग्न्येय रस प्रणाली,
D-पित्त प्रणाली।
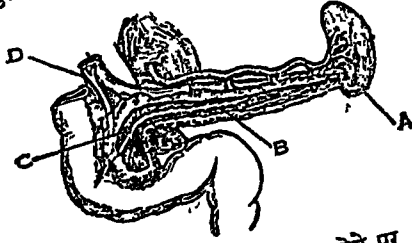
करना है। अग्न्याशयमें रोग होने पर जब वह काम नहीं कर सकता तो मधुमेह जाता है।

अग्न्याशयका सबसे प्रत्यक्ष काम अग्नेयरसका छोटी आँतमें स्राव करना है। पाचकरसमें कई क्रियाशील अंश होते हैं। उनमेंसे एक यद्यपि है क्षारीय पर काम पेपसिनकी तरह करता है। दूसरा स्टार्चको बदलकर चीनी बना देता है। और एक स्नेहको घुलने लायक साबुन बनाता है। इस प्रतिक्रियामें यकृतका पित्त भी हाथ बँटाता है।

१२८३ यकृत

गायके यकृतके नीचेके तलमें पित्तकी एक थैली होती है जिसमें पित्त भरा रहता है। जब ग्रहणी होकर आहार आँतोंमें जाता है तब पित्त ग्रहणीमें आता है।

यकृत ठोस दानेदार इन्द्रिय है, यह महाप्राचीरासे बिलकुल सटा हुआ होता है। गायके यकृतका रंग नील-बैंगनी होता है। यह छूनेमें मुलायम है। देहकी सबसे बडी ग्रन्थि यही है। यह कई महत्वके काम करती है। यह पित्त बना कर उसका स्राव करता है। यह रक्तकी घुलने लायक चीनीसे मधुरक बनाता है। यकृतमें मधुरक (ग्लाइकोजेन) ठोस होकर रहता है। जब रक्तकी चीनी शक्ति पैदा करनेमें चुक जाती है तब उसकी पूर्ति मधुरकसे होती है। उस समय यह फिर तरल बन जाता है।

रक्त कणिकायें मर्यादित काल तक ही काम कर सकती हैं। इसलिये प्रतिदिन कणिकाओंका कुछ भाग बेकाम हो जाता है। यकृत पुरानी और छीजी कणिकायें जमा करता है। ऐसी बेकाम कणिकाओंसे भरा रक्तस्रोत जब यकृतमें आता है
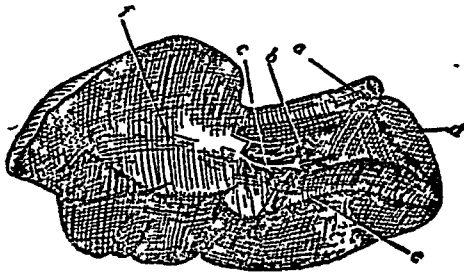
चित्र १४०. घोड़ेका यकृत।
a-महाशिरा,
b-प्रतिहारिणी शिरा,
c-याकृतधमनी,
d-वृक्ककी छाप,
e-ग्रहणीकी परिखा,
f-आमाशयकी छाप।

तो यह उन कणिकाओंको रक्तके साथ आगे नहीं जाने देता। जमा करके उन्हें तोड डालता है।

यकृत बेकाम सामिग्रियोंको भी जमा करता है खासकर यूरिया और यूरिक अम्लको। और उन्हें बाहर निकाल देनेके लिये रक्त स्रोतके द्वारा वृक्कोंमें भेजता है।

पित्त जिस थैलीमें जमा होता है उसे पित्तकोष कहते हैं। पित्त ग्रहणीके पास आहारमें मिलता है। यह पाचन क्रियामें अग्निरसकी सहायता करता है। बैलका यकृत देहकी मध्य रेखासे प्रायः दाहिनी ओर होता है। यह महाप्राचीरासे सटा हुआ है। इसका आकार महाप्राचीराकी नतोदरोताके अनुकूल होता है। यह दूसरे और तीसरे आशयोंसे भी लगाव रखता है, इससे इस पर उनकी छाप होती है।

यकृतमें दो स्पष्ट मार्गोंसे रक्त आता है। आमाशयका रक्त प्रतिहारिणी शिरामें आता है। प्रतिहारिणी शिरा हृदयमें सीधी नहीं जाती। यह यकृतमें घुसती है और अनेक केशिकाओंमें बट जाती है। आमाशय और आँतोंमें अनेक हानिकारक पदार्थोंका आचूषण कर प्रतिहारिणी शिरा उन्हें यकृतमें लाती है। यहाँ उन्हें बदल कर हानिरहित कर दिया जाता है और आचूषण न हो सके ऐसा रूप कर दिया जाता है। इस रूपमें वह फिर पित्तमें चला जाता है। आहारके विभिन्न घटक भी यकृतमें जमा रहते हैं और जब जरूरत है तब रक्तश्रोतमें उड़ेल दिये जाते हैं।

यकृतमें रक्त आनेका दूसरा साधन याकृती धमनी है। इस धमनीका रक्त यकृतको पुष्ट करता है।

प्रत्येक मार्गसे यकृतमें रक्त आने पर याकृती शिरामें जमा होता है। यह उसे महाशिरामें खलास करती है। यह कहा जा चुका है कि यकृत रक्तश्रोतकी जरूरतके लिये चीनी जमा रखता है और उसका नियन्त्रणभी करता है। यकृतको छोड रक्तमें चीनी बराबर ०.९ सैकडा रहती है।

१२८४. पित्त

यह कहा जा चुका है कि, यकृतका बनाया पित्त आहारमें मिलता है कि, वह पाचन क्रियामें सहायक हो। यह हरा-पीला तरल पदार्थ है। इसका स्वाद बहुत कड़ुआ और साधारणतः क्षारीय है। स्नेहके पाचनमें पित्त अत्यन्त महत्वका है। जब पित्तका श्राव साधारण नापसे कम हो जाता है तब स्नेह पचे बिना शरीरसे निकल जाता है।

पित्त आग्नेय और अन्त्र रसोंकी क्रियाको उत्तेजित करता है। अन्त्रकी दीवालोंके सकोचमें यह सहायता देता है जिससे आहार उसमें हो कर आगे बढे। यह आँतोंमें सडांध भी रोकता है। शरीरके हानिकर अनिष्ट पदार्थोंको यकृत पित्तमें डाल देता है। पित्त मलके साथ सबही नहीं निकल जाता। कुछ रक्त अनुधावनमें मिलकर फिर काममें आ जाता है।

१२८५. प्लीहा

प्लीहा रोमन्थाशयके बाहर उसके पास ही होती है। यह प्रणाली विहीन ग्रन्थि है। इसे रक्त खूब प्राप्त होता है। यह इन्द्रिय नरम, बहुप्रणाली-पूरित और

वेरके रंगकी हैं। उदर्याकलाकी सबसे बाहरी तहके बाद एक तन्तुओंकी तह होती है। इसके भीतरसे प्लीहामें डोरीसी लगी रहती हैं। इस डोरीकी जालीमें प्लीहाका मास रहता है। यह इन्द्रिय रक्तकी श्वेतकणिका बनानेका काम करती है। यह पुरानी घिसी लाल रक्त कणिकाओंको नष्ट करती है।

कुछ कुछ मिनटों पर प्लीहा बराबर सिकुडती और ढीली पड़ती हैं।

१२८६. विसर्ग संस्थान

वृक्क और मूत्र

मूत्रेन्द्रियोंमें (१) दो वृक्क (kidneys), (२) दो गवीनियाँ (ureters) और (३) एक मूत्र प्रसेक (urethra) होते हैं। दोनों वृक्क उदरदरीमें कटिप्रदेशमें
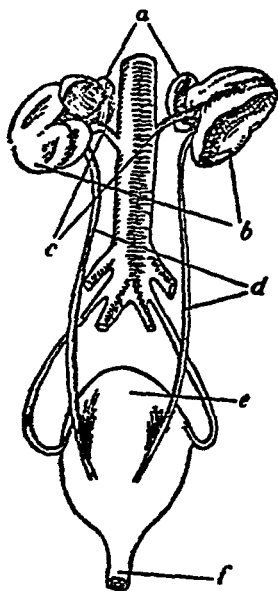
चित्र १४१. घोड़ेकी मूत्रेन्द्रियोंका सम्बन्ध दिखानेवाला नक्सा।
a-आधिवृक्क, b-वृक्क, c-आधिवृक्का धमनी, d-गवीनियाँ, e-वस्ति, f-मूत्रप्रसेकका आदिभाग।

होते हैं। इनमें से दो गवीनियाँ निकल कर वस्ति या मूत्राशयमें (bladder) जाती हैं। वस्ति श्रोणिके द्वार देश पर होती है। मूत्र प्रसेक वस्तिकी गरदनसे निकलता है और मर्दोंके शिश्न तथा औरतोंके प्रजनन द्वार तक जाता है।

वृक्क दोनों उदरदरीकी छतसे लटके मेरुदन्डके दोनों तरफ एक एक होता है। रक्तश्रोतसे अनिष्ट पदार्थ और जल बाहर निकालना इनका काम है। इस बाहर

निकलनेवाले जलका नाम मूत्र है। गवीनियोंकी राह यह वस्तिमें आकर जमा होता है। यहांसे मूत्रप्रसेक हो कर यह समय समय पर देहके बाहर होता है।

बैलके वृक्कोंमें खंड होते हैं। प्रत्येक वृक्कमें २० से २५ खड होते हैं। खड गोल और छोर पर होते हैं। दाहिना वृक्क अन्तिम पसलीके नीचे होता है। बाँया स्थिति बदलता रहता है। साधारण तौर पर यह बायीं ओर होता है। पर जब रोमन्थाशय भरा रहता है तब वह बायें वृक्कको जरा नीचे दाहिनी ओर दाहिने वृक्कके पीछे ठेल देता है।

वृक्कको भीतरी कोर नतोदर है। भीतरी कोरके बीचकी नतोदरताको वृक्कद्वार (hilus) कहते हैं। महाधमनीसे निकली धमनियाँ वृक्कमें जाती हैं। लौटनेवाला रक्त अधरा महाशिरामें जाता है। गवीनियाँ सकोण और सफेद रगकी नलिकायें हैं। इकट्ठा मूत्र रखनेके थैलेको वस्ति कहते हैं। मूत्र भरने पर यह फैल सकता है।

चित्र १४२. आदमीके वृकका अंश।
A-कोप,
B-वृक्कालिन्द,
C-गवीनी।

वस्तिसे मूत्र बाहर निकालनेवाली नलका मूत्रप्रसेक कहते हैं। मूत्रप्रसेकका मुँह प्रसेकोष्ठ पेशीसे बन्द रहता है। मूत्रप्रसेककी राह वस्ति मूत्र खलास करती है।

वृक्कोंमें टीपके आकारका एक खात होता है इसे वृक्कालिन्द (pelvis of kidney) कहते हैं। इस खातमें उभार होते हैं जिन्हें शिखरिका (pyramids) कहते हैं। शिखरिका-तल महीन छेदोंसे भरा है। यह महीन नलियोंके मुँह हैं। वृक्क वस्तु इन्हींकी बनी है। वृक्कका बाहरी भाग बहिर्वस्तु (cortex) और इसके बादका भाग अंतर्वस्तु (medulla) कहा जाता है।

वृक्कोंमें सीधे महाधमनीका रक्त बड़े चापसे जाता है। यह रक्त उत्सिका (glomeruli) नामक केशिका पुंजोंमें जाता है जो कोपमें घिरा रहता है। यहाँ पानी इन केशिकाओंसे चू चू कर नलियोंमें जाता है। जब पानी नलियोंमें आता है तब रक्तके विषैले अनिष्ट पदार्थ इसमें मिल जाते हैं। यह काम वृक्क कोप (renal-cells) करते हैं।

इस जलश्रोतमें घुलनेलायक ठोस पदार्थ भर जाता है तब वह वृक्कालिन्दमें आता है। इस कोष्ठके निचले छोरसे गवीनी होकर मूत्र वस्तिमें जाता है।

अनेक पशुओंमें मूत्र और पसीना कुछ हद तक अन्योन्याश्रित हैं। शरीरके भीतर गया हुआ अधिकांश विष मूत्रके साथ बाहर निकल जाता है। मूत्रमें कुनाइन, मौर्फीन आदि देखे जा सकते हैं। जीवाणुज रोगोंमें जीवाणुके पैदा किये हुए विष भी वृक्क बाहर कर देते हैं।

गायकी पेशावका आपेक्षिक गुरुत्व १००६ और १०३० के बीच है। इनका औसत १०२० है। शाकभुकोंका मूत साधारण तौर पर क्षारीय रहता है और मासभुकोंका कुछ अम्लीय।

२४ घंटेमें मूत्रकी मात्रा पशुके आकार नस्ल और उसके आहार तथा पिये पानीकी मात्रापर निर्भर है। साधारण तौर पर बैलको १० से ४० पाइन्ट मूत निकलता है, औसत २२ पाइन्ट होता है

गायकी पेशाव पीली और उत्कट गधवाली होती है। पशुकी बीमारीमें अनेक असाधारण पदार्थ कभी कभी मूत्रके साथ निकल आते हैं जैसे चीनी, रक्त, पीव आदि।

वृक्क रक्तकी रासायनिक छननेका काम करता है। वह रक्तसे अतिरिक्त जल और यूरिया भी अलग कर देता है। देहका सभी रक्त वृक्कमें शुद्ध नहीं होता। फेफड़ेमें शुद्ध होनेके बाद रक्त देहकी सेवाके लिये धमनियोंमें भेजा जाता है। इसका कुछ भाग ही वृक्कमें जाकर शुद्ध होता है। यह रक्तके अंशमात्रकी ही शुद्धि है। पर यह आंशिक कार्य भी निरतर जारी रहता है इसलिये एक हद तक अनिष्ट पदार्थ रक्तमें अधिक नहीं हो सकते। हृदयके भारी चापसे रक्त वृक्कोंमें जाता है। वृक्कके स्वाभाविक कार्यके लिये यह चाप भी एक उपकरण है। यदि रक्तका चाप अचानक बहुत बढ़ जाय तो अधिक मात्रामें रक्त वृक्कोंमें जायगा। इससे अधिक मूत पैदा होगा और बाहर निकलेगा। यदि हृदय मन्दगतिसे चले तो वृक्ककी चलनी ठीक काम नहीं कर सकेगी। फल यह होगा कि, देहसे अनिष्ट पदार्थ कम निकलेंगे। इससे रक्तमें विष बढ़ जायगा। जब वृक्क काम नहीं करते तो जल या रक्तरस देहमें अधिक जमा होने लगता है जिससे जलोदर (dropsy) के लक्षण प्रगट होते हैं।

अधिक मात्रामें प्रोटीन खाने पर वृक्कोंको उसी अनुपात में उसके टूटे पदार्थ या यूरियासे अधिक निबटना होता है। यूरियाकी मात्रा बढ़ जाती है। यह प्रोटीन

पचनेके समय बनता है। जितना ही ज्यादे व्यर्थकी प्रोटीन खायी जायगी वृक्कको उतना ही व्यर्थ परिश्रम करना होगा। इससे वृक्क पर बहुत भार पड सकता है जिससे कितने ही रोग हो सकते हैं।

१२८७ त्वक या चमड़ा

त्वचा स्रावक या विसर्ग इन्द्रिय है। इसके छेदोंसे रक्तका अनिष्ट पदार्थ बाहर निकलता है। त्वचासे कारबन-डाइऑक्साइड गैस बाहर निकलती और ऑक्सीजन भीतर जाती है। इस तरह यह कुछ कुछ फेफडेका काम भी करती है।

त्वचाके दो स्तर होते है। एक **वहिस्त्वक** (epidermis) और दूसरा **अन्तस्त्वक** (dermis)।

वहिस्त्वकमें कोषोंकी कई तहें होती है। अंतस्त्वक पर ही वहिस्त्वक होता है। यह महीन और मजबूत बंधक ततुओंके जाल सा होता है।

वहिस्तचककी दो तहें की जा सकती हैं। एक वहिस्तर या कठिन स्तर और दूसरी गहरी या मृदुस्तर। इन्हें हम आसानीके लिये कड़ी तह और मुलायम तह कह लें। फफोला पड़ने पर दोनो तहें अलग हो जाती है। अंतस्त्वककी निचली तहमें रंजक द्रव्य होते हैं। इन्हींसे चमडेमे रंग मालूम होता है।

त्वचाके ठीक नीचे स्नेहयुक्त स्नायु है। अंतस्त्वकका निचला भाग स्नायुओंकी इस बीचवाली तहके द्वारा मास या अस्थिसे जुड़ा है। स्नेहयुक्त स्नायुओंकी बदौलत अंगमें गोलाई आती है। यह तह खासकर उदरमें मोटी है। अंतस्त्वकमें रक्तवहायें हैं पर वहिस्त्वकमें नहीं। वहिस्त्वकके ठीक नीचे रक्त-वहाओंकी केशिकाओंकी कुंडलियां होती हैं। अंतस्त्वकमें नाड़ियां काफी है।

त्वचा छेदोंसे भरी है। ये सब **स्वेद ग्रन्थियों** के मुंह हैं। छेद बोतलका काग खोलनेके पेचकी तरह घुमावदार नलियोंका छोर है। ये नलियां वहिस्त्वक होकर अंतस्त्वक गयी है। यहा नलीकी दीवाल पतली हो जाती है और त्वक्कोष (cuticle cells) की इकहरी तहोंवाली रह जाती है। और नीचे इस नलीकी कुंडलीदार गांठ बन जाती है। कुंडली स्वेद-ग्रन्थि है। इस ग्रन्थिके कोष रक्तसे **पसीना** चुलाते हैं। यह पसीना नली होकर चमड़े पर निकल आता है।

अंतस्त्वकमें **मज्जा ग्रन्थि** (fatty glands) होते हैं। इनका केशोंसे सम्बन्ध रहता है। इन ग्रन्थियोंकी नलियां छोटी होती हैं जो कोषोंसे भरी छोटी

छोटी थैलियोंमें जाती हैं। नलियोंका मुँह उन छेदोंमें रहता है जिसमें केश होते हैं। इनका स्राव स्नेहीय है।

जब पसीना थोडी मात्रामें आता है तो वह तुरत ही भाफ बन उड़ जाता है। इसे **अज्ञात पसीना** कहते हैं। क्योंकि, इसका निकलना मालूम नहीं पडता।

गर्मीमें या मेहनत करने पर पसीना इतनी तेजीसे निकलता है कि साथ ही साथ सूख नहीं पाता तब इसे **ज्ञात पसीना** कहते हैं। जब पसीना उडता है तब चमड़ेकी गर्मी कमती है। इस तरह देहकी बहुतसी गर्मी कम जाती है।

केश : गाय और अन्य पालतू जानवरोंकी देह केशोंसे ढकी है। केश स्थायी नही होते। वह झड़ते और फिर उगते हैं। साधारण तौर पर सालमें दो बार झड़ते हैं। जाड़ेमें केश सबसे जादा घने होते हैं और गर्मी आने पर झड़ने लगते हैं।

चित्र १४३. त्वचाका अंश, इसमें स्वेद-ग्रन्थि और केश दिखाये गये हैं।
A-बहिस्त्वक, B-अतस्त्वक, C-स्वेद-ग्रन्थि, D-चर्बी, E-केश, F-केशमूल।
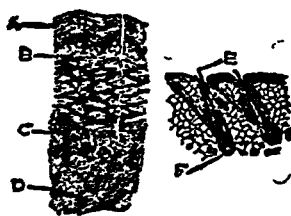
केशके सिवा चमड़े पर सींग, खुर, चंगुल, नख आदि भी होते हैं। यह सब ठोस बहिस्त्वक कोष हैं। गुँथे केशोंके पिंडसे इनकी समता की जा सकती है। एक विशेष प्रकारके अंतस्त्वक—**मैट्रिक्स** के बने ये सब हैं। खोखले सींग इसी वस्तुके होते हैं।

त्वचाके कार्य : त्वचाका मुख्य काम रक्षणात्मक है। अपने नीचेकी मांस-पेशियोंका ढकना और चोटसे बचाना इसका काम है। इसमें स्नेहकी गद्दियाँ होती हैं। इससे उन्हें यह गर्मीकी अधिकतासे बचाता है। केश, रोंयें या ऊन तापमानका नियमन करते हैं। यदि जाडोंमें ढोर घरके बाहर रखे जायँ तो उन पर रोंयें घने हो जाते हैं। पर यदि गरम बथानमें रखे जायँ तो ऐसा न हो। केशमूलमें स्नेह-भंडार होता है। इससे उसके चारो तरफ पानी असर नहीं करता।

ताप नियमन त्वचाके अनेक मुख्य कामोंमें एक है। गाय गरम रक्तवाला पशु है। चारोंओरका तापमान चाहे जो हो गरम खूनवालोंकी देहका तापमान सम हीं

रहता है। समताप बनाये रखनेके लिये देहमें ऐसे साधनकी जरूरत है जो चारों तरफकी ठंडमें देहको गरम रखे और जब इर्द गिर्द रक्तसे अधिक गर्मी है तो देहको ठंढी।

देहकी स्वतंत्र और परतंत्र पेशियोंके प्रत्येक संकोचसे देहमें गरमी पैदा होती है। ठंडी हवा या पानीका चमड़ेके अधिक भागसे संयोग होने पर उसमेंकी अनेक रक्तवहायें तुरन्त सिकुड़ जाती हैं। इससे वहाँ पर रक्त कम आता है। नहीं तो वह वाहरी सपर्कसे ठंढा हो जाता। पर जब आसपास रक्ततापके तापमानसे अधिक गर्मी होती है तब त्वचाकी वहायें फैल जातीं हैं। इसके ऊपरी सतह पर अधिक रक्त आता है जिससे पसीना अधिक होता है। और उसके उड़नेसे ठंढक होती है। इससे चमड़े परका तापमान गिर जाता है। जब पसीना नहीं भी आता तब भी वाहरी सतहके पास अतिरिक्त रक्त आने जानेसे उसकी गर्मी कम हो जाती है और इस तरह तापमान सम रहता है। रक्तवहाओंका यह संकोच और प्रसार अपने आप होता है। इसे प्रतिसक्रमित क्रिया (reflex action) कहते हैं।

चमड़ेके छेदोंसे कारवन-डाइऑक्साइट जैसे अनिष्ट पदार्थ वाहर निकल जाते हैं। इस तरह वह फेफड़ेका भी कुछ काम करता है। निम्न कोटिके मेटक जैसे कुछ प्राणी जितना अनिष्ट पदार्थ फेफडेसे बाहर करते हैं चमड़ेसे भी उतना ही और वह केवल चमड़े द्वारा साँस लेकर भी जी सकते हैं। वायु (गैस) विनिमय ठीक फेफडेकी तरह होता है। प्राणवायुका ऑक्सीजन आचूषण होता है और अपानवायु (कारवन-डाइऑक्साइड) वाहर निकाल दी जाती है। गाय और अन्य पशुओंमें कुछ ऐसा भी होता है। लेकिन त्वचा जो करती है वह अपेक्षाकृत थोडा है। ऐसा माना जाता है कि, पशुओंकी खास खास गंध त्वचासे वाहर निकले सेन्द्रिय पदार्थोंके कारण होती है।

इसलिये गायकी त्वचा साफ रखनेकी जरूरत है। उनकी त्वचा साफ रहे इसलिये रोज नहीं तो एक दिनके वाद उन्हें नहलाना चाहिये। गोशालामें गोवर और मूत प्रायः उनके चमडे पर लग जाता है। इससे ढोरको उतनी ही तकलीफ होती है जितनी किसी अन्य पशुकी देहमें गदगी लगनेसे हो सकती है। रगड कर धोनेसे चमड़ा साफ और सुस्थ रहता है। नहलानेके समय जरा रगड देना स्फूर्तिदायक है।

१२८८. नाड़ी संस्थान

नाड़ियाँ चमकदार सूतकी तरह हैं। देहमें जैसे रक्त-संवहनकी धमनी शिरा और केशिकायें फैली हुई हैं उसी तरह यह भी है। रक्त-संवहनका केन्द्र हृदय है पर नाड़ीका मस्तिष्क। नाड़ी छूनेमें नरम है। नाड़ीका सूत कांचकी महीन नलियोंकी तरह है जिसमें तेल भरा हो। कई नाड़ियाँ अगल बगल बनी हैं और कुछ बिजलीके तारकी तरह गुथी हुई।

नाड़ीका काम अपने प्रधान केन्द्र मस्तिष्कमें खबर ले जाना और वहाँका हुकुम दूसरी जगह पहुँचाना है। सुषुम्नामें कुछ ऐसे स्थान हैं जो मस्तिष्कको भेजी खबरके अनुसार उसके हुकुमका आसरा नहीं देखते। वह मुख्य केन्द्रकी तरह क्या किया जाय इसका हुकुम दे देते हैं।

जिस वेगसे नाड़ी खबर ले जाती है वह मन्द है। १०० से २०० फुट प्रति सेकेंड वेग है। सभी साधारण कामके लिये यह वेग काफी है। पर आदत हो जाने पर खबर भेजने और पानेका तरीका बहुत सरल हो जाता है और यह सब मशीनकी तरह प्रायः अपने आप हो जाता है।

जब गाय घरसे किसी नयी दिशामें चलती है तो उसे राह और आसपासकी खबर रखनी होती है। उसे सावधानीसे आगे बढना होता है। उसे देखना होता है कि, कहाँ ऊँचा है और कहाँ नीचा, कहाँ खडी चढाई है, कहाँ उतराई या कहाँ भयावह मोड है। पर जब वह उसी ओर प्रायः आती जाती है तब उसे आदत पड जाती है और वह प्रायः अपने आप सोचे समझे बिना चलती है।

नाड़ी शरीरकी कई क्रियायें इच्छाके आदेशके बिना करती है। चलने, देखने, काम करनेमें दिमागकी इच्छाके आदेशकी आवश्यकता होती है। पर साँस लेना, पचना, पसीना आना आदि काम किसीकी इच्छाके बिना भी चलता रहता है। यह बात आदमी और पशु सबमें एकसी है।

नाड़ियोंके यह स्वयं कृत कार्य **प्रतिसंक्रमित** क्रिया कहे जाते हैं। इन प्रति-संक्रमित क्रियाओंके लिये मस्तिष्कके केन्द्रोंसे संदेश आते जाते हैं। मुँहमें कौर लेने पर चबानेके बाद उसे निगलनेकी इच्छा होती है। जीभ उसे अन्नवहमें ठेल देती है। इसके बाद आहार अन्नवहकी पेशियोंकी अपनी क्रियासे आमाशयमें जा पहुँचता है। रोमन्थाशयमें वह अपने आप चलाया जाता है। इसके बाद इच्छासे पागुर कर लेने पर आहार आमाशयमें जाता है और प्रतिसंक्रमित क्रिया

चलती रहती हैं। मुद्राद्वार उचित समय पर आप ही आप खुलना और बन्द होता है। स्रावकी इन्द्रियाँ स्राव करती हैं। इस तरह पाचन और आचूषणका सारा काम आप ही आप होता रहता है। पर यह यों ही अपने आप नहीं होता। प्रत्येक कार्यके होनेमें अक्ल लगती है। जब रक्तमें अधिक चीनी होती है तब यकृत उसे ठोस रूपमें जमा कर रखता है। और जब रक्तको चीनीकी जरूरत होती है यकृत उचित मात्रामें उसे भेजता है। इस तरह हमारी इच्छाके पीछे कोई और इच्छा भी है, जो हमारी नहीं है, जैसा कि हम समझ लेते हैं। इसमें सदेह नहीं कि यह सारा काम आदमी या पशु ही करता है।

जब कोई बाहरी वस्तु चर्ममें घुस जाती है या और गहरे जाकर मासमें पहुँचती है तो देहको उसे बाहर करनेका काम करना होता है। सूजन होती है और

चित्र १४८. नाड़ी कोष।
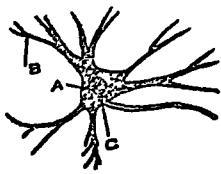
A-मूलकण,
B-शाख पद्धति,
C-शाखाहीन पद्धति।
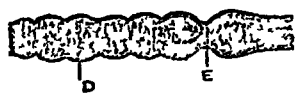
चित्र १४५. नाड़ीका ढाँचा।

D-मज्जा, E-गाँठ।

उसे निकालने या आत्मसात् करनेके लिये रक्त वहाँ श्वेत कणिकायें भेजता हैं: श्वेत कणिकायें लडाईमें मारी जाती हैं जिससे पीव बनती है। यह सब सतह पर आते हैं। बाहरी वस्तु और पीव बाहर निकल जाती है फिर घाव भरने लगता है। किसी सरजनके निर्देशसे कहीं अच्छी तरह स्वभाव से ही यह सब भूलचूकके बिना होता है।

अपने आप होनेवाले कामका महत्व हमारी इच्छासे होनेवाले कामसे अधिक है। क्योंकि यदि देह पर स्वतंत्र नियंत्रण (अपने आप होनेवाला) न हो तो जीवन एक मिनटके लिये भी असंभव है।

इस स्वतंत्र नियंत्रणसे धमनीकी पेशियोंका नियन्त्रित सकोच होता है। इससे निश्चित चापसे यथोचित रक्त उनमें बहता है।

यदि यह नियंत्रण न रहे तो धमनियाँ फैल जायँगी जिससे रक्तको कुछ भी रुकावट नहीं रहेगी। इससे वह उन भागोंमें बहेगा जहाँ चापके बिना वह सकता है और मस्तिष्क, यकृत, वृक्क आदि जैसी महत्वकी इन्द्रियोंको अपना काम करनेके लिये पूरा रक्त नहीं मिलेगा। नतीजा मृत्यु होगा।

नाड़ी-तंत्रमें मस्तिष्क, सुषुम्नाकाड और उनसे निकली नाड़ियाँ हैं। मस्तिष्क और सुषुम्नाकांड मिलकर **केन्द्रीय नाड़ी-मंडल** है।

एक **नाड़ीसूत्र** में अनेक ततु होते हैं और प्रत्येक ततुमें एक मध्यतल होता है जिसे **सूत्राक्ष** या **अक्षतन्तु** (axis cylinder) कहते हैं। उसके चारो तरफके आवरणको **मज्जापिधान** या **वसामयी वृति** (medullary sheath) कहते हैं। इसके बाद **प्राथमिक नाड़ीपिधान** या **नाड़ीकंचुक** (neurolemma) होती है। प्राथमिक नाड़ीपिधान आदिसे अंत तक होती है पर मज्जापिधानका सिलसिला कहीं कहीं टूटा होता है। टूटनेकी जगहको **गाँठ** या **नाड़ी-पर्व** (nodes) कहते हैं।

किसी किसी नाड़ीमें मज्जापिधान नहीं होता पर सूत्राक्ष पर केवल नाड़ीपिधान रहता है। इन्हें मज्जाहीन नाड़ी ततु कहते हैं। इनका रग भूरा होता है पर मज्जासहितका सफेद।

नाड़ियाँ दो जातिकी होती हैं। केन्द्रमें सवेदना ले जानेवाली नाडी **संज्ञावह** (afferent) और केन्द्रसे सवाद ले जानेवाली **मनोवह** (efferent) कही जाती है। ये नाड़ियाँ अपने अपने भागका हुकुम ले जाती हैं। इन्हें **प्रचेष्टनी नाड़ी** (motor nerves) और संज्ञावहको **ज्ञान नाड़ी** (sensory nerves) भी कहते हैं। केन्द्रीय नाड़ीमडलसे जहाँ नाड़ी निकली है या विभिन्न ज्ञानेन्द्रियोंमें जहाँ उसका छोर है वहाँ **नाड़ी गंड** (ganglion cells) होते हैं।

नाड़ी कोषोंमें बड़ासा गोल मूलकंद होता है। कोषोंमें प्रवर्धन होते हैं। इनमेंसे एक सूत नाडीतंतुके सूत्राक्ष तक लगातार रहता है। सूत्राक्ष लवायमान नाड़ीकोष माना जा सकता है। मस्तिष्क और सुषुम्नाकाड सवृतिक अर्थात् आवरणयुक्त नाड़ीतंतु, नाड़ी-गड और साथमें कुछ आधार-तंतुओंके बने होते हैं।

१२८६. सुषुम्नाकांड

सुषुम्नाकांड कशेरुकाओंकी नलीमें होकर निकलता है। कशेरुकाओं और खोपड़ीकी अस्थिमयी दरी (गुहा)में **बाहरी आवरण** (dura mater)-का अस्तर

चढ़ा रहता है। अस्थिकी ओरकी इसकी पीठ खुरदरी और भीतरकी ओर चिकनी होती है। इसके बाद मस्तिष्क और सुषुम्ना एक कोमल झिल्लीमें बन्द रहते हैं। इस झिल्लीको **भीतरी आवरण** (pia mater) कहते हैं। इसमें रक्तवाहनियाँ बहुत होती हैं। मस्तिष्कावरण (भीतरी आवरण) और कलावरण (बाहरी आवरण) के बीच एक तरल पदार्थ होता है जिसे **लर्पक कफ** (ब्रह्मवारि) (Cerebrospinal fluid) कहते हैं।

सुषुम्नाकांड मस्तिष्कपुटसे लेकर कटिकी ५ वीं और ६ ठी कशेरुकाकी संधि तक फैला है। काड गोल है, दो परिखाओंसे यह दो भागोंमें बटा हुआ है जिसे **अगली और पिछली परिखा** (fissures) कहते हैं। ये दरारें इतनी गहरी हैं
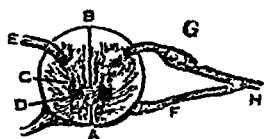
चित्र १४६. सुषुम्नाकांडका आड़ा अंश।
A-आगेकी परिखा, B-पीछेकी परिखा, C-श्वेत पदार्थ D-भूरा पदार्थ, E-पिछला मूल, F-अगला मूल, G-पिछले मूलपर नाड़ी-गंड, H-सुषुम्ना नाडीका एक तार।
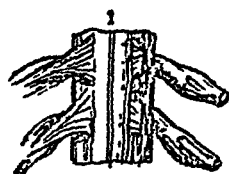
चित्र १४७. सुषुम्नाकाडका आगेका दृश्य, इसमें अगला और पिछला मूल दिखाया गया है।

कि, मानो अब एक ही हो जायेंगी। इनके बीच जोड़नेवाली कड़ी जरा सी रह जाती है जिसे नाली (central canal) कहते हैं।

काडके दोनों भागोंमें बाहरका हिस्सा श्वेत पदार्थका और भीतरी भूरे पदार्थका होता है। भूरा पदार्थ अर्धचन्द्राकार होता है, जिसमें दो सींग निकले रहते हैं। जिन्हें आगे और पीछेके सींग कहते हैं। श्वेत पदार्थ भूरे पदार्थके अर्धचन्द्रके चारों तरफ होता है। काडके दोनों भाग भूरे पदार्थसे जुड़े रहते हैं।

सुषुम्नाकांडसे जगह जगह सौषुम्न नाड़ियाँ निकलती हैं। प्रत्येक सूतमें आगे और पीछेके मूलसे निकली नाड़ियाँ होती हैं जो मिलकर नाडीका एक तार बन जाती हैं। तारमें जुड़नेकी जगहसे आगे पिछले मूलमें एक गाठसी होती है। यह नाड़ी-गंड है।

सुषुम्नाकांडसे निकलनेके बाद दोनों मूलोंकी सन्धि पर नाड़ोके तारमें प्रचेष्टनी और ज्ञानकी नाड़ियाँ अलग अलग की जा सकती हैं। सभी प्रचेष्टनी नाड़ियाँ अगले मूलसे और सभी ज्ञान-नाड़ियाँ पिछले मूलसे निकलती हैं। इसलिये इन्हें प्रचेष्टनी और ज्ञान मूल भी कहते हैं।

किसी सौषुम्न नाड़ीका पिछला मूल जब घायल हो जाता है तब जिस भागकी वह नाड़ी है वह सुन्न हो जाता है। पर अगर अगला मूल घायल नहीं हुआ है तो उस भागमें चेष्टा या गति हो सकती है। यदि इसका उल्टा हो जाय तो चेष्टा तो नहीं होगी पर चेतना मालूम होगी।

१२६०. ज्ञान

ज्ञान नाड़ोके बारेमें कुछ महत्वकी बातें हैं। मनुष्यमें चेतनाका उद्गम सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियाँ मानो गयी हैं। पर इनके अलावा वेगों या प्रेरणाओंको विशेष नाड़ी तन्तु ले जाते हैं और उन्हें बदल कर चेतना कर देते हैं। जिससे गति, स्थान, भयकी शंका, दुःख, शीत और तापका ज्ञान होता है। यह सम्भव है कि जंगली पशुओंमें खासकर, और कुछ हद तक पालतूमें भी यह गौण चेतना और इनके तन्त्र आदमीसे कहीं जादा तीव्र और सघटित हैं। पशु क्या करे क्या न करे यह बतानेवाले सहज ज्ञानसे भी बड़ी बाहरी स्थिति समझ लेनेवाली शक्ति है, यह कभी सिद्ध हो जा सकता है। बकरीका नवजात मेमना अन्धा पैदा होता है। पर पैदा होते ही अंधेकी तरह माँके पेटकी तरफ बढ़नेकी चेष्टा करता है और वहाँ पहुँच कर तुरत ही थन खोज उसे पीने लगता है। इस काममें माँ कुछ सहायता नहीं करती। यदि एक साथ कई पैदा हो जाते हैं तो एक ही चीजके लिये सभी छटपटाते हैं और जब तक एक एक चूचा सबको मिल नहीं जाता एक दूसरेसे धक्का धक्की करते हैं। इस तरहका काम पशु अतिरिक्त चेतनाके वेगसे प्राप्त करता है।

१२६१. प्रतिसंक्रमित क्रिया

यदि श्रोणिके आसपास आदमीका सुषुम्नाकांड चुटीला या घायल हो जाय तो मस्तिष्क और पिछली शाखामें खबरका आना जाना नहीं हो सकता। अब यदि उसके पैरमें कुछ चुभे तो वह एकाएक अपना पैर समेट लेगा यद्यपि वह चुभनेकी अनुभूति नहीं कर सकेगा और न अपनी इच्छा से पैर समेटेगा। उसकी ज्ञान और

प्रचेष्टनी नाड़ीका सरोकार मस्तिष्कसे कट गया है इसलिये न तो वह अपने निचले अंग चला सकता है और न उसकी अनुभूति उसे हो सकती है। फिर भी कुछ चुभने पर वह अपना पैर समेट लेता है। इसे **प्रतिसंक्रमित** (प्रतिक्षिप्त) **क्रिया** बताया जाता है। इसमें कुछ करनेके लिये दिमागके हुकूमकी जरूरत नहीं होती। चुभनेकी अनुभूति सुषुम्नाकांडमें पहुँचती है। इस वेगका कांडके भूरे पदार्थ पर ऐसा असर होता है कि, उससे नया चेष्टा-वेग पैदा हो जाता है। यह नया वेग अगले मूलके भूरे पदार्थसे पैरकी पेशीकी नाड़ीमें आता है और तब पेशीका संकोच होता है।
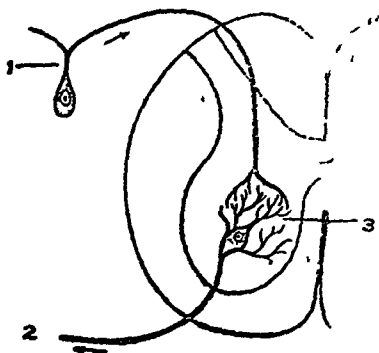
चित्र १४८. सुषुम्नाकाडका प्रतिसक्रम वृत्तार्ध।
1-ज्ञान नाड़ी, 2-प्रचेष्टनी नारी, 3-नाड़ी कोप।
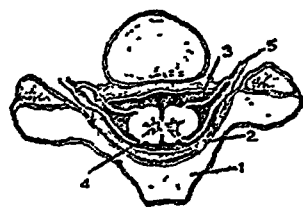
चित्र १४९. मेरुदण्डका एक अश।
1-कशेरु कटक, 2-मस्तिष्कावरण, 3-सौषुम्न रस, 4-सुषुम्नाकांड, 5-गति और ज्ञान तार।

सुषुम्नाकांड या दिमाग इच्छाके बिना जब कोई क्रिया करता है तब उसे प्रतिसंक्रमित क्रिया कहते हैं। देह पर हुकूमत करनेके लिये मस्तिष्कके सिवा सुषुम्नाकांड उपकेन्द्रोंकी तरह आचरण करता है। कुछ स्वतन्त्र या प्रतिसंक्रमित कार्य ये हैं :

प्रकाशके अनुसार आँखका फैलना या सिकुड़ना, साँस लेना, थूक और भीतरी रसोंका स्राव, पसीना चलना, रक्त-संवहन, पाचन आदि। प्रतिसंक्रमित क्रिया करनेवाली नाड़ियोंको **सहानुभूति-नाड़ियाँ** कहा जाता है। साधारण तौर पर इन्हें मज्जाका आवरण नहीं होता।

कुछ प्रतिसंक्रमित काम देहमें घड़ीकी सूईकी तरह आप होते रहते हैं। इनके अलावा भी जो प्रतिसक्रमित क्रियायें होती हैं उनका विश्लेषण हम करेंगे। उत्तेजनाकी प्रतिक्रिया पर हम विचार करें।

उदाहरणके लिये घोड़ेके अगले पैर लीजिये। कल्पना कीजिये कि पैर पर छड़ी चलायी गयी। उसके पैरसे छड़ी हटनेके पहले ही वह अपना पैर झटकता है। कभी कभी यह काम इतनी जल्दी और अचानक हो जाता है कि, वह चोटसे नहीं, अपने पैरके हटनेसे चौंकता है।

यहाँ पर दिमागकी सहायता या आदेशके विना सुषुम्नाकाण्डने स्वयं एक कार्य कर दिया है। आदमीसे पशुमें प्रतिसंक्रमित क्रिया कहीं जादा विकसित है। जंगली पशुओंकी, बिजलीसे भी तेज क्रिया, प्रतिसक्रमित क्रियासे ही सभव है। अपने शिकार पर बाज जिस तेजीसे झपटता है या सिंह अपने शिकार पर घटेमें ६० मीलके वेगसे टूटता है इसकी तुलनामें आदमीका काम बहुत धीमा और समझ बूझ कर किया हुआ होता है।

१२६२. मस्तिष्क

बैलके मस्तिष्कके तीन भाग हैं। वृहत् मस्तिष्क (cerebrum), मस्तुलुंगमध्य (mid brain) और धम्मिलक या लघु मस्तिष्क (cerebellum)। वृहत् मस्तिष्क दो गोलार्धोंमें बँटा है। दिमागका अधिकांश यही है और साथ ही शेषकी गतिविधिका नियमन भी यही करता है। मस्तुलुंगमध्य पुष्पवृन्तसा है मस्तिष्क और धम्मिलकको जोड़नेवाली डंडी यह है। धम्मिलक गोलार्ध है। यह खोपड़ीमें एक दम पीछे होता है। उष्णीषक (pons) और सुषुम्नाशीर्षकके भी पीछे यह होता है। मस्तिष्कके भिन्न भिन्न अवयवोंको जोड़नेवाले पुलकी तरह उष्णीषक है। सुषुम्नाशीर्षक सुषुम्नाकाण्डका ही बढा हुआ भाग है। हृदय, सांस, रक्त-सवहन और मुँहसे लेकर बडी आंत तककी पाचन क्रियाके नियमन करनेवाले केन्द्र इसीमें हैं। दिमागकी नाड़ियोंके आने जानेकी राह इसी होकर है। गंध, दृष्टि और चक्षुगोलककी नाड़ियोंको छोड़ सभी कपालीय नाड़ियां यहीं पैदा होती हैं।

मस्तिष्क भूरे और सफेद पदार्थका बना है। भूरा पदार्थ ऊपर है। यद्यपि कुछ कुछ यह सफेद पदार्थमें भी घुसा हुआ है। सफेद पदार्थ अनेक नाड़ी सूत्रोंका

बना हुआ है। इसमेंसे हरेक भूरे पदार्थके एक कोषसे जुड़े हैं और विभिन्न मार्गोंके लिये तैनात हैं। यह-मार्ग चाहे ज्ञानवह हैं या सज्ञावह।

विभिन्न पशुओंके मस्तिष्कमें बहुत भेद होता है। देहकी तौलके अनुपातसे विभिन्न पशुओंके मस्तिष्ककी तौल नीचे दी जाती है :—

बिल्ली	...	९९ में १
कुत्ता	..	२३५ में १
घोड़ा	...	५९३ में १
बैल	..	६८२ में १

बुद्धिका आधार केवल मस्तिष्ककी तौल ही नहीं है, सफेद और भूरे पदार्थका अनुपात भी है।

बृहत् मस्तिष्क स्वय चेतनाहीन है। उसको काटा और घायल किया जा सकता है। ऐसा करनेमें पीडाकी अनुभूति नहीं होगी। स्मृति, इच्छा, मेधा आदि सूक्ष्म ज्ञानसे इसका सम्बन्ध है। दृष्टि, गंध, स्वाद, श्रवण, स्पर्श आदि ज्ञानेन्द्रियोंका वेग ग्रहण करनेका पीठ यह है।

धम्मिलकका मुख्य कार्य देहकी समतौल बनाये रखनेके लिये पेशियोंके कार्यका सामजस्य है और दृष्टि केन्द्रोंकी सहायतासे शरीरकी स्थितिका ज्ञान करना है।

१२६३. शीर्षण्य नाड़ियाँ (Cranial Nerves)

मस्तिष्कसे १२ नाड़ियाँ निकलती हैं। आदमीकी भी इतनी ही हैं।

१. घ्राण नाड़ियाँ।

२. दृष्टि नाड़ियाँ।

३,४,५. नेत्रप्रचेष्टनी नाड़ियाँ।

६. त्रिधारा नाड़ियाँ, मुखमंडलके ज्ञान और जबड़े तथा जीभके सचालनके लिये।

७. वक्त्र नाड़ियाँ, मुखमडल और मुखके लिये।

८. श्रुति नाड़ियाँ, सुननेके लिये।

९. कडरासनी नाड़ियाँ, स्वादकी नाड़ियाँ हैं।

१०. प्राणदा नाड़ियाँ, यह कुछ प्रचेष्टनी और कुछ ज्ञानवहा हैं। गरदन होकर उर और उदरमें जाती हैं और हृदय, कंठ, फेफड़े और यकृत तथा अंत्र सहित उदरका नियमन करती हैं।

चित्र १५०. मस्तुलुंग पिंडका आधार।
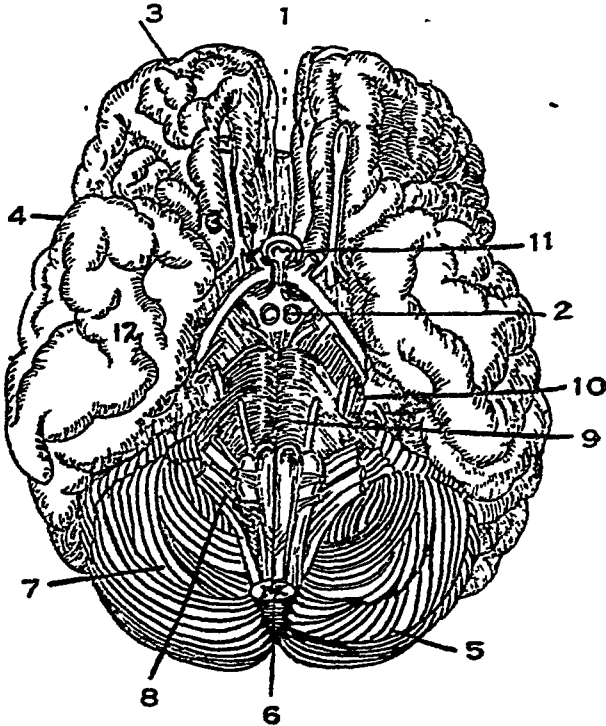
1-महा संयोजक, 2-वृत्ताकार पिंड, 3,13-ललाट खंड, 4,12-शंख खंड 5,7-धम्मिलक. 6-सुषुम्ना शीर्षक, 8, 9, 10, 11, 14-शीर्षण्य नाड़ियाँ।

११. ग्रीवापृष्ठगा नाड़ियाँ, ये गरदनकी कुछ पेशियोंमें जाती हैं।

१२. जिह्वानलिका नाड़ियाँ, जीभके लिये गति नाड़ियाँ।

१२६४. पिंगला नाड़ियाँ

पिंगला नाड़ितंत्र हमारी इच्छाके परे है। इसका मुख्य केन्द्र सुषुम्ना-शीर्षककी चोटी पर है। सुषुम्नाकांडके साथ साथ नाड़ी सूत्रोंका जाल है जो अनेक स्वतंत्र कार्य करता है। पिंगलातंत्रके कामोंका कुछ जिक्र हो चुका है। इनके अलावे इनका मुख्य कार्य हृदय और रक्तवाहिनियोंका नियमन है। रीढके सामने दो संवेदना तारोंके बीच जाल तने रहते हैं। इन्हें चक्र कहते हैं। कुछ चक्र ये हैं .

१. हृदय चक्र (cardiac plexus),
२. सौर्य चक्र (solar plexus),
३. श्रोणी चक्र (pelvic plexus)।

हृदय चक्र नाड़ी सूत्रोंका जाल है। यह संवेदना और प्राणदा नाड़ियोंका बना होता है। पेशियोंमें हृदयसे नाड़ियाँ आती हैं। **प्राणदा नाड़ियाँ** हृदयमें निषेधात्मक वेग ले जाती हैं। इसका उल्टा शीघ्रकारी वेग **संवेदना नाड़ी** ले जाती है। प्राणदा नाड़ी काट देनेसे उसका निषेधात्मक प्रभाव मिट जाता है इससे हृदयकी धड़कन जल्दी जल्दी होने लगती है। पर यदि प्राणदा केन्द्र उत्तेजित कर दिया जाय तो वेगमें रुकावट बढ जायगी। इससे धड़कन धीमी हो जायगी। संवेदना नाड़ी काटनेसे हृदयकी धड़कन मंदी हो जायगी और इसे उत्तेजित करने पर तेज।

रक्तचालक नाड़ी : इस नाड़ीका केन्द्र सुषुम्नामें है। रक्तचालक नाड़ीके वेग धमनी की पेशी-वृत्तियोंको सिकुड़े रखते हैं। इस नियमनके अभावमें धमनियाँ फैल जायँ और रक्त चाप कम हो जाय। इससे उन अंगोंको जिन्हे अधिक चापकी जरूरत है कम रक्त मिलेगा। मस्तिष्कके लिये सबसे अधिक चाप चाहिये। इसलिये क्षीण रक्तसंवहनका असर सबसे पहले उसी पर होगा और इससे मूर्छा होगी।

रक्तचालक नाड़ीके नियमनकी जरूरत प्रति क्षण है। भोजनके बादही पाचन क्रियाके लिये पाचक इन्द्रियोंमें अधिक रक्त चाहिये। इस कामके लिये यह नाड़ी उदरकी धमनियाँ फैलाती हैं। जिससे दूसरी जगहोंमें जैसे चर्म आदिमें रक्तका जाना बन्द होकर यहाँ अधिक आता है। चमड़ेका ताप मिट जाता है। भोजनके बाद जाड़ा लगनेका कारण यही है। यदि शरीर-ताप कम करना होता है तो चमड़ेकी ओर ज्यादे रक्त बहता है। इससे कुछ अधिक ताप फैलकर नष्ट हो

जाता है। पर यदि देह-ताप बनाये रखनेकी जरूरत होती है तो रक्तचालक नाड़ी त्वचामें रक्त ले जानेवाली धमनी सिकोड़ देती है। इससे त्वचाकी सतह पर कम रक्त आता है और वह ठंडा भी कम होता है।

दिमाग़, हृदय और फेफड़ोंमें रक्तवहन करनेवाली धमनियों पर इस नाडीका नियत्रण नहीं है। इस नाडीसे इन अंगोंको कोई सरोकार नहीं इसलिये यदि देहमें रक्तचाप बढ़ जाता है तो वह दिमागमें चढता है। जिससे सरमें दर्द होता है पर यदि अन्य अंगोंकी धमनियोंके ढीली पड़नेसे उन अंगोंमें जादा रक्त आता है तो दिमागको कम रक्त मिलता है।

१२६५. चक्षु और दृष्टि

आदमी और घोड़ेकी आँखकी साधारण रचना जैसी है वैसी ही गायकी भी है। चक्षुकोटर की अस्थिमयी दरी (खात) में आँखें जडी हैं। चक्षु गोलक (आँखका
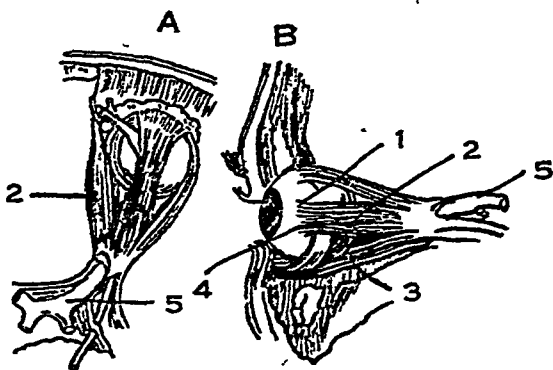
चित्र १५१. A-B—अक्षिगोलककी पेशियाँ।
1-अक्षिगोलक. 2-ऊर्ध्व वक्र दर्शनी, 3-अधोदर्शनी, 4-पार्श्व दर्शनी, 5-चाक्षुपी नाड़ी।

कोआ) प्रकाशचेता है और इस खातमें झूलता है। यह खात कोएकी रक्षा आगेकी ओर छोड़ सब तरफसे करता है। आगेकी ओर पलकें इसकी हिफाजत करती हैं। पलकें पीछेकी ओर चाक्षुपी नाडी (optic nerves) से जुड़ी हैं। कोए और खातकी दिवालको धारीदार पेशियां जोड़ती हैं। इनमेंसे चार पेशियां सीधी हैं जिन्हें

दर्शनी पेशी (recti muscles) कहते हैं। वक्र ऊर्ध्व दर्शनी और वक्र अधो दर्शनी (superior and inferior oblique muscles) नामकी दो तिरछी पेशियाँ हैं। इन ६ पेशियोंको सहायतासे आँखें जिधर चाहो उधर घुमायी जा सकती हैं।

कोए या गोलक पर तीन वृतियाँ हैं। बाहरी वृति स्वच्छमडल (cornea) है। यह आँखमें आगेकी ओर है। यही वृति आगे वढकर शुक्लमंडल (sclerotic coat) कहाती है। यह चारों तरफ आँखके कोटरसे लगी रहती
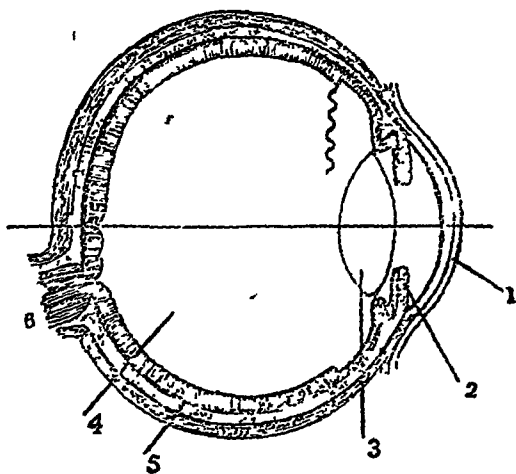
चित्र १५२　अक्षिगोलक।
1-स्वच्छमडल, 2-तारामडल, 3-ताल या मणि, 4-मेदोजल, 5-दृष्टिमंडल, 6-चाक्षुषी नाडो।

है। बिचली वृतिके तीन नाम हैं (क) कृष्णमंडल (choroid coat) शुक्लमडलसे भीतरकी ओर चिपका हुआ है। स्वच्छमडलके पास यह उससे अलग होकर (ख) संधानमंडल (ciliary body) बन जाता है। सधान मंडलकी रचना केश जैसे सूत्रोंसे होती है और यह स्वच्छमडलके ठीक पीछे गोल पर्देकी तरह हो जाता है, तथा (ग) तारामंडल (iris) कहा जाता है। यह ताल (मणि-lens) के आगे होता है।

यह विचली वृत्ति वाहिनियोंकी (vascular) बनी रंगकी वृत्ति है। इसका अस्तर काला है। तारामंडलमें एक छेद है जिसे **पुतली या कनीनका** (pupil) कहते हैं। आखरी सबसे भीतरी वृतिको **दृष्टिमंडल** (retina-दृष्टि विनान) कहते हैं।

ऊपरकी स्वच्छमडल ओर शुक्लमडलकी वृति दृढ, घने सौत्रिक तन्तुओं और लचकदार तन्तुओंकी होती है। यही आँखोंके लिये सफेद और कठिन आवरण होता है। इस वृतिसे अनेक पेशियाँ लगी रहती हैं जो गोलक को चलाती हैं। आगेकी ओर यह वृति सफेद नहीं रहती, पारदर्शी हो जाती है। इससे काले रंगवाली विचली वृति इसमें होकर दिखायी देती है। इस पारदर्शी अशको स्वच्छमटल कहते हैं। कृष्णमंडल और तारामडलके बीच इस मिलसिलेमें केशों जैसी कई तहें होती हैं। इन्हें **संधान प्रवर्धन** (ciliary process) कहते हैं। तहें भी एक तरहके रगमे मढ़ी होती हैं।

तारामटल कैमरेके डायफ्रामकी जगह है और डायफ्रामके छेद को जगह पुतली है। पुतलीका छेद घट बढ मकता है। इसका नियमन तारामडलकी पेशियाँ करती हैं। छाँहमें पुतली वढ जाती है। इससे वढे छेदकी राह आँखोंमें अधिक प्रकाश जाता है। खुली धूपमें पुतलीका छेद सिकुड़कर सूईकी नोकसा हो जाता है। इससे फालतू रोशनी उसमें नहीं जा सकती। गायका स्वच्छमटल अन्डाकार होता है और पुतली कुछ कुछ अन्डाकार होती है। उसका बढ़ा छोर भीतरकी ओर रहता है। कृष्णमटलका रग वादामी-मायल-कत्थई या भूरा-नीला होता है। वहुत काला या चितकवरा भी होता है जिसमें सफेद चित्तियाँ होती हैं।

वाहर से देखने पर हमें दिखाई देगा कि, पलकें आँखोंकी रक्षा करती हैं। जोड़नवाले दृढ सौत्रिक तन्तुओंसे इनकी रचना हुई है। इसमें पतली और सुकमार झिल्लियोंका अस्तर लगा है जिसे अगरेजीमें **कंजंक्टिवा** कहते हैं। इनके छोर पर रोएँ होते हैं जिन्हें वरौनी (पक्ष्म) कहते हैं। इन रोंओंकी जडमें ग्रन्थियां होती हैं। इन ग्रन्थियोंके प्रदाहका नाम **गुहेरी** (अंजन नामका stye) है।

कोआ कोटरमें रहता है। इसके नीचे चर्वीकी गद्दी होती है। वीमारीमें यह चर्वी गल जा सकती है इसीसे आँखें धसी सी मालूम होती हैं।

आँखोंको सदा आर्द्र (गीली) रहना चाहिये। इसके लिये प्रकृतिने **अश्रु-ग्रन्थियोंका** (lacrimal glands) विधान किया है। यह ग्रन्थियां आँखोंके ऊपरी

कोनेमें बाहरकी ओर रहती हैं। इस ग्रन्थिके जलसे आँखें तर रहती हैं। अतिरिक्त जल अश्रुप्रणाली होकर बह जाता है। यह प्रणाली आँखके कोनेमें नाकके पास होती है। यह प्रणाली अतिरिक्त जल नाकमें ले जाती है। अश्रुप्रणाली ही इस ग्रन्थिकी मुख्य नली है जिससे उसका जल नाकमें खलास होता है। चित्तमें आकुलता या क्षोभ होनेसे यदि अधिक आँसू आते हैं, आँखे भर आती हैं और फिर बूँदें ढुलक कर गाल पर बहने लगती हैं।

स्वच्छमडल आँखका उभारदार पारदर्शी और प्रायः पूरी तरह गोल अंश है। स्वच्छमडल और कृष्णमंडलके बीचकी जगह पानीकी तरह पतले तरल **तेजोजल** (aqueous humour) से भरी रहती है। कृष्णमडलके
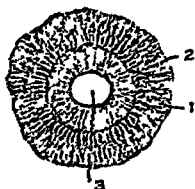
चित्र १५३.
तारामडल।
1-सधान प्रवर्धन,
2-तारामडल
3-पुतली।
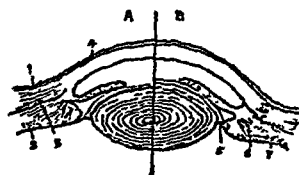
चित्र १५४ केन्द्रीकरणमें तालमें परिवर्त्तन।
A-दूरकी वस्तुके लिये व्यवस्थित,
B-पासकी वस्तुके लिये व्यवस्थित।
1-कजक्टिभा (श्लैष्मिक कला). 2-कृष्ण-मंडल, 3-शुक्लमंडल, 4-स्वच्छमंडल, 5-अलगनीकी बन्धनियाँ, 6-संधान पेशियाँ, 7-सधान प्रवर्धन।

पीछे मणि या **ताल** होती है। यह काँचके तालकी तरह पारदर्शी है जो जेली (jelly) की तरहके पदार्थकी बनी होती है। प्याजकी तहोंकी तरह इसकी तहें होती हैं। मणि सधानमडलमें बंधनियोंसे लटकी रहती है। मणिके पीछे कोएका बडा खात **मेदोजल** से (vitreous humour) भरा रहता है। मणिके बाद पीछेकी तरफ दृष्टिमंडल होता है। यह आँखका बहुत चैतन्य स्थल है। बहुत कुछ चाक्षुषीनाड़ी-छोरोंका ही बना यह मटल होता है।

देखनेके समय प्रकाश रश्मि आँख पर पड़ती है। वह स्वच्छमंडल और तेजोजल होकर मणिमें पुतलीके छेद होकर घुसती है। आकृति साफ मालूम हो इसलिये पुतली अगल बगलकी किरणोंको छाँट देती है। जितना प्रकाश चाहिये उसीके अनुसार छेदनियंत्रण होता है। तब वस्तुसे आया प्रकाश ताल होकर दृष्टिमडल पर पड़ता है। मणि उभय उन्नतोदर (bi-convex) है। इससे दृष्टिमंडल पर पड़ी छाया उल्टी होती है पर इससे उस वस्तुको यथारुप देखनेमें कोई कठिनाई नहीं होती। क्योंकि असली देखना तो दिमागका काम है। वह उल्टी दृष्टि-छापको सही कर लेता है।

सभी साधारण तालोंकी तरह मणिभी वस्तुकी किरणोंको केन्द्रित कर इसकी छाया डालती है। मणिके पीछे छाप कहाँ पड़ेगी यह वस्तुकी दूरी और मणिकी वक्रता पर निर्भर है। पर आँखमें छाप पड़नेकी जगह स्थिर है। छाप दृष्टिमडल पर पड़ेगी ही। इस उद्देश्यको पूरा करनेके लिये मणिके साथ जुड़ी वंधनियाँ उसकी वक्रतामें फेर बदल करती हैं। दूरकी वस्तु देखनेके लिये मणि चिपटी हो जाती है और पासकी वस्तुके लिये और भी उन्नतोदर।

दूरीके हिसावसे वक्रता ठीक करनेकी मणिकी शक्तिको केन्द्रिकरण शक्ति (accommodation) कहते हैं। मणि रवरकी तरह लचकीला है। यदि दवाकर इसे चपटा कर दिया जाय तो दवाव हटते ही वह फिर जैसेका तैसा हो जायगा। मणि एक पारदर्शी-खोलीमें रहता है। यह खोली झिल्लीकी होती है और सधान प्रवर्धनकी अलगनी वधनियोंमें लगी रहती है। इससे मणि पर दवाव रहता है। इसलिये दवाव हटने पर जितना उन्नतोदर वह हो इससे कमही वह रहती है। संधान पेशियोंके संकोचसे वंधनियाँ ढीली पड़ती हैं। इससे अपने लचकीलेपनके कारण मणि और उन्नतोदर हो जाती है। जव हम पासकी वस्तु देखते हैं तव ऐसा होता है।

आँखसे ५ या ६ इचसे कम दूरी पर की वस्तुको देखना कठिन है। क्योंकि, दृष्टिमडल पर छाप पड़नेके लिये मणिको जितना उन्नतोदर होना चाहिये नहीं हो सकती। अदूर-दृष्टि पुरुष दूरकी वस्तु साफ नहीं देख सकते क्योंकि, जितना चाहिये उतना मणिमें चपटापन नहीं होता। या यों कहें कि, छाया दृष्टिमडल से आगे निकल जाना चाहती है। दृष्टिमंडल पर छाप पड़े इसलिये मणिको और चपटा होना चाहिये। आँख पर नतोदर चस्मा लगानेसे यह काम हो जाता

है। उसी तरह बूढ़े लोग जो दूर-दृष्टि हो जाते हैं वह पासकी वस्तु साफ नहीं देख सकते। उनका यह दोष मणिमें वक्रता बढानेसे दूर हो जाता है। इसके लिये उन्नतोदर चश्मा पहनना होता है।

बाहरी वस्तु देखनेका गुण पशुओंमें कैसा है यह अच्छी तरह हम नहीं जानते। क्योंकि इस बारेमें उनके साथ बातचीत करना, उसके भेदोंको समझाना या तुलना बनाना असंभव है। ऐसा मालूम होता है कि, बाज और गीध जैसी चिड़ियोंकी दृष्टि बहुत तीव्र होती है। इसके बाद मांसभुक-शिकारी पशुओंकी दृष्टि तीव्र होती है। शाकभुकोंमें दृष्टिकी तीव्रता सबसे कम होती है। ये सब अपनी सुनने और सूँघनेकी शक्ति ही से अधिक काम लेते हैं।

कुछ पशुओंकी आँखें सिरके अगल बगल होती हैं। ये अपने सामनेकी वस्तु सीधे तौर पर एक साथ दोनों आँखोंसे नहीं देख सकते। एक आँख वस्तु पर केन्द्रित की जाती है और दूसरी आँख दूसराही दृश्य देखती है। इसे एक चक्षु दृष्टि कहते हैं। पर जब आदमीकी तरह आँखें सरमें आगेकी ओर होती हैं तब दोनों आँखें कुछ कुछ भिन्न दृश्य देखती हैं। पर दोनों दृष्टियाँ एक दूसरेको काटती हैं। इसे द्वि-चक्ष दृष्टि कहते हैं। आगेकी ओर आँखें होने से वस्तुकी दूरीका भान हो जाता है। गाय और घोड़ेको शायद अवस्थानुसार दोनों तरहकी दृष्टियाँ काममें लानेकी शक्ति है। जब ऐसे पशुका ध्यान आगेकी वस्तु पर जाता है तब दोनों आँखें जरा भीतरकी ओर तिरछी हो जाती हैं, दोनों कान खड़े हो जाते हैं और वह दोनों आँखोंसे देखता है। घोड़े और कुत्ते खासकर कान खड़े करते हैं। पर जब वह बगलकी या पीछेकी वस्तु देखता है तो वह एक आँखसे ही काम लेता है। सर जरा सा वस्तुकी ओर घूम जाता है, उधरका कान खड़ा होता है और वह पशु केवल एक चक्षु दृष्टिसे ही काम लेता है।

पशुओंकी यह विचित्रता है कि, उनकी दृष्टि भले ही विकसित हो फिरभी आकस्मिक मामलोंमें वह केवल उनपर भरोसा नहीं करता। पशुपर केवल देखनेका ही असर नहीं होता। वह उसकी जाँच छू और सूँघ कर भी करता है। नाकसे छूने और सूँघनेसे किसी नयी हानिहीन वस्तुसे पशुका डर मिट सकता है।

१२९६. जीभ

जीभ पेशीमय या तन्तुमय इन्द्रिय है। यह रक्तवाहिनियों और नाड़ियोंसे भरी है। इस पर विशेष काम करनेवाली श्लैष्मिककला मढी रहती है। इसमें छोर,

चिचला भाग और मूल होते हैं। घोड़ेकी जीभका छोर नुकीला नहीं होता (चित्र-१५५) पर गायकी जीभका छोर छोटा और गावदुम होता है। घोड़ेकी अपेक्षा गायकी जीभ कम चलती है। गायकी जीभ पर कुब्वकी तरह उभार होता है। यह ओठके पाससे बीचोबीच एक परिखाद्वारा दो भागोंमें बटी है। कुब्व निगलनेमें बहुत मदत करता है। चबानेवाले दाँतसे रोमन्थन करनेके लिये यह कठसे पागुरका गोला मूँहमें ले आता है। भेड़-बकरीकी जीभका कुब्व छोटा होता है। कन्ठिकास्थियां कन्ठमें जीभकी जड धारण करती हैं।
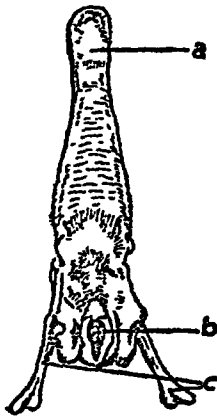
चित्र १५५ घोड़ेकी जीभ। a-छोर, b-कठका छेद, c-कठिकास्थिकी दोनों शाखायें।

जीभकी ऊपरी सतह पर छोटे उभार या दाने स्वादांकुर (papillae) होते हैं। ये तीन तरहके होते हैं। एक सौत्रिक (सूत्राकार), दूसरे छत्रिकाकार और तीसरे खातवेष्ठित या द्वीपाकार। **सौत्रिक** महीन सूतकी तरह होते हैं और पूरी जीभ पर फैले हैं। ये स्पर्शज्ञान वाहिनी है। गायमें ये नुकीली और खुरखुरी होती हैं। मासभुकोंमें ये कँटीली हो जाती हैं। **छत्रिकांकुर** सौत्रिकसे बड़े होते हैं। यह मुख्यरुपसे जीभके छोर और बगलमें होते हैं। ये स्वादज्ञान-वाहक हैं। इनका आकार छत्रककी तरह होता है। गायमें **खातवेष्ठित** २० से ३० के भीतर हैं। मध्य रेखाको दोनों ओर बहुत पीछेकी ओर तक ये मिलती हैं। खातवेष्ठित प्रत्येक स्वादांकुर खातमें होते हैं।

चबानेके समय जीभ आहारका नियन्त्रण करती है। यह सुकमार ज्ञान इन्द्रिय है। इसमें स्पर्श और स्वाद दोनों ज्ञान होते हैं। यह स्वर पैदा करनेमें भी कुछ हाथ बटाती है। चारा पकड़नेमें गायके लिये यह बहुत जरूरी है। इसके बाद वह निचले कर्तनक दाँतसे कौर काटती है।

गाय अपनी नाक साफ करनेका काम जीभसे लेती है। प्रसाधनके काममें भी यह आती है। जैसे देहके बहुतसे भागको चाटना। नवजात वत्सके शरीरसे कफ जैसा पदार्थ भी जीभसे गाय साफ करती है। गाय अपनी जीभसे देह साफ करती और सुखाती है। पशुओंकी आदत अपने घावोंको चाटनेकी होती है।

चाटनेसे आराम नहीं होता। खाली मैल और पीव साफ होती हैं। कभी कभी पालतू जानवरोंमें चाटनेसे घाव भरनेमें रुकावट होती है। इससे जलन बनी रहती है।

१२१७. दाँत

दाँत कड़े, सफेद या ईषत् पिंगल हैं। यह ऊपर और नीचेके जवड़ोंके उदूखलोंमें जमे रहते हैं। यह आहारको पकड उसे काटते और चवाते हैं। मासभुकोंमें ये आक्रमणात्मक और रक्षात्मक हथियारका भी काम करते हैं। पर गाय शायद ही इनसे यह काम लेती है। यद्यपि ऐसी भी गायें हैं जो अपने सेवकोंको काटनेकी कोशिश करतीं और कभी कभी काट भी लेती हैं। गायोंके दाँतके दो मुख्य भेद हैं। एक कर्तनक और दूसरा चर्वणक एक तीसरा वर्ग रदनक, गायमें मूल अवस्थामें होता है। यद्यपि यह कर्तनककी ही तरह होता है फिर भी उससे जरा भिन्न।

गायके ऊपरी जवड़ेमें कर्तनक नहीं होते। इसके वदले एक गद्दी होती है।

चर्वणक मुँहमें बहुत पीछेकी ओर होते हैं। चर्वणक और कर्तनकके वीच जवडेमें कोई दाँत नहीं होता, जगह खाली रहती है।

प्रत्येक दाँतको एक शीर्ष होता है और वह दन्तवल्क (enamel) से ढका रहता है। मूल उस भागको कहते हैं जो उदूखलमें रहता है। उदूखलमें दाँतको कसनेवाला एक सीमेंट होता है। गायके, कर्तनकोंके सकुचित भागको ग्रीवा कहते हैं। शीर्ष और मूलकी सधि यही होती है। चर्वणकको ग्रीवा नहीं होती। दाँतके शीर्षका आवरण वल्कका होता है। दन्तपदार्थ या दन्तोपादानको अंग्रेजीमें **डेन्टिन** कहते हैं। यह भीतर से खोखला होता है जिसमें एक प्रकारकी मुलायम चीज भरी होती है। यह नाड़ी और रक्तवाहिनियोंका पिंड है। कोई कोई इसे दन्त मज्जा (tooth-pulp) भी कहते हैं।

दाँतोंसे पशुओंकी उमरका अंदाज लग सकता है। इसलिये इनका निरीक्षण परीक्षण जरूरी है। यह अन्दाज बहुत कुछ सही होते हुए भी शास्त्रशुद्ध नहीं है। क्योंकि, विभिन्न नस्लोंमें यह भिन्न भिन्न होता है और एक ही नस्लके पशुमें भी भिन्नता रहती है। पशुपालनके अनैसर्गिक उपाय, पौष्टिक चारा जवरदस्ती खिलाना, और प्रकारोंके चुनावका असर दाँत निकलने पर पड़ता है। इसलिये पहाड़ी प्रकारकी

गाय और सुपरिचित तथा अच्छी तरह पाली नस्लोंमें काफी भेद मिल सकता है।

बछड़ेको पहले दूधके दांत निकलते हैं। थोड़े दिनके बाद यह गिरने लगते हैं। साथ ही नये स्थायी "द्विज" दांत निकलते हैं। गायके दूधके दांत नीचेके हिसाबसे हैं :—

		कर्तनक	चर्वणक
ऊपरी जबड़ा	...	०	६
निचला जबड़ा	..	८	६

द्विज दांत नीचेके हिसाबसे हैं :—

		कर्तनक	चर्वणक
ऊपरी जबडा	...	०	१२
निचला जबडा	...	८	१२

ऊपरी जबड़ेमें दांत नहीं होते। उसमें कड़ी सौत्रिक तन्तुकी घनी गद्दी है। निचले कर्तनक इसीसे भिड़ कर काटते हैं।

कर्तनक दांत जबड़ेमें विरल (ढीलेतौर पर) जड़े होते हैं। इनका शीर्ष कुदालके आकारका होता है और गर्दन संकुचित। दूधके अस्थायी कर्तनक छोटे और चुरमुरे होते हैं। इन्हें और स्थायी द्विजोंको पहचाननेमें कठिनाई नहीं होती।
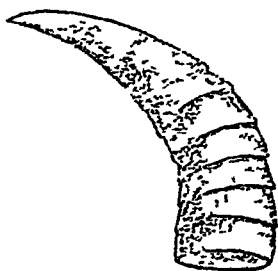
चित्र १५६.
सींगकी चूड़ीसे उमर मालूम होती है।

गायका चर्वणक क्रमसे आकारमें बड़ा रहता है। पहला बिल्कुल छोटा होता है। पहले तीनकी जितनी लम्बाई होती है वह पिछले तीनकी लम्बाईसे प्राय: आधी है।

दांत प्रायः निश्चित समय पर निकलते हैं। उमर कर्तनकसे मालूम की जाती है। इनके निकलनेका समय चर्वणकके निकलनेके समयसे अधिक महत्वका है।

सींगकी चूड़ियोंसे भी उमर मालूम की जा सकती है। तीसरे सालसे शुरू होकर हर साल एक नयी चूड़ी बढ़ती है। इस तरह चूड़ीकी संख्यामें दो जोड़नेसे

पशुकी उमर निकल आती है। पर कभी कभी चूड़ी स्पष्ट नहीं होती इससे उमर जाननेमें मदद नहीं मिलती।

१२९८. कर्तनक दाँत

जन्मके समय : मसूड़ेके नीचे ८ दूधके दाँत टटोले जा सकते हैं। ये सब पहले महीनेमें स्पष्ट निकल आते हैं। जबड़ेमें जगह कम होती है इससे यह सब एक जगह इकट्ठे रहते हैं।
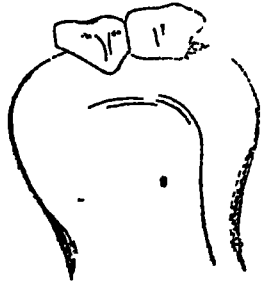
चित्र १५७. जन्मके समय दूधके कर्तनक।

एक वर्षकी उमरमें : दूधके दाँतके पहले यानी बीचके जोड़े बहुत छीजे मालूम होते हैं। बिचलेकी दोनों तरफके एक एक यानी दूसरे जोड़े भी छीजे रहते हैं। तीसरे और चौथे जोड़े बहुत कम छीजे रहते हैं।

१५ महीनेकी उमरमें : पहले और दूसरे जोड़े बिलकुल घिसे रहते हैं, तीसरा भी काफी घिसा रहता है। चौथा जोड़ा कुछ ही घिसा रहता है। अब इनके बीच कुछ जगह खाली हो जाती है और एक दूसरेसे हटा रहता है।

१८ महीनेकी उमरमें : आठवाँ दाँत बहुत दूर हट जाता है। क्योंकि जबड़ा अधिक चौड़ा हो गया है। चारों जोड़े छीज जाते हैं।

चित्र १५८. दूधके दाँत।

दो वर्षकी उमरमें : द्विज दाँतोंकी पहली जोड़ी निकलती है जो दूधके दाँतको ठेल कर बाहर कर देती है।

तीन वर्षकी उमरमें : द्विज दांतोंकी पहली और दूसरी जोड़ी निकल आती है और उनका घिसना भी शुरू हो जाता है। पर दूधके दांतोंकी तीसरी और चौथी जोड़ीकी जड़ें अभी तक रहती हैं।
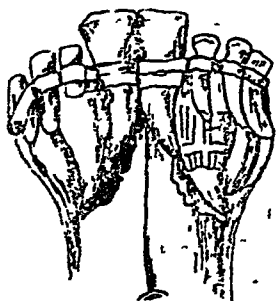
दो वर्ष। तीन वर्ष।

चित्र १५९. दूध और द्विज दांत।

चार वर्षकी उमरमें : इनकी जगह द्विज दांतोंकी तीसरी जोड़ी निकल आती है। पर दूधके दांतोंकी चौथी जोडीकी खूंटी अभी तक रहती है।

पाँच वर्षकी उमरमें : सभी द्विज दांत निकल आते हैं। पहली और दूसरी जोडी बहुत घिस जाती है। और तीसरी जोडी कुछ घिसती है। चौथी जोडीमें नया उठान (उत्थान) आता है।

चार वर्ष। पाँच वर्ष।

चित्र १६०. दूध और द्विज दांत।

इसके बाद घिसाईके परिमाण पर ही उमर आंकी जा सकती है।

सातवें वर्षमें दांतोंकी ऊपरी सतहके आधे तक घिस जाती है।

दसवें वर्षमें दाँतमें शीर्षका अधिक भाग घिस जाता है। केवल कुछ वल्क रह जाता है।

१४ से १६ वर्षमें सभी वल्क मिट जाता है, केवल कटोरीदार खूँटी रह जाती है।

१२९९. चर्वणक दाँत

गायको प्रत्येक जबड़ेमें ६, ६ के हिसाबसे कुल १२ दूधके चर्वणक दांत निकलते हैं। चर्वणकोंका आकार क्रमशः पहलेसे अंतिम तक बढ़ता है। मसूड़ेकी जितनी जगह अंतिम तीन दाँत घेरते हैं उनका आधा ही पहले तीन घेरते हैं। जिस तरह दूधके कर्तनककी जगह द्विज निकलते हैं उसी तरह दूधके चर्वणककी जगह द्विज चर्वणक। द्विज चर्वणक कुल चौवीस होते हैं। हर जबड़ेमें १२ और हर जबड़ेमें दोनों ओर छ छ।

१३००. नाक और गन्ध

गन्धका ज्ञान नाककी झिल्ली और नाड़ी केन्द्रोंमें होता है। गन्धयुक्त पदार्थोंके परमाणु हवामें उड़ते हैं, वह जब नाकमें पहुँचते हैं तो गन्धज्ञान होता है। कुछ ऐसे पदार्थ हैं जिनका प्रभाव किसी किसी पशु पर बहुत जल्दी होता है। मासभुक मास और खूनकी गन्धसे आकृष्ट होते हैं। और घास, हरियाली, अन्न और वनस्पतियाँ शाकभुकोंकी ज्ञान-इन्द्रियोंको जगाते हैं। शाकभुकोंको मांस और खूनकी गन्ध अरुचिकर है और इससे उन्हें बहुत डर और घबराहट हो सकती है। बैल शायद गन्धसे ही कसाईखानेको दूरसे जान लेते हैं और उधर जानेमें बहुत हिचकते हैं। कभी कभी तो वे पूरी तरह बेकाबू हो जाते हैं और तुड़ा कर भागते हैं। बहुतसे शाकभुक अपने शत्रु मासभुकको दूरसे ही ताड जाते हैं। यदि हवा अनुकूल हो तो हिरण, मरी या शिकार पर बैठे मांसभुकको दो मीलसे ताड़ लेते हैं।

अपने इस गन्धज्ञानसे ढोर जहरीली घास पहचान लेते हैं और अपना चारा पसन्द करते हैं। वे अपने रखवालेको देखे बिना उसकी गन्धसे ही उसे जान लेते हैं। अपने बछड़ेको भी देखे बिना गन्धसे पहचानते हैं। गरम होने पर मादाकी तरफ नर गन्धसे ही खिचता है। ऋतुकालमें मादासे तीव्र गन्ध-पदार्थ निकलते हैं जिससे उस जातिका नर उनकी ओर आकृष्ट होता है।

गायें अपने मरे बच्चोंकी खाल पहचानती हैं। उनकी खालके कुछ भागसे मढ़े ढाँचेसे उन्हे धोखा दिया जा सकता है। गन्धका मनुष्यकी अपेक्षा पशुओंके जीवनमें कहीं अधिक महत्वका काम है।

१३०१. प्रणाली-विहीन ग्रन्थियाँ

यकृत, वृक्क, आदि ग्रन्थियोंमें प्रणालियाँ होती हैं। ये अपना स्राव प्रणालियोंमें डालती हैं। पर एक प्रकारकी ग्रन्थियां और हैं जिन्हें न तो प्रणाली होती है और न वे अपना रस उसमें डालती हैं। इन्हें **प्रणाली-विहीन ग्रन्थि** कहते हैं। इनमें भी स्राव होता है। इनका स्राव रक्तश्रोतमें जाता है जिसका प्रभाव स्थानीय न होकर दूर अंगोंमें होता है। कुछ प्रणालीयुक्त ग्रन्थियाँ ऐसी भी हैं जो प्रणालियों द्वारा स्राव करनेके अतिरिक्त अतःस्राव भी करती हैं। अतःस्रावी ग्रन्थियोंको अन्त ग्रन्थि (endocrine organs) कहते हैं। किसीके व्यक्तित्वका नियमन ये ग्रन्थियां बहुत हद तक करती हैं। चुल्लिका (thyroid), बालचुल्लिका (thymus), अधिवृक्क (suprarenal), पोषणिका (pituitary), इक्षुकन्दिका (pineal) और प्रजनन ग्रन्थि (gonads) मुख्य अतःस्रावी ग्रन्थियां हैं।

ग्रन्थियासे स्राव होता है। हरमोन या प्रभावी नामके स्राव विशेष तरहके हैं। ऑरगेन. थेरापी नामकी एक चिकित्सा चली है। इसमें इन ग्रन्थियोंका निचोड़ दिया जाता है। अधिवृक्क-रस (एड्रिनेलिन) अधिवृक्कसे प्राप्त किया जाता है। चुल्लिकासे सूखा थायरॉयड, थायरॉयड एक्सट्रैक्ट और थायरोक्सिन प्राप्त किया जाता है। परा-थायरॉयड प्रोडक्ट परिचुल्लिकासे प्राप्त किया जाता है। पोषणिकासे पिच्यूटरी एक्सट्रैक्ट प्राप्त किया जाता है। डिम्बकोष और जननेन्द्रियोंका भी उपयोग होता है।

चुल्लिका ग्रन्थि : कण्ठके पास क्लोम या श्वासनलिकाकी दोनों तरफ इसके खन्ड गरदनकी लम्बाईमें होते हैं। इनमें एक लसदार पदार्थ होता है जिसमें आयडिन बहुत होता है।

यह स्फूर्तिदायक ग्रन्थि है। यह देहकी वृद्धि करती और आंख, त्वचा, केश, नख, दांत आदिके कुछ कोषोंकी क्रियामें सहायता देती है। पशुकी साधारण वृद्धि और विकाश इसीकी बदौलत है। यदि यह ग्रन्थि स्राव न करे तो देहकी साधारण वृद्धि दब जाती है। चुल्लिकाके स्रावमें विषघ्न (anti-toxic) पदार्थ भी हैं।

जीवाणुसे होनेवाली बीमारी यह स्राव रोकता है। यह सिद्ध हो चुका है कि, चुल्लिका ग्रन्थियाँ मस्तिष्ककी क्रिया, शरीरताप और श्वास क्रियाका नियमन करती हैं।

चुल्लिकाके स्रावकी कमीसे हुआ मनुष्योंका रोग आराम करने या यह कमी पूरी करनेके लिये तुरतके मारे पशुओंकी चुल्लिकासे बनाया पदार्थ या रस काममें लाया जाता है।

पोषणिका. पोषणिका तन्तुओंका एक पिन्ड है जिसका व्यास एक इंचके लगभग है। यह मस्तिष्कके आधारसे अधोभागमे जतुकास्थिके खातमें स्थित है। इसके दोनों खडसे हरमोन या उत्तेजक अतः स्राव पैदा होते हैं। अगले खडसे पैदा हुआ स्रावका स्त्रियोंके डिम्बाशयकी क्रियाओं पर गहरा प्रभाव होता है। गाभिन पशुके पेशावमें यह देखा जाता है। मनुष्यके गर्भ निर्णय परीक्षाका आधार यही है। पशुओंमें रज उत्तेजित करनेके लिये इसका प्रयोग होता है। पिछला खड सरल पेशियों पर एक उत्तेजक प्रभाव पैदा करता है। गर्भाशयकी अचेतनताके कारण कष्टकारी प्रसवमें गर्भाशय पर इसका प्रभाव डालनेके लिये इसका प्रयोग होता है।

अधिवृक्क: ये दो ग्रन्थियाँ हैं जो वृक्कके पास उसकी दोनों बगल होती हैं। इन प्रणाली-विहीन ग्रन्थियोंका स्राव रक्तस्रोतमे सीधा ही गिरता है। इसकी तौल एक से दो आउन्स तक होती है। यह लगभग १½ इच चौड़ी × ½ इंच मोटी है। एड्रिनलिन इससे निकाला जाता है। इसमें हृदयकी पेशी पुष्ट करने और धडकन बढ़ानेका गुण है। यह रक्त-वाहिनियोंका सकोच करता है जिससे रक्त चाप बढ जाता है। एड्रिनलिन साधारण तौर पर भेडकी ग्रन्थिसे निकाला जाता है। यह ग्रन्थि सवेदना-तन्त्रके लिये स्फूर्तिके भडारका काम करती है।

हृत्कन्दिका: पोषणिकाके पास एक छोटी खातमें यह रहती है। इसके स्रावसे यौवन प्राप्त होता है—जननेन्द्रियाँ पुष्ट होती हैं। स्वर बदलना, वाणीका विकाश होना, लज्जालुता, उत्तेजना आदि यौवनागमके चिह्न मनुष्यमें उदय होते हैं। यह ग्रन्थि अधेड और बुढापेकी उमरमें निश्चेष्ट रहती है।

प्रजनन ग्रन्थियाँ: पुरुषोंका वृषण (अडकोष) और स्त्रियोंका डिम्बकोष (अंतःफल) इन ग्रन्थियोंके अन्तर्गत हैं। इन ग्रन्थियोंसे क्रमशः पुं-बीज (sperm) और स्त्री-बीज (डिम्ब-ovum) ये बहिःस्राव होते हैं। इनका प्रयोजन प्रजोत्पत्ति है। इन बहिःस्रावके अतिरिक्त इनसे अन्तःस्राव भी होते हैं

जिनसे स्त्री-पुरुषोंकी दैहिक और मानसिक विशेषता आती है। यौवनागमके पहले डिम्बकोष या वृषण निकाल देनेसे स्त्री पुरुषोंमें नीचे लिखे परिवर्तन होते हैं :—

पुरुषोंमे ; जननेन्द्रियाँ बढ़ती नहीं हैं। स्वर बच्चोंसा बना रहता है। पेशियाँ कमजोर हो जाती हैं। दिमाग मंदा और उदासीन हो जाता है और चित्तमें ग्लानि हो जाती है। उनकी मर्दानगी मिट जाती है और जनानापन आ जाता है। बछड़ेमें पौरुष लक्षण जैसे धनुषाकार गर्दन, विशाल देह, चौड़ा ललाट, स्थूल सींग और गंभीर स्वर नहीं प्रगट होते। बैल सांढकी अपेक्षा गायसा मालूम होता है। सींग भी गायके सींगसे हो जाते हैं।

स्त्रियोंमें : मनुष्योंमें स्त्रीका डिम्बकोष निकाल देने पर श्रोणि नहीं बढ़ती, छाती नहीं उठती और पुरुषोंकी तरह मुँह पर दाढ़ी निकल आती है। स्वर कर्कश हो जाता है और दिमाग सुस्त। स्त्रीका स्त्रीत्व नष्ट हो जाता है और पुरुषता आ जाती है। गायका डिम्बकोष हटानेसे भी यही होगा। गाय उद्दंड हो जाती है। वह जन्मसे स्त्री और स्वभावसे पुरुष बन जाती है।

स्त्री पुरुषके लक्षणोंके विकाशमें अतःस्रावका मुख्य हाथ रहता है।

१३०२. देहकी उष्णता और तापमान

देहके तापमानके अनुसार ठढे खून और गरम खूनवाले पशुओंके ये दो भेद हैं। ठढे खूनवाले प्राणियोंमें बिना रीढवाले सरीसृप (reptiles), जलथलचारी (amphibians) और मछलियाँ हैं। उनका तापमान आसपासके तापमानके अनुसार कुछ सीमामें बदलता है।

गरम खूनवालोंमें स्तनपायी और पक्षी हैं। आसपासका तापमान घटे या बढे पर इनका तापमान एक रहता है। गरम खूनवालोंकी देहमें उष्णता पैदा होती है और फैलती रहती है। इस तरह तापमानका संतुलन होता है। पेशियोंकी क्रिया और जीवनी क्रियामें ऑक्सीजनका जलना उष्णताका मुख्य उद्गम है। फेफड़े और त्वचा शीतल करनेके साधन हैं। त्वचामें स्वेदतन्त्र शीतलता लाता है। पशु जब काम करता है तब ऑक्सीजन अधिक अधिक जलता है और उसे गर्मी मालूम होती है। त्वचा जब गरम हो जाती है तब अतिरिक्त ताप, परिचालन (conduction), विकीर्णन (radiation) और प्रस्वेदन (perspiration) के द्वारा बाहर कर दिया जाता है। यदि ठढे दिनोंमें भी गरम दिनोंके जितना रक्त

त्वचामें आवे तो बहुत अधिक ताप नष्ट होगा। पर ऐसा नहीं होने दिया जाता। ठढकसे रक्तवाहिनियाँ सिकुड़ती हैं। इसलिये त्वचामें कम रक्त आता है। इससे पसीना नहीं होता और उष्णता बनी रहती है। गरम दिनमें आसपासका तापमान अधिक रहता है इससे विकीर्णनसे शीतलता कम होती है। तब त्वचाकी रक्त वाहिनियाँ फैल जाती हैं, इससे त्वचामें अधिक रक्त आता है, जिससे पसीना अधिक निकलता है। यह भाफ बन उड़ता है जिससे तरावट होती है और देहका तापमान साधारण बना रहता है। फेफड़ेसे उल्टी साँसमें नमी आती है। इस तरह भी बहुतसी गरमी बाहर निकलती है। गरमी अधिक नमी बाहर निकालती है जिससे शरीरतन्त्र शीतल रहता है।

पशुओंका साधारण तापमान एक सीमामें जुदा जुदा है। गायका साधारण तापमान १०१·८ से १०२·४ डिग्री तक है। गायके तापमानकी औसत १०२ डिग्री फा० है और घोड़ेकी १००·५ डिग्री फा० है। दुधार गायका तापमान कुछ जादे है। जवानीमें तापमान अधिक और बुढापेमें कम होता है।

तापमान थरमामीटरकी सहायतासे देखा जाता है। पशुओंका तापमान लेनेके लिये सबसे अच्छी जगह गुदा है। गायकी जननेन्द्रियमें भी थरमामीटर लगाया जा सकता है। पर यह ध्यान रखना चाहिये कि, गुदासे जननेन्द्रियका तापमान आधा डिग्री जादे होता है।

ठढे खूनवाले पशु जैसे मेढ़क या साँपमें ताप नियंत्रण करनेका साधन नहीं है। इसलिये जाड़ोंमें इनका ताप गिर जाता है और गरमियोंमें बढ। जाड़ोंकी ठढ इन पशुओंको निश्चेष्ट कर देती है। वसन्तके आगमन पर इनमें जान आ जाती है और ये चेष्टावन्त हो जाते हैं।

ENGLISH PUBLICATIONS

By SATISH CHANDRA DAS GUPTA

No.	Title	Price
1.	The Cow in India Vol. I. & II.	16-0-0
2	Home and Village Doctor (Second Edition.)	10-0-0
3.	Khadi Manual Vol I & II	3-0-0
4.	Hand-Made Paper.	2-8-0
5	Cheap Remedies (as incorporated in Home & Village Doctor)	1-0-0
6	Chrome Tanning for Cottages.	0-12-0
7.	Dead Animals to Tanned Leather.	0-12-0
8.	Washing Soap and Fountain Pen Ink	0-4-0
9.	Bone-Meat Fertilizer	0-2-0

By KSHITISH CHANDRA DAS GUPTA

No.	Title	Price
10	The Romance of Scientific Bee-keeping	7-0-0
11	*Moumachhi Palan* (in Bengalee) (Second Edition—Revised and Enlarged)	0-4-0
12	Soy-bean (Second Edition, Revised)	0-4-0

By ARUN CHANDRA DAS GUPTA

No.	Title	Price
13	Non-Violence—The Invincible Power (Second Edition—Revised and Enlarged)	1-8-0
14	Rabindranath	0-8-0

TERMS

Book-sellers are given a discount of 15% Postage and freight etc extra A special discount of 20% is given on orders above the net value of Rs 100/- and free delivery per Goods Train to any part of India.

KHADI PRATISTHAN

15, COLLEGE SQ., CALCUTTA

भारतमें गाय

दूसरा खंड

छठा भाग

पशुओंकी औषधियाँ, निघन्टु और औषधिक्रिया-शास्त्र

छठे भागका विषय परिचय

वैद्य जिन औषधियोंसे काम लेते हैं निघण्टु (मेटेरिया मेडिका) में उनके नाम, प्राप्तिके साधन, कहाँ कहाँ मिलती हैं, उनके स्वरूप और रचनाका वर्णन होता है। उन्हीं दवाओंकी शरीर पर क्या क्रिया होती है यह औषधि-क्रिया-शास्त्र (फारमाकोलौजी) में वर्णन किया जाता है। आगेके पन्नोंमें कुछ मुख्य औषधियोंका जिक्र है। उनके लक्षण आदि बताये गये हैं। उनका उपयोग भी बताया गया है।

औषधि-निर्माण (फार्मेसी) भी एक सहयोगी विद्या है। इस पोथीमें दवा बनानेकी विभिन्न प्रक्रियाओंके लिये अलग अध्याय नहीं जोड़ा गया है।

बीमारीके वर्णनमें जहाँ उसकी दवा बतायी गयी है वहीं यदि उसके बनानेकी कोई विशेष प्रक्रिया है तो वह बता दी गयी है।

३६वें अध्यायमें दवाओंकी एक सूची दी गयी है और उनके उपयोग बताये गये हैं। रोगोंकी भी एक सूची दी गयी है जिनमें ये दवायें काममें आती हैं।

अध्याय ३५

पशुओंकी औषधियाँ

१३०३. Acid Arsenious (एसिड आर्सेनियस) संखिया

सफेद सखिया। आर्सेनिक ट्राइऑक्साइड। अर्सेनियस ऑकसाइड।

यह पदार्थ स्वादहीन, गन्धहीन और पानीमें एक सैकड़ा तक घुल सकनेवाला है।

संखिया बड़ा कड़ा विप है। यह परोपजीवीनाशक या एन्टीपैरेसाईट और कोथघ्न या एन्टीसेप्टीक है। गोदाममें रखनेके लिये कच्ची खाल (अधौड़ी) को शुद्ध करते हैं। उसके लिये संखिया उतनी ही तौलके सोडामें मिलायी जाती है। फिर उसे दूने खौलते पानीमें घोला जाता है। तौलके २५ गुना तक पानी या कच्ची खालके चलानका कानून जितना बतावे उतनेमें मिलाकर काममें लायी जाती है।

हल्की मात्रामें देनेपर सखिया दीपक (भूख बढ़ानेवाली) और पाचक है। सखियाकी सबसे मुख्य औषधिक्रिया रक्त बनाने वाली इन्द्रियों पर होती है। अस्थिमज्जाके श्वेतकणिका बनानेवाले पदार्थकी वृद्धि यह करती है। पर यदि रोगसे रक्त बदल जाता है तो सखिया श्वेतकणिकाओंकी असाधारण उत्पत्ति रोक कर लाल कणिकाओंको साधारण अनुपातमें ले आती है। इस तरह घातक पाडु (पर्नीसस एनिमियाँ) में यह लाल कणिकाओंकी सख्या बढाती और ल्यूकेमिआमें श्वेतकणिकाएँ कम करती है।

ओषधिमात्रामें इसका सेवन नाड़ीतन्त्रको सचेष्ट करता है। वृद्धिगत तरुण पशुओंकी दुर्बलतामें सखियासे हड्डी पुष्ट होती है। ऐसा माना जाता है कि पशुओंकी पोषणक्रियाके लिये सखिया अनुकूल होती है। 1218

त्वचा पर इसका गुणकारी प्रभाव होता है। बाल घना करती और त्वचाके नीचेका स्नेह या चर्बी बढ़ाती है।

रक्तालपता या ऐनीमियाके लिये संखिया बढ़िया दवाओंमें एक है। इसे कुचला (नक्स भौमिका या स्ट्रिकनीन) और लौहके साथ देना होता है। पहले थोड़ी मात्रामें देना चाहिये। फिर संखिया सहनेकी आदत हो जाने पर मात्रा बढानी चाहिये। बार बार संखिया देनेसे स्पृक्तताकी सीमा हो जाती है। ऐसी हालतमें पलकें सूज जाती हैं और उनमें खुजली होने लगती है। सड़ा या जहरबाद रोगमें संखिया थोडी मात्रामें खिलानेसे फायदा होता है। मात्रा ७ ग्रेन तक बढायी जा सकती है और प्रति दिन ऐसी दो मात्राएँ दे सकते हैं।

मात्रा (सयानोंमें पुष्टिके लिये):—३ से ५ ग्रेन।

विषप्रयोग : ढोरको विष देनेमें संखिया से बहुत काम लिया जाता है। यह स्वाद और गन्धहीन सफेद बुकनी होती है। इसलिये आसानीसे घास पर छिड़की जा सकती है या केलेमें डालकर या गुडमें मिला कर खिलायी जा सकती है। ३½ से ७ ड्रामसें बड़े आकारकी गाय मर जायगी।

विषप्रयोगके लक्षण : पेटमें जोरका दर्द, तेज साँस, कै और जोरकी प्यास होती हैं। थोड़ी देरके बाद दस्त शुरू होते हैं। दस्त इतने जाढे होते हैं कि शव-परीक्षामें पेट या अँतडी बिलकुल खाली मिलती है। दस्तके बाद शिथिलता या बेहोशी (कोलैप्स) और मृत्यु होती है।

काफी देर हो जाने पर आराम होना कठिन है। तुरतकी घटनामें लसीली चीजें पिलाना गुणकारी होता है क्योंकि यह आचूषण रोकता है। तीसी या इसफगोलकी लसी अधिक मात्रामें पिलायी जा सकती है। हाइड्रेटेड आयरन ऑक्साइड विष दूर करनेके लिये बड़ी मात्रामें दिया जा सकता है। यह कसीस या फेरस सल्फेट और कपडे धोनेका सोडा या सोडा कारबोनेट से प्रक्षेप (प्रेसीपिटेट) करके बनाया जाता है।

स्ट्रिकनीन और कपूर युक्त तेल (कैम्फर इन ऑयल) की सूई लगानेसे हृदय को बल मिल सकता है। इससे उसकी कमजोरी और निष्क्रियता मिटेगी।

१३०४. Acid Boric and Borax : बोरिक एसिड और सुहागा

बोरिक एसिडकी सफेद बुकनी होती है। यह छूनेमें चिकनी मालूम होती है। यह १६ गुने पानीमें घुल सकती है। इसका जरा जरा कटु स्वाद है। यह

४ गुने ग्लिसरीनमें घुल सकती है। ग्लिसरीनमे घुली बोरिक एसिडसे बोरोग्लिसरीन तैयार की जाती है। इसका लेप रोगीके श्लैष्मिक कला पर किया जाता है। जैसे खुरपका रोग अर्थात् मुँह-पाँवकी बीमारीमें।

बोरिक एसिट अनुत्तापक (नन-इरींटेन्ट) है। हल्का कौथघ्न (एन्टीसेप्टिक) है। पर इसे छूत नाशक (डिसइनफेक्टेन्ट) वर्गमें नहीं रक्खा जा सकता। कुछ जगह यह फफूँडा (मोल्ड) नहीं पड़ने देती। घाव आदि धोनेके लिये इसका २ से ४ प्रतिशतका घोल बहुत अच्छी चीज है। बोरिक एसिडमे स्टार्च या सेलखडी (टैंक पाउडर) की बुकनी मिला कर फाडे फुसी पर छिडकनेवाली बुकनी बनायी जाती है।

सुहागा (बोरेक्स, सोडियम बाइबोरेट): साधारण तौर पर रगहीन पारदर्शी रवे या कण (क्रिस्टल्स) के रूपमें यह पाया जाता है। यह १६ भाग पानीमें घुल जाता है। सुहागा बोरिक एसिडका सोडियम लवण (सोडियम साल्ट) है। इसकी क्रिया बोरिक एसिडसे कम है। यह बोरिक एसिडकी जगह काममें आ सकता है। दहकती आँच पर चढानेसे इसका पानी उड जाता है और हलका भुरभुरा पिड बन जाता है। इसकी बुकनी बनाकर मधु या ग्लिसरीनमें मिला कर श्लैष्मिककलाकी फुडियों पर लेप किया जा सकता है। इससे उस स्थानकी हिफाजत होती है।

२ से ५ प्रतिशत सुहागाका पानीमें तैयार घोल मुँहधोनेके काम आ सकता है।

१३०५. Acid Carbolic : कारबोलिक एसिड

फेनौल। फेनिक एसिड।

कारबोलिक एसिड सफेद स्फटिक (रवे) के रूपमें मिलती है। पर गरमियोंकी गरमीसे यह कुछ पिघल जाती है। इसकी गन्ध अपनी खास है और स्वाद मीठा तथा दाहक है। इसकी विशेषता यह है कि इसका घोल ५ सैकड़ाका हो सकता है। अधिक प्रतिशतमें यह घुल नहीं सकती। इसलिये कारबोलिक एसिडका पानीका घोल ५% का ही हो सकता है। यदि अधिक प्रतिशतकी जरूरत हो तो इसे तेलमें घोलना होता है जिससे कारबोलिक तेल तैयार होता है। यह तेल और ग्लिसरीनमें बखूबी घुल सकती है।

कारवोलिक एसिड वीजाणु नाशक है। इसकी वीजाणुनाशक्ता विभिन्न वीजाणुओं पर (अरगेनिज्म) विभिन्न होती है। एक सैकडाका घोल पूयकारी जीवाणु (पायोजेनिक बैक्टीरिया) मार सकता है। जीवाणु बीज (स्पोरस) बहुत प्रतिरोधी होते हैं। इसलिये ५% घोलसे २४ घंटेमें भी धनुषटकार (टिटेनस) और गिल्टी (एन्थ्रेक्स) के वीज नहीं मरते। इसका १% घोल अनेक जीवाणुओंकी वृद्धि रोकनेमें काफी समर्थ है। कारवोलिक एसिडका अपनापन पानी या तंतुओंके प्रोटीडकी अपेक्षा तेलसे अधिक है। इसलिये तेलमें घुली हुई कारवोलिक एसिट कोथघ्न कामोंके लिये बेकार है।

चमड़े पर लगनेसे चमड़ा सफेद और कमजोर हो जाता है। बहिस्त्वक् तुरत नष्ट हो जाता है। यदि कारबोलिक एसिड चमड़ेमें कहीं लग जाय तो अधिक हानि रोकनेके लिये उस जगहको बार बार तेलसे धोना चाहिये। तेलमें कारवोलिक एसिड घुल जाता है और जितना अंश चमड़ेमें घुसा नहीं है वह छूट जाता है। यदि ५% कारवोलिक-जलसे देर तक त्वचाका संपर्क रहे तो उससे उसे हानि पहुँचती है और इससे स्थानीय गैंगरीन भी हो सकती है। बहुतसे परोपजीवियोंके लिये कारवोलिक एसिट विष है जैसे कि पिस्सू, किलनी, कुकुरमच्छी आदि।

कारवोलिक एसिड जहाँ लगती है वहाँ सुन्न करती है इसलिये खुजली मिटाती है। इस कामके लिये एकसे दो सैकडा घोल या मालिश (तेल) का व्यवहार हो सकता है। धनुष्टकार पर इसकी भली क्रियाकी प्रशंसा हो चुकी है। जिन पशुओंको धनुष्टकार हो जाता है वह कारवोलिक एसिड खास तौरपर सह सकते हैं।

कुत्ते और बिल्ली खास तोरपर इसे सह नहीं सकते। इसलिये ये पशु जहाँ रखे जाते हों वहाँ इससे छूत मिटाने या संक्रमण निवारणका काम नहीं लेना चाहिये। यदि इन पशुओंमें यह जरासा भी लग जाय तो अनिष्ट हो जा सकता है।

२३०६. Acid Salicylic and Sodium Salicylate : सैलीसिलिक एसिड और सोडियम सैलिसिलेट

विन्टरग्रीनके तेलमें सैलिसिलिक एसिड स्वभावसे ही होती है और बनावटी भी तैयार होती है। सफेद छोटे और सूई जैसे स्फटिक या रवे के रूपमें यह मिलती है। इसके स्वादमें मिठास होती है जो अंतमें दाहक हो जाता है। यह पानीमें बहुत कम घुल सकती है। इसके घुलनेका परिमाण (घुलनशीलता) लगभग ५०० में १ है। इस तेजाबका नमक सोडियम सैलीसिलेट काममें अधिक आता है। यह

नमक पानीमें घुल सकता है। सैलीसिलिक तेजावसे नमक (सोडियम सैलीसिलेट) की मात्रा दूनी देनी चाहिये।

सैलीसिलिक एसिड : ५०० भागमें १ भाग सैलीसिलिक एसिडका घोल **कोथघ्न है। फफूँड़ा और किण्व** (ईस्ट) की वृद्धि यह रोक देता है। खाने पीनेकी चीजोंको सडनेसे बचानेके लिये इसका उपयोग बहुत होता है। इस कामके लिये यह हानिरहित सुरक्षक पदार्थ है।

सैलीसिलिक एसिड **परोपजीवियोंका नाशक** है। यह बहिस्त्वक् कोमल करता है और जलन विना ठेला या घट्टा साफ करता है। चर्म रोगोंमें चमडीको नीरोग करता है।

परोपजीवी-नाशक होनेके कारण इसे दाद जैसी बीमारी दूर करनेके काममें लाते हैं। ठेला, मस्सा (वार्टस्) आदि नरम करनेके लिये इसका व्यवहार होता है। छाजन (उकवत, एकजेमा) आदिमें इसे लगाते हैं। पसीना और लसीका जैसी चीजोंका बहना रोकती है। इसलिये प्रचुर मेदस्राव (सेबोरिया) में यह गुणकारी है।

मात्रा :— १ ड्रामसे १ आउन्स।

सोडियम सैलीसिलेट : सोडियम सैलीसिलेट पानीमें घुल सकता है। इसलिये खानेकी दवामें यही दिया जाता है। पेशियोंके वात और **संधिप्रदाह** (र्यूमेटिक अर्थ्राइटिस) के लिये यह खास दवा है। यह सूजन और दर्द मिटाता है। दिलकी गड़बड़ी (कारडिअक कम्प्लीकेशन) का डर इससे कम होता है। **वातग्रस्त संधि** पर इसके घोलकी सुई लगानेसे सुन्दर फल होता है। खानेकी दवामें अधिक मात्रामें सोडा बाइकार्बके साथ यह दिया जाता है।

पाचन-प्रणालीमें सधान या विघटन (फरमेन्टेशन) रोकनेके लिये यह दिया जा सकता है। पचनेमें स्वय यह गडबड़ी डालता है। परन्तु सधान रोकता है। सोडा बाइकार्बके साथ देनेसे पेटमें यह उतनी जलन पैदा नहीं कर सकता।

मात्रा :—२ ड्राम से २ आउन्स।

दाद या ठेलेमें सैलीसिलिक एसिड ५ से १० सैकड़ा तक मलहमके रुपमें या तेलमें दी जा सकती है।

१३०७. Acid Picric or Trinitrophenol
पिकरिक एसिड या ट्राइनाइट्रोफिनोल

पिकरिक पीले रंगका स्फटिकाकार पदार्थ है। यह गंधकी (सलफिउरिक) तेजाब या कारबोलिक तेजाब पर नाइट्रिक तेजाबकी क्रिया से प्राप्त किया जाता है। पानीमें यह एक सैकड़ा तक घुल सकता है। यह घोलके रूपमें लगानेके काममें आता है। जलने पर इसे लगाने से पीड़ा निवारण होती है और यह कोथघ्न होता है। एक प्रतिशत (सपृक्त) घोलमें पट्टी भिगाकर जली जगह पर रख हल्की पट्टी बाँधना चाहिये। घाव यदि गहरा हो या जादे जगह जल गयी हो तो इसे बहुत जादा लगानेसे आचूषण होता है। इससे विष फैल जानेका डर रहता है। छाजन और खोचमें इसकी पट्टी बाँधना अच्छा रहता है। यह चमड़ेको पीला कर देता हैं। कानूनके मोताबिक इसे पानीमें रखना होता है।

१३०८. Aloes : एलोज : मुसब्बर

मुसब्बर या घृतकुमारीके पत्तोंका रस सुखा कर यह तैयार किया जाता है। भूरा, अपारदर्शी और उत्कट गंधवाला यह पदार्थ है। पानीमें यह कुछ कुछ घुलता है।

पशुओंकी चिकित्सामें इससे रेचनका काम मुख्यरूपसे लिया जाता है। जरूरतसे जादे पेट भरा रहने पर यह अच्छा रेचक है। यह तीव्र अपकर्षणी गति (पेरिस्टेलसिस) पैदा करता हैं। मुसब्बर आँतोंके जमे मलको ही बाहर नहीं निकालता, कृमिघ्न औषधिके (एन्थलमिनटिक) व्यवहारके कारण मरी कृमियोंको भी बाहर करता हैं।

मुसब्बर १२ से ३६ घंटेमें दस्त लाता है। साधारण तौर पर १८ घंटेसे पहले दस्त नहीं आते। इसलिये मैगनीशियम सल्फेट जैसी शीघ्र रेचनकारी औषधियोंके योगमें इसे देना ठीक होता है। दस्त ३ से २४ घंटे तक आते रह सकते हैं। ढोर पर इसकी क्रिया होना उतना निश्चित नहीं है जितना घोड़ों पर। रोमन्थाशयमें अधिक सामग्री रहनेसे इसके काममें बाधा पड़ती हैं। इसलिये ढोरको इसके साथ कोई और सहायक रेचक देना और भी जरूरी हैं।

अपकर्षणी क्रिया मुसब्बरकी विशेषता है। किन्तु यह क्रिया कुछ तीव्र होती हैं। इस कारण मुसब्बर देने पर शूलके से लक्षण दिखायी पड़ सकते

हैं। जमे मल और क्रिमियोंको निकालनेके लिये अपकर्षणी क्रिया बहुत वांछनीय है।

मात्रा (ढोरके रेचनमें) :— १/२ आउन्स से २½ आउन्स।

१३०९. Alum : एलम : फिटकरी

बाजारू फिटकरी पोटाशियम एलम है। यह रंगहीन अठपहले स्फटिक या टुकड़ोंके रूपमें मिलती है। इसका स्वाद मीठा कसैला है। यह सात भाग पानीमें घुल सकती है।

त्वचा या श्लैष्मिककला पर इसका घोल लगानेसे गहरा संकोच होता है। यह तन्तुओंके प्रोटीडका प्रक्षेप करती है। द्रवोंको थक्का (कोआगुलेट) बनाती है और तन्तुओंका संकोच करती है। फिटकरी खूनका दृढ थक्का बनाती है। इसलिये खूनका बहना रोकनेमें यह अमूल्य है।

श्लैष्मिक कला पर इसका सकोचकारी प्रभाव है इसलिये आँख धाने, गर्भाशयकी दीवारका प्रदाह, कठ प्रदाह, सर्दी और मुखप्रदाह (निनावां) मे इसका २ से ५ प्रतिशत घोल व्यवहार किया जा सकता है। मुखप्रदाह के व्रण यदि गहरे और फले हों तो इसका सपृक्त घाल फाहे से लगाना फायदेका है। भीतरी रक्तस्राव रोकनेके लिये यह खिलायी कम जाती है।

१३१०. Ammon Chloride : एमन क्लोराइड · नसादर

नसादर सफेद रवादार वुकनी है। इसका स्वाद नमकीन और ठढा है। यह पानीमें तुरत घुलता है। रांजने (झालने) और रांजनेका द्रव बनानेके काममें इसका उपयोग बहुत है।

सांसकी नलीका स्राव यह बढाता और पतला करता है। इसलिये कास (ब्रोंकाइटिस) में कफ निकालनेके लिये इसे देते हैं। अधिक मात्रामें नसादर देनेसे जलोदरमें फायदा होता है।

मात्रा :—१ से ४ ड्राम।

१३११. Arjun : अर्जुन

संस्कृत—अर्जुन, तामिल—भेल्लैमारूदामारम, विहार—कहुआ।

अर्जुनका वृक्ष बड़ा होता है। यह हिमालय तलके प्रदेश, युक्तप्रान्त, छोटा नागपुर और दक्खिनमें होता है। यह ६० से ८० फूट तक ऊँचा होता है। इसकी छाल चमडा कमाने (टैनिंग) और दवाके काम आती है। हृदयके रोगों और उससे उत्पन्न प्रदाह, जलोदरमें पुराने समयसे ही इसका उपयोग हो रहा है।

यह वहुत जल्दी अपना प्रभाव दिखाता है। हृदय रोग और हौल दिलमें नाड़ी (धमनी) पर इसका प्रभाव सद्यः और स्थायी होता है।

हालकी खोजोंसे सिद्ध हुआ है कि, अर्जुन हृदयको चैतन्य और पुष्ट करता है। क्योंकि यह उसके सकोचका वल वढ़ाता है और इससे विकासकाल (हृदय प्रसारण काल—डायस्टोलिक) दीर्घ होता है। यह हृदयको अनियमित किये विना उसको धीमा करता है और हृदयके लिये विषका काम कभी नहीं करता। हृदयके रोगोंमें अगर पुष्टि और चेतना पैदा करनी हो तो यह अमूल्य पदार्थ है।

स्थानविशेषके प्रदाह पर इसके सुन्दर फल या असरका कारण रक्त चाप है। प्रयोगो से मालूम हुआ है कि, यह धमनियोंका संकोच करता और रक्तवाहिनियोंकी दीवाल होकर रक्त-कणिकाओंकी राह बढाता है। इसलिये हृदयके एक स्थानीय प्रदाहमें इसका अद्भुत फल होता है। यह दवा पेशाव उतारनेमें भी वहुत असरदार है।

मात्रा :—छाल ½ से १ आउन्स।

मंडके साथ इसकी वुकनी देनी चाहिये।

१३१२. Bismuth Carbonate : विसमथ कारवोनेट

विसमथ कारवोनेट गन्ध और स्वादहीन सफेद वुकनी है। यह घुल नहीं सकती। स्थानविशेषकी क्रियाके लिये यह या दूसरे विसमथ लवण दिये जाते हैं। खिलानेसे यह पेट और आँतकी श्लैष्मिक कला पर चिपक जाता है जिससे उस पर हिफाजत करनेवाला आवरण चढ़ जाता है। यह वहाँ जलन नहीं होने देता। इसलिये वहाँके व्रण या क्षत (घाव) को आराम होनेका मौका मिलता है। पेट या आँतकी श्लैष्मिक कला पर इसके चिपकनेसे वहांके स्रावमें रुकावट होती है। अपकर्षिणी (पेरिस्टैलसिस—कृमिगति) कम हो जाती है। इस तरह यह अतिसार

(पतला दस्त) रोकता है। चिपकने पर बिसमथका रंग काला हो जाता है इसलिये बिसमथ खिलाने पर मलका रंग काला होता है।

बाहरी उपचारमें यह घाव, जली जगह और चर्मरोगीके चमड़े पर छिड़का जाता है। यह स्राव सुखाता और घावको (क्षत) ढक उसकी हिफाजत करता तथा उसे काफी भरता भी है। अन्त्रव्रण या पेटके भीतरके घावके भरनेमें यह और असरदार है। खिलानेसे यह मिचली, वमन और पाकाशय-प्रदाह (गेस्ट्राइटिस) की जलन मिटाता है। अतिसारमें अंतड़ीका प्रदाह यह शान्त करता है और उसकी बहुमूल्य दवा है। यह पाचन तन्त्रके अनेक रोगों (जैसे सफेद दस्त, खूनी दस्त, पाकाशय व्रण, पाकाशय-प्रदाह आदि) के लिये विशेषकर लाभकारी है।

१३१३. Bone-Meal : Bone-Ash : हड्डीका चूर्ण : हड्डीकी राख

हड्डीको भफाकर चूर्ण करने पर हड्डीका चूरा बनता है। इसमें कैलशियम फॉस्फटके सिवा कुछ प्रोटीन होता है। हड्डीको भाफमें कीटाणु-रहित या शुद्ध करनेके बाद $\frac{1}{40}$ इंचकी चलनीमें छाना जाता है।

पशुओंको दिये जानेवाले चारेमें अगर **चूना** (कैलशियम) और **फॉस्फोरस** कम हो तो इससे पूर पड़ती है। बछड़ओंको यह थोड़ासा रोज देना चाहिये। सयानोंके चारेको सुधारनेके लिये यह दिया जा सकता है। धानके इलाकेमें इसका देना जरूरी है। सुखडी या रिकेट रोगमें यह लाभकारी है। चूरेकी जगह हड्डीकी राख काममें लायी जा सकती है।

मात्रा :— नित्य २ से ४ आउन्स।

१३१४. Calcium Carbonate : कैलशियम कारबोनेट : खड़िया

पोषणमें कैलशियम महत्वकी वस्तु है। हड्डी चूनेकी बनी होती है। इसमें यह कैलशियम फॉस्फेटके रूपमें होता है। इसलिये चारेमें चूनेकी कमीका बुरा असर हड्डीकी रचना पर पड़ता है। **पेशी, नाड़ी और ग्रन्थियोंकी** सुव्यवस्थाके लिये भी चूना जरूरी है। चूना **खूनको गाढ़ा** करता है। खूनमें उचित मात्रा और अनुपातमें चूना रहना जरूरी है। इसीलिये आहारमें भी। हड्डीमें अस्थिपदार्थ (उपादान) जमते हैं। हड्डीकी बाढ़ अच्छी होनेके लिये अनेक उपकरण चाहिये। **सुखंडी और मृद्वस्थिमें** कैलशियमकी कमी भी एक मुख्य कारण हो सकता है।

यद्यपि फॉस्फोरसकी कमी भी उतनाही महत्वपूर्ण है। इसलिये इनकी कमी कैलशियमसे पूरी की जाती है। सुखंडी रोगमें कैलशियम कैलशियम कारवोनेटके रूपमें भी दिया जा सकता है। कैलशियम कारवोनेट अम्लघ्न (एन्टेसिड) है। इसलिये पाकाशय-प्रदाहमें अधिक अम्लता रोकनेके लिये काममें लाया जा सकता है। खड़िया (खड़ी) और कैलशियम कारवोनेट रसायन शास्त्रके अनुसार एकही वस्तु हैं। खड़िया ढोरको खिलायी जा सकती है। चूनेके पत्थर (लाइम स्टोन) का चूर्ण भी वही काम करेगा।

मात्रा :— १ से २ आउन्स।

१३१५. Calcium Chloride · कैलशियम क्लोराइड

यह सफेद टुकड़ोंके रूपमें मिलता है। इसका स्वाद तीखा नमकीन होता है। यह बहुत गलनेवाली चीज है। यदि कुछ देर खुला रहे तो टुकड़ा हवाकी नमीसे गल जाता है। यह बहुत घुलनशील होता है।

कैलशियम क्लोराइडमें देहके भीतर और बाहर दोनों जगहोंके खूनको थक्का करनेका गुण है। यह काम दवा खिलानेसे होता है। कैलशियम ग्लूकोनेटसे जलन तो नहीं होती पर फायदा वही होता है। इसलिये यही उसकी जगह काममें जाद आता है।

मात्रा :— $\frac{3}{4}$ से $1\frac{1}{2}$ ड्राम।

१३१६. Calcium Gluconate : कैलशियम ग्लूकोनेट

कैलशियममें खून जमानेका गुण है। इसलिये खून बहना रोकनेके लिये इसका व्यवहार होता है। भीतरी रक्तस्राव और चोट या क्षतसे रक्तस्राव दोनों रोकनेमें कैलशियम काममें आता है। दोनों तरहके रक्त स्राव रोकनेके लिये कैलशियम ग्लूकोनेट खिलाया जा सकता है या शिरामें इसकी सूई लगायी जा सकती है।

भीतरी रक्तस्राव रोकनेके लिये ढोरको कैलशियम ग्लूकोनेट खिलानेकी मात्रा $\frac{1}{4}$ से १ आउन्स है। भीतरी रक्तस्राव और हेमोफिलियामें यह देना चाहिये। घावसे अधिक रक्त निकालना रोकनेके लिये उस जगह त्वचाके नीचे या पेशियोंमें इसकी सूई लगानी चाहिये। शिरा या पेशियोंकी सूईमें ५ से १९ प्रतिशत घोल काममें लाना

चाहिये। शिरामें ५ से १० सी० सी० तक डालना चाहिये सो भी धीरे धीरे। शिरामें न डालना ज्यादे अच्छा है।

कैलशियमकी कमीसे दुधार गायोंको दुग्धज्वर या प्रसूति-पक्षाघात (Parturient paresis) हो जाता है। त्वचामें कैलशियमकी सूई से बहुत अच्छा फल मिलता है। श्री ग्रेगका बताया गुणकारी मिश्रण नीचे लिखा है :—

कैलशियम ग्लूकोनेट	...	२ आउन्स
बोरिक एसिड	...	३ ड्राम
जल	...	१४ आउन्स

पूरी तरह घोल बनानेके लिये सबको साथ उबालना चाहिये। फिर ठंडा होने पर धीरे धीरे चमड़ेमें सूई लगानी चाहिये।

१३१७. Calomel : कैलोमेल : मरक्यूरस क्लोराइड

रसकपूर। सबक्लोराइड ऑफ मरकरी।

कैलोमेल गंधहीन सफेद बुकनी है। इसका स्वाद गहरा धातवीय है। यह पानीमें नहीं घुलता। यह पारे से बना और हल्का है। देहके हर भागमें इसका आचूषण हो सकता है। इसलिये इसकी बुकनी खायी जा सकती है या सौफ्ट पैराफिनमें मिलाकर इसके मलहमसे मालिश किया जा सकता है।

पारा शक्तिशाली कोथघ्न है। तंतुओंके प्रोटीडसे यह अल्बुमिनोयट बनाता है। कुछ हद तक कैलोमेलमें यह सब गुण है। दवाकी मात्रामें कैलोमेल देनेसे यह जुलाबका काम करता है। इसके सेवनसे दस्त बहुत आना जरूरी है। अनेक जुलाबोंकी तरह इसकी वजह दर्द नहीं होता। यह वृक्कोंको चेतना देता है इसलिये पेशाब उतारनेवाला है। खासकर जलोदर जैसी बीमारियोंमें देहमें पानी जमा होने पर इसका पेशाब उतारना स्पष्ट हो जाता है। ग्रन्थि के या अन्य शोथमें चाहे वह लसीकामय हो या सूत्रमय, कैलोमेल लाभदायक है। यह कड़ा जीवाणुनाशक है। इसलिये ऐसा होने पर आदमीको अधिक मात्रामें यह बार बार दिया जाता है।

ढोरको आँतोंके कोथघ्नके रूपमें यह दिया जाता है। बच्चोंके अतिसार में कैलोमेल कोथघ्नका काम करता है और कष्टकारी वस्तुको बाहर निकालता है।

यह पेशाब उतारता है और पित्तका स्राव बढ़ाता है। इसलिये शरीरसे लसीका या अतिरिक्त जल निकालनेके लिये **पांडु और जलोदरमें** इसका सफल प्रयोग किया जाता है।

केलोमेल **केंचुआ कृमिका नाशक** है। इसके असरको बढ़ानेके लिये किसी दूसरी परोपजीवी-नाशक दवाके योगमें यह केंचुआ कृमिके लिये दिया जाता है।

छाजनमें (एक्जामा) इसके लगाने से फायदा होता है। १ आउन्स सफेदा (जिंक ऑक्साइड) में ५ से २० ग्रेन यह मिलाकर इस कामके लिये मलहम बनाना चाहिये।

बहनेवाली **छाजनमें** सफेदाके साथ इसकी बुकनी शोषक और विषनाशक है।

पारेका बनी अन्य वस्तुओंकी तरह कैलोमेल भी देहके भीतर कुछ देर रहता है। इसका बुरा असर भी हो सकता है। इससे पारेका विष व्याप सकता है। पारेके विषका पहला लक्षण मुँहमें दिखायी पड़ना है। मसूढे और दांतोंमें दर्द होता है फिर वह सूजते है और लार चलने लगती है। जीभ और ग्रन्थियाँ बढ़ जाती हैं, सारा चेहरा सूज जाता है, दांत ढीले पड़ते हैं और गिर जाते हैं। सांसमें दुर्गन्ध आती है। इनमेंसे कोई लक्षण जैसे दिखायी दे कि सावधान हो जाना चाहिये और जबतक ये लक्षण खतम न हो जायँ कैलोमेल देना बन्द कर देना चाहिये। सतर्कताके लिये कैलोमेल देनेके दूसरे दिन **मैगनिशियम सल्फेटकी** एक मात्रा दे देनी चाहिये। इससे देहमें कैलोमेल जमा नहीं होगा।

दर्द, लार या मुँहकी सूजन दिखायी दे तो पोटेशियम क्लोरेटसे धोना चाहिये। ½ से १ ड्रामकी मात्रामें खिलाना भी चाहिये। मैगसल्फ जैसी दस्तावर चीजोंसे पेटसे पारा साफ कर देना चाहिये। मुँह धोनेके लिये एक आउन्स पानी में १० से २० ग्रेन पोटाशियम क्लोरेट मिलाना चाहिये।

१३१८. Camphor : कर्पूर (कपूर)

कपूर दानेदार सफेद टुकड़ा होता है। इसमें खास तरहकी मीठी गन्ध होती है। यह अलकोहल या मद्यसारमें घुल जाता है पर पानीमें बहुत कम।

कपूर हल्का **कोथघ्न और कीटघ्न** है। यह श्लैष्मिक कला और बहित्वक्‌के तन्तुओंमें उत्तेजना पैदा करता है। इसलिये यह लिनिमेन्ट या मालिशमें मिलाया जाता है। कपूर रक्तसंवहन या रक्त-अनुधावन (सरकुलेशन) को **उत्तेजित**

करता है। इसलिये जब हृदयके स्वचालित केन्द्र काम नहीं करते तो रक्त-अनुधावन फिरसे जारी करनेके लिये यह दिया जाता है। यह नाड़ी-तन्त्रको भी उत्तेजना देता है। भीतरी **रक्तावरोध** होने पर कपूरसे फायदा होता है। इसलिये **सर्दी, खाँसी, पार्श्वशूल** (प्लुरिसी) और यकृतके रक्तसकुल्नामें भी यह दिया जाता है।

मोच, चोट, स्तनप्रदाह (मैस्टाइटीस) और वात रोगकी मालिशका यह एक विशेष उपकरण है। रक्तावरोध दूर करनेके साथ साथ कपूरमें पेशियोंका आक्षेप (स्पाज्म) रोकनेका भी गुण है। इसलिये श्वासनलिका-प्रदाह (ब्रोंकाइटिस) या काश जैसे रोगोंमें यह अनमोल है।

मालिशके लिये तारपीनके साथ कपूरको तेलमें मिलाना चाहिये।

पेशियोंकी सूई (इन्टामस्क्यूलर) के लिये :—

कपूर	...	१ भाग
ऑयल एरेचिस (मूंगफलीका तेल)		५ भाग

घुलनेके लिये गरम करो। ठंडा होने पर ½ से १ आउन्सकी मात्रामें सूई दो। तेलके साथ कपूरकी सूई चमड़ेके नीचे नहीं लगानी चाहिये। पेशीमें लगानी चाहिये। क्योंकि, चमड़ेमें देनेसे फोड़ा हो जा सकता है।

खिलानेके लिये १ से ८ ड्राम तककी मात्रामें कपूर गुड़के साथ मिलाकर देना चाहिये।

१३१६ Catechu : कत्था : खैर

कत्थेके पल्लव और लकड़ीका सत्व यह है। कत्थ चौखूटे टुकड़े या मोटी पत्तियोंकी शकलमें बिकता है। यह गरम पानीमें घुलता है।

कत्थमें टैनिक एसिड ४५ प्रतिशत है। यह अतिसारनाशक है। अपकर्षिणी (कृमिगति) कम कर देता है इसलिये अतिसार नाशक है। अतिसारकी चिकित्सामें जुलाब देकर कष्टकारी पदार्थ निकाला जाता है और क्षत स्थानोंमें रक्षक आवरण दिया जाता है। जैसे रेड़ीके तेल से। कत्थ जैसे टैनिन या बिसमथ जैसे खनिजोंसे अपकर्षिणी या आँतकी गति (कृमिगति) रोकी जाती है और सकोचन किया जाता है।

कत्थ श्लैष्मिक कलाका **संकोचक** है। यह टैनिक अम्लसे श्रेष्ठ है। क्योंकि इसमें गोंद और रजनके रूपमें अन्य सेन्द्रिय पदार्थ भी होते हैं जिनकी क्रिया आमाशयमें नहीं होती पर वे आगे बढ़कर आँतमें चले जाते हैं।

अतिसार या अँतड़ीकी पीड़ा (कोक्सीडियोसिस) में कत्थ जैसा संकोचक देनेके पहले रेड़ीके तेल आदिका जुलाब देकर कष्टकारी पदार्थ बाहर कर देना चाहिये। कत्थके साथ खड़िया या अफीम मिलाना उपयोगी है।

मात्रा :— २ से ४ ड्राम सयानोंके लिये।

१३२०. Charcoal : कोयला (लकड़ीका)

लकड़ीका कोयला स्पांज जैसा होता है। कोयला अपने आकार से कई गुना ज्यादे ऑक्सीजन सोख सकता है। इसके छेदमें ऑक्सीजन भरी रहती है। इसलिये यह जलानेवाला भी है। देहमें कोयलेका आचूषण नहीं हो सकता। इसलिये इसकी क्रिया स्थानविशेष पर ही होती है। घाव पर कोयलेकी सूखी बुकनी छिड़की जा सकती है। इस जगह यह **शोषक** (सुखानेवाला) और **चोषक** का काम करता है। पाकाशयके व्रण आदि अँतड़ियोंके रोगोंमें इससे बड़ा लाभ होता है। ऐसी हालतमें यह उस जगह ऑक्सीजन देता है, सड़न या सड़ाँइद यदि होती हो तो रोकता है और बाहरी घावकी तरह ही आवरण भी करता है। पूरा फायदा हो इसके लिये तुरतका बनाया कोयला काममें लाना चाहिये या उसे फिरसे दहकाकर ठंडा कर देना चाहिये।

मात्रा :— सयाने पशुओंके लिये १ से २ आउन्स।

१३२१. Chloral Hydrate : क्लोरल हाइड्रेट

यह स्फटिकाकार होता है। इसकी गंध कड़ुवी और उत्कट होती है तथा स्वाद दाहक और कटु। यह पानीमें खूब घुलता है। यह **तन्द्राकारी** है। अधिक मात्रामें देनेसे **बेहोशी** और **ज्ञानशून्यता** पैदा होती है। साधारण मात्रामें देने पर दिमागको मंदा करता है पर रक्तसंचारी संस्थान और श्वास-संस्थान पर कोई खास असर नहीं होता। यह कई घंटोंकी गहरी नींद पैदा करता है।

पेशियोंको ढीला करता है। अधिक मात्रा देनेसे सभी नाड़ी-केन्द्र मन्द पड़ जाते हैं इसलिये चीरफाड़में इससे शून्यता पैदा की जाती है। ५ से ९ आउन्सकी मात्रासे अधिक मात्रामें यह देनेसे मौत हो सकती है। यदि पशु गरम रखा जाय तो अधिक मात्रा भी सह लेता है। इसका जहर लग जानेसे इसके प्रतिकारके लिये स्ट्रिक्नीन दी जा सकती है।

चीरफाडके समय ज्ञानशून्य करनेके लिये क्लोरोफॉर्म या अफीमके नत्तसे यह अच्छा माना जाता है। कामके लिये जितनी चाहिये उतनी शून्यता यह लाता है। शून्यता दो एक घंटे रहती है।

पशु यदि बहुत उत्तेजित हो या नाड़ियाँ बहुत अशान्त हों तो सभी हालतोंमें नींद लानेके लिये इसका व्यवहार बहुत होता है। धनुष्टंकार और गरदन तोड़में (मेनिन्जाइटिस) आक्षेप रोकनेके लिये इसका सफल व्यवहार होता है। गुदा, भग या गर्भाशयके स्थानभ्रष्ट होने पर यह पेशिओंको ढीला करता है। इससे स्थानभ्रष्ट अंगोंको अपनी जगह लौटने और ठहरनेमें सुवीता होता है।

मात्रा :— मादक (नारकोटिक)— ३ से ४ आउन्स।
शामक (सेडेटिव)— १ से २ आउन्स।

क्लोरल हाइड्रेटसे श्लैष्मिककलामें जलन होती है। खानेकी दवामें १ आउन्स क्लोरल हाइड्रेटमें ३ पाइन्ट लसीली वस्तु मिलानी चाहिये। श्री मिल्कस् नीचे लिखा नुस्खा बताते हैं :—

क्लोरल हाइड्रेट	...	२ आउन्स।
बबूल गोंद	...	१ आउन्स।
पानी		६ पाइन्ट ।

भ्रंश रोगोंमें १ आउन्सकी मात्रा देनी चाहिये। गुदामार्गसे उतनीही मात्रा देनी चाहिये जितनी मुंहसे। थोड़ी मात्रामें देनेसे कै बन्द होती है।

गरदनतोड़में पेशीकी सूई देनेके लिये १०० सी० सी० पानीमें १० ग्रेनकी मात्रा दी जा सकती है। क्लोरल हाइड्रेटका विष व्यापने पर साँस चलानेका उपाय करना चाहिये और कैफीन तथा स्ट्रिकनीनकी सूई लगानी चाहिये। साँस बन्द होनेसे मृत्यु हो सकती है।

१३२२. Copper Sulphate : कोपर सल्फेट : तूतिया

तूतिया गहरे नीले रंगके स्फटिक या दानेदार बुकनीकी शकलमें होता है। इसका स्वाद धातवीय और मिचलानेवाला है। एक भाग तूतिया ३ भाग पानीमें घुल सकता है।

तूतियाका व्यवहार संकोचक, दाहक, कृमिनाशक और वमनकारी है। इसका हलका घोल संकोचक है। गाढा घोल दाहक है। खानेसे कै होती है। कृमिनाशके लिये भी यह खाया जाता है।

तांबेके नमक (कोपर साल्टस्) छोटे पौधे और घोंघे आदिके लिये विष हैं। १ प्रतिशत का तूतियेका घोल विषनाशक (एन्टीसेप्टिक) होता है। इसके मिलानेसे जिस पानीमें जरा भी नीलापन हो वह घाव धोनेके काममें आ सकता हे। इससे घाव धोनेसे पीव साफ होकर घावकी जगह लाल निकल आती है इससे घाव जल्दी भरता है।

जिल्दसाज इसे लेईमें मिलाता है क्योंकि, यह कीटनाशक है। ऐसी लेईमें कीड़े नहीं लगते और फफूँदा भी नहीं लगता।

इसका एक सैकड़ा घोल कृमिघ्न है। ढोरके पेट और आँतमें रहनेवाले वहुत तरहके कृमियोंको मारनेके लिये कमला (कवीला) के साथ तूतिया वहुत कारगर सावित हो चुका है।

थोड़ी मात्रामें तूतियेका घोल मिचली लाता है। इस गुणके कारण सर्दी खासीमें कफ निकालनेके लिये यह दिया जाता है।

तांवा हेमोग्लोवीनका घटक (उपादान) नहीं है। फिरभी इसकी जरूरत इसलिये है कि, लोहा इसके रहनेसे हेमोग्लोवीन वनाता है। पशुओंके आहारमें इस प्रयोजनको पूरा करनेके लिये काफी तांवा होता है। आहारमे तांवेकी कमीसे रक्ताल्पता होती है। इसको पूरा करनेके लिये तांवेकी हल्की मात्रा दी जाती है। यह सल्फेटके रूपमें दिया जा सकता है। पर लैक्टेटके रूपमें देना जादे अच्छा है। दहीमें दुग्धाम्ल (लैक्टिक एसिड) होता है। यदि उसमें तांवेका स्वच्छ पैसा डाल दिया जाय तो दही नीला हो जायगा। क्योंकि ताँवा उसमें घुल जाता है।

भारतके पशुपालक पशुओंकी रक्ताल्पता ताड़ लेते हैं और इसे दूर करनेके लिये ऊपरके तरीके से दहीमें तांवा खिलाते हैं। इस कामके लिये वहुत थोड़ी मात्रा $\frac{१}{५०}$ से $\frac{१}{१०}$ ग्रेन काफी है।

तूतिया तुरत वमन कराता है। पर यदि पहली मात्रा सफल न हो तो इसे फिर नहीं देना चाहिये। ढोरको के करानेके लिये इसकी १॥ से ६ ड्रामकी मात्रा एक या दो सैकडा घोलमें दी जाती है। कृमिनाशके लिये १ सैकड़ा घोल या एक आउन्स पानीमें ५ ग्रेनके हिसाबसे देनेमें कोई खतरा नहीं है। ४ से १० आउन्स घोल सयानोंके लिये जरूरी है और बछरुओंको उसी हिसाबसे कम।

मुखविवर-प्रदाह (निनावाँ) और पलकके व्रण या प्रदाह तथा भगन्दरमें या नासूरमें इसके दाहक गुणसे फायदा उठाया जाता है। तूतियेका टुकड़ा इनसे छूला दिया जाता है। भगन्दर या नासूरमें कड़ा घोल काममें लाया जा सकता है। इसके लिये एक आउन्स पानीमें ३ से १५ ग्रेन तूतिया मिलाना चाहिये।

१३२३. Creosote : क्रियोजोट

क्रियोजोटकी क्रिया कारबोलिक एसिडकी तरह है। लगानेके काममें उससे बढकर नहीं है। पर यह उससे कहीं कम दाहक और विषैला है। यह और बात है कि अधिक मात्रा देनेसे कारबोलिक एसिडके विषके सभी लक्षण होने लगते हैं। ब्रोंकाइटिसमें यह विशेष लाभकारी है। कुत्तेके पागलपनमें यह अमूल्य सिद्ध हुआ है। इसमें यह आँतोंका विष नाश करता और कफ निकालता है।

आँतोंके प्रदाह या सूजनमें यह विषनाशक है। मनुष्यकी दन्त चिकित्सामें क्रियोजोटका व्यवहार दाँतका दर्द दूर करनेके लिये बहुत होता है। यहाँ पर इसका काम संज्ञाहीन या शून्य करना है।

केओलिन या खडियामें अच्छी तरह मिला कर क्रियोजोट दिया जा सकता है। एक आउन्स खडियामें एक ड्राम यह मिलाना चाहिये।

मात्रा (खानेकी) :— २० से ४० मिनिम मड या केओलिनके साथ।

१३२४. Ferrous Sulphate : फेरस सल्फेट : हीराकसीस

हीरा कसीस हरे रंगका स्वच्छ रवा है जो पानीमें घुल सकता है। लोहे पर गन्धकके तेजावकी क्रियासे यह तैयार किया जाता है। ऑक्सीजनकी क्रिया (ऑक्सीडेशन) से यह लोहेसा (फेरिक) हो जाता है। काग लगी बोतलमें भी हवा लगनेसे इसका हरा रंग ऊपर ऊपर बादामी हो जाता है। यह प्रतिक्रिया धीरे धीरे भीतरकी ओर बढती जाती है। रंग बदले टुकड़ोंको यदि गन्धकके

हलके तेजाबमें डुबाया जाय तो फिर असली रग निकल आता है। हरा टुकडा ही काममें लाना चाहिये।

लोहा देनेके लिये कसीस दिया जाता है। खूनके हेमोग्लोबीनका अेक घटक या उपादान लोहा है। देहमें लोहेकी कमीसे रक्ताल्पता (अेनीमिया) होती है। इसका सुधार जटिल काम है। कई कारणोंसे यह होती है। इनमें से एक लोहेकी कमी भी है। थोड़ी थोडी मात्रामें कसीस देनेसे यह कमी पूरी हो सकती है। देहके भीतर कसीस संकोचक का काम करता है। इसलिये कठिन अतिसारमें इसका व्यवहार वताया गया है। पहले यह माना जाता था कि देहमें आचूषण के लिये सेंद्रिय (आरगेनिक) रूपमें लोहा दिया जाना चाहिये। अव यह भ्रम सिद्ध हो चुका है। निरेन्द्रिय (इनआरगेनिक) लोहा ही ज्यादे अच्छी तरह आचूषित होता है। कसीस कुछ हद तक रक्तस्राव-रोधक भी है।

मात्रा :—पूरे पानीमे २ से ३ ड्राम।

१३२५ Iodine Tincture & Lugol's Solution
टिंकचर आयडिन और ल्यूगोल सोल्यूसन

समुद्री घासोंकी राखसे आयडिन निकाली जाती है। यह बैंगनी रंगकी होती है। कण भुरभुरे होते हैं जो धातु जैसे दिखते हैं। गंध खास तरह की होती है। स्पिरिट (मद्यसार)में मिलाकर या पोटासियम आयोडाइडके घोल अथवा दोनोंमें इसका व्यवहार होता है। पोटास आयोडाइड या आयडोफौर्मके रूपमें आयडिन साधारण व्यवहारकी वस्तु वन गयी है।

क्रियाशील आयडिन (फ्री आयडिन) वहुत उपयोगी प्रतिउत्तापक है। त्वचा पर जहां यह लगायी जाती है कुछ क्षण रह कर भीतर प्रविष्ट हो जाती है। साधारण तौर पर टिंकचरके रूपमें आयडिन लगायी जाती है।

टिंकचर आयडिन :—

आयडिन	..	७ भाग
पोटास आयोडाइड	..	५ भाग
पानी	.	५ भाग
अलकोहल (मदिरा-सार)		१०० भाग।

ल्यूगोलका सोल्यूसन (घोल) :—

आयडिन	५ भाग
पोटाश आयोडाइड	१० भाग
पानी	१०० भाग ।

आयडिन कड़ा **कोथघ्न** (सडन निवारक) और जीवाणु-नाशक है। जिस चीजकी छूत मिटानी या जीवाणु रहित रखनी है उसे टिंकचर आयडिन या ल्यूगोलके घोल मिले पानीमें डुबाना चाहिये। पानीमें सिर्फ इतना मिलाया जाय कि, उसमें उस टिकचर या घोलका हल्का रंग आ जाय। ऐसे घोलमें पट्टी भिगा कर घावकी कोथघ्न पट्टी की जाती है।

कटने पर आयडिन लगाने से उसकी छूत तुरत मिट जाती है और प्रदाह नहीं होने पाता तथा कटी जगहसे रोगकारी जीवाणु देहके भीतर नहीं जा सकते। बच्चेके जन्मके बाद उसकी नाभीमें अच्छी तरह आयडिन लगाना चाहिये और जबतक सूखा भाग झड़ न जाय रोज इसे लगाते जाना चाहिये। लगानेके बाद आयडिन तंतुओंमें प्रविष्ट हो जाता है। इसलिये कटी जगह या क्षत पर लगाने से इसका असर बना रहता है और चोट और आसपासकी जगहकी रक्षा करता है।

यह फगस-नाशक है। इसलिये **मुहासे** (acne), **सुखव्रण** (एक्टीनोमाइकोसिस) और **दाद** के लिये लाभकारी है। यह जीवाणुनाशक है इसलिये ब्रोंकाइटिस या कास और निमोनियाँ आदि की छूतमें शिराकी सूई लगाने से इन रोगोंको बढ़ने नहीं देती।

मुखविवर, कंठ, ग्रसनिका (गला) में पूयोत्पादक या पायोजनिक जीवाणुकी छूत लगने से आयडिनका हलका टिकचर या ल्यूगोलका घोल लगानेसे छूत मिट जाती है। उस स्थानको आराम भी मिलता है क्योंकि इसकी क्रिया श्लैष्मिक-झिल्ली पर होती है। इस कामके लिये इसमें थोड़ीसी गिलसरीन मिला देने से बढ़िया गलेमें लगानेकी दवा (थ्रोट-पेन्ट) बन जाती है।

गलसूआ या गलफूली (मम्प्स) में गिल्टीमें या उसके आसपास इसकी सूई लगाने से तुरत आराम होता है।

घेघ (गलगंड) में इसे ऊपर से लगाने पर यह सटकने या दबने लगता है।

टिंक्चर या ल्यूगोलके घोलके रूपमें आयडिन साथ रखनेकी चीज है। खाने और लगाने दोनों काममें यह आती है। दैनिक व्यवहारमें यह कितनेही काममें आती है।

१३२६. Iodoform : आयडोफौर्म

इसकी बुकनी होती है। रंग नीबूसा, गंध खास तरह की और तीक्ष्ण। इसका एक भाग ८० भाग ग्लिसरीनमें घुलता है। आयडोफौर्म श्लैष्मिककला और कटी जगहोंके लिये हलका कोथघ्न है। इसमें जीवाणु-नाशक गुण भी कुछ है। कटी फटी जगहों पर इसका आचूषण तुरत हो जाता है और तुरत ही पेशाबमें आयोडाइड होकर निकलता है। जिन घावोंमें छूत लग गयी है उनमें इसका व्यवहार होता है। व्यवहार केवल बाहरी है। फोड़ों पर छिड़कनेके लिये यह अमूल्य चूर्ण है। इसके १० प्रतिशत भागका मलहम भी हो सकता है। गहरे घाव, नासूर तथा भगंदर और गुदा, नाक तथा भगमें इसकी बत्ती भरकर पट्टी बांधी जाती है। पट्टी पर इसको छिड़ककर बत्ती बनायी जा सकती है। तेल या ग्लिसरीनके घोलमें इसकी पिचकारी नाक, गुदा तथा भगमें लग सकती है। गर्भाशयके प्रदाह (metritis) या पुरैन (फूल) नहीं निकलने पर बत्तीके साथ एक आउन्स तक या यों भी सपोजिटरीके रूपमें गर्भाशयमें डालना चाहिये।

१३२७ Kamala : कमला चूर्ण : कबीला

कबीलाकी बुकनी भारी और गुलाबी रंगकी होती है। यह लोहितांग (Mallotus philippinensis) की ग्रन्थियों और बालोंसे बनती है। यह पेड़ भारत, चीन और फिलीपाइनमें होता है। यह तेज परोपजीवी-नाशक है। आयुर्वेदिक दवाओंमें बहुत पुराने समयसे काममें आ रहा है। अभी हालमें भारतीय कृषि अनुसंधान परिषदने सिद्ध किया है कि, पशु-चिकित्सामें इसको महत्वका स्थान मिलना चाहिये। भीतरी परोपजीवी-नाशके लिये इसे तूतियाके साथ देना चाहिये। यह दूध, मधु या शरबतमें भी दिया जा सकता है।

मात्रा :— १ आउन्ससे १½ आउन्स।

१३२८. Kaolin : केओलिन : चीनी मिट्टी

केओलिन सफेद रंगकी चिकनी मिट्टी है। चीनी मिट्टीके वरतन इससे बनते हैं। छूनेमें यह मुलायम और पिच्छिल (फिसलनी) है। पानी पड़नेसे फूलती है। ग्लिसरीनके साथ इसे मिलाकर सुगंध तेल और थाईमल इत्यादि इसमें मिलाते हैं। लगानेके काममें यह आता है। ऐंटीफ्लोजिस्टीन आदि पदार्थ ऐसी दवाके उदाहरण हैं।

पेटके दूषित पदार्थोंको केओलिन सोख लेता है और बाहर निकालता है। कोयलेकी बुकनीमें मिला कर केओलिन अतिसार और पेचिशमें दिया जा सकता है।

केओलिन न मिले तो साधारण **चिकनी मिट्टी** अच्छी तरह बना सँभाल कर उसकी जगह दी जा सकती है। चिकनी मिट्टी नीचेसे खोद कर निकालनी चाहिये। जिससे कि, वह साफ हो और ऊपरी सतह की गन्दगी उसमें न हो। इसे पानीमें घोल कर दो चार मिनट छोड़ देना चाहिये। इससे वह थिरावेगा और बालू कंकड़ी आदि तलेमें बैठ जायेंगी। ऊपरी सतह को दूसरे बर्तनमें उड़ेल लेते हैं और पानी मिलाकर फिर थिरानेको छोड़ देते हैं। जिससे कि बची हुई बालू निकल जाय। फिर ऊपरकी ओरका गदला पानी अन्य बर्तनमें उफल कर थिरा लिया जाय।

यह प्रक्रिया तबतक की जाय जब तक उसमें बालू बिलकुल न रहे। जमी महीन चिकनी मिट्टी पानी मिला कर उबाल लेना चाहिये कि वह कीटाणुरहित हो जाय, फिर उसे थिरा लेना चाहिये। थिराई मिट्टी धूपमें या वाटर बाथ पर सुखा ली जाय। यह चीज केओलिनकी जगह काम आ सकती है।

जीवाणु-जनित कठिन अतिसारमें केओलिन और कोयलेकी मिली बुकनी १ रत्तलकी मात्रामें बहुत लाभदायक है। केओलिन और कोयलेकी मात्रा ३ : १ रहे। मामूली अतिसार या खूनी दस्तमें इससे कम मात्रामें देनी चाहिये।

१३२९. Magnessium Sulphate : मैगनीशियम सल्फेट

एप्सम सॉल्ट

मैगनीशियम सल्फेट छोटी सूईसा होता है। रंगहीन। स्वाद खारा। यह पानीमें तुरत घुलता है।

मैगनीशियम सल्फेट सा नमकीन पदार्थ आँतोंमें पँहुच कर नमकके साधारण घोल (नॉरमल सेलाइन, अर्थात् ९० ग्रेन साधारण नमक १ पाइन्ट जलमें मिला हुआ) के जैसा पतला होना चाहता है। इसलिये देहके द्रवोंको सोख लेता है और पाखानेकी राह निकाल देता है। इसलिये यदि देहका पानी नहीं निकालना हो तो इसे अच्छी तरह घोल कर देना और पशुको पानी जादे पिलाना चाहिये। पर जलोदर आदिमें देहसे पानी निकालनेकी जरूरत है। इसलिये जादे पानी मिलानेकी जरूरत नहा।

गाढ़ घोलसे मिचली और कै आती है। यह होने नहीं पावे इसलिये काफी पानी मिलाना चाहिये।

रोमन्थकारियोंके लिये मेगसल्फ खास जुलाव है। कड़ा जुलाव वनानेके लिये सम भाग सोडियम क्लोराइड (नमक) मिलाना चाहिये। बुखारकी हालतमें इसे पीनेके पानीके साथ थोड़ी मात्रामें दे सकते हैं। क्योंकि, यह तापमान गिराता और पेट चलाता है। त्वचामें इसका सूई लगाने से धनुष्टकारमें लाभ होता है। डौसन तथा अन्य इसके १० प्रतिशत घोलकी २० सी० सी० की सूई हर १५ मिनट पर त्वचामें लगानेकी सलाह देते हैं। मोच और सन्धिप्रदाह में मेगसल्फके सपृक्त घोलमें रूई भिगो कर पट्टी वांधनेसे लाभ होता है।

मेगसल्फ शीशे (लेड साल्टस्)के विषका मारक है। शीशेके नमकको यह नहीं घुलनेवाला शीशेका सल्फेट (लेड सल्फेट) वना देता है और उसे वाहर करता है। यह कारवोलिक एसिडका भी मारक है। उसके साथ मिलकर निर्विष कारवोलेट वनता है।

मात्रा :— १ से २ रत्तल।

१३३०. Myrobalan : हर्र : हरीतकी (फल)

वंगला—हरीतकी, तामिल—काडुक्के, तेलगू—करक्काया, गुजराती—हरडे

हर्र फलप्रद और निरापद जुलाव है। पेटके दर्द, पेट फूलना और दिल धड़कनेकी यह मानी हुई प्रसिद्द दवा थी और है। हर्रका प्रलेप लगानेसे मुंह और जीभके महीनों पुराने छाले आराम होते हैं। ५० से ६० हर्र अच्छी तरह पेट साफ कर सकती है। यह केचुआ-कृमि भी निकालती है। कमजोर पशुकी भी कब्जियत (अनाह) इससे दूर होती है।

यह अद्भुत सकोचक है। तेल या पानीमें मिलाकर इसके प्रलेपसे आगे लिखे रोगों पर बहुत लाभ होता है। जीर्ण पीवदार व्रण (अलसरेसनस्), चोट या क्षतका पकना, बहुत बहनेवाले चर्म रोग, अर्श (ववासीर), भ्रंश (प्रोलेप्स) आदि।

मात्रा :— जुलाव ६ से ८ आउन्स गूदेको पीसकर या बुकनी बनाकर पानीमें मिलाकर देना चाहिये।

१३३१. Neem (Leaves) • नीम (पत्ती)

संस्कृत—निम्ब, तामिल—वेम्बु।

इसका पेड़ बड़ा ४० से ५० फूट ऊँचा और सदा हरा रहता है। यह तमाम भारतमें होता है। चर्म रोगों पर इसकी पत्तियां बहुत लाभप्रद प्रसिद्ध है। घावों तथा फोड़ों पर नीमकी पत्तियोंकी पोल्टिस, मलहम और मालिशका व्यवहार हो सकता है। इसकी पत्तियोंके उबाले पानीमें कोथघ्न गुण होता है। इससे घाव धोआ जा सकता है। एक आउन्स पानीमें २० पत्तियोंके हिसाबसे कुछ देर उबालनेसे कोथघ्न श्रेष्ठ घोल बनता है।

पत्तियाँ कड़वी होती हैं। ढोर इन्हें स्वादसे खाते हैं। पशुके लिये इसका चारा भी हो सकता है।

१३३२. Novocain • नोभोकेन

कोकेनमें कुछ अवाञ्छनीय गुण हैं। इसलिये इससे कम विषवाली (टॉक्सिक) चीजें काममें लाई जाती हैं। नोभोकेन उनमें एक है। रंगहीन सूईके रूपमें यह मिलता है। यह पानीमें घुल सकती है। त्वचामें इसकी सूई लगानेसे गहरे पर क्षणिक अनुभवशून्यता होती है। इससे जलन बिलकुल नहीं होती। आंख या गलेके चीरफाड़के लायक यह नहीं है। स्थान-विशेष सुन्न करनेके लिये त्वचामें इसका १० से २० सी० सी० तककी सूई लगाई जाती है जिसमें ०.५ से २ प्रतिशत घोल काममें आता है।

१३३३. Nux Vomica • Kuchila • Strychnine

लैटिन भाषामें : कुचिला : स्ट्रिकनीन

कुचिला बीज है। इसका पेड भारतमें होता है। बीजकी बनावट बटनकी तरह होती है, जिसका व्यास एक इंचके लगभग होता है और मोटाई ¼ इंच।

ऊपरसे यह मखमली होता ह। इसमे १·२५ प्रतिशत स्ट्रिकनीन होता है। इसमें एक और क्षार ब्रूसीन होता है।

कुचिलेका चूर्ण काममें आता है। सूईके लिये इसके क्षार स्ट्रिकनीनका व्यवहार होता है। कुचिलेका गुण स्ट्रिकनीनके कारण है।

कुचिला पेटकी बढ़िया पुष्टई है। इससे भूख बढ़ती (दीपक) है। यह पाचक भी है। यह अपकर्षिणी या कृमिगति बढ़ाता है। इसलिये अनाह (कब्ज) दूर करता है। इस कामके लिये किसी दस्तावर दवाके साथ कुचिला देते रहना चाहिये। लोहा और संखियाके साथ कुचिला देनेसे बहुत बढ़िया पुष्टई बनती है। जुलावके साथ इसे देनेसे जकड़े रोमन्थाशयको यह साफ करता है।

नाड़ीको यह चैतन्य करता है, यह नाडीकी थकावट और नाडी-तन्त्रकी सुस्ती दूर करता है। लकवा (पक्षाघात) में यदि नाड़ी बिलकुल नष्ट नहीं हो गयी है तो स्ट्रिकनीन फायदा करता है। स्थानविशेषको नाड़ीके पक्षाघातमें जैसे मुखमंडलका पक्षाघात—यह बड़े काम का है।

यह श्वास और रक्त-तन्त्रको चैतन्य करता है। यद्यपि रक्त-तन्त्र पर इसकी क्रिया इतनी स्पष्ट नहीं है। इससे हृदय धीमा और रक्त चाप अधिक हो जाता है। क्योंकि, इसकी क्रिया केन्द्रीय नाडीमंडल पर होती है। पर हृदय पर इसकी क्रिया सीधे नहीं होती, निमोनियाँ और हृदयावरोध (हार्ट फेल्योर) में स्ट्रिकनीनका विधान है। इसके अच्छे परिणामका कारण श्वासतन्त्रकी चेतना है। श्वासतन्त्रके मन्द होने पर स्ट्रिकनीनका विधान है।

क्लोरल हाइड्रेट, अफीम, मौरफीन आदिके जहरका मारक स्ट्रिकनीन बताया गया है। ऐसी हालतमें इसे त्वचामें पूरी मात्रामें देना चाहिये।

मात्रा :— कुचिला चूर्ण १ से २ ड्राम।

स्ट्रिकनीन हाइड्रोक्लोर—४ सी० सी० पानीमें ०·३ ग्रेन।

त्वचाकी सूईमें स्ट्रिकनीनकी बनी हुई गोली काममें लायी जाय।

१३३४. Castor Oil : रेंड़ीका तेल

रेंड़ीके बीजसे ठंढेमें तेल निकाला जाता है। पेट साफ करनेवाली और बढ़िया दस्तावर चीजोंमें यह एक है। बछरुओंके लिये यह निरापद है। बड़े पशुओंके लिये यह बढ़िया जुलाब नहीं है। पर बछरुओंके लिये अनमोल है। बबूलके

गोंद या स्टार्चकी पिट्ठी या मठमें मिलाकर देना सबसे अच्छा है। इन चिपकनी चीजोंमें तेल मिलाकर लेईसी बनाते हैं फिर धीरे धीरे पानीमें रगड़ कर घोलते जाते हैं। इससे सब द्रविया हो जाता है जिसमें तेलकी छोटी छोटी बुंदकियाँ छितरायी रहती हैं। इस रूपमे यह आँतोंको चिकना करता और जमे मलको वाहर करता है, पर पेटकी श्लैष्मिककलाको हानि नहीं पहुँचाता। इसलिये छोटे पशुओंके अतिसारमें हमारे पास यह अच्छी दवाओंमे एक है। यदि नवजात बछड़ अच्छी तरह गोबर न करे तो दो ड्राम रेंडी तेलको पानीमें मिलाकर देना चाहिये। बछड़को पेटकी कोई बीमारी चाहे यह अनाह (कब्ज) हो अतिसार हो, दुर्गन्धित गोवर हो या खूनका दस्त, रेंडीके तेलका घोल (एमलशन) इनकी चुनिन्दा दवा है। उमरके अनुसार मात्रा भिन्न भिन्न हो। महीनेके लगभग उमरके बछड़को प्रति खुराक २ ड्राम तेल दिनमें ३ या ४ वार देना लाभकारी है। इससे वड़ी उमरके लिये मात्रा बढा देनी चाहिये। ९ महीनेसे बड़े पशुको हर बार ४ आउन्स देना चाहिये। सयाने पशुको जुलावके लिये १६ से २० आउन्स तेल देना चाहिये।

१३३५. Oil Chaulmoogra · चाउलमोगरेका तेल

चाउलमोगरेके बीजसे यह स्निग्ध तेल निकाला जाता है। यह तेल बिना कुछ और मिलाये विभिन्न चर्मरोगों पर लगाया जा सकता है। इसे खिला भी सकते हैं।

मनुष्यकी कुष्ट-चिकित्सामें इसे बहुत ऊँचा स्थान मिला है। इस कामके लिये यह बहुमूल्य दवा मानी जाती है।

पशुओंके दाह या दस्तकी बीमारीमें (जोन्स डिसीज) इसे सफलता मिलनेकी खबर है।

कोढ़, अम्लसहिष्णु (एसिड फास्ट) जीवाणुओंके कारण होता है। दाह अर्थात् जोन्स डिसीज भी इसीके कारण। दोनोमें यह एक ऐसी समानता है जिससे खोज करनेवालोंका ध्यान इस ओर गया और जोन्स डिसीजमें इसका इस्तेमाल होने लगा। यह बहुत जलन पैदा करनेवाली चीज है। ? से १ ड्राम मंडके साथ खिलाया जा सकता है।

१३३६. Oil Turpentine : तारपीनका तेल

यह पतला और रंगहीन द्रव है। गन्ध खास तरहकी है। चमड़ेमें इससे जलन होती है। कितनी देर और कितने जोरसे यह रगड़ा गया इसके अनुसार चमड़े पर लाली या फुसियाँ हो सकती हैं। यह **कोथघ्न, विगन्धीकारक,** (डीओडरेन्ट) और **कृमिनाशक** है। पशुचिकित्सामें यह बढ़िया **प्रति-उत्तापक** माना जाता है। तारपीन, कपूर, अजवाइनका सत्त मिलाकर मालिशका तेल बनाया जाता है। काश (ब्रोंकाइटिस), पार्श्वशूल (प्लूरिसी), निमोनियाँ आदि फुसफुस सम्बन्धी प्रदाहवाले रोगोंमें त्वचा पर मालिश और प्रति-उत्तापके लिये इसका व्यवहार होता है। ये चीजें गोली चिकनी मिट्टी और गिलसरीनमें भी मिलायी जा सकती हैं।

पेशी-वात और दर्दमें ऐसी मालिशसे बहुत आराम मिलता है। तारपीन रक्तस्रावरोधक है। इसलिये भीतरी रक्तस्राव रोकनेके लिये हल्की मात्रामें दिया जा सकता है।

तारपीन कृमिघ्नोंमें है इसलिये केंचुआ-कृमि मारनेके लिये इसका व्यवहार हो सकता है। यह अफरे (पेटका फूलना) के लिये भी शान्तिदायक है।

मात्रा :—अफरेमें शान्तिदायक १ से २ आउन्स।

कृमिघ्न २ से ४ आउन्स।

४ गुना मूँगफली या नारियलके तेलमें मिलाकर इसका घोल तैयार कर या मडमें मिलाकर खानेके लिये देना चाहिये।

१३३७. Opium & Morphine · अफीम और मौर्फीन

पोस्तेकी बोंडी या बीजकोप पाछनेसे निकला सुखाया हुआ रस अफीम है। इसका रंग हल्का काला होता है। 'यह गिलगिला और चिपकना पदार्थ है। इसकी खास गंध होती है।

अफीममें कई क्षार हैं। इनमें मुख्य मौर्फीन है। मौर्फीनमें अपनी जननी (अफीम) के साधारण गुण होते हैं।

अफीममें ९.५ प्रतिशतसे कम मौर्फीन नहीं होती। अफीम और मौर्फीनका मानवी चिकित्सामें बहुत व्यवहार है। इनका उपयोग **दर्द, नाड़ीकी उत्तेजनाके शमनके** लिये होता है कि स्राव रुकें और नींद आवे। पशुचिकित्सामें अफीमका

उतना महत्व नहीं जितना मानवी चिकित्सामें है। इसका असर भी उतना स्पष्ट और खास नहीं होता। सुलानेके लिये पशुचिकित्सामें क्लोरल हाइड्रेट अफीमसे अधिक काममें आता है।

शूलके दर्दमें थोडी मात्रामें देने पर यह अपकर्षिणी और बृहत् अन्त्रका आक्षेप रोकती है। आँतोंका प्रदाह और अतिसारमें अफीम अपकर्षिणी रोक कर बहुत जल्दी आराम करती है। आँतोंमें छेद हो जाय और रक्त बहे तो अफीमसे बहुत लाभ होता है। यह आतोंकी गति रोक कर थक्का जमने देती है।

अफीम श्वास-केन्द्रको मन्द कर कष्टकारी खांसीमें बहुत आराम देती है। खांसी या ब्रोंकाइटिसमें कफ नहीं निकलने पर तकलीफ होती है। वैसी हालतमें इसे देनेका विधान है। पर यदि ब्रोंकाइटिसमें कफ खूब निकलता हो तो अफीम नहीं देना चाहिये। क्योंकि बाधा मिलने पर कफ जमा होने लगता है और उलझन बढ जाती है जिससे निरोग होनेमें देर लगती है।

ऊपर बताया जा चुका है कि, मोर्फीनकी सुई त्वचामें शामक प्रयोजनके लिये कारा रोगमें दी जाती है। रोगीकी शान्तिके लिये उदरशूलमें, धनुष्टकारमें आक्षेप रोकनेके लिये, पित्ताश्मरी (gall stone) आदिका दर्द मिटानेके लिये, अतिसार या पतले दस्त, आंतके प्रदाह या पेचिश, उदरावरण-प्रदाहमें भी त्वचासे इसकी सूई लगती है। पार्श्वशूलमें अफीम देना अच्छा है।

मात्रा :— अफीम १ से २ ड्राम।

मोर्फीन हाइड्रोक्लोर की टिकिया २ से ४ ग्रेन, त्वचाकी सूईके लिये।

१३३८ Papaya Milk पपीतेका दूध

कच्चा पपीता पाछनेसे दूध निकलता है। इसमें एक क्रियाशील रस होता है। यह स्टार्च पचा और श्लैष्मिककला और जान्तव प्रोटीन गला सकता है।

हलके ताप पर पपीतेका दूध सुखाया जाता है। कच्चा दूध ग्लिसरीनमें घोल लिया जा सकता है। यह घोल खानेके काममें भी आ सकता है और मस्सा (warts) गलानेके लिये लगानेके काममें भी।

मन्दाग्नि और यकृतकी खराबीमें यह बडे कामकी चीज है। यह कृमिनाशक है। दाद पर लगानेसे फायदा होता है। पपीतेका दूध पानी और ग्लिसरीनमें

घोलकर लगानेसे कठरोहिणी (डिफ्थीरिया) का शोथ मिटता है। जान्तव पेप्सीनसे पपीतेके दूधका क्रियाशील रस श्रेष्ठ है।

मात्रा :— ग्लिसरीन, सिरका या मधु और पानीमें पपीतेके दूधका १ से ५ सैकड़ा घोल।

१३३९. Potassium Iodide : पोटाशियम आयोडाइड

पोटाशियम आयोडाइडके रवे या कण रंगहीन होते हैं। इसका स्वाद तीखा होता है। यह पानीमें तुरत घुलता है। देहमें यह तुरत सोख लिया (आचोपित) जाता है जिससे वहाँ स्राव होने लगता है। इसलिये स्राव सूख जाने पर यदि फिरसे उसे जारी करनेकी जरूरत हो तो पूरी तरह पोटाश आयोडाइड देनेसे चाहा फल मिलता है। पेटमें इससे जलन होती है। अधिक मात्रा या बारबार देनेसे आयोडिज्म होता है। आयोडिज्म होने पर कपालमें दर्द, छींक, नाक बहना, गलेकी खसखसाहट, आँसू आना, लार चलना शुरू होता है। औषधि इन राहोंसे बाहर निकल जाती है।

कठजिभिया (मुँह और जबड़ेके कठिन फोड़े) और यक्ष्मा आदिमें पोटाशियम आयोडाइडको मृत तन्तु पर क्रिया होती है जिससे वह द्रवीभूत होकर शरीरमें मिल जाते हैं। पोटाशियम शरीरमें सोख लिया जाता है जो आयटिनके रूपमें चुल्लिका ग्रन्थिमें जाकर जमा होता है। यह ग्रन्थि देहके लिये आयटिनका भंडार है।

कठजिभियामें पोटाशियम आयोडाइड खिलानेसे और टिंकचर आयडिन लगानेसे आराम होता है। इस व्रणके लिये ये दोनों अचूक दवाएं हैं। **संधिवात** प्रदाहमें पोटाशियम आयोडाइड विलक्षण लाभ करता है। **ब्रोंकाइटिस** और कंठप्रदाहमें यह कफ ढीला करता है और निकालता है। किसी कारणसे भी हुआ ग्रन्थिशोथ यह दूर करता और रसस्राव सोखता है। यह चुल्लिकाग्रन्थिकी क्रियाशीलता बढाता है।

मात्रा :— १ से २½ ग्राम।

१३४०. Potash Permanganate : पोटाश परमैंगनेट

पोटाश परमैंगनेटके रवे या दाने काले होते हैं। इसका स्वाद कसैला और अरुचिकर है। इसकी घुलनेकी शक्ति १ : १४ है। यह ऑक्सीजनकी क्रिया

करनेवाला पदार्थ है। और इसलिये यह उत्र विरनाजक (एन्टीसेप्टिक) और विगन्धिकारक है। सेन्द्रिय पदार्थोंकी मौजूदगीमें ऑक्सीजन छोड़कर यह ये मत्र करता है। इसलिये गर्भाशय-प्रदाह, मुख-प्रदाह (निनावां) और सड़े घावमें १ से २ सैकड़ा घोलसे धोने और पट्टी बांधनेसे लाभ होता है।

क्षारीय विषका मारक यह है। ऐसी हालतमें इसके हलके घोलसे पेट धोया जाता है।

३४४२. Punarnava : Bœrhavia Diffusa पुनर्नवा

संस्कृत—शोथघ्नी। हिन्दी—विसखपरा, गदहपूर्ना। पंजाबी—इतसित।
बंबई—घेटुली। तामिल—मुकुक्टाइ।

यह लताके समान फैलनेवाली बूटी है। खेत और बागमें पायी जाती है। जलोदर, खूनकी कमी और हृद्रोगोंमें प्राचीन कालसे यह प्रसिद्ध है। आधुनिक ओषधि-क्रिया-शास्त्रकी अग्निपरीक्षामें भी यह उत्तीर्ण हुई है।

पुनर्नवाका क्रियाशील अंश पुनर्नवीन नामक क्षार है। पौधेमें पोटाशियम लवण प्रचुर मात्रामें है। यदि जलोदर होने पर मूत्र सुरू हो तो यह दवा सबसे अच्छा काम करती है। हृदयके कारण हुए जलोदर पर इसका लाभ स्पष्ट नहीं मालूम होता है। इस बूटीका कई प्रकारके जलोदर पर, कुछ और पेशाबकी ज्ञात दवाओंसे अधिक असर होता है।

मात्रा :— ३ आउन्स सूखी या २½ रत्तल हरी।

३४४३. Saline सैलाइन (नमकका पानी)

नॉरमल सैलाइन सॉल्यूशन पानीमें ०.८५ सैकड़ा सोडियम क्लोराइड मिलाकर तैयार किया घोल है। एक पाइन्ट या दस छटांक पानीमें चायकी एक चमच नमकके बराबर यह है। शुद्ध सोडियम क्लोराइड (नमक) पानी चढानेके लिये बहुत अच्छी चीज नहीं है। उस घोलमें कुछ पोटाशियम और कुछ कलशियम नमक मिलाना चाहिये। इसलिये सैलाइन पानी चढानेके लिये चुआये पानी (डिस्टिल्ड वाटर) मे शुद्ध सोडियम क्लोराइडके बने घोलसे, पीनेके पानीमें जानेवाले साधारण नमकसे बना घोल अच्छा है। इस कामके लिये प्रति पाइन्ट ४ ग्रेन कलशियम क्लोराइड मिलाया जा सकता है।

नॉरमल सैलाइन :—

साधारण नमक	...	९० ग्रेन
कैलशियम क्लोराइड	...	४ ,,
पानी	..	१ पाइन्ट।

अगर खून बहने से या और कारणोंसे खूनकी कमी हो गयी हो या रस (सीरम)की कमी से खून गाढा हो गया हो तो नमक-पानी चढानेसे कुछ देरके लिये कमी पूरी हो जाती है।

यह माना जाता है कि पशुका २० से ३० सैकड़ा खून निकालकर उसकी जगह उतना ही नॉरमल सैलाइन देने पर कोई बुरा असर नहीं होता। सैलाइन चढाने से धमनीका चाप फिर ठीक हो जाता है और वृक्क काम करने लगते हैं। क्योंकि चापकी कमीसे उनमें रक्तका अनुधावन नहीं होता था इसलिये उनका काम रुक गया था। सांस पर इसका असर यह होता है कि, वह अधिक और गहरी चलती है। बहुत जादे पानी चढाने से सांसमें कष्ट होता है। इसके बाद फेफड़ेमें सूजन होती है और अंतमें मृत्यु। यदि मनुष्य-रोगी बेचैनी दिखावे तो पानी चढ़ाना तुरत बन्द कर देना चाहिये। पर पशुओंमें धमनीका चाप ही एकमात्र निर्देशक है, इसलिये ध्यान रखना चाहिये कि, चाप अधिक न हो जाय।

यदि रक्त स्राव बढता ही जाता हो तो पानी चढानेसे रुक जाता है। क्योंकि इससे खून अधिक थक्का होता है। साथ ही जितना खून निकल गया पानी चढ़ानेसे उसकी पूर्ति हो जाती है।

सैलाइन पानी शिराओंसे या त्वचासे और कभी कभी उदरकी झिल्लियोंमें दिया जा सकता है। जरूरतके मुताबिक रास्ता या जरिया चुन लिया जाता है। गायके आकार और रक्तकी कमीके अनुसार २,००० से ६,००० सी० सी० तक पानी चढाया जाता है। सैलाइन पानीके साथ ७ से ८ सैकड़े तक बबूलका गोंद मिलाने से और अच्छा होता है। गोंदको उबाल कर छान लेना चाहिये। ठंढा होने पर काममें लाया जाय। इस उपायसे बहुत जादे खूनकी कमी जादे पानी चढाकर पूरी की जा सकती है। इससे हानि भी नहीं होगी।

१३४३ Sodium Bicarbonate : सोडियम बाइकारबोनेट

यह सफेद रंगकी अपारदर्शी बुकनी है। इसका स्वाद कुछ कुछ नमकीन है। यह १ : १० पानीमें घुलता है।

यह पशुओंकी खुजली (Mange) और छाजन (अेकूजीमा) के सूखे हुअे राट या छिल्के को गलाता है। यह श्लेष्मा पिघलाती है पर श्लैष्मिक-कलाके लिये शामक है। इसलिये इसके घोलसे नाक आदि सर्दीके मुकाम धोये जाते हैं। जलने और त्वचाकी पीड़ामें इसका घोल शामक होता है।

यह अम्लनाशक है। पाकाशयकी अम्लताका प्रशमन करता है। अधिक अम्लता होने पर सोडियम बाइकारबोनेट उसे ठीक करता है। बछड़ओंके सफेद दस्त जैसे रोगोंमें और जहां अम्लकीय सधान (acidic fermentation) का शक हो वह लाभदायक है।

कैलोमेलके साथ देने से उसके कई बुरे परिणाम सोडा बाइकारबोनेट रोकता है। इसलिये जब कभी कैलोमेल खिलाया जाता है यह उसमें जरूर मिलाया जाता है।

वातरोगमें यह रक्तकी अम्लता (अेसिडोसिस) कम करता है। जबतक पेशाब क्षारीय न हो जाय इसे देते रहना चाहिये

मात्रा :—½ से २ आउन्स।

१३४४. Sodium Sulphate : सोडियम सल्फेट

ग्लोबर्स साल्ट

सोडियम सल्फेटकी डली बड़ी और पारदर्शी होती है। यह पानीमें आसानीसे घुलती है। प्रायः हवाकी थोडी नमी से यह अपने स्फटिकीय जलसे आप घुल जाती है।

मैग० सल्फकी तरह यह भी नमकीन जुलाब है। मात्रा भी वही है। उससे इसमें एक सुबीता यह है कि, पाडुमें भी दिया जा सकता है।

पाडुमें बार बार देना हो तो मात्रा कम करके पशुकी अवस्थाके अनुसार प्रति मात्रा ४ से ८ आउन्स तक नित्य ३–४ या कम बार देना चाहिये।

मात्रा :—१ से २ रत्तल।

१३४५ Silver Nitrate : सिलभर नाइट्रेट

खिलानेसे यह कोथघ्न और संकोचक का काम करता है। पर इस कामके लिये कभी ही इसका व्यवहार होता है। बाहर लगाने पर त्वचा या दन्तके सेन्द्रिय पदार्थोंसे मिलकर यह चाँदीका काले रंगका धातवीय खुट (डिपोजिट) बनाता है। सर्दी या निगावेंकी फुड़ियों पर एक आउन्समें २० ग्रेनके घोलका फाहा लगाया जाता है। अति अधिक दाने या फुसियां पड़ने पर उन्हे दूर करनेके लिये सिलभर नाइट्रेट लगाना या और भी अच्छा यह कि, इसकी बत्ती या पेनसिल छुलाना लाभप्रद है।

१३४६. Sulphapyridine : M. B. 693 : सल्फापाइरीडीन : एम० बी० ६९३

यह उन सल्फानेमाइडोंमें एक है जिनका उपयोग हालहीमें रासायनिक दवाके रूपमें विशेष चिकित्सा (केमोथेरापी) मे शुरू हुआ है। यह बहुत ही शक्तिशाली जीवाणुनाशक या बैक्टीरियानाशक पाया गया है। यह जीवाणु-वृद्धि रोक भी सकता है। यह इस जीवाणुको मार सकता है और अन्तमें उस जीवाणुजनित विषकी क्रियाको दूर कर सकता है।

खानेके कुछ घंटेके भीतर ही देह इसे सोख लेती है। यह रक्तमें कुछ संयुक्त होकर और कुछ मुक्त रह कर सब जगह फैल जाता है तथा जल्दी ही पेशावकी राह निकल जाता है।

यह वृक्कोंमें होकर निकलता है। इसलिये इसकी क्रिया वहीं अधिक देखी जाता है। इसलिये यह मूत्रप्रणालीकी छूत मिटानेमें बहुत शक्तिशाली है। यह वृक्कोंमें दानेके रूपमें जमा हो सकता है। इसलिये इसे खिलानेके बाद अधिक मात्रामें क्षार और चाहे जितना पानी पिलाना चाहिये।

अधिक गहरी छूत लगने पर काफी दवा खिलाना संभव नहीं भी हो सकता। तब पेशियोंमें इसकी सूई लगाई जा सकती है। इस कामके लिये इसका घुलने लायक रूप सूईकी शीशियोंमें (एम्पुलमें) मिलता है।

मनुष्य-चिकित्सामें विभिन्न जीवाणु-छूत (कोक्सी इन्फेक्शन) मिटानेके लिये यह प्रसिद्ध हो गया है। निमोनियाँ या मेनिनजाइटिस (गरदन तोड़) की प्रारम्भिक अवस्थामें इसे देने पर रोग बढ़ता नहीं। मनुष्यके सूजाकमें यह खास दवा बन गयी है।

पशुचिकित्सामें निमोनियाँ, गर्दन तोड़, गिल्टी (एनथ्रेक्स) या पार्श्वशूल (प्लूरिसी) और गर्भाशय प्रदाह पर इसके व्यवहारसे सन्तोषप्रद फल निकला है। जीवाणुकी छूतकी (कोक्सी इन्फेक्शन) सम्भावना कहीं हो तो सल्फापाइरीडीन या सल्फानिलेमाइड देनसे छूत नहीं होती।

पुरैन न निकले तो हाथ डाल कर उसे निकालते हैं। इस क्रियाके बाद सल्फापाइरीडीन देना चाहिये।

मनुष्यके लिये इसकी मात्रा एक एक ग्रामकी चार टिकियाँ हर ६ घंटे पर कुल ६० ग्राम तक है। पर अनेक बार इसकी चौथाई मात्रा फलप्रद हुई है। पशुओंको पहले दिन हर बार १० से २० टिकियाँ देनी चाहिये। तीसरे और चौथे दिन यह कम की जाती है।

१३४७ Tartar Emetic : टारटार एमेटिक

एन्टीमनी पोटाशियम टारटरेट (Antimony potassium Tartrate)

इसकी सफेद बुकनी या सूक्ष्म कण होते हैं। स्वाद वातवीय मीठा होता है। १ : १२ पानीमें घुलता है।

इससे कफ अच्छी तरह निकलता है। कासमें जब कफ कड़ा हो गया हो और स्राव कम हो तो यह लाभदायक है। यद्यपि भरे गैसथाशय पर इसकी क्रिया मन्द होती है फिर भी यह बहुत अच्छा वमनकारी है। रक्तके ट्राइपनोसम परोपजीवोंके लिये यह विष है। इसलिये सड़ा-रोगमें इसकी सुई शिरामें लगानी चाहिये। त्वचाके लिये यह उत्तापक और विष है। शिराकी सुई लगानेके समय ध्यान रखना चाहिये कि, त्वचामें जरा भी न जाय। नहीं तो जरूर पक जायगा। नाक की नकपितिया (नैसल ग्रैनुलोमा) में यह बहुत फायदेका है। ३ सैकड़ा घोलको २० से ८० सी० सी० सुई शिरामें हर दूसरे दिन १५ से २५ दिनों तक लगाई जाती है। घोल तुरतका बना हो और कुछ देर उबालकर निर्बीज कर लिया जाय।

मात्रा ·—कफ निकालनेके लिये ½ से १ ड्राम।

वमनकारी — २ से ४ ड्राम।

शिराकी सूई के लिये ३ सैकड़ा घोल काममें लाओ, शरीरकी तौलके हर १०० रत्तल पर ५ सी० सी०। इन्जेक्सन खूब धीरे देना चाहिये।

१३४८. Thymol : थाइमल : अजवाइनका सत्त

अजवाइनका सत्त बड़े और रंगहीन पारदर्शी दानेके रूपमें होता है। इसकी गंध मीठी और उत्कट होती है। यह अजवान (टाइकोटिस) के उड़नेवाले तेलसे बनता है। पानीमें यह थोड़ा घुलता है। यह कोथघ्न, कृमिघ्न और बीजाणुनाशक है। इसकी क्रिया कारबोलिक एसिड जैसी है। पर यह उससे कहीं कम उत्तापक और विषैला है। बीजाणुनाशक होने से यह इन्फ्लुएंजा और सर्दीमें उपयोगी है। तेलमें घोल कर इसका फुहारा नाकमें डालने से सर्दी और कंठप्रदाह में आराम मिलता है। पेटकी छूत भगानेके कारण यह खूनी दस्तमें उपयोगी है। यह कृमिनाशक है इसलिये खूनी दस्तकी चिकित्सामें इसका मुख्य स्थान है और आंतकी छूत मिटानेके काममें आ सकता है। अजवाइनका सत्त अंकुशा या हुक वर्म मारनेके काममें आता है। यह अच्छा कृमिनाशक है।

मात्रा (खानेकी) :— $\frac{1}{8}$ से २ ड्राम

मूंगफलीके तेलमें गलाकर और पानीमें मिलाकर इसका एमलशन (दूध सदृश मिश्रण) बना कर देना चाहिये। और इस हालतमें इसके बाद जुलाब देना आवश्यक है।

त्वचामें इससे उत्तेजना होती है इसलिये तारपीन और कपूरके साथ यह भी मालिशमे मिलाया जाता है।

प्रतिउत्तापक व्यवहारके लिये :—

अजवाइनका सत्त	..	१०
कपूर	.	५
तारपीन	.	२५
मूँगफलीका तेल	.	१००

कोथघ्नके लिये (धोनेके निमित्त) :—

अजवाइन सत्त	...	४ ग्रेन
सुहागा	.	२४ ग्रेन
सोडाबाइकार्ब	. .	४० ग्रेन
पानी	...	१ रत्तल तक।

१३४९. Tobacco · तमाकू

तमाकूमें विषैला क्षार निकोटीन होता है। इसलिये तमाकूके पत्तेका चूर्ण बीजाणु-नाशक और परोपजीवी-नाशक काममें लाया जा सकता है। इस गुणसे फायदा उठाकर ढोरकी कीलनी, जूँ और कुकुरमक्खीके अर्भक (पिल्लू या ढोला) मारनेका काम लिया जाता है।

पानीमें चूना मिलाकर तमाकू उबालनेसे क्षार निकल आता है। यह घोल छानकर काममें आ सकता है। किरासनमें भिगोकर रखनेसे भी तमाकूका निकोटिन उसमें घुल सकता है। ढोरकी कीलनी (अठौरी) मारनेके लिये इसका फुहार छोड़ा जा सकता है। किरासनवाले अर्कमें करबालिक एसिड और तारपीन मिलाकर उसे तेज किया जा सकता है।

तमाकूका यह नीचे लिखा अर्क असरदार कीटनाशक है।

तमाकू चूर्ण	८ आउन्स।
किरासन तेल	१० रत्तल।

तमाकू चूर्ण किरासनमें छोडो। मिलाओ। हफ्ते भर एक या दो बार हिलाओ। कपड़ेसे छानो और मिलाओ :—

तारपीन	✓ आउन्स
नीबूघास (lemon grass हरद्वारी कुश) का तेल	१ आउन्स
कारबोलिक एसिड	१ आउन्स

कुब्बके फोड़ेमें तमाकू लाभप्रद सिद्ध हुआ है। तमाकूकी महीन बुकनी और समभाग मुर्दासंख (मुर्दासख—शीशा भस्म) का वैसलिनमें मलहम बन सकता है या नारियल आदिके तेलमें फेंटा जा सकता है।

१३५०. Trypan blue : Trypaflavin : Methylene blue
ट्रिपन ब्लू : ट्रिपाफ्लाविन : मेथिलिन ब्लू

ट्रिपन ब्लू एक रजक वस्तु है। यह शोथघ्न और वेदनानिवारक है। ढोरके पिरोप्लैस्मा—जीवाणुजनित रोगोंमें इसे देनेसे अच्छा फल हुआ है। कई तरहकी मात्रायें बतायी गयीं हैं। देहकी तौलके हर १०० रत्तल पर औसत लगभग

१५ ग्रेन १०० सी० सी० नॉरमल सेलाइनमें देना चाहिये। इसकी सूई शिरामें लगती है। यदि द्रव त्वचामें चला आवे तो पीब पड जाती है और वहांके तन्तु सड़ने लगते हैं। ट्रिपन ब्लू जर्द बुखार (टिक फीभर) की खास दवा है। ट्रिपाफ्लाविन ट्रिपन ब्लूसे अच्छा बताया गया है पर चमड़ेमें लगने पर इससे भी वही नुकसान होता है। ट्रिपन ब्लूकी मात्रा जो है सो इसकी भी है।

मेथिलिन ब्लू कोथघ्न और वेदनानिवारक है। यह पेशाब और दूधमें होकर निकल जाता है। इस कारण कुछ लोग इसे थनप्रदाहमें देते हैं। बाह (जोन्स डिसीज) रोगमें यह लगातार ५ दिनों तक ३ से ४ आउन्स पानीमें ६ ग्रेनकी मात्रामें गलाकर दिनमें ५ बार दिया जाता है, इसके बाद फिर दुहराते हैं।

१३५१. Urotropine · Hexamine : हेक्सामिन : यूरोट्रोपीन (Methenamine, Hexamethylenetetramine)

मेथिनामाइन, हेक्सामेथिलीन टेट्रामाइन।

फोर्मेल्डिहाइड पर एमोनियांकी क्रियासे यह बनता है। जिस आसानीसे यह देहमें फॉर्मेल्डिहाइड बन जाता है उसी पर इसका व्यवहार निर्भर है। यह स्वयं कोई नियमित क्रिया नहीं करता। देनेके कई मिनट बाद यह पेशाबमें निकलता है। क्षारीय सूत्र पर इसकी क्रिया कम होती है। इसीलिये एसिड सोडियम फोस्फेट पहले देकर मूत्रको अम्लीय करनेकी चाल है। ढोरकी पेशाबको एसिड सोडियम फोस्फेटसे अम्लीय करनेमें कुछको संदेह है। एसिड फोस्फेट यूरोट्रोपीनका विरोधी है। इसलिये दोनों दवायें अलग अलग देनी चाहिये।

वृक्क-शोथ (निफ्राइटिस्) और सफेद दस्तमें इसका व्यवहार होता है। दोनोंमें यह भीतरी कोथघ्न का काम करता है।

मात्रा :— १½ ड्रामसे ३ ड्राम।

१३५२. Vasaka : Adhatoda Vasaka : वासक

वासक की सूखी पत्तियाँ

हिन्दी—अड़सा, गुजराती—अडलसो, तामिल—अधातोडाई

कफ निकालने और आक्षेपरोधके लिये यह भारतमें प्रसिद्ध है। खाँसीके साथ छातीके रोगोंमें और क्षय-ज्वरमें (हेक्टिक फीभर) बहुत दिया जाता है।

पहलेके लोगोंने इसकी बहुत प्रशसा की है। आधुनिक खोज यह बताती है कि यह प्रशसा अकारण नहीं है।

वासकमें वासीसीन नामक क्रियाशील अंश होता है। यह हृदय, फेफड़े आदिकी नाडियाँ मन्द कर श्लेमशाखा कुछ फैलाता है पर देर तक। यह कफ ढीला करता है कि, आसानीसे निकल सके। यह श्लेमशाखाका आक्षेप आराम करता है। वासकमें गधतैल होता है जिसमें कोथघ्न गुण है। यह भी देहको फायदा करता है।

मात्रा :— ½ से १ आउन्स चूर्ण, पानीमें उबाल कर काममें लाओ।

१३५२. Zinc oxide : जिंक ऑक्साइड
जस्तेका भस्म : सफेदा

यह चूर्ण सफेद या ईषत् पिंगल है और स्वादहीन है। पानीमें नहीं घुलता। जस्ता जलानेसे बनता है।

जस्ता भस्ममें सकोचक और विषनाशक गुण है। बाहर लगाने से यह शोषक है। इसे छाजन पर छिडका जाता या मलहम बना कर लगाया जाता है। छिड़कनेकी बुकनी (डस्टिंग पाउडर) के लिये केवल यही काममें आ सकता है, चाहे किसी मात्रामें स्टार्च मिलाकर भी। मलहमके लिये पराफिनमें यह १० से २० प्रतिशत मिलाया जाता है। यह जले पर, छिले पर और छाजन पर पट्टी करनेके लिये बहुत उपयोगी है। गीले छाजन पर इसकी बुकनी छिडकनेसे उसे सूखा और साफ रखता है।

अध्याय ३६

औषधियाँ और रोग : उनका व्यवहार और परीक्षा

१३५४. औषधियोंकी सूची और उनका व्यवहार

(१३०३) Acid Arsenious : एसिड आर्सेनियस, संखिया।
उत्तेजक, और पौष्टिक। रक्तकी कमी और सड़ा (Surra) में उपयोगी। जहर देनेवाले इसे काममें लाते हैं।

(१३०४) Acid Boric and Borax : एसिड बोरिक और सुहागा
कोथघ्न, सर्दी, कन्ठ-प्रदाह, दुग्ध-ज्वर, छाजन, चर्म-प्रदाह, निनावोंमें इसका उपयोग होता है।

(१३०५) Acid Carbolic and Oil Carbolic : एसिड कारबोलिक और कारबोलिक तेल।
छूत-नाशक, बीजाणुनाशक, और विष। छाजन गिल्टी (एन्थ्रेक्स), गलमूआ, धनुष्टकारमें उपयोगी।

(१३०६) Acid Salicylic & Sodium Salicylate.
(oil and ointment) : एसिड सैलीसिलिक और सोडियम सैलीसिलेट। (तेल और मलहम)
कोथघ्न, परोपजीवी-नाशक। छाजन, मुहासा दाद, बछरूकी रोहिणी, वात, सधिप्रदाह, हृदयावरणशोथमें उपयोगी।

(१३०७) Acid Picric : एसिड पिकरिक।
दर्दनाशक और कोथघ्न। छाजन, जलने पर और चर्मप्रदाह पर उपयोगी।

(१३०८) Aloes : मुसब्बर।
दस्तावर। अपकर्षिणीमें और कृमिरोगमें उपयोगी।

(१३०९) Alum : फिटकरी।

संकोचक, सब तरहकी सर्दी, कठप्रदाह और रक्तस्रावमें उपयोगी।

(१३१०) Ammon Chloride : नसादर।

कफनिस्सारक। काश (क्लोमशाखाप्रदाह या ब्रॉंकाइटिस) और उदरशोथमें उपयोगी।

(१३११) Arjun : अर्जुन।

हृदय चैतन्य करनेवाला। हृदयकी दुर्बलतामें और पेशाब उतारनेमें उपयोगी।

(१३१२) Bismuth Carbonate : बिसमथ कारबोनेट।

अम्लनाशक। श्लैष्मिककलाका रक्षक, कोथघ्न और सकोचक। सफेद दस्त, खूनी दस्त, अतिसारमें तथा चर्म-रोगों, घावों, जलने पर छिड़कनेके लिये डस्टिंग पाउडर आदिके लिये उपयोगी।

(१३१३) Bone Meal : हड्डीकी बुकनी।

कैलशियम और फोस्फोरस देती है। सुखंडीमें उपयोगी।

(१३१४) Calcium Carbonate : कैलशियम कारबोनेट अर्थात् खड़िया-मिट्टी। कैलशियम देती है। सुखडीमें उपयोगी। अम्लनाशक।

(१३१५) Calcium Chloride : कैलशियम क्लोराइड।

खून जमानेवाला। रक्तस्राव और उदरशोथमें उपयोगी। नमकपानी (सेलाइन) चढ़ानेके लिये उपयोगी। पित्ती (Urticaria) में इसका घोल उपयोगी है।

(१३१६) Calcium Gluconate : कैलशियम ग्लूकोनेट।

खून जमानेवाला। दुग्धज्वर, रक्तस्राव (भीतरी या बाहरी) में उपयोगी।

(१३१७) Calomel : कैलोमेल।

कोथघ्न, विरेचक, और जीवाणुनाशक। पांडु, अतिसार, जलोदर और केंचुआ-कृमि दूर करनेमें उपयोगी। छाजनमें लगानेसे उपयोगी।

(१३१८) Camphor : कपूर।

कोथघ्न, आक्षेपरोधक, उत्तेजक, कीटघ्न और मालिशमें उपयोगी। काश (ब्रोंकाइटिस), पार्श्वशूल (प्लूरिसी), सर्दी, हृदयकी कमजोरी, दिमागकी उलझन (रक्ताधिक्य), वात, वमन, उदरच्छदा-प्रदाहमें उपयोगी। मालिशमें व्यवहार होता है।

(१३१६) Catechu : कत्था, खैर।

संकोचक। खूनी दस्त, अतिसार और अपकर्षिणी रोकनेमें उपयोगी।

(१३२०) Charcoal : कोयला।

शोषक, चोपक, कोथघ्न। खूनी दस्त, पेटके प्रदाह और वाहरी घावमें उपयोगी।

(१३२१) Chloral Hydrate : क्लोरल हाइड्रेट।

निद्राकारक, चैतन्यनिवारक। गर्दनतोड, धनुष्टकार, वमन, चीरफाड, भ्रंश और उदरशूलमें उपयोगी।

(१३२२) Copper Sulphate : तूतिया।

सकोचक, दाहक, कृमिघ्न, वमनकारी, कृमिनाशक। कंठप्रदाह, कास (ब्रोंकाइटिस), तांवेकी कमीसे रक्ताल्पता, कृमिरोग, घाव धोनेमें उपयोगी।

(१३२३) Creosote · क्रियोजोट।

कोथघ्न, कफनिस्सारक, दर्दहर। क्ष्पस (कठिन) निमानियामें उपयोगी।

(१३२४) Ferrous Sulphate : फेरस सल्फेट।

सकोचक। वाह (जोन्स डिसीज), अतिसार और रक्ताल्पतामें उपयोगी।

(१३२५) Iodine Tincture and Lugol's solution :
टिंक्चर आयडिन और लूगल सोलूशन।

कोथघ्न, वीजाणुनाशक, छूतनाशक। मुहासा, वछड़की रोहणी (डिफ्थीरिया), गलसूआमें उपयोगी। कठजिभिया अर्थात् रे फगसके (Ray Fungus) कारण मुँह और जवडेके कठिन फोड़ेकी खास दवा है।

(१३२६) Iodoform : आयडोफौर्म।

कोथघ्न। गर्भाशयशोथ, पुरेंनका नहीं निकलना, घावकी पट्टीमें उपयोगी।

(१३२७) Kamala : कमला चूर्ण, कवीला।

परोपजीवीनाशक। कृमिरोगमें उपयोगी।

(१३२८) Kaolin : केओलिन, चीनी मिट्टी।

चोषक। पाकाशयप्रदाह, अतिसार और पेचिशमें उपयोगी।

(१३२९) Magnesium Sulphate : मैगनीशियम सल्फेट।

विरेचक। हृदयावरणशोथ, डेंगू, अंत्रशूल, पाडु और धनुष्टकारमें उपयोगी।

(१३३०) Myrobalan : हर, हरीतकी।

सकोचक, मृदुविरेचक, और कृमिघ्न। कृमिके लिये विरेचक। हौलदिल और पेट फूलनेमें उपयोगी।

(१३३१) Neem Leaves : नीमकी पत्ती।

कोथघ्न। पोल्टिश और घाव धोनेमें इसका काढा या क्वाथ उपयोगी।

(१३३२) Novocain : नोभोकेन।

चैतन्यनाशक। स्थानविशेष अनुभवशून्य करनेके लिये सूई देने और वनुष्टकारमें उपयोगी।

(१३३३) Nux Vomica & Strychnine : कुचला और स्ट्रिकनीन।

पुष्टई नाड़ी और रक्तानुधावनको चैतन्यकारी। पक्षाघात, अनाह (कब्जियत) ओर सासके रोगोंमें उपयोगी।

(१३३४) Oil Castor : रेंड़ीका तेल।

विरेचक। सफेद दस्त, पाकाशय-प्रदाह और बछड़के अतिसारमें उपयोगी।

(१३३५) Oil Chaulmoogra : चाउलमोगरेका तेल।

परोपजीवीनाशक। वाहमें उपयोगी।

(१३३६) Oil Turpentine : तारपीनका तेल।

कोथघ्न, कृमिनाशक, रक्तस्राव-रोधक और मालिश। रक्तस्राव, वात, अन्त्रशूल, जू में उपयोगी।

(१३३७) Opium & Morphine अफीम और मौर्फीन।

निद्राकारक और शामक। पार्श्वशूल (प्लूरिसी), पाकाशय-प्रदाह, उदरच्छदाप्रदाह और सभी तरहके शूल और स्तब्धतामें उपयोगी।

(१३३८) Papaya Milk : पपीतेका दूध।

कृमिनाशक, जीवाणु-नाशक। छाजन, दाद और चर्मरोगों और रोहिणीमें उपयोगी।

(१३३९) Potassium Iodide : पोटाशियम आयोडाइड।

परिवर्तक (शरीरकी क्रियाओंको दुरुस्त करनेवाला) कफनिस्सारक शोषघ्न। कास (क्लोमनलिका-प्रदाह) गर्दनतोड़, गलसूआ, उदरच्छदाप्रदाह मुखविवरक्षतमें उपयोगी।

(१३४०) Potash Permanganate : पोटाश परमैंगनेट।
कोथघ्न, विगंधकारक। गर्भाशयशोथ, बछड़की रोहिणीमें उपयोगी।

(१३४१) Punarnava : पुनर्नवा।
मूत्राकारी। जलोदरमें उपयोगी।

(१३४२) Saline (For infusion) : सैलाइन (पानी चढ़ानेके लिये)।
रक्तस्राव, जर्दबुखार (टिक फीभर)।

(१३४३) Sodium Bicarbonate : सोडियम बाइकारबोनेट (खानेका सोडा)।
अम्लघ्न, खूँट (निःसृत होकर जमे पदार्थ) पिघलानेवाला। सर्दी, वृक्कशोथ और सफेद दस्तमें उपयोगी। जलने और छाजन पर पट्टी बाधनेमें।

(१३४४) Sodium Sulphate : सोडियम सल्फेट।
विरेचक। पाडुमें उपयोगी।

(१३४५) Silver Nitrate : सिलभर नाइट्रेट।
कोथघ्न, संकोचक और दाहक। मुखशोथ (स्टोमेटाइटिस), श्लैष्मिकप्रदाह और खुले घावों पर रक्षावरण देनेमें उपयोगी।

(१३४६) Sulphapyridine : M.B. 693 : सल्फापाइरीडोन
एम बी. ६९३।
जीवाणुनाशक। निमोनियाँ, गर्दनतोड़ और कक्राई जीवाणु जनित अन्य बीमारियोंमें उपयोगी। भीतरी कोथघ्न भी।

(१३४७) Tartar Emetic : टारटार एमेटिक।
कफ-निस्सारक, वमनकारक और परोपजीवी-नाशक। स्वरनाली-प्रदाह, कास, सड़ा, नकपितियामें उपयोगी।

(१३४८) Thymol : थाइमल, अजवाइनका सत्त।
कोथघ्न, कृमिघ्न और मालिश। सर्दी (सब तरहकी), स्वरनाली-प्रदाह, खूनी दस्तमें उपयोगी।

(१३४९) Tobacco : तमाकू।
परोपजीवी-नाशक और कोथघ्न। खुजली और कुकुर-मक्खीमें उपयोगी।

(१३५०) Trypan Blue : Trypaflavin : Methylene Blue :
ट्राइपन ब्लू : ट्राइपाफ्लेवीन : मेथिलीन ब्लू।
कोथघ्न और दर्दहर। जर्द बुखार और बाहमें उपयोगी।

(१३५१) Urotropin : Hexamine : यूरोट्रोपीन · हेक्सामीन ।

भीतरी कोथघ्न, वृक्कशोथ, सफेद दस्तमें उपयोगी ।

(१३५२) Vasaka : वासक ।

कफनिस्सारक, आक्षेपरोधक । काश, खासी, क्षयज्वर ।

(१३५३) Zinc Oxide : जिंकऑक्साइड (जस्ता-भस्म)

शोषक, सकोचक, कोथघ्न । छाजन, मस्सा (कच्छपो) और चर्मरोगोंमें उपयोगी ।

१३५५. रोगोंकी सूची और उनकी दवायें, इलाज, और निदान । छूत और फैलनेवाले रोग

(१३८४) Rinderpest : रिन्डरपेस्ट : माता ।

रोगाणुका सचारण और रस तथा विरस (सिरम और एन्टी सिरम) की सूई ।

(१३८५) Hæmorrhagic Septicaemia 'हेमोरेजिक सेप्टिसीमिया · गलघोंटू ।

सिरम साइमल्टेनियसकी सूई ।

(१३८६) Black Quarter : ब्लेक क्वार्टर : लगडी ।

रस और टीका (सिरम और भैक्सीनकी सूई) ।

(१३८७) Anthrax : एन्थ्रेक्स : गिल्टी ।

विरस (एन्टीसिरम) । एक ड्रामकी मात्रामे कारबोलिक एसिड मडके साथ । सल्फापाइरीडीन ।

(१३८८) Foot and Mouth Disease : खुरपका ।

कोथघ्नसे वारवार धोना । नीमका घोल (काढा) ।

(१३८९). Dengu : Three Day Fever : डेंगू : तीन दिनका बुखार ।

मैग० सल्फ—मात्रा ? रत्तल ।

(१३९०). Cow-pox : चेचक ।

नीमके घोलसे धोना ।

(१३९१) Contagious pleuro-pneumonia : फैलनेवाला प्लूरो-निमोनियाँ ।

सेन्द्रिय सखियासे बनी दवायें ।

(१३६२). Tuberculosis : क्षय : छई ।

ट्यूबरकुलिन जांच । ट्वल इन्ट्राडरमल जांच । स्वच्छ आवहवा । प्राकृत चिकित्सा ।

(१३६३). Johne's Disease or Para Tuberculosis : वाह ।

जोनकी जाँच, खनिजोंकी कमी पूरी करना । स्वच्छ वातावरण । अतिसारके लिये सकोचक : फेरस सल्फेट और गधकाम्ल । मुहसे मेथिलीन ब्लू ८० ग्रेन ५ दिनों तक । चाउलमोगरेकी सूई ।

(१३६४) Actinomycosis : एक्टिनोमाइकोसिस कठजिभिया ।

शल्य-चिकित्सा । मृत तन्तुओंका निकालना । सखियाकी वत्ती, आयडिनकी ५% सूई नसमें २०० सी० सी० ।

(१३६५) Bang's Disease : बैङ्गस डिसीज : सक्रामक गर्भपात ।

खनिज खिलाना । रोधक उपचार ।

(१३६६). Tick Fever . जर्द बुखार ।

देहकी तौलके प्रति २०० रत्तल पर ट्राइपन ब्लू १½ से ३ ग्रेनका १ से ५% घोल, शिराकी सूई । ६, ६ घटे पर । ट्राइपाफ्लावीन १५ ग्रेन ५० सी० सी० नौरमल सेलाइनसे सिराकी सूई जादा अच्छी रहेगी । नौरमल सेलाइन कमजोरीकी हालतमें । खूनकी कमीके लिये १ से २ ड्राम फेरस सल्फेट नित्य । अनाह (कब्ज) में मृदुविरेचक ।

(१३६७). Surra : सर्रा ।

प्रति १०० रत्तल देह-तौल पर ३ % टारटार एमेटिकका घोल ५ सी० सी० शिरामें । ७ ग्रेन तक संखिया दिनमें दो बार ।

(१३६८). Titanus : धनुष्टंकार ।

५० से १०० सी० सी० विरस (एन्टी सिरम) शिरामें । त्वचामें हर दूसरे घटे ५ ड्राम कारबोलिक एसिड, २ आउन्स पानीमें मिलाकर सूई । २४ घटोंमें ३६ ड्राम दिया जा सकता है । क्लोरल हाइड्रेट १ से २ आउन्स गुदासे । त्वचामें ३ से ४ ग्रेन मौरफीनकी सूई । सुषुम्नामें नोभोकेन १% ५० सी० सी० । मैगसल्फकी सूई त्वचामें—प्रतिवार ५० सी० सी० पानीमें ½ आउन्स । १०० सी० सी० कैलशियम क्लोराइडकी सूईके बाद सालभरसन । शिरामें ८% सोडा बाइकार्ब ५०० से १५०० सी० सी० ।

(१३९९). Rabies : कुकुर-विष, कुत्ता काटना।

पाश्चरका इलाज, विग्स (एन्टीसेरम)।

(१४००). White Scour : Septicæmia Neonatorum

सफेद दस्त।

रेंडीके तेलका अवद्रव (एमलसन) १ से २ ड्राम। सोडा बाइकार्ब, विसमथकार्ब और हेक्सामिन प्रत्येक एक एक ड्राम मडके साथ।

(१४०१) Navel Ill : Septicæmia of the New-born :

नाभिकी बीमारी : नवजातका रक्तदोष।

नाभि पर आयडिन लगा कर रोको। रोधक दवा—पोलीभेलेन्ट एन्टीस्ट्रेप्टोकोकस सिरम

(१४०२) Calf Diphtheria　वत्स-रोहिणी।

लूगलका घोल लगाना। पोटाश क्लोरेटसे धोना। परमैंगनेटसे धोना। सैलीसिलिक एसिड पेन्ट लगाना। ग्लिसेरिनमें पपीनेके दूधका १ से ३% घोल गलेमें लगानेके लिये।

(१४०३). Coccidiosis　कोक्सीडियोसिस : खूनी दस्त।

सकोचक, कृमिनाशक। विषमथ सबनाइट्रेट १½ आउन्स और कोयलेकी बुकनी २५० ग्रेन मिलाकर जीभ पर छिड़को। कत्थ २ से ३ गोटी, अजवाइन सत्त १० ग्रेन पानी या मडके साथ नित्य।

परोपजीवी रोग

(१४०४) Helminthiasis : कृमिरोग।

तूतियेका १% घोल ३ से १० आउन्स पिलाना। ½ से १ आउन्स कबीला मडमें मिलाकर खिलाना। तमाकू चूर्णका १% अर्क १०० से ३०० सी० सी० तक। हर्रे ८ आउन्स, मुसब्बर।

(१४१०) Nasal Granuloma or Nasal Schistosomiosis ;

नेसल ग्रेनुलोमा : नकपितिया।

सोडियम एन्टीमनी टारटरेटकी सूई शिरामें।

मुखरोग

(१४१७). Stomatitis : मुँह आना (निनावाँ)।

१ आउन्स नमक और ८ रत्तल पानीसे धोओ। अजवाइन सत्त १० ग्रेन, सोहागा १ ड्राम, पानी १ रत्तलका मुखधोअन, विरेचक।

(१४१८-१९). Stomatitis in Suckling and Salivation : दूधमुँहों या दूधपीतोंका मुँह आना और थूक आना।

सोहागाका लावा मधुमें मिला कर लेप।

(१४२०). Mumps : Parotitis : गलसूआ।

कारबोलिक एसिड १ से २०% का सेक (गरम पानीसे) आयडिन मलहम। आयडिनकी सूई शिरामें। पोटाश आयोडाइड खिलाना।

(१४२१). Obstruction of Oesophagus : महास्रोतावरोध (अन्ननालीका अवरोध)।

यंत्र-उपचार और चीरफाड़।

आमाशय और आँतके रोग

(१४२२). Vomiting : वमन।

कपूर १½ ड्राम मंडके साथ। क्लोरल हाइड्रेट मंडके साथ मात्रा १ आउन्स।

(१४२३) Tympanitis : पेट फूलना।

यांत्रिक और चीरफाडके उपचार।

(१४२४). Foreign Body in the Stomach : पेटमें बाहरी चीजोंका अटकना।

यांत्रिक और चीरफाड़के उपचार।

(१४२५) Gastric Catarrh : पाकाशय-प्रदाह।

पेट साफ करनेके लिये रेंड़ीका तेल। छूत (रोग-सक्रमण) मिटानेके लिये ड्रामकी मात्राओंमें अजवाइनका सत्त। कोयलेका चूर्ण, मात्रा ८ आउन्स पानीमें घोल कर। केओलिन या चीनी मिट्टी ८ आउन्स। संकोचक, अफीम मात्रा १ ड्राम। चूनेका पानी।

(१४२६). Intestinal Colic : अन्त्रशूल ।

कड़े दर्दमें, मौर्फीन २½ से ४ ग्रेन की सूई त्वचामें, तारपीन तेल १ आउन्स किसी मीठे (अनुत्तेजक) तेलमें मिलाकर, इसके बाद मैग सल्फ मात्रा १ रत्तल ।

(१४२७) Chronic Intestinal Catarrh आँतका जीर्ण-प्रदाह ।

विरेचक, सकोचक, उपदाह-प्रशामक या स्निग्धकारक औषध (demulcents) परोपजीवी निकालना ।

यकृतके रोग

(१४२८) Jaundice : पांडु ।

कैलोमल ४ ग्रेनकी आशिक मात्राओंमें और सोडा सल्फ ८ आउन्स नित्य नियमसे ।

(१४२९). Gall Stone : पित्ताश्मरी ।

कठिन दर्द पर २½ से ४ ग्रेन मौर्फीनकी सूई । मृदुविरेचक, रेंडी तेल, मैग० सल्फ ।

उदर्याकला (peritoneum) के रोग

(१४३०) Ascites : जलोदर ।

३ आउन्स सूखी या २½ रत्तल हरी पुनर्नवा । कैलशियम क्लोराइड २ से ४ ड्राम । मैग० सल्फ । छेद करके पानी निकालना ।

(१४३१). Peritonitis : उदर्या-प्रदाह ।

कपूर १ आउन्स तेल ४ आउन्समें मिलाकर पेटकी झिल्लीमें उदर्याक्लामें सूई दो । १ ड्राम अफीम खिलाओ, पोटाश आयोडाइड १ से २ ड्राम । अनाहके लिये मृदुविरेचक ।

नाकके रोग

(१४३२). Nasal Catarrh : सर्दी ।

फिटकरी, वोरिक एसिड, सुहागाका १ % घोल । अजवाइन सत्त १ % तेलमें, फुहारा दो ।

(१४३३). Croupous Rhinitis : पीनस, नाकड़ा।

सर्दीकी तरह सब कुछ। १ से २% सोडा बाइकार्बका घोल कफ या खराब श्लैष्मिक आवरणको गलानेके लिये।

कंठ, क्लोम और फेफड़ेके रोग।

(१४३४). Laryngeal Catarrh : कंठप्रदाह।

नाककी सर्दीकी तरह। १ % सिलभर नाइटेटका घोल लगाओ। कफ या नष्ट श्लेष्मिक आवरण निकालनेके लिये २ से ७ ग्रेन तूतिया पानीके साथ खिलाओ या टारटार एमेटिक २ से ७ ग्रेन पानीके साथ खिलाओ।

(१४३५) Bronchitis : ब्रोङ्काइटिस : काश (पुरानी खाँसी)।

स्निग्धकारक औषध, आक्षेप-रोधक, कफ-निस्सारक, मधुके साथ वासक २ आउन्स सूखी पत्ती प्रति मात्राका अवलेह। एमन क्लोराइड या नसादर २ से ४ ड्राम, पोटाश आयोडाइड १ से २ ड्राम। कंठप्रदाहकी तरह टारटार एमेटिक और तूतिया, मधुके साथ कपूर १ ड्रामका अवलेह।

(१४३६). Infectious Bronchitis : छूतका काश।

काशकी तरह ही। दारुण खांसीके लिये $\frac{1}{4}$ से २ ग्रेन मौर्फीनकी सूई, त्वचामें ४० से ६० सी० सी० दूधकी सूई।

(१४३७). Pneumonia : Croupous Pneumonia : निमोनियाँ क्रूपस निमोनिया।

२ से ३ % क्रियोजोट घोल ५० सी० सी० सुँघाना। सल्फापाइरीडीन। एन्टीफ्लोजिस्टीन, मालिश, प्रति उत्तापक।

(१४३८). Catarrhal Pneumonia or Broncho Pneumonia : ब्रोंको निमोनियाँ।

क्रूपस निमोनियाँकी तरह।

(१४३९) Fibrous Pneumonia : फाइब्रस निमोनियाँ।

कोथघ्नके लिये सल्फापाइरीडीन।

(१४४०). Pleurisy : प्लूरिसी : पार्श्व शूल

प्रति-उत्तापक, पोल्टिस, कपूरकी मालिश। शामक अफीम, सल्फापाइरीडीन।

हृद्रोग

(१४४१) Pericarditis हृत्कोषप्रदाह।

सोडा सैलीसिलस ४ ड्राम। हर्र ८ आउन्स दो बार। मुसव्वर १½ आउन्स, मैगसल्फ १ रत्तलकी मात्रामें।

(१४४२) Myocarditis : हृत्पिंडप्रदाह।

विश्राम, परिचर्या, अर्जुन, स्ट्रिकनीन।

(१४४३). Valvular Disease : हृत्कपाटिका-रोग।

विश्राम, परिचर्या। अर्जुन जैसी हृदयकी पुष्टिकारी दवा।

(१४४४) Palpitation . हौलदिल।

शामक, मौर्फिया, क्लोरल हाइड्रेट या पोटाश ब्रोमाइडकी सूई २० से ४० ग्रेनकी मात्रामें।

(१४४५). Brady Cardia . हृदमदता।

विश्राम।

(१४४६). Irregular Heart . हृदयकी धड़कनकी अनियमितता।

सावधानीसे काम करना। अर्जुन।

(१४४७) Heart Weakness : हृदयकी कमजोरी।

अर्जुन २ आउन्सकी ३ मात्रायें। तेल-कपूरकी सूई। अनाहमें मैग सल्फ।

वृक्क-रोग

(१४४८) Nephritis : वृक्क-प्रदाह।

सोडा बाइकार्ब ½ आउन्स, पोटाश नाइट्रेट २ ड्राम। पुनर्नवा स्वरसी नित्य ४ आउन्स।

(१४४९). Pyelonephritis : पाइलोनेफ्राइटिस वृक्कमें जीवाणु-सचारके कारण सपूय प्रदाह।

यूरोट्रोपीन १½ ड्राम। सल्फापाइरीडीन।

रक्तरोग

(१४५०). Anæmia and Bleeding . रक्ताल्पता और रक्तस्राव।

२० सी० सी० दूधकी सूई। कैलशियम क्लोराइड ½ आउन्सकी मात्रामें

फिटकरी तारपीन। नौरमल सेलाइन त्वचामें ५ से १० पाइन्ट। दहीमें तावा, संखिया २ ग्रेनकी मात्रामें।

मस्तिष्क-रोग

(१४५१) Concussion of Brain : मस्तिष्काघात।

विश्राम। छेड़छाड़ मत करो।

(१४५२) Congestion of Brain : मस्तिष्ककी सकुन्नता (रक्ताधिक्य)।

स्ट्रिकनीन ३/४ ग्रेनकी सूई। तेलमें १५% कपूर ३/४ से १ आउन्सकी सूई।

(१४५३). Sun Stroke : लू लगना।

सिर पर ठंढी पट्टी। स्पज करना।

(१४५४) Meningitis : मेनिञ्जाइटिस : गर्दन तोड़।

पोटाश आयोडाइड २ से ३ ड्राम। मालिश, कटि-छेदन, १०० सी० सी० में १० ग्रेन क्लोरल हाइड्रेटकी सूई।

(१४५५) Milk Fever दुग्धज्वर।

कैलशियम ग्लूकोनेट २ आउन्स, बोरिक एसिड ३ ड्राम और पानी १४ आउन्स मिलाओ, गरम करो, त्वचामें सूई दो। चूचीसे हवा फूको।

(१४५६) Tetany : धनुषी।

अलकली कारबोनेट, कैलशियम फौस्फेट, शामक।

चर्मरोग

(१४५७) Urticaria : पित्ती।

सरल विरेचन। कैलशियम क्लोराइड नौरमल सेलाइनमें।

(१४५८). Eczema : एक्जोमा : छाजन।

कारबोलिक तेल ५%, बोरिक चूर्ण १०%, सैलीसिलिक तेल ५%, जस्ता-भस्म ५%, पिकरिक घोल १%, पपीतेका १ से ५% घोल। सैलीसिलिक एसिटकी सूखी बुकनीमें ५०% बोरिक एसिड। त्वचामें २० सी० सी० दूधकी सूई।

(१४५९). Dermatitis : त्वक्प्रदाह।

बोरिक मलहम १०%, पिकरिक एसिड १%।

(१४६०). Gangrene of Skin : त्वचाकी ग्रैंग्रीन ।

कोथघ्न पट्टी ।

(१४६१). Acne : कील : मुहासा ।

टिकचर आयडिन, एसिड सैलीसिलिक मलहम ५%, सोडा बाईकार्बका घोल सफाईके लिये मलो ।

(१४६२). Ringworm : दाद ।

एसिड सैलीसिलिक मलहम १०%, चूनेका पानी ५%, सोडा बाईकार्ब २½% धोअन ।

(१४६३). Mange : पकी खुजली ।

१०% तमाकूका चूनेके साथ काढा ।

(१४६४). Ticks : किलनी ।

नमक, तमाकूका काढा लगाओ ।

(१४६५). Lice : जू ।

तारपीन ।

(१४६६). Warble Flies : कुकुरमक्खी ।

नमकका संपृक्त घोल । डेरीस पाउडर । तमाकू ४ रत्तल, पानी ४ रत्तल, चूना १ रत्तल मिलाओ, छानो, लगाओ ।

(१४६७). Hump Sore : कुब्बका घाव ।

तमाकू चूर्ण १ भाग, मुर्दासिख १ भाग, नारियल तेलमें लेप बनाओ, लगाओ ।

अपोषण रोग

(१४६८). Rickets : सुखडी, फक्करोग ।

कैलशियम कारबोनेट, हड्डीका चूर्ण ।

(१४६९). Osteomalacia : मृद्वस्थि ।

सुखडीकी तरह ।

सर्वाङ्गीन साधारण रोग (Constitutional Diseases)

(१४७०). Paralysis : पक्षाघात ।

कुचला, दस्तावर, मालिश ।

(१४७१). Rheumatic Arthritis : सन्धिवात, गठिया।
सोडा सैलीसिलस, १० सी० सी० में २० ग्रेनकी सूई त्वचामें। कपूर-तारपीनको मालिश।

स्त्री-रोग

(१४७२). Mastitis : थनैला, स्तन-प्रदाह।
एनोडाइन, एन्टीफ्लोजिस्टीन, सल्फापाइरीडीन। पोलीभैलेन्ट स्ट्रेप्टोभैक्सीनकी सूई।

(१४७३) Metritis . जरायु-प्रदाह, प्रसूती-ज्वर।
परमैंगनेट १ : २०००, आयोडोफौर्मकी पेसरी (गर्भाशयके मुँह पर लगानेके लिये वस्तु-विशेष) सल्फापाइरीडीन। पोलीभैलेन्ट स्ट्रेप्टो भैक्सीनकी सूई।

भारतमें गाय

दूसरा खंड

सातवाँ भाग

रोग और उनकी चिकित्सा

गायके भीतरी अवयव
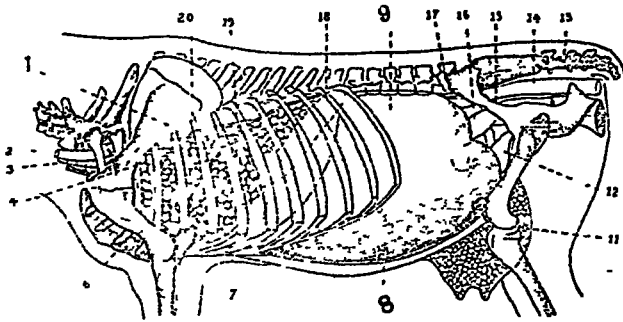
चित्र १६१

१. महा धमनी २. अन्नवहा ३ क्लोमनलिका ४ फुस्फुसाभिगा धमनी ६. हृदय ७. जालाशय ८, ९. रोमन्थाशय ११. थन १२ मूत्राशय १३. भग, योनि १४ गुदा १५. गवीनी, मूत्रनाली १६. गर्भाशय १७. बायाँ डिम्बकोष १८. प्लीहा २०. पिछली महाशिरा।

सातवें भागका परिचय

रोगपीड़ित गायोंकी चिकित्सा बड़े महत्वका विषय है। साधारण रोगोंकी चिकित्साकी एक तरहकी पद्धति भारतके देहातोंमें प्रचलित थी। पर इस चिकित्सा-पद्धतिका ज्ञान लुप्त हो रहा है। लेकिन विदेशी चिकित्सा उसका स्थान देहातमें नहीं ले सकी है। यद्यपि गायके रोग, उनका निवारण करना और चिकित्सा इस बारेमें शास्त्रवेत्ताओंने बहुत ज्ञान अब प्राप्त कर लिया है। पर यह ज्ञान देहातमें बहुत कम पहुँच पाया है। मनुष्यके रोगोंके लिये लोग कितने वैद्योंका भार उठा रहे हैं। सरकारी नौकरीके अलावा गैरसरकारी और पारिवारिक आवश्यकताओंके लिये वैद्योंका भार उठाया जाता है। हर दो आदमी पर एक ढोर है जो मोटा मोटी ४० करोड़ आदमियों पर २० करोड़ ढोर हुए। फिर भी पशुचिकित्सकका खर्च व्यक्तियों द्वारा उठानेकी प्रथा अभी नहीं चली है। पशुचिकित्साका सारा खर्च अभी सरकार या जिला या म्युनिसपल बोर्ड जैसी सार्वजनिक संस्थायें करती है। गैरसरकारी चिकित्सक इनेगिने ही हैं। इस कारण ढोरोंको अनेक रोग सताते हैं जो रुक सकते हैं। साधारण तौरपर इनका स्वास्थ्य मनुष्योंसे कहीं अच्छा रहता है, फिर भी ये रोगग्रस्त होते हैं। बुखार, निमोनियां, पेचिश, अतिसार, छई आदि बहुत नुकसान करते है। प्राय: चीरफाड़की व्याधियां भी हो जाती हैं। चोट, कटना, जलना, छाला, फोडाफुसी, हड्डी टूटना, हड्डी उतरना इनका उपचार शायद ही होता है। इनके कारण बहुत कष्ट होता है। और सन्निवात जैसे रोगोंसे पशु बेकार भी हो जाते है। जिस आदमीका इन रोगों और उनकी चिकित्साका थोड़ा भी ज्ञान है वह इनमें सेवा कर सकता है। पशुओं और मनुष्योंके कुछ रोग तो एक ही है। अनपच, अतिसार, बाहरी और भीतरी परोपजीवी, बाहरी जूं, किलनी आदि और चीरफाड़की व्याधियोंकी चिकित्सा मनुष्यों जैसी ही है। और दवा भी वही हैं। भेद केवल मात्राका है। और पाचन प्रणालीकी रचना पर गौर रखना होता है। जो आदमी मनुष्यकी चिकित्सा जानता है वह अपने ज्ञानको पशुकी चिकित्सा में भी अच्छी तरह लगा सकता है। इसलिये हमारे ग्राम-वैद्य को जैसा ज्ञान होना चाहिये वैसेसे गायके साधारण रोगकी बहुत कुछ चिकित्सा हो सकती है।

संक्रामक रोग

पशुओंमें विभिन्न अंगोंके रोगोंके सिवा सक्रामक और छूतके रोगोंका एक अलग वर्ग है। अन्य सभी रोग महत्वमें इनसे दब जाते हैं। बीमारी जब फैलती है तब हजारों ढोर ले बैठती है। भेटरिनरी विभागको मारी (epidemics) और बारहमासी या कायम मुकामी (endemic) रोगोंसे जितने ढोर मरनेकी खबर मिलती है उससे कहीं जादे मरते हैं। इतनी अधूरी खबरके मुताबिक भी संक्रामक रोगोंसे मरनेका लेखा खाली अंगरेजी भारतमें २½ से ३ लाख हर साल है। देशी राज्य भी जोड़नेसे मृत्युका लेखा प्रति वर्ष ४ से ४½ लाख होगा। इस कुलका आधा केवल माताकी (Rinderpest) भेंट होते हैं। माताके बाद छूतकी बीमारियोंमें गलघोंट्, लगड़ी, गिल्टी, खुरपकाका नाम है। सन् १९३७ में छूतकी बीमारियोंकी कुल मृत्यु सख्याके अनुपातमें इन बीमारियों की मृत्युसख्या नीचे लिखे अनुसार है :—

सक्रामक बीमारियोंसे कुल मृत्यु २ ३६,१७७

नीचे लिखे रोगोंसे मृत्यु	प्रतिशत
माता (रिन्डरपेस्ट)	४९ १
गलघोंट् (हेमोरेजिक सेप्टिसेमिया)	२२.६
लगडी (ब्लैक क्वार्टर) .. .	८.२
गिल्टी (एन्थ्रेक्स)	४ ४
अन्य सक्रामक रोग .. .	१५.७
कुल मृत्यु	१०० प्रतिशत

खुरपकेकी मृत्यु सख्या कम है। रोगग्रस्त ढोरमें ४ या ५ सैकडा ही मरते हैं। पर रोग देहका सत्यानाश कर देता है। बचजानेवाले पशुका पहला स्वास्थ्य बहुत दिनोंमें लौटता है। उनमें अनेक तो निकम्मे हो जाते हैं। खुरपकेसे अकूत आर्थिक हानि होती है। इसकी संक्रामकता सबसे बढी चढी है।

संक्रामक रोगोंसे मृत्यु और आर्थिक हानि सुस्पष्ट है। इसलिये पहले इनका ही विवेचन करूँगा। इसके बाद क्रमानुसार अन्य रोग और उनकी चिकित्साका वर्णन करूंगा। चिकित्साके पहले रोगी पशुकी परीक्षा और निदानके लिये एक अध्याय

(अध्याय ३७) है। पशु-चिकित्सकको पहली बात यह जाननी चाहिये कि, पशुकी परीक्षा कैसे की जाय और किसी रोगका कारण कहाँ खोजा जाय। इस अध्यायके बादके अध्याय ३८ में इन रोगोंके साधारण लक्षण, क्षमता (immunity) और पृथक्करणके सिद्धान्तों पर विचार है। यह संक्रामक रोगोंकी चर्चाकी पूर्व पीठिका है।

संक्रामक रोगोंके बाद एक एक करके विभिन्न अवयवोंके रोगोंकी समीक्षा है। अलग अलग अध्यायोंमें ये विषय वर्णित हैं।

मूढ गर्भ, प्रसवकी कठिनाई और मामूली चीरफाड़ इसके बाद है। अन्तिम अध्यायमें साधारण ज्ञातव्य और शब्द परिचय हैं।

अध्याय ३७

गायकी परीक्षा और रोगनिदान।

१३५६. निदानकी आवश्यकता।

रोगकी चिकित्साके लिये सही निदान पहली चीज है। देहमें परिवर्तन, अवयवोंकी हालतमें परिवर्तन, बाहरी लक्षण, साधारण रुचि, भोजनकी रुचि, मलमूत्र और निस्रावके रंग ढंग और अन्य लक्षण समझने होते हैं। इस छानबीनसे बीमारीका ठीक पता चलता है। आगे रोग-परीक्षाको सरल विधि बतायी गयी है। इससे जिन लोगोंको इस बारेमें कुछ भी नहीं मालूम वह भी कुछ जान सकेंगे। इसीलिये कुछ रोगोंके नाम और उनके मुख्य लक्षण संक्षेपमें दिये गये हैं और अवयवोंकी जाँचकी विधि भी साथ ही बतायी गयी है। रोगोंकी विधिवत् चिकित्सामें अधिक विस्तारसे समझाया गया है। रोगोंकी कुछ पहचान और उनके ध्यानका परिचय करानेके लिये यहाँ कुछ लक्षणोंका ही वर्णन है।

१३५७. परिदर्शनसे रोगका निदान।

रोगके लक्षण देखकर, रोगी अवयवकी जाँच कर और रोगकी विशेषतायें समझ कर रोगका निदान किया जाता है।

विधिवत् काम करनेके लिये, पशुके मालिक या पालकसे उसकी हालतके बारेमें प्रश्न पूछना चाहिये। इन बातोंकी जानकारीके लिये प्रश्न करना चाहिये :—

(१) किस तारीखसे रोग है।
(२) रोग बतानेवाले लक्षण।
(३) रोगका कोई कारण यदि मालूम हो।
(४) पशु कैसे बीमार पड़ा।
(५) क्या एक ही रोगसे कई पशु पीड़ित हैं? जैसे संक्रामक रोग, विष-प्रयोग इत्यादि।
(६) पशुको पहले क्या दवा दी गयी या उसका क्या इलाज हुआ।

ऊपरके प्रश्नोंके उत्तरसे पशु चिकित्सकको इस बातका कुछ अन्दाज मिल जायगा कि गड़बड़ी क्या है। तब वह उसकी जाँच करेगा।

परीक्षाका पहला मुद्दा परिदर्शन होना चाहिये। अगर पशु पूरे आकारका है तो उसके चारों ओर घूम कर बिना छूए देखना चाहिये कि, उसके सभी अंग साधारण हालतमें हैं कि नहीं। अगर कोई असाधारण बात होगी तो उस पर ध्यान देगा। जाँचमें सहूलियत हो इसलिये देहके नीचे लिखे भाग याद रखें: (१) सिर (२) गर्दन (३) छाती (४) उदर (५) श्रोणी (६) शाखायें।

(१) सिरके दो भाग हैं (क) मुखमंडल और (ख) ललाट

(क) मुखमंडल :

१. नाक-प्रदेश।
२. ओठ-प्रदेश।
३. मुख-प्रदेश।
४. आँख-प्रदेश।
५. हनु और हन्वन्तरभाग-प्रदेश।

(ख) ललाट

६. ललाट (पुरः कपाल)—प्रदेश।
७. पश्चिमकपाल-प्रदेश।
८. शंख-प्रदेश।

(२) गर्दन

९. कनपटी (कर्णमूल)-प्रदेश ।

१०. क्लाम-प्रदेश ।

११ ग्रीवा-प्रदेश ।

१२ ग्रीवापार्श्व-प्रदेश ।
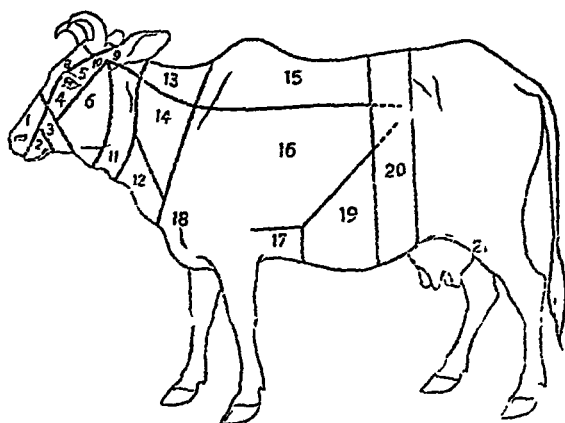
चित्र १६२　देहके प्रदेश (भाग)

1. नाक, 2 ओठ, 3 मुख, 4. आंख, 5. हनु-दण्ड, 6 चर्वणक, 8. पुरःकपाल, 9 पश्चिमकपाल, 10 शंख, 11. कर्णमूल, 12. क्लोम 13 ग्रीवा, 14 पार्श्वग्रीवा, 15. पुट्ठा [कुब्ब], 16. वक्षोदर, 17. उर, 18 छाती, 19 पूर्व पक्वाशय, 20. मध्य पक्वाशय, 21 पश्चिम पक्वाशय

(३) छाती

१३. पुट्ठा (कुब्ब) ।

१४ वक्षोदर प्रदेश, छातीके पार्श्व, अंशफलक, पर्शुका प्रदेश, हृद्देश ।

१५. उरीय प्रदेश ।

१६. छाती ।

(४) उदर

१७. पूर्व पक्वाशय देश, निचला किनारा

१८. मध्य पक्वाशय-देश, नाभि, श्रोणि और कटि-देश

१९ पश्चिम पक्वाशय प्रदेश

(५) श्रोणि

२०. कटि-पश्चात् प्रदेश, नितम्ब, गुदा, भग और वंक्षण-प्रदेश।

(६) शाखायें

आगेके अंग :— कंधा, कंधेकी नोक, बाहु, कुहनी, हाथ, घुटना, करभ, टखना, खुर।

पीछेके अंग :— जांघ, घुटना, टांग, टखना, पिछला करभ।

इन अंगोंका पाँचवें भाग—गायकी देहमें वर्णन हो चुका है।

१३५८. स्पर्शन, ताड़न और श्रवण द्वारा निदान।

पशुको साधारण तौर पर देखनेके बाद स्पर्शन, ताडन और श्रवण द्वारा परीक्षाकी जाती है।

१. स्पर्शन (Palpation): जिस अंगकी परीक्षा करनी होती है उसे अंगुलियोंसे छूआ जाता है। इससे उस अंगका तापमान, सनसनी (चेतनता) असाधारणता (विषमता) और यदि सूजन हो तो कितनी और कैसी है मालूम हो जाता है। इस परीक्षासे पता चल सकता है कि वह अंग पिलपिला है—सूजनमें रस या सिरम जमा हो जाने पर दबानेमें जिस तरह दबाव कुछ देर तक बना रहता है उस तरह है या नहीं।

अंग दृढ हो सकता है, हड्डीकी तरह कड़ा हो सकता है या नरम और पिलपिला हो सकता है। दबानेसे यदि किसी अंगमें तरंगसी उठे तो यह समझना चाहिये कि मवाद, खून या रस जैसे तरल पदार्थ जमा हो गये हैं।

सूजन गुब्बारेसी फूली हो सकती है जो दबानेपर चटचट आवाजके साथ जगह बदले। यह तन्तुओं या फेफड़े मे गैस जमा हो जानेसे होता है जैसे कि लंगड़ीमें।

२ ताड़न : Percussion : ठोकनेसे जो आवाज निकलती है उससे परीक्षा करनेको ताड़न कहते हैं।

ताड़ित अगकी आवाजसे प्राय: उस अगकी हालतका पता मिल जाता है। आवाजोंमें स्पष्ट फर्क होता है।

इस कामके लिये बायें हाथकी तर्जनी या मध्यमा उँगली उस अग पर रख कर दाहिने हाथकी मध्यमासे उसे ठोकते हैं। ताडन ऊपरसे नीचेकी ओर लम्बरूपमें सीधे और जोरसे करना चाहिये। बायें हाथकी उँगली या उँगलियाँ देहसे खूब सटी होनी चाहिये। यदि उँगली और देहके बीच कुछ भी जगह खाली रह जायगी तो परीक्षामें ठीक पता नहीं चलेगा। कितनी जगहकी परीक्षा करनी है उसके अनुसार तर्जनी और मध्यमा दोनों ही रखनी चाहिये। ठोकर तर्जनी और मध्यमा दोनोंकी पोर मिलाकर लगायी जा सकती है। बायें हाथकी उँगली जगह जगह रख कर ठोकना और आवाज पर ध्यान देना चाहिये।

यदि ठोकर गहरी देनी हो तो मुँगरीसे (plexor) काम लिया जा सकता है। दुबले पशुके लिये हल्की ठोकरही काम देगी पर मोटेके लिये ज्यादा जोरसे ठोकर देना होता है। साधारण तौरपर एक जगह दो तीन ठोकरोंसे आवाजका पता चल जाता है। यह ध्यान रखना चाहिये कि पशु डर और घबडा न जाय। उसे पुचकारकर शान्त करना चाहिये।

ताड़नकी आवाजके लक्षण : ठोस वायुहीन भाग पर ठोकर लगानेसे आवाज अल्पकालिक और हल्की होती है। इसे मन्द (dull or flat) स्वर कहते हैं।

पर जिस अगमें वायु भरी है जैसे कि फेफडा, उसके ऊपर ठोकनेसे तो आवाज काफी गहरी, स्थायी और भारी होती है। इसे गूँजनी (resonant) आवाज कहते हैं। जितने जोरकी ठोकर होगी उतनी स्पष्ट आवाज। ऊपरके तन्तु जितने पतले होंगे फेफडेके तन्तु उतने ही गूँजेंगे। यदि ठोकनकी जगह पर हवावाला अग कम होगा तो कम गहरी आवाज होगी।

गूँजनेकी आवाजका ढग अगकी हालतके अनुसार होता है। गूंजनकी परीक्षा उनके ढगके अनुसार होती है। इनका वर्गीकरण नीचे लिखे अनुसार होता है :

(१) दुदुभी (Tympanic) : यह स्वर एक तरहका और तालसे होता है।

(२) भरी आवाज : स्वर जब तालसे और एक तरहका न हो।

यह गुंजन धीरे धीरे मंद हो जा सकता है। इसे मन्द गुंजन कहते हैं। यह धीरे धीरे और धीमा होकर पूरी तरह मन्द हो जा सकता है।

'भरी' आवाज अच्छे फेफड़ेमे आती है। वायु वायुकोप, फुसफुस-तन्तु और उसकी दीवारमें गूँजती है।

ठोंके जानेवाले खातका यदि बाहरी हवामे सरोकार हो जैसे श्वास-नलिकाकी (trachea) हवासे, तो आवाज दुन्दुभीकी तरह और खोखली होती है। क्लोम नलिकाओं (bronchii) से मिले फेफड़ेके कोष्ठकोंकी आवाज दुन्दुभीकी होती है। कोष्ठकके आकार और उसके बाहरी सरोकारके अनुसार आवाज ऊँची नीची होती है। दुन्दुभीकी आवाज पेटजैसे हवाभरे खातोंसे आती है।

यदि फेफड़ेके हवाभरे तन्तुके चारो ओर कड़ी चीज हो जैसे फेफड़ेकी गाँठ (tumour) तो दुन्दुभीकी आवाज सुन पड़ती है।

काँपतेहुए धातुके पत्तरसे निकली झनझनाहटकी तरह आवाज फेफड़ेके खातों से क्रूपस निमोनिया में सुनाई पड़ती है। जब कफ निकलने लगता है तब ऐसी आवाज मालूम पड़ती है। फटे फेफड़ेसे फुटे बर्तनकी आवाज आती है।

३. श्रवण : Auscultation : यह परीक्षा भीतरके अवयवोंकी हालत जाननेके लिये अगपर कान रख आवाज सुनकर होती है। हृदय, फेफड़े, पाकाशय तथा आंतोंपर यह होती है। इस कामके लिये दो नलीवाला स्टेथस्कोप काममें आ सकता है। अंग पर कान लगा कर सुनना यन्त्रोंकी अपेक्षा अधिक उपयोगी है। कान दृढ़तासे लगाना चाहिये।

१३५६. स्थिति या आकृतिसे रोगका निदान

रोगीकी साधारण या बाहरी आकृति या भाव देखकर परीक्षा होती है।

रोगीके हावभाव और उसकी देहकी हालत और आकृति देखकर रोग पहचाना जा सकता है।

उदाहरणके लिये नीचे लिखे रोगोंमें सिर तना और ऐंठा रहता है—गलप्रदाह, धनुष्टंकार, पेशियोंका वात आदि।

पशु जब बहुत बीमार होता है तो वह सिर गिराये रहता है, सुस्त रहता है, कान झुके रहते हैं। गायोंको योनि-प्रदाह होने पर वह पूँछ उठाये रहती हैं।

बार बार मूतती हैं और उस समय पैर फैलाती हैं। यह हालत जरा गौर करनेसे समझमें आ सकती है।

छाती और पेटमें दर्द हो और वह हिलने डुलनेसे बढ़े तो पशु तना और शान्त रहता है।

निमोनियाँ और पार्श्वशूल (प्लूरिसी) होने पर पशु खड़ा रहता है। लेटेगा तो उसी करवट जिधर तकलीफ है। क्योंकि दबनेसे दर्दमें कुछ आराम मिलता है।

पेट-दर्दमें पशु लेटता, खड़ा होता और बेचैन रहता है। वह बगलकी ओर देखता है। प्रसवके समय गाय बेचैन हो जाती है। उठती बैठती और पीड़ होती रहती है। कभी कभी उदरशूलके लक्षण दिखायी पड़ते हैं। मांस लेनेमें कष्ट बेचैनी और चिन्ताके साथ इधर उधर घूमती है।

चाल　कड़े बुखारमें चाल मन्द और कष्टकारी हो जाती है। धनुष्टंकार और आमवातमें चाल कड़ी न मुड़नेवाली हो जाती है। लँगड़ीमें बछड़े लँगड़ाने लगते हैं। खुरपका और सन्धिवातमें एक या अधिक पैरोंमें लँगड़ापन आ जाता है।

लेटना। कभी कभी पशु खड़ा नहीं हो सकता। इसके भिन्न कारण हो सकते हैं। यदि वह खड़ा न हो सका तो उसे खड़ा करना कठिन है। कभी कभी ऐसा होता है कि, गाय जिद्दमें आकर खड़ी नहीं होती। यदि वह बहुत दिनसे पड़ी हो तो खासकर ऐसा करती है। यदि पशुके पैरमें कठिन पीड़ा हो तो वह उठ नहीं सकता। उदरशूलमें भी बैठ जाने पर पशुका तुरत उठना कठिन है।

धनुष्टंकारमें पशु सहारे बिना नहीं भी उठ सकता है। करवट रहनेसे ऊपरकी तरफके दोनों पैर जमीन से नहीं लगते। धनुष्टंकारमें पशु बेचैन हो सकता है और उसे पसीना चल सकता है।

पक्षाघातमें यदि रीढ़ रोगाक्रांत हो तो पशु खड़ा नहीं हो सकता। उत्तर-प्रसव (post-partum) या प्राग्प्रस (Ante-partum) पक्षाघातमें गाय खड़ी नहीं हो सकती। दुग्धज्वरमें गाय मूर्च्छाकीसी हालतमें होती है मानो गहरी नींद में सोयी हो। सिर छातीसे लगा रहता है। यदि सिर उठाया जाय तो तुरत गिर कर जहाँ था वहीं चला जायगा। गर्दन-तोड़में गर्दन कड़ी रहती है। इसके बाद लकवा हो सकता है। रोगी करवट पड़ा रहता है। उसका सिर पीछेकी ओर-मुड़ा रहता है।

सन्धिवातमें सूजन हो जाती है। यह गरम और कष्टदायक होती है। यदि कई सन्धियोंमें रोग हुआ तो रोगी पड़ा रहता है। तेज बुखार रहता है, भूख नहीं लगती और रोमन्थ बन्द हो जाता है।

१३६०. चमड़ेकी हालतसे रोग परीक्षा

चमड़ेकी हालतसे प्रायः स्वास्थ्यका हाल मालूम हो जाता है। सुस्थदशामें चमड़ेपरका रोआँ चिकना और चमकदार रहता है।

ठंडसे रोआँ खड़ा हो जाता है। अनेक छूतके रोगोंमें सारे बदनके रोएँ खड़े हो जाते हैं।

रोआँ झड़ना. जाड़ेमें ढोर को मुलायम रोआँ निकलना है। जाड़ेके पहले पुराना रोआँ झड़ जाता है। बसन्तके आरम्भमें यह झड़ जाता है। मौसमी झड़नमें दुष्पोषणसे गड़बड़ी होती है। कठिन रोगके बाद भी रोआँ झड़ सकता है।

पसीना चलना : कुछ कुछ पसीना हमेशा चलता रहता है। जो दिखायी नहीं पड़ता। मेहनत करनेसे पसीना दिखायी पड़ता है। श्वासकष्ट (dyspnea) रोगमें बहुत पसीना चलता है। मल या दूषित पदार्थ निकाल बाहर करनेके लिये ऐसा होता है। कठिन गलघोंटूमें भी बहुत पसीना चलता है।

चमड़ेकी सूजन : ऐसी सूजनसे रोगकी पहचानमें सहूलियत होती है। चमड़ेके नीचे जोड़नेवाले ततुओंमें रसके जमा होनेसे चमड़ेमें सूजन होती है। यह जलोदर या साधारण तौरपर एक जगह होनेवाले प्रदाहके कारण हो सकती है।

त्वचाके श्वासावरोध से भी यह हो सकता है। इसमें गैस त्वचाके ततुओंमें जमा हो जाती है और दबानेसे चटचट आवाज करती है। जैसाकि लँगडीमें होता है।

पित्ती : चमड़े पर पित्ती निकल सकती है। यह अंकुर-पिंडों (papillary body) की सूजनके कारण होता है।

चमड़ेमें जल जमा होनेसे बहिस्त्वक् पर छाले पड़ जाते हैं। यह छोटे छोटे मटरके दानेसे होते हैं। बड़े छालोंको फफोला कहते हैं। खुरपका और शीतलामें छाले निकलते हैं। शीतलाके छाले (vesicles) जब सूखते हैं तो दाग रह जाते हैं। ये छालोंके संकुचनसे होते हैं। छालेमें पीब भरने पर उसका नाम (व्रण) फुन्सी (pustules) होता है। व्रणकी ऊपरी खाल उतर जाय और भीतरी भाग

उघर जाय तो उसे खुला व्रण (अल्सर) कहते हैं। वाह्य त्वक् उडने लगे तो उसे स्कर्फ कहते हैं। चमडेसे निकले द्रवकी खूँट (निःस्राव) जम जाती है। उसे पपड़ी या खुट्टी (scale) कहते हैं।

प्रूराइगो (prurigo) एक तरहकी फुसी है जिसमें खुजली होती है।

एकाएक सूजनको पित्ती (urticaria) कहते हैं।

गलघोंट्में कठमें सूजन होती है।

मातामें भी चमडे पर दाने निकलते है।

१३६०क. आँखकी परीक्षा

आंखसे पानी वहना रोगका परिचायक है। केरॅटोमेलेसिया (नेत्रके स्वच्छ मडल का नरम होना), माता और सर्दीके वुखारमे भी पानी वहता है। पाटुमे कोआका रग वदल कर पीला हो जाता है। माता और गिल्टी आदिमें कोआ सूज जाता है।

१३६१. देहके तापमानकी परीक्षा

इसके लिये डाक्टरी थरमामीटरसे काम लेना होता है। थरमामीटर गुदामें करीव करीव पूरा घुसेड़ दिया जाता है। रोग निदानमें देहके तापमानका वडा महत्व है। छूतके रोग फैलने पर और कोई लक्षण प्रगट होनेके पहले नित्य ताप-मान देखनेसे भी रोगकी छूतका पता चल जाता है। कुछ प्रवीणोंके मतसे गायका साधारण तापमान १००·५ से १०३ १ डिग्री फा० है। साधारण तौर पर वह १०१ और १०२ डिग्री फा०के वीच रहता है। गाभिन गायका तापमान १ ५ डिग्री जादा रहता है। तेज कामसे तापमान वढता है। तापमानमें नित्य कुछ फर्क हुआ करता है। सवसे कम सवेरे और साँझको सवसे जादा।

तापमान वढनेसे ज्वर होता है। यदि तापमान तेजीसे वढे तो ठढ और कँपकपी होती है। एसी ठढ माता, गलघोंट् आदिमें होती है।

घातक रोगोंमें मरणकालमें तापमान साधारणसे कम हो जाता है।

मुट्ठीसे कानकी जड़ पकड़कर वाहरी तापमान जाना जाता है। कभी कभी थरमामीटरकी अपेक्षा हाथसे साधारण तापमानमे हुआ फर्क अधिक साफ मालूम होता है। यदि गुदामें मल हुआ तो थरमामीटरमे सही पता नहीं चलता।

१३६२. नाड़ी-परीक्षा

सुवीतेकी किसी मुख्य धमनी पर नाडी देखी जा सकती है। गायकी नाडी सबसे ज्यादा जबड़ेके नीचे देखी जाती है। बहि:प्रकोष्ठी या (radial) धमनी या प्रपादीया या पादतलिका (planter) धमनी आदि भी देखी जा सकती है। पूँछकी जडमें भी सुवीतेसे नाड़ी देखी जा सकती है। पूँछ जरा उठाकर नाडी देख सकते हैं। बीचकी तीनों उँगलियोंका छोर धमनी पर दबाकर नाडी देखी जाती है। अँगूठा लवकी तरह रहता है। दबावसे कमी बेशी करिये और धमनीको सरकाइये इससे स्पन्दन बहुत स्पष्ट मालूम होता है। जब नाड़ीकी चाल साफ मालूम होने लगे तो घड़ी देख कर प्रति मिनट उसकी चाल गिनिये।

गायकी नाडी प्राय: ४५ और ५५ के बीच रहती है। छोटेकी अपेक्षा बड़े पशुओंकी नाडी कम चलती है। सयानोंकी नाडी छोटोंसे कम चलती है। स्त्रियोंकी पुरुषोंसे ज्यादा। अच्छी नस्लके पशुकी नाडी दोगलोंसे धीमी चलती है।

गायोंकी नाडी यदि प्रति मिनट १०० से अधिक जैसे कि १२०-१५० हो तो यह कठिन रोगकी सूचक है। हर हालतमें नाड़ी तापमानके अनुसार नहीं होती। गलघोंटू या गिल्टी आदिमें ऐसा ही होता है। ज्वरकी प्रतिक्रिया हृदय पर जैसी होती है उसी पर नाड़ीकी चाल निर्भर है।

दर्दकी हालतमे नाड़ी तेज हो जाती है जैसे कि, कड़ी चोट, हड्डी टूटना, खुर पर फोडा आदि होने पर। दिमागी उत्तेजना होने पर भी नाड़ी तेज होती है।

नाडी "क्षीण" या "प्रवल" हो सकती है। यह बिचली उँगली दबा कर जाना जा सकता है। हिलने डुलनेसे नाड़ीकी प्रबलता बढ जाती है। नाड़ीकी क्षीणताकी मात्रासे रोगकी कठिनता जानी जाती है।

नाडी 'कठिन' या 'मृदु' हो सकती है। कड़े दर्दमें नाड़ी कठिन होती है। इतना थोडा स्फुरण हो कि, जरासा भी होने पर कंपन मालूम पड़े तो इसे 'कंपित' नाडी कहते हैं। नाड़ी इतनी क्षीण और मृदु हो कि, कठिनतासे मालूम पड़े तो उसे 'सौत्रिक' कहते हैं।

१३६३ हृदय-परीक्षा

छातीपर हथेली रख कर हृदय देखा जाता है। खड़े पशुकी परीक्षा सबसे बढ़िया होती है। मन्द धड़कन मालूम होगी। हृदयकी धड़कन सबसे बढ़िया

वहां मालूम होती है जहां ५ वीं पसली तरुणास्थिसे मिलती है। ताडन द्वारा हृदयकी स्थितिका पता लगाना चाहिये। क्योंकि इसका एक भाग छातीकी दीवालसे लगा रहता है।

हृदयका बड़ा भाग फेफड़ेसे ढका रहता है। इसलिये बायीं तरफ तीसरी और चौथी पसलीके बीचकी जगह ताडन करनेसे अपेक्षाकृत कम आवाज सुनायी देगी। पार्श्वशूल या हृदयशूलमें ताडन करनेसे पशुको पीडा होती है।
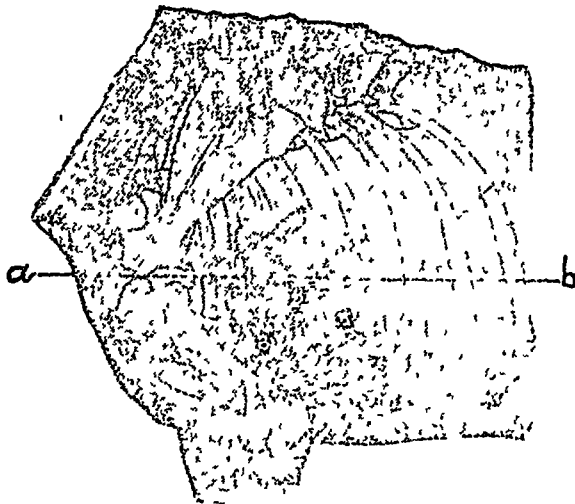
चित्र १६३. अस्थि-पञ्जर (पसली) के बीच हृदय।

(a-b). कंधेकी सीध, १. वाम अलिन्द और निलयके द्वार २. प्रतिहारिणी . ३. फुसफुसाभिगा धमनी।

हृदय-श्रवण बायीं ओर बायीं कुहनीसे जरा पीछे, पैर आगेकी ओर खींच कर वहां कान लगानेसे हृदयकी धड़कन सुनायी देगी। दो स्वर सुन पड़ते हैं। सकोची (सिस्टोलिक) अर्थात पहला स्वर और दूसरा स्वर विकासी (डायस्टोलिक)। पहला स्वर अपेक्षाकृत मन्द, गंभीर और लंबा होता है और साधारण तौरपर दूसरेसे ऊँचा होता है। यह दूसरा उतना गम्भीर नहीं होता है। और

कभी कभी धातुके स्वरकी तरहका होता है। लब, डब इन शब्दोंसे हृदयके स्वरकी नकल की जा सकती है। रोगजनित स्वरोंको पहचानने और उससे हृदयकी हालत और रोग समझनेमें बहुत अनुभवकी आवश्यकता होती है।

१३६४. श्वासकी इन्द्रियोंकी परीक्षा

प्रति मिनिट सांस गिननेके लिये पार्श्वका फूलना पचकना गिना जा सकता है। गायको साधारण तौरपर प्रति मिनट १२ से १६ बार सांस चलती है।

परिश्रम या खानेके बाद तुरत सांस साधारण ढंगसे नहीं चलती। रोगमें भी यह मामूली चालसे नहीं चलती। यदि रोगके कारण सांसलेनेमें कष्ट हो या ज्यादा सांस चले तो उसे श्वास कृच्छ्र या श्वास-कष्ट (डिस्पनीया) कहते हैं।

सांस तालसे चलती है। रोगमें यह भी गड़बड़ा जाता है। श्वास मार्गमें बाधा होनेसे सांस खींचनेमें देर लगती है। इसे श्वास-कष्ट (श्वास लेनेमें कष्ट—इन्सपिरेटरी डिस्पनीया) कहते हैं। महाप्राचीरा सांस खाली करने लायक काफी नहीं सिकुड़े तो सांस छोड़नेमें देर लग सकती है। इसे निःश्वास या प्रश्वास कष्ट (एक्सपिरेटरी डिस्पनीया) कहते हैं।

सांस लेनेके क्रममें एक विचित्र परिवर्तन **चेन स्टोक** नामक रोगमें होता है। इसमें सांस बढ़ते बढ़ते तेज सांस चलने लगती है। इसके बाद घटते घटते रुक जाती है और फिर पहलेकी तरह तेज सांस चलने लगती है। यह क्रम जारी रहता है।

मामूली सांस लेनेमें नथने (नाकके छिद्र) हिलते नहीं, पसलियां कुछ उठती हैं।

सांसकी तकलीफमें, यदि मेहनतके कारण यह न हो तो, नथने फूलते हैं। पसली ज्यादा चलती है। गहरी सांस कम चलती है। सांस ऊपर ऊपर चलती है। छातीकी दीवाल या उरस्या (pleura) के रोगोंमें पूरी या गहरी सांस कम चलती है। ऐसी हालतमें श्वास-कष्ट बढ़ जाता है। सांस लेनेमें छाती और पेट दोनोंही तालसे फूलते हैं। यदि मुख्यरूपसे केवल छातीकी पेशियोंके सहारे सांस ली जाय तो उसे 'कोस्टल' (costal) कहते हैं। यह तब होता है जब हवा बेरोक आ नहीं सकती या महाप्राचीरा और उसके पासके अवयव रोगग्रस्त हों। पेटके अर्बुद या पेट फूलने से ऐसा होता है।

पर अगर उर-पेशियोंकी अपेक्षा उदर-पेशियाँ अधिक क्रियाशील हों तो साँसका ढंग बदल जाता है और वह उदर्या हो जाती है। छातीकी दीवालमें दर्द होने और उल्टी साँस या निःश्वासमें कठिनाई होने से यह होता है।

साँस लेनेमें असाधारण आवाज : यदि नाकमें सूजन हो, अर्बुद निकल आया हो और इस कारण साँसकी राह सँकरी हो गयी हो या नाकमें कोई और गड़-बड़ी हो अथवा नाक रेंट या नकटी आदिसे भर गयी हो तो साँस लेनेमें फुफकार जैसा स्वर होता है।

यदि कंठ या श्वासनालीमें कफ भरा हो तो साँस लेनेमें घरघराहट होती है। लंबी लंबी सस्वर साँस चलने पर आह सी आवाज सुन पड़ती है। स्वस्थ पशुकी साँसमें भी यह स्वर हो सकता है। इसका कारण महाप्राचीरा पर उदरके फैले हुए अवयवोंका दबाव है। भरपेट भोजन या गर्भकी हालतमें ऐसा होता है।

नाक बहना : गायकी नाक साधारण तौरपर थोड़ा थोड़ा बहती रहती है। गाय नथनेमें जीभ डालकर उसे पोंछ लेती है। रोगमें नाक अधिक बहती है। नाकका पानी मुँह या गलकक्ष या श्वसनिकासे आ सकता है। सर्दीमें नाक जरा ज्यादे बहती है। रोगी हालतमें नाकके पानीका रंग भी बदल जाता है। कभी वह रंगहीन, पीला, लाल या भूरा होता है।

रक्त-रस या श्लैष्मिक प्रदाहमें पीले रंगका पानी निकलता है। यदि लाल रक्त-कणिकायें उनमें हों तो रंग पीला, या भूरा-पीला हो जाता है। नाकके छिद्रोंसे क्षत, खुले व्रण या रक्तस्रावयुक्त अर्बुद (रक्तार्बुद) होने पर ही रक्त बहता है। गिल्टी रोग (एन्थ्रेक्स) होने पर नाकसे खून बह सकता है।

खाँसी : गायको खाँसी होना हमेशा अस्वाभाविक बात है। गायकी खाँसी, तेज, मृदु, निःस्वर और लंबी होती है। कंठ या ऊपरी श्वासनालीमें चुभानेसे या चिमटी काटकर गायको खँसवाया जा सकता है। खाँसी अकष्ट या सकष्ट हो सकती है। खाँसी हल्की या जोरदार, लंबी या अल्पकालिक हो सकती है।

१३६७. फेफड़ोंकी परीक्षा

ताड़न-परीक्षा

ताड़नकी विभिन्न आवाजोंका वर्णन हो चुका। अगर फेफड़ेका एक हिस्सा ठोस तंतुओं या कफसे भर या ज्यादे घिरा रहे तो दुंदुभी-स्वर सुनायी पड़ता है। वह

कफ उस भागको आसपासके अन्य भागसे अलग रखता है। फाइब्रस निमोनियाँकी पहली और आखरी हालत, ब्रोङ्को-निमोनियाँ और यदि अर्बुद फेफडेको घेरे हों और यदि फेफडेमें बडे खात हों तो यह आवाज होती है। यदि खातकी हवाका सीधा सरोकार क्लोमशाखासे हो तो फूटे वर्तनकी आवाज आती है। साधारण गर्जनके बदले यदि मन्द स्वर सुनायी दे तो यह रोग-सूचक है।

श्रवण-परीक्षा

इस परीक्षाके लिये ढोर गोशालासे बाहर निकाला और फिर तेजीसे लौटाया जाता है। इस श्रमसे स्वर अधिक साफ निकलता है। क्योंकि सांस गहरी चलती है।

सुस्थ फेफड़ेकी छातीके ऊपरकी आवाज मृदु, चूसने जैसी होती है। 'भी' के मृदु उच्चारणसे जैसी आवाज होती है उसी तरहकी यह है। यह आवाज सांस लेनेके समय शुरु होती है और सांसके साथ धीरे धीरे बढती है। फिर सांस छोड़नेके समय धीरे धीरे थोड़ी और मन्द हो जाती है और फुसकार जैसा (अर्थात् मृदुतासे 'एफ्' उच्चारण करनेसे जैसी) आवाज होती है। यह फुसफुसाहट अत्यन्त मृदु और मन्द होती है।

फेफड़ेकी यह फुसफुसाहट श्वासकृच्छ्र (dyspnoea) की सघन सांसमें बढ जाती है। जब एक फेफडा काम नहीं करता और उसकी एवजी भी दूसरेका करनी होती है जैसे कि, निमो-थोरेक्समें, तो यह आवाज बढ़ जाती है।

काश रोगमें सांसकी राह कम हो जाती है उस समय भी छाती परकी फुसफुसाहट बढती है। पर मेदवृद्धि या रोगके कारण यदि छातीकी दीवाल मोटी हो जाती है तो यह स्वर धीमा पड जाता है।

खाँसीका स्वर : Bronchial tones : यह स्वर साधारण तौर पर क्लोम या कठमें सुनाई देता है। पर यदि यही स्वर फेफडोंसे आवे तो रोग का सूचक है। जब निमोनियाँकी तरह कोष्ठक (vesicles) कफसे भरे हों तो यह स्वर निकलता है। पार्श्वशूलमें स्रावसे जब फेफडा उरस्यामें दवता है तब भी यह स्वर निकलता है।

क्लोमकी गड़बडीवाली सांसमें उसका स्वर सँकड़े मुँहकी बोतलमें फूँकनेसे होनेवाले शब्दकी तरह होता है। जब फेफड़ेमें बड़े बड़े खात क्लोम तक फैले होते हैं तो ऐसा होता है।

साँसकी नलियों और फेफड़ेके खातोंमें कफ भर जाने पर हवाको जोर देकर आना जाना होता है तब घरघराहट सुनायी पड़ती है।

पार्श्वशूल सम्बन्धी स्वर : Pleuritic sounds साधारण हालतमें फेफड़ा उरस्था पर सरकता है। इससे कोई स्वर नहीं निकलता। पर पार्श्वशूल या प्लूरिसी होने पर रगडकी या टटने फूटने की आवाज सुनायी पडती है।

इन परीक्षाओंसे श्वासतन्त्रकी जिन बीमारियोंका पता चलता है वे ये हैं

१. **नाकसे खून बहना** सर्दी जुकाम। इसमें नाककी झिल्लीमें रक्ताधिक्य हो जाता है, नाकमें रेंट भर जाती है और कफ तथा खून निकलने लगते हैं।

२. **कंठका सर्दी.** खाँसी होती है, पहले सूखी और कष्टकारी, बादका नम या गीली।

३ **कंठका पक्षाघात :** एकाएक तीव्र श्वास-कष्ट शुरु हो जाता है।

४. **क्लोम-प्रदाह** इसका पता रोग बढने पर भी चल सकता है जब बुखार, तेज नाडी और तीव्र श्वास-कष्ट हो जाय। जीर्ण अवस्थामें बुखार नहीं होता। तब हल्की, मन्द कुछ खाँसी पायी जाती है। एकाएक तीव्र श्वासकष्ट से यह सूचित हो सकता है कि, फुसफुस भरा है। साँस प्रति मिनट १०० से अधिक चलती है, साथ साथ नाकसे फेनिल पानी बहता है।

५ **ब्रोंको निमोनियाँ** यह पहले कॅटरल निमोनियां के रूपमें शुरु हो कर ब्रोंको-निमोनियाँ हो जा सकता है। साथ साथ तेज बुखार, तकलीफवाली खाँसी हो सकती है। स्वाभाविक फुसफुसाहट मन्द हो जाती है।

६. **पार्श्वशूल** साँस तेज हो जाती है। साँस लेनेमें कष्ट होता है। प्रारम्भिक अवस्थामें रगडकी आवाज सुन पड़ती है। पर आगे चलकर जब स्राव बहुत जमा हो जाता है तब रगडकी आवाज सुनाई नहीं देती।

७ **क्षयो : यक्ष्मा** जब फेफडा पूरी तरह आक्रान्त हो जाता है उसी हालतमें ही पता चल सकता है। खाँसी बराबर रहती है। स्वाभाविक फुसफुसाहट अस्वाभाविक रूपसे बढ जाती है। घरघराहट सुनाई देती है।

२७-५ खाने पीनेका निरीक्षण

कई रोगोंमें प्यास बढ़ जाता है। बुखार होने पर पशु थोड़ी थोड़ी देर पर कुछ कुछ पानी पीना चाहते हैं। इन्फ्लुएञ्जाके सकटकाल (crisis) में पेशाब और प्यास

बढ जाती हैं। अनिसारमें पनला दस्त बहुत होने पर प्यास बढ जाती है। साधारण तौर पर उदरशूल, पाकाशय और आँतके रोगमें प्यास घट जाती है। बहुत देर तक पानीकी अनिच्छा बुरा लक्षण है। यदि मुँहमें कोई घाव हो या दांतमें तकलीफ तो चबानेकी क्रिया अस्वाभाविक तौर पर होती है।

गलप्रदाहमें निगलनेमें कठिनाई होती है। निगलनेकी चेष्टा करने पर दर्द होता है। ऐसी हालतमें पशु शिर या गरदन लम्बी करता और सिर हिलाता है।

गल या कंठके पक्षाघात, अर्बुद और कठजिभियामें निगलनेमें कष्ट होता है। मुखप्रदाह होने पर मुँहसे लार और फेन निकलता है।

१३६७. मुख-परीक्षा

बुखार या मुँहकी श्लैष्मिक कलाका प्रदाह होने पर मुँहका तापमान बढ जाता है। सभी तरहके बुखार, शूल और आँतोंकी बीमारीमें थूक कम निकलता है। इसी कारण बीमार होने पर पशु खाना छोड देता है।

मुँहके प्रदाह (निनावां) तथा अन्य कई रोगोंमें मुँहमें गांठ, फुसी और घाव निकल आते हैं। किसी बाहरी चीजसे जीभमें जखम हो सकता है। दांतोंकी खराबीसे निगलनेमें कष्ट हो सकता है। ध्यान रखना चाहिये कि, सभी रोमथकोंके कर्त्तनक दांत ढीले हैं। चर्वणकोंमें तेज नोक हों तो चबानेमें कठिनाई होती है। उनपर उँगली फेरकर यह देखा जा सकता है।

कठजिभियासे जीभ कड़ी और गिरहदार हो जाती है। गलप्रदाहमें गला या कठदेश सूज सकता है। फोडा होने पर भी कंठका प्रदाह या सूजन हो सकती है। तालुका पक्षाघात होने पर पशु नथुनेसे निकले तरल या मृदु पदार्थ निगल नहीं सकता। गल या कठके पूर्ण पक्षाघातसे पशु खा नहीं सकता। खिलानेकी कोशिश करने पर खिलाया हुआ नाकसे निकल जाता है।

रोगके कारण पागुरमें गड्बडी हो सकती है। पागुरका कौर फिर निगलनेके पहले साधारण तौर पर प्रति मिनट ६० बार चबाया जाता है। खाने बाद पागुरमें लगभग दो घंटेकी जरूरत होती है। पशु पागुरके लिये आरामसे रहना चाहता है।

सभी बुखारोंमें पागुरमें गड़बड़ी हो जाती है। प्रति मिनट पागुरकी कमीसे अस्वाभाविक या विषम स्थितिका पता चलता है। पागुर या जुगाली बिलकुल बन्द

हो सकती है। बुखार और कठिन रोग तथा चारफाड़के रोगोंमें ऐसा होता है। ठूँस ठूँस कर खाने और पेटकी बिमारियोंमें भी जुगाली या रोंथ रुक जाती है। पशुओंको अपने आप डकार आती है। इसके द्वारा पेटकी गैस मुह और नाकसे निकल जाती है। साधारण तौर पर पशुओंकी डकारका साथ पागुरसे है।

तुरत फफड़नेवाले चारे पेटका ढक्कन बन्द कर दे सकते हैं। उससे डकार नहीं हो सकती या पूरी नहीं हो सकती। इसमें गैस बहुत ज्यादे जमा होती है और पेट फूलता है। वमन रोगका लक्षण है। जीभकी जड़ या गले पर अवाञ्छित पदार्थ होनेसे भी यह हो सकता है। अन्ननलिकाके अवरोधसे भी यह हो सकता है। आंतकी बीमारी और पाकाशयकी श्लैष्मिक कलाकी जलनके कारण भी कै हो सकती है। अन्ननलिकाके अवरोध, महाप्राचीरा पर अन्नवृद्धि, मुद्रिकाकुंचन (अनुग्रहणिकाकुचन) आदि कारणोंसे वमन बहुत दिनोंतक होता रहता है और इससे वह जीर्ण या बद्धमूल हो जा सकता है। यह बुरा लक्षण है।

१३६८. उदर-परीक्षा

नस्ल और आहारके हिसाबसे उदरका आकार साधारण या असाधारण हो सकता है। भोजनके प्रकार और नसलके अनुसार उदरका आकार विभिन्न हो सकता है।

गर्भके कारण पेट बढ जाता है। यह साधारण तौर पर तीसरे पिछले भाग पर मालम होता है। और बायेंकी अपेक्षा दाहिने तरफ ज्यादा मालूम होता है। भ्रूण बड़ा हो जाय तब बाहरसे छूकर या थोड़ा दबाकर मालूम किया जा सकता है। उसका आकार भी जाना जा सकता है।

भोजन जमा होनेसे पेट फैल जाता है। ऐसी हालतमें साधारण दुन्दुभी-स्वरके बदले मन्द स्वर सुन पड़ता है।

पेट फूलने पर फैलाव ऊपरकी तरफ होता है। बगलकी खाली जगह भर जाती है और दीवाल फैल जाता है।

पेटके अर्बुद, प्लीहे और यकृतसे पेट बढ़ा हो सकता है।

स्पर्श-परीक्षा

पेटका दर्द और आंतोंकी हालत जाननेके लिये पेट दबाया जा सकता है। पूरी हथेली पेट पर रख थोड़ी थोड़ी देर पर दबाया जाता है।

पेटकी चीजोंको मुलायम होना चाहिये। यदि वह मुलायम हुई तो लगभग १$\frac{3}{4}$ मिनटमें अपकर्षिणी द्वारा चली जाती है। यदि यह अपकर्षिणी या क्रमिगमन न हो तो अवरोध होता है अर्थात् पेट काम नहीं कर सकता। यदि पेटमें अधिक पानी हो तो स्पर्शनसे छपाकेकी आवाज निकलती है और लहर सी उठती है।

अन्त्रवृद्धिसे पेट असाधारण या अस्वाभाविक हो सकता है।

श्रवणद्वारा परीक्षा

ठोस, नरल और वायुकी विभिन्न गतियाँ श्रवणसे जानी जा सकती हैं। घनी आवाज आँतोंकी घनी चाल बताती है। बायीं तरफ छातीपर ६ ठी और ७ वीं पसलीके नीचले छोर पर फुसफुसके छोरके पीछे सुननेसे थोड़ी थोड़ी देर पर सकुचनका स्वर सुन पड़ता है। कुछ सुनायी न पड़े तो इसे इस अवयवकी निष्चेष्टना नहीं समझनी चाहिये। पर साधारण तौर पर क्रियाकी अवस्थाका कुछ हाल मिल ही जाता है।

जमा होना, अवरोध और फूलना निश्चेष्टताका सूचक है जिससे आवाज कम हो जानी है। स्थायी अतिसार और कठिन प्रदाहमें स्वर घट जाता है। जलन या उत्तेजना होने पर स्वर तेज होता है। गैसके फुलावमें सनसनो सुन पड़नी है।

१३६९. मल-परीक्षा

मल सूख जाय और कडा हो तो कठिनतासे निकलता है। यदि उदरमें दर्द और प्रदाह हो तो पाखाना होनेमें दर्द होता है। ढोर दिनमें १०-१२ बार गोवर करते हैं। मामूलीसे कम बार मल-त्याग को अनाह, कोष्ठबद्धता या कब्ज कहते हैं। मामूलीसे जादा बार पतला या गाढ़ा दस्त हो तो वह अतिसार है। अच्छी नरह खिलाये पशुको दिनमें ९० रत्तल तक मल निकल सकना है। पेटमें गयी वस्तु १$\frac{1}{2}$ से ८ दिनों तक अन्त्रमें रहती हैं।

आहार जितने दिन जादे अन्त्रमें रहता है उतना ही काला होता है। हरा चारा खिलानेसे भोजनके प्रकारके अनुसार मलका रंग कितनी तरह का गहरे या हल्के रंगका हो सकता है। पौष्टिक चारा मलमें भूरापन लाता है।

यदि पित्त साधारणसे कम निकले तो मलका रंग भूरा या मटियाला होगा। यदि मलमें रक्त मिल जाय तो वह लाल, बादामी या कत्थई हो सकता है।

अँतड़ीसे निकले खूनके कारण कुछ देरके बाद रग प्राय काला हो जाना है। यदि मलमें खून अच्छी तरह मिल गया है तो आँतसे खून वहना समझना चाहिये। गुदासे खन निकलने पर वह कुछ कुछ मलमें रेखा या थक्के के रूपमें लगा रहता है।

बछडोंकी प्रवाहिका (पेचिश) मे मलका रग भूरा या भूरा और सफेद होता है। साधारण मल पर आँवका पतला आवरण होता है जिससे वह चमकदार हो जाता है। अत्यधिक आँव हो तो वह चिकना मालूम होता है। यदि पाकाशयमें मड़ांद हो गयी हो तो गोबरमें दुर्गन्ध आती है। मलमे अंडे, केंचुए और लिभर फ्ल्यूक (liver flukes) जैसे परोपजोवी हो सकते हैं। अणुवीक्षण परीक्षणसे इनका पता चल सकता है।

पेटके कुछ रोग

निनावाँ : Stomatitis जीभ और मुँहकी कलामें फुसी या व्रण और प्रदाहके कारण परिवर्तन होता है।

कठजिभिया : Actinomycosis जीभ, निचले जबड़े और गलकोष या कठमें अर्बुद जैसे निकल आते हैं।

गलप्रदाह : Pharingitis बुखार होता है। गर्दन कडी और सिर तना रहता है। चबाना और निगलना ठीकसे नहीं होना। तरल वस्तु घोटनेकी कोशिशमें नाकसे निकल जाती है।

अन्नवहका पक्षाघात : Paralysis of œsophagus प्रदाहके लक्षण नहीं होते पर निगलनेमें कठिनाई होती है।

अन्नवहमें विजातीय पदार्थ स्पेकुलम यन्त्रसे अन्नवह नलिकाका निरीक्षण हो सकता है। लार बहती है, निगलनेमें कष्ट और दम घुटना है। पेट फूलना है। नाकसे लार चलती है।

उग्र अध्मान (अफरा) Acute tympanites देखनेसे सूजनका पता चल सकता है। पेट फूल जाता है। सांस लेनेमें कष्ट होता है और पाखाना साफ नहीं होता।

उग्र संग्रहणी : अग्निमान्द्य : Dyspepsia : आमाशय काम नहीं करता। भूख नहीं लगती। अपकर्षिणी अधूरी होती है। बगल या कुक्षि दबी रहती है।

उग्र पाकाशय और अन्न प्रदाह : Acute gastrointestinal catarrh बुखार रहता है। नाडी तेज। संग्रहणी जैसे लक्षणभी रहते हैं।

नाभी टलना : निनाई : Dislocation of bowel. यह एकाएक अकारण होता है। पशु लेट जाता है। अपने पेटमें ठोकर मारता और फिर खड़ा हो जाता है। भोजन और रौंथ बन्द कर देता है। गुदाको राहसे हाथ डालकर अवरोधका पता चल सकता है।

पोकाशयके छूतवाले रोगोंमे माता अर्थात् रिन्डरपेस्ट सबसे कठिन है। तापमान ऊँचा रहता है। साँस लेनेमें कष्ट। पहले अनाह इसके बाद अत्यन्त दस्त। आंख और नाक बहती हैं। बहुत कमजोरी और थकावट हो जाती है। अतिसार और प्रवाहिका भी पेटकी बीमारियोंमें है।

अध्याय ३८

छूत, क्षमता, पृथक्करण और छूत मिटाना

Infection, immunity, isolation and disinfection

१३७०. छूत क्या है?

छूनके जरिये एकसे दूसरे पशुको रोग होता है। ऐसे रोगोंको छूतके रोग कहते हैं। कुछ पदार्थ ऐसे रोग फैलाते हैं। रोगवाहक ऐसे पदार्थ थोड़ी मात्रामें किसी पशुमें जाकर वहाँ बहुत हो जाते है। ये रोगप्रसारक या संक्रामी पदार्थ जीवाणु हैं। कुछ इतने छोटे हैं कि अणुवीक्षणसे भी उन्हें नहीं देख सकते। इन्हें दृष्टिपर रोगाणु (अल्ट्रा-भिजिवल भाइरस Ultra-visible Virus) कहते हैं।

तन्दुरुस्त पशुमें छूतके वाहक प्रत्यक्ष या परोक्ष संसर्गसे पहुँच जाते हैं। वह रोग तब संक्रामक या स्पर्शप्रभव कहा जाता है। परोक्ष संसर्गसे छूत ले जानेवाले विभिन्न वाहक हो सकते हैं। संसर्गकी छूत एक ही रखवालेसे हो सकती है, खाने

पीनेके बरतनोंसे हो सकती है, बिछावन, साज, दीवाल, मिट्टी या घाससे हो सकती है या अन्य पशुओंसे भी हो सकती है। ये पशु स्वयं रोगग्रस्त नहीं भी हों पर केवल रोगवाहक हो सकते हैं। नदी, गली कूचे और सड़कोंसे छूत आ सकती है। तेज हवा भी दूर तक छूत ले जा सकती है।

रोग फैलानेवाले जीवाणु बीजाणु या बैक्टीरिया दो वर्गके हो सकते हैं :— (१) जो किसी जीवित शरीर या मेजवान (host-होस्ट) मे अपना पोषण लेते हैं। इन्हे **परोपजीवी (पैरासाइट्स** parasites) कहते हैं। (२) जो मृत या सड़े सेन्द्रिय पदार्थसे अपना पोषण लेते हैं उन्हे **शवजीवी (सेप्रोफाइट्स** saprophytes) कहते हैं। जो जीवाणु केवल अपने मेजवानके भरोसे रहते हैं उनका उपाय आसानीसे किया जा सकता है। यदि मेजवान या होस्ट नष्ट कर दिया जाय तो रोग-प्रसारक जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। पर शवजीवीसे ऐसा काम नहीं चलता। वह शवके भरोसे जीता रहता है। कुछ देशोंमे माताका उन्मूलन सफलताके साथ किया गया। वहां मेजवानों या रोगी पशुओंको मार डाला गया। दुष्ट जीवाणु अपने मेजवान या होस्टसे अलग होकर देर तक जी नहीं सकते।

१३७१. जीवाणुकी प्रकृति या स्वभाव

जीवाणुओंका आकार और प्रकार बहुत तरहका होता है। कुछ शलाका या छडीकी तरहके होते है। इन्हे "**बैसीली**-bacilli" कहते है। कुछ गोल होते हैं जो "**कौक्सी**-Cocci" कहे जाते हैं। कुछ पेचदार होते है जो "**स्पिरिला**-Spirilla" कहे जाते हैं। कुछ को बारीक तन्तु (फिलामेन्टस) होते हैं। जिनके तन्तु शाखायुक्त होते है उन्हे "**केल्डोथ्रीक्स**-caldothrix" कहते हैं। इन सभी जीवाणुओंको बैक्टीरिया कहते हैं। बैक्टीरिया या जीवाणु बहुत सूक्ष्म होते हैं, उनका आकार एक इञ्चके ५००० वें भागसे २५०००वें भाग तक होता है। साधारण तौर पर जीवाणुको १००० गुणा बढा कर देखने पर $\frac{1}{5}$ इंच दिखायी पड़ता है। उसी तरह उनका २००० गुणा आकार बढाने पर $\frac{1}{25}$ इञ्चके मालूम होते हैं। इनकी नाप माइक्रन (micron) में बतायी जाती है। माइक्रन लगभग $\frac{1}{25000}$ इञ्चका होता है। कुछ जीवाणु ऊपर कहे आकारसे कहीं छोटे हैं। वह बड़ीसे बड़ी शक्तिवाले अणुवीक्षणसे भी देखे नहीं जा सकते। इनको दृष्टिपर-रोगाणु (अल्ट्रा-मिजिबल् भाइरस) कहते हैं। माता, खुरपका, रोगीनला और कुकुर-विषके रोगाणु

इसी कोटिके है। यह देखे नहीं जा सकते इसीलिये नापे भी नहीं। यह चीनी मिट्टीकी महीनसे महीन चलनोमें (porcelain filters) से निकल जाते हैं।

उद्भिद् वर्गमें ये बैक्टीरिया सबसे सूक्ष्म और निम्नतम माने जाते हैं और प्राणिवर्गके सबसे सूक्ष्म और निम्नतमको "प्रोटोजोआ" कहते हैं। वनस्पति वर्गमें भी ये बैक्टीरिया फफूंड़े (मोल्ड-moulds) या किण्व (ईस्ट-yeast) गोष्ठियोंमें विभक्त हैं। फफूंड़ेको किसी नम जगहमें जहां उसे पोषण मिले पनपते देखा जा सकना है। कुछ ऐसे हैं जो पशु-शरीरमें पनपते हैं और रोग पैदा करते हैं। गलघोंट्र, गिल्टी और लगडी ये तीन ढोरके मुख्य और मार्मिक तथा साघातिक रोग हैं। इनका कारण छत्राक (फजी-fungi) वर्गके बैक्टीरिया-जीवाणु है।

वंश-वृद्धि और वृद्धिकी विधिके कारण जीवाणुके भेद किये जाते हैं। वंशवृद्धि टुकड़ा होकर या बीज (स्पोर-spore) से हो सकती है। दो टुकडोंमें बंटकर वंशवृद्धि होने को "फिसन fission" कहते हैं। जीवाणु लंबा हो जाता है। इसके बाद बिचला भाग पतला होते होते अन्तमें टूटकर दोनों भाग अलग हो जाते हैं। यदि जीवाणु गोलाकार 'कोक्सी' हैं तो वे-जहां तहांसे टूट कर अगूरके गुच्छेसे हो जाते हैं। इनको स्टाफिलोकोक्सी (staphylococci) कहते हैं। यदि ये मनकों या माला की तरह एक शृंखलामें होते हैं तो इनको स्ट्रेप्टोकोक्सी (streptococci) कहते है। कोक्सीका विभाजन एक ही स्थान पर होने से डिप्लोकोक्सी (deplococci) बनते हैं। ये जोडा जोडा मिलते हैं। दो स्थानोंपर विभाजन होनेसे टेट्राकोक्सी (tetracocci) बनते है।

बीज या स्पोर दो तरहसे बनते हैं। एक गर्भज (एन्डोजेनसे) बीज और दूसरा पिंडज (अर्थ्रोस्पोर्स)। जीवाणु एक कोषीय शरीरधारी अर्थात् जीववस्तु (प्रोटोप्लाजम) है जो एक पतली कलासे आवृत रहता है। बीज बननेके लिये जीवाणुके जीववस्तुमें गोल और अत्यन्त आवर्तक (रेफ्रेक्टाइल) पिंड उत्पन्न होता है। यही बीज स्पोर है। आवरण फट जाता है और बीज मुक्त हो जाता है। पिंडज बीजमें कुल जीववस्तुका एक बीज या स्पोर बनता है। इसलिये एक जीवाणुसे एकही बीज तैयार होता है। बीजमें वातावरणकी प्रतिरोध-शक्ति बहुत है। जबतक संख्या-वृद्धिके लिये अनुकूल परिस्थिति न होने वह बहुत दिनों तक स्थिर और अक्रिय रहता है।

गिल्टीके बीजके विशेष वर्णनकी आवश्यकता है। इसका बीज चार वर्ष तक पडा रहता है। यह थोडी देर तक उबलनेवाले तापमानमें भी डटा रहता है। यह देखा गया है कि, साधारण हालतमें इसकी जीवनी शक्ति १२ से १८ वर्ष तक बनी रहती है और अनुकूल स्थिति होने पर बैसिलस बन जाता है। गिल्टीके बैसिली ऑक्सीजनमें ही बीज बना सकते हैं। इसलिये यदि इस रोगसे मरे पशुको गहरा गाड दिया जाय तो ऑक्सीजनके अभावमें बीज नहीं बन सकते। पर इस रोगसे मरे पशुका रक्त या देहसे निकला द्रव खुला रहे तो बैसिली बीज बनाते हैं। बीज मिट्टीमें अनिश्चित कालतक पड़े रह सकते हैं। पर वर्षा होने पर वह अंकुरित होते और घासमें छूत लगाते हैं। इस घासको खानेवाले पशुको छूत लग सकती है। ये बैसिली अंकुरित होते, संख्या-वृद्धि करते और फिर बीज या स्पोरमें परिणत होते जिनसे नये नये बैसिली पैदा होकर अनन्त काल तक धरतीको दूषित करते रह सकते हैं।

कुछ जीवाणु सरक भी सकते हैं। ये गतिशील कहे जाते हैं। इनकी गतिशीलता अणुवीक्षणसे देखी जा सकती है। इनको महीन चाबुकसा प्रवर्धन होता है। इसे आगे पीछे हिलाकर ये देह को ढकेलते हैं। चाबुक जैसे प्रवर्धनको फ्लैजिल्ली कहते है। इनकी गति को फ्लैजिल्लेट गति कहते हैं।

अनुकूल तापमान, आबहवा और आहार मिले तो जीवाणु बडा तेजीसे संख्या-वृद्धि करते हैं। तब भी संख्या-वृद्धि अमर्यादित नहीं होती। उनका जीवन-क्रियासे ही एक विष पैदा होकर कुछ कालके बाद उनकी वृद्धिको रोकता है।

जीवाणुकी वृद्धिके लिये लवण, कारबन, और नाइट्रोजनकी जरूरत होती है। वातावरण के कारबन डाइऑक्साइडसे पौधे अपने क्लोरोफिलके जरिये कारबन प्राप्त करते हैं। पर जीवाणुको क्लोरोफिल नहीं होता इसलिये वह अपने कामके लिये चीनी जैसे सेन्द्रिय पदार्थसे कारबन लेते हैं। अलबुमिनॉयड जैसे नाइट्रोजन-कंपाउन्डसे वे नाइट्रोजन लेते हैं। नाइट्रोजन के लिये कुछ जीवाणु अमोनिया और नाइट्रेट भी काममें लाते हैं।

गिल्टीके बैसिलीके बारेमें जैसा कहा गया है, कुछ की वृद्धिके लिये ऑक्सीजन चाहिये। ऐसोंको वायुजीवी (एरोबिक) कहा जाता है। दूसरे केवल ऑक्सीजनके अभावमें जी सकते हैं जिन्हें निर्वायुजीवी (एनएरोबिक) कहते हैं। एक तीसरा वर्ग है जो ऑक्सीजनमें भी और उसके अभावमें भी जी सकता है।

जीवाणुकी वृद्धिके लिये उचित तापमान विभिन्न हैं। साधारण तौर पर रोगजनक जीवाणुकी वृद्धिके लिये पशुदेहका तापमान चाहिये। प्रकाश इनके लिये प्रतिकूल है। कुछ तो थोडी देर तक प्रकाशमे रहने से मर जाते हैं और कुछ तो धूपमें तुरत मर जाते हैं। रासायनिक विष भी इन्हें मारते हैं. जीवित प्राणी अर्थात् अपने मेजवान या होस्ट के शरीरसे पोषण प्राप्त करनेवाले परोपजीवी कहे जाते हैं।

१३७२. जीवाणूका स्वभाव

जीवाणुकी सूरत और सख्यावृद्धिकी सामर्थ्यका अध्ययन अणुवीक्षणसे होता है। वहां यान्त्रिक पद्धतिसे उनकी घनीभून गिनती की जाती है। एक घनमान (volume) में उनकी सख्या गिनी जा सकती है। इनमेंसे कुछ खास तरहका रग लेते हैं और दूसरे अन्य तरहका। इन रंगोंकी मदतसे अणुवीक्षणमे इनकी सूरत उभर आती है। रगोंके प्रति इनका जो व्यवहार है उससे इनका वर्गीकरण और अतमे पहचान हो जाती है।

कृत्रिम उत्पादन : अध्ययन, सख्यावृद्धि, चिकित्सा और प्रयोगशालाकी आवश्यकताओंके लिये जीवाणु कृत्रिम अवस्थामें भी पैदा किये जा सकते हैं। जीवाणुके लक्षणके अनुसार इनकी वृद्धिके लिये विभिन्न माध्यम काममें लाये जाते हैं। साधारण माध्यम यूष (मासरस), आगर, आलू, जिलेटिन, रक्तरस (सिरम), दूध आदि हैं। शुद्ध कृष्टि (culture) प्राप्त करनेके उपाय निकाले गये है। इससे अन्वेपक जिस जीवाणुविशेषको चाहता है उसे चुन लेता और उनकी सख्या-वृद्धि करता है।

साधारण तौर पर जो उपाय काममें आता है वह यह है। किसी जाँच-नलीमें (टेस्ट ट्यूबमें) पोषक माध्यम थोड़ा भर कर डाक्टरी रुईसे उसका मुँह वद कर देते हैं। फिर लगातार तीन दिनों तक आध आध घंटा उस नलीको भाफमें जीवाणुरहित करते हैं। इस क्रियासे उस माध्यममें यदि कोई जीवाणु या उनके बीज पहुँच गये हों तो नष्ट हो जाते हैं। यह जीवाणु रहित पोषक माध्यम तैयार है। इसमें प्लैटीनमकी जीवाणुरहित की हुई सूईसे थोड़ीसी वह सामिग्री डालते हैं जिसमें कृष्टि (culture) किया जानेवाला जीवाणु है। नलीको वद कर २ या ३ दिन ३७ डिगरी सेन्टीग्रेड तापमानमे रखते हैं। इसके बाद परीक्षा करने पर

पता चलेगा कि जीवाणु उपनिवेश पैदा हो गये हैं। यह खाली आँखों ही दिखाई पड़ता है। ऐसे उपनिवेशोंमें मिश्रित वर्गके जीवाणु होते हैं। इनको अलग अलग तापमानसे अलग करते हैं। कोई किसी तापमानमें मर जाता और कोई जीता रहता है। उस उपनिवेश-पदार्थको हल्का या पतला करना भी अलग अलग अध्ययन करने और उनका अंतर जाननेका एक उपाय है। किसी पशुमें कृत्रिम संचारण करके भी उन्हें अलग किया जा सकता है। क्योंकि जीवित पशुके शरीरमें उनकी वृद्धिका परिमाण अलग अलग होता है और परीक्षणीय जीवाणुसे विशेष रोग पैदा होते हैं।

१३७३. छूतका फल

अपने मेजबानके शरीरमें घुसकर जीवाणु अनेक उत्पात कर सकते हैं। रक्तके पोषक पदार्थ चूसकर और उसकी प्रकृति बदलकर वह हानि कर सकते हैं। वह असंख्य वृद्धि कर रक्त-वाहिनियोंकी केशिकाओंको अवरुद्ध कर सकते हैं। दूषित रसायनिक पदार्थ या विषकर स्राव करके भी वह हानि कर सकते हैं। यह अंतिम कारण ही रोग पैदा करनेमें मुख्य है।

विष देहमें घुल जाता है और सारी देहमें फैल कर खास खास रोग पैदा करता है।

जीवाणु क्षतोंकी राह देहमें घुस सकते हैं और छूत लगा सकते हैं, जैसे कुकुरविष या धनुष्टकारमें, साँससे जैसे इन्फ्लुएँजामें, खानेके साथ पेटमें जाकर जैसे माता और खुरपकामें, या कीड़ोंके काटनेसे जैसे सर्रा, जर्द बुखार आदिमें।

१३७४ व्याधिक्षमता

पशुकी रोगनिरोधकी योग्यताको व्याधिक्षमता या अनाक्रम्यता (Immunity) कहते हैं। यह प्रतिरोध जीवाणु या उससे उत्पन्न विषको हो सकता है।

सहज क्षमता . Natural Immunity : कुछ पशु किसी रोगके शिकार होते हैं। पर कुछको वह आक्रमण नहीं कर सकता जैसे कि, घोड़ेके रोग (strangles कंठकोसूजन) का असर गाय पर नहीं होता और माता या खुरपका आदि ढोरके रोगोंका असर आदमी पर नहीं होता। इस वर्गको इन जीवाणुओंको रोकनेकी क्षमता है। ये सहज क्षमताके उदाहरण हैं।

रोगज क्षमता · प्राप्त क्षमता : Acquired Immunity : क्षमता प्राप्त की जा सकती है। रोगज (प्राप्त) क्षमता प्राप्त करनेका उपाय रोगनिरोधक चिकित्सावर्गमें रखा गया है। कभी कभी एक बार रोग होनेसे जिन्दगी भर उस रोगकी क्षमता आ जाती है। मातामें यही होता है। जो पशु मातासे एक बार बच जाता है उसे फिर कभी यह नहीं होती। मनुष्योंको चेचकका पाछ लगाना रोगज क्षमता पैदा करना है।

जिसे रोगजनक जीवाणुको छूत लग सकती है उसे उस रोगका "ग्रहणशील" कहा जाता है। अलग अलग पशुओंमें ग्रहणशीलता अलग अलग होती है। तरुण पशु अधिक ग्रहणशील हैं।

कमजोर और हारे पशुओंकी अपेक्षा सुस्थ पशु अधिक प्रतिरोधी होते हैं। छूतप्रसारक किस तरह देहमें घुसे इस पर भी ग्रहणशीलता निर्भर है। रोगज क्षमता अधिक समय तक रह सकती है अथवा अल्पकालिक भी हो सकती है। अगर रोगज क्षमता जीवन भर या साल भर भी ठहरे तो उसे **सक्रिय** क्षमता कहते हैं। यदि क्षमता कुछ दिन ही ठहरे तो उसे **निष्क्रिय** क्षमता कहते हैं। छूतरोगनिरोधके उपायोंके विकाशमें दोनोंकी उपयोगिता है।

१३७५. सक्रिय क्षमता

जैसाकि, माता या गोचेचकके बारेमें कहा जा चुका है, कभी कभी रोगके पूर्व आक्रमणसे सदाके लिये क्षमता हो जाती है। सक्रिय क्षमता (१) शुद्ध रोगाणु (pure virus) (२) मिलावटी रोगाणु (attenuated virus)के सचारसे हो सकती है। यदि किसी पशुको शुद्ध रोगाणुकी हल्की मात्राका सचार कर दिया जाय तो वह जिस रोगका छूत है उसे पैदा करता है। यह पैदा किया रोग हल्का या मारक हो सकता है। हल्का हुआ तो प्रतिरोधक चिकित्सामें उपयोगी है। मारक हो तो व्यर्थ है। पर यह देखा गया है कि, यदि मिलावटी रोगाणुका सचार किया जाय तो उसकी प्रतिक्रिया या उत्पादित रोग हल्का होता है। यदि रोग ऐसा है कि, एक बार होने पर काफी दिनोंके लिये पशुको क्षमता हो जाती है तो इससे प्राणकी आशकाके विना रोगसे रक्षा हो जाती है। उन बीमारियोंमें जिनके एक बार होनेसे वह सदा या बहुत दिनोंके लिये नहीं होती उनको मिलावटी

रोगाणु लगाकर हल्की बीमारी पैदा करते हैं। पर मिलावटी रोगाणुके अन्य उपयोग भी हैं।

रोगाणुमें मिलावट करके उन्हें क्षीणबल किया जाता है। इसकी नीचे लिखी विधियाँ हैं।

१ रोगाणुको गरम करके।

२. दूसरे पशुओंमें उसे डालकर।

३. रासायनिक पदार्थ मिलाकर।

४ रोगी या रोगमुक्त पशुके शरीरमे होनेवाले अज्ञात कारणोंसे आदि।

मिलावटी रोगाणुको भैक्सीन (vaccine) कहते हैं। भैक्सीनसे सक्रिय क्षमता होती है। जिस पशुमें सक्रिय क्षमता डाली गयी है उसके रक्तरस (सिरम)का सचार करके निष्क्रिय क्षमता पैदा की जा सकती है। रसमे डाली हुई क्षमता बहुत अल्पकालिक होती है। इससे जितने दिन छूतकी बीमारी फैली रहे उतने दिन उससे बचा रह सकता है। कभी कभी ऐसे समय सकुशल बचनेके लिये रस देना आवश्यक है। जैसेकि, माता फैलने पर हर दसवें दिन दिया जाता है।

रस (लसीका) रोग निवारक हैं और आधुनिक लसीका चिकित्साके आधार हैं। पर यहाँ हम रोग चिकित्सा पर विचार नहीं कर रहे हैं। क्षमता या रोग प्रतिरोध पर विचार रहे हैं। रसकी प्रतिक्रियाका लक्ष्य जीवाणुजनित विप बनाया जा सकता है अथवा स्वय जीवाणु ही। जब जीवाणुके विरुद्ध उसका प्रयोग होता है तो इससे निष्क्रिय क्षमता पैदा की जाती है, पर विपके विरुद्ध प्रयोग करने पर, उससे चिकित्साका काम लिया जाता है। जीवाणु और उसके विप दोनोंसे मोर्चा लेनेका सयुक्त काम भी हो सकता है।

१३७६ सिरम या लसीका-चिकित्साका सिद्धान्त

रोगजनक जीवाणु पशुदेहमें घुस बढते और विप पैदा करते हैं। पर शरीर इस घातक क्रियाको चुपचाप देखता नहीं रहता। इस घातसे बचनेके लिये देह प्रतिपिंड या प्रति-विप (anti-body or anti-toxins) बनाती है। प्रतिपिंड विपको व्यर्थ करनेवाला होता है। विपके ससर्गमें आने पर यह उसको व्यर्थ कर देता है। यह क्रिया शरीरके बाहर भी दिखायी जा सकती है। नलीमें यदि

विषके साथ प्रतिविष मिलाया जाय तो दोनों मिलकर निर्दोष पदार्थ बन जाते हैं। यदि नियन्त्रित मात्रामें इसकी सूई पशुको लगायी जाय तो कुछ नुकसान नही होगा।

घोडा, गाय या किसी पशुको मिलावटी रोगाणु देनेसे वह रोगसे बच जाता है। ऐसा पशु विषकी और कड़ी मात्रा पचा सकता है। धीरे धीरे यह मात्रा यहाँ तक बढायी जा सकती है कि, पशु घातक क्या कई गुना घातक मात्रामें विषका संचार सह लेता है। इस विधिसे पशु अनिक्षम (hyper-immunised) हो जाता है। इसमें महत्वकी बात यह है कि पशुमें कई गुना घातक विषकी क्षमता आ जाती है। अर्थात् अनिक्षमके रक्तरसमें प्रतिविष पैदा हो जाते हैं जिसके कारण उसमें प्राप्तक्षमता आ गयी है। अब यदि ऐसे पशुका रक्त निकालकर उसका थक्का जमने दिया जाय तो उसके रसमें प्रतिपिंड भरे मिलेंगे। यह रस अन्य पशुओंको चिकित्सा या रोगसे निष्क्रिय रक्षाके लिये दिया जा सकता है। यह प्रतिपिंड देहमें बहुत देर तक नहीं रहता। रोग निवारण करनेके बाद या तो वह नष्ट हो जाता है या यदि क्षमताके लिये दिया गया है तो कुछ देरके बाद मलमूत्रादि के साथ निकल जाता है और प्राप्तक्षमता भी उसीके साथ निकल जाती है।

सिरमके लिये गाय या घोड़ेका खून निकाला जा सकता है। अच्छा पोषण पानेके बाद वह काफी खून फिर दे सकता है। यदि घोडेकी पूरी हिफाजत हो तो ऐसा लगातार हो सकता है। बाजारू प्रतिविष रस (Anti-toxic Serum) बनानेके लिये एक एक बारमें कई रत्तल खून लिया जा सकता है।

एक ही strain-स्ट्रेन जातिके जीवाणुका संचार कर जब रस निकाला जाता है तब उसे एकयोजी (monovalent) रस कहते हैं। और जब उसी वर्गके कई स्ट्रेन या जातियोंके जीवाणु डाले जाते हैं तो रसको बहुयोजी (polyvalent) कहते हैं।

रससे मिली क्षमताका कारण फैगोसाइट (phagocytes) या अणुजीवनाशक श्वेतरक्तकणिकाएँ हैं। यह रक्तमें पुलिसकी तरह हैं और दौडकर खतरेकी जगह पहुँचते हैं। आक्रमणकारी जीवाणुसे लडकर उसे मार डालते हैं अथवा प्रतिविष पैदा कर विषको निश्चेष्ट कर देते हैं। पर इस फैगोसाइटोसिस (phagocytosis) या जीवाणुसहार सिद्धान्तको ऑप्सोनिक (opsonic) या कल्पनक सिद्धान्त पूरा करता है। यह सिद्धान्त कहता हैं कि, फैगोसाइट स्वयं जीवाणुओंको गिरफ्तार कर नहीं मार सकते। फैगोसाइटोसिस होनेके पहले देहके कुछ तरल पदार्थ जिसे

कल्पन या ऑप्सोनिन (opsonins) कहते वह जीवाणुको सिद्ध करते हैं। ऑप्सोनिन को भोज तैयार करनेवाला (feast preparers) कहते हैं अर्थात् जीवाणुके भक्षण करनेवाले फैगोसाइट का भोज।

रोगोंके प्रतिकारका हिसाव ऑप्सोनिक या कल्पनक गणना मूल्यसे किया जाता है। जव यह क्षमता पैदा करता है तव अधिक और जव रोगको होने देता है तव कम माना जाता है।

भैक्सीनसे क्षमता पैदा करनेमें पहले कई दिन कल्पनक (opsonic) मूल्य कम हो जाता है इसके बाद बढने लगता है। यह क्षमताके विभिन्न काल तक अधिक रहता है। इस आधार पर सावधान किया जाता है कि, भैक्सीनसे जिस पशुकी क्षमता कुछ दिनके लिये घट जाती है उसे छूतसे बचाना चाहिये।

इससे एक दूसरी वातका पता चलता है। जिस पशुमें रोगाणु पहलेसे मौजूद हो उसे भैक्सीन या मिलावटी रोगाणु लगा देनेसे यह नया रोगाणु पहलेको उभारता है। इससे मौत हो सकती है। इसलिये सदेहवाले स्थानोंमें क्रमसे रस और भैक्सीनकी सूई दी जाती है। यदि पहलेसे छूत मौजूद हो तो रस रोग नाश करता है। और जव रसकी क्षमताका काल वीत जाय तो सक्रिय क्षमताके लिये भैक्सीन दिया जाय। सचारित होने हो यह रस सद्य. रक्षा करता है।

१३७७ वैक्टीरियाफेज

वैसिलरी पेचिशके रोगीका मल यूपमें घोलकर छाननेसे एक विचित्र चीज मिलती है। इस छनी चीजका यूपमें पेचिशकी वैसिलीके साथ अगर मिलावें और २४ घंटे तक उचित तापमान (३७ डिगरी सेन्टीग्रेड) में देनेके लिये छोड दें तो पेचिशके वैसिली मर जायेंगे और यूप जो वैसिलीके कारण गँदला था वह फिर साफ हो जायगा। इस साफ पदार्थका देखनेमें पता चलता है कि, मलसे तैयार किये मूल द्रवमें जो पदार्थ है वह इसमें कई गुना अधिक घनीभूत है।

मलसे छाने द्रवमें कुछ असी चीज है जो उस वैसीलीका घातक है। मलमें छनी चीज या घनीभूत की गयी चीजको वैक्टीरियोफेज नाम दिया गया है।

वैक्टीरियोफेज जिस वैक्टीरियाको मार देता है उसीकी तरह सप्राण माना गया है। यह जीवित जीवाणुके सहारे बढ़ता भी है।

वन्द नलियोंमें साधारण तापमानमें फेज वहुत दिनों तक रखा जा सकता है। मेमनोंको वैसिलरी पेचिश और भैंसके गलघोंटूमे यह सफल हुआ है।

यह कहा जाता है कि, फेजके उन्नायकोंमें एक, श्री डी हिरील (D. Herrille) ने हिन्दचीनमें (Indo-China) भैंसोंको सफलताके साथ सक्षम किया। ऐसा मालम होता है कि, हिन्दचीनसे यह रोग उन्मूल हो गया। फेज मुँहकी राह पिलाया जाता है।

१३७८ Anaphylaxis : एनेफाइलेक्सिस

किसी पशुको दूसरी जातिके पशुके रसका संचारण करनेसे कोई उल्लेखनीय हानि नहीं होती। पर १२ दिनके भीतर वह सूई फिर लगायी जाय तो कठिन रोग या अचानक मृत्यु हो सकती है। एनेफाइलेक्सिस (anaphylaxis) अर्थात् विजातीय पशुके सिरमकी सूईका असर विभिन्न पशुओं पर विभिन्न होता है। मनुष्यपर एनेफाइलेक्सिस का असर थोड़ा ही होता है। एनेफाइलेक्सिस में रस दूध, एल्वूमिन (albumen-अंडेकी सफेदी) आदि शामिल हैं। कुछ हालतोंमें यह विजातीय चर्वीयुक्त (albuminous) पदार्थों पर अतिचेतना पैदा करता है। ऐसे पदार्थ स्वय अविष हैं। अतिचेतनता (super sensitiveness) नीचे लिखे तौर पर दिखायी जा सकती है :

यदि विलायती चूहेको घोड़ेके साधारण रसकी थोड़ी मात्रा $\frac{1}{100}$ सी० सी० की सूई चमड़ेमें लगायी जाय और १२ दिनके भीतर ही उसी की ५ सी० सी० की सूई पेट पर दी जाय तो तुरत ही अति भयकर प्रतिक्रिया होगी। साँस लेनेमें श्रम होता है, हृदय मन्द पड जाता है। तापमान गिर जाता है। मल मूत्र निकल जाते हैं। मरणस्थिति आ पहुँचती है। मृत्यु भी हो सकती है। खरगोश पर इससे वहुत कम असर पड़ता है। एनेफाइलेक्सिस सिरम पाये पशुका भयकर लक्षण दूसरी मात्रा कम करके मिटाया जा सकता है। इसके वादकी मात्रा वढायी जा सकती है।

१३७९. रस (सिरम) और भैक्सीनके उपयोगके उपाय

भैक्सीन (एन्टीजेन्स) : भैक्सीनकी सूईसे कुछ दिनोंमें क्षमता पैदा होती है। इस वीच एक प्रतिक्रिया होती है। प्रतिक्रियाकालमें रोगकी ग्रहणशीलता

बढ़ जाती है। आसक्षमता बलवती होती है और कई वर्ष ठहरती है। जैसे जैसे समय बीतता असर घटता है। जहाँ रोग फैले न हों वहाँ साधारण तौर पर रक्षाके लिये केवल भैक्सीन ही दिया जाता है। यह इसलिये कि भैक्सीन की प्रतिक्रियाके कारण बढी ग्रहणशीलता और क्षमताके विकाशके लिये जो समय चाहिये वह मिलता है।

रस (प्रतिरस). Serum (anti-serum): प्रतिरसके संचारणसे प्रतिक्रियाके बिना तुरत रक्षा मिलती है। बढी ग्रहणशीलताका काल इसमें नहीं होता। इसमें कमी यही है कि, रक्षा थोड़े दिनकी होती है। केवल १० से १४ दिन ठहरती है।

१३८०. भैक्सीन और रसीय (सिरम) चिकित्सामें रक्षात्मक उपाय

रोगोंके भावी आक्रमणसे तन्दुरुस्त पशुओंकी रक्षाके उपाय रोगोंके अनुसार अलग अलग हैं। साधारण सिद्धान्तोंका वर्णन नीचे है :

१ **केवल भैक्सीन** · यह उन स्थानोंमें दी जाती है जहाँ रोग अभी तक न फैले हों पर उनके फैलनेका डर हो।

२. **केवल प्रति-रस (एन्टीसिरम)** · जहाँ छूत फैली हो वहाँ चारो तरफ क्षमताशील पशुओंका एक व्यूह रचनेके लिये इसका उपयोग होता है कि, रोग आगे न बढ़े। रस-रक्षित हल्केमें जब छूत पहुँचती है तब रुक जाती है और आगे नहीं बढ़ सकती। खुरपका रोकनेके लिये यह कभी कभी किया जाता है।

३ **प्रतिरसके बाद सहज संसर्ग** · इस विधिमें पशुओंको रक्षात्मक मात्रामें प्रतिरससे संचारित कर उन्हें रोगसे पीड़ित पशुओंमें मिला देते हैं। इसी मतलबसे छूत लगी चीजें रस-संचारित पशुके संसर्गमें लायी जा सकती हैं। इस विधिसे पशुको रोग होता है पर रसकी रक्षाके कारण रोगका आक्रमण हल्का होता है। इससे वास्तवमें पशुओंको निष्क्रिय क्षमता हो जाती है जो पीछे रोगके हल्के आक्रमणसे सक्रिय बन जाती है। संसर्गसे जो रोग फैलते हैं उन पर इस विधिका प्रयोग होता है। ऐसे रोगोंका माता (रिन्डरपेस्ट) उदाहरण हो सकता है। मातामें इस विधिका प्रयोग होता था पर अब और अच्छी विधियाँ भी काममें आती हैं। जो रोग संसर्गके बदले जमीनकी छूतसे होते हैं उन पर यह विधि व्यर्थ है। क्योंकि, इसका कोई ठिकाना नहीं कि, निष्क्रिय क्षमताको सक्रिय कर देनेके लिये

ही जमीनसे जीवाणु देहमें पहुंच जायँगे। 'जमीनको छूतवाले ऐसे रोग धनुष्टंकार और गिल्टी हैं।

४. दुहरा संचारण: इस विधिमें प्रतिरस और भेंक्सीन दोनों दिये जाते हैं। इसमें सक्रिय जीवाणु कहींसे प्रवेश करनेके भरोसे नहीं रहते। रससे निष्क्रिय क्षमता होती है और भैंक्सीनसे सक्रिय। इस विधिके ब्यौरेमें कुछ भिन्नता रहती है। रस और भेंक्सीन दोनोंके संचारण साथ साथ भी किये जा सकते हैं या पहले प्रतिरस और कुछ दिनके बाद भैंक्सीन (एन्टीजेन)।

इस विधिको साधारण तौरपर 'सिरम साइमलटेनियस" विधि ("serum simultaneous' method) कहते हैं। इस विधिमें भैंक्सीन और रस एक ही सूईकी पिचकारीमें भर दिये जा सकते है। या ज्यादातर होता यह है कि, रसको सूई एक कंधेमें दी जाती है और भैंक्सीनकी दूसरेमे।

कुछ रोगों, जैसे लगड़ीमें, दूसरी सूई कुछ देरके बाद-दी जाती है। अगर किसी ठट्ठमें लगड़ी (black quarter) शुरू हो जाती है तो पहला काम बच्चे बछड़ोको प्रतिरसकी सूईसे बचाना होता है। इसके कुछ दिनके बाद भैंक्सीनकी सूई दी जाती है। इसमें भी बीचका समय कितना हो इसकी कठिनाई होता है। अगर बीचका समय लंबा हुआ तो प्रतिरसका असर गायब हो चुका रहता है और भेंक्सीन यदि तेज हुआ तो पशुको मार सकता है। पर ये कठिनाइयाँ अब खतम हो रही है। क्योंकि अब हल्के भेंक्सीन मिल जाते हैं। इन्हे रसके बिना भी यदि सीधे दे दें तो लॅगड़ी जैसे रोगोंमे कोई हानि नहीं होती। ऐसे रोगोंमें रसका उपयोग उन पशुओंको खतरेसे बचाता है जिन्हे ऐसे रोग लग चुके है पर बाहरी लक्षण प्रगट नहीं हुए। यदि ऐसी हालतमें भेंक्सीन दी जाय तो पशु मर जायगा। इसीलिये रसके उपयोगका विधान है। अगर पशुको पहलेसे छूत लगी हो तो रस रोगनिवारक का काम करता है। इसके बाद सक्रिय क्षमता पैदा करनेके लिये भेंक्सीनकी सूई देने की जरूरत है। प्रतिरस भेंक्सीनकी तीव्रता रोकनेके लिये भी दिया जाता है।

दुहरा संचारण "सीरम साइमल्टेनियस" विधिसे माता और कई दूसरे रोगोंके लिये किया जाता है। भैंक्सीनकी दारुणता रोकनेके लिये रस देते समय उसकी मात्राके बारेमें सावधानी रखनी चाहिये। क्योंकि, उचितसे कम मात्रामें रस देनेसे भेंक्सीनसे कड़ी बीमारी हो सकती है जिससे पशु मर-सकता है। और

बहुत जाढे रस से भैक्सीन निष्प्राण हो जाता है। नयी विधियाँ बराबर निकल रही हैं कि, भैक्सीन देना निरापद हो जाय और पशुके मरनेका डर न रहे।

१३८९. भैक्सीन और प्रतिरस

भारतमें ढोरके रोगोंके भैक्सीन और प्रतिरस इज्जतनगरके केन्द्रीय कार्यालयमें बनते हैं। कुछ सरल प्रकारके प्रांतीय सिरम इंस्टिट्यूटमें भी बनते हैं। मुक्तेश्वर और इज्जतनगर इंस्टिट्यूटों से मिलनेवाले रस और भैक्सीनकी सूची नीचे दी जाती है : १९४०-'४१।

तैयार माल		इस साल कितनी मात्रामें भेजा गया
रिन्डरपेस्ट (माता) सीरम "स्पेशल"	...	१,२६.०२०
,, ,, "साधारण"	...	५,५९,०४०
एन्थ्रेक्स (गिल्टी) सीरम	...	७०,७३८
,, स्पोर भैक्सीन	...	७१,९००
हेमोरेजिक सेप्टीसीमिया सीरम		२,६४,३९५
,, ,, भैक्सीन		११,९१,३०९
ब्लैक क्वार्टर (लँगड़ी) सीरम	...	४१,५००
,, भैक्सीन	..	२,२१,६५०
मिक्सड् स्ट्रैप्टोकोक्सी भैक्सीन	..	३२५
बोभाइन एबोर्टस भैक्सीन	..	७३
ट्यूबरकुलिन आर्डिनारी	..	९७२
,, कनसेन्ट्रेटेड	...	१४,७६५
रिन्डरपेस्ट बुल भाइरस	..	१,८५५ सी० सी०
,, गोट भाइरस	..	३२७ एम्पुल
,, गोट टीसू भाइरस	..	२,४८८ एम्पुल
ब्रू० एबोर्टस एन्टीजेन	...	१,९७५ सी० सी०

—(मुक्तेश्वर और इज्जतनगरकी वार्षिक रिपोर्ट, १९४०-४१—पृ० ६३)

भारतके कुछ प्रान्तोंमें अपनी जरूरतें पूरी करनेके लिये रस और भैक्सीन स्वयं बना लिये जाते हैं। बननेवाली ऐसी चीजोंमें गोट टिसू भैक्सीन और गोट ब्लड भाइरस तथा प्रतिरस मुख्य हैं।

बंगाल भैटेरिनरी विभागके दो केन्द्र कलकत्ता और चटगांवमें गोट टिसू भैक्सीन बनाने और बांटनेके लिये हैं। इन दोनों केन्द्रोंमें इस दवाकी सौ सौ मात्रावाली ७,६०९ बन्द शीशीयां बनीं जो सात लाख मात्राओंके बराबर थीं। इन ७ लाख मात्राओंसे १९४०-४१ में ५ लाख पशुओंमें सचारण किया गया।

मदरासके सिरम इस्टीट्यूटमें एन्टी-रिन्डरपेस्ट सिरम, रिन्डरपेस्ट बुल भाइरस, रिन्डरपेस्ट गोट भाइरस, डेसीकेटेड गोट स्प्लीन भैक्सीन, एन्टी हेमोरेजिक सेप्टीसीमियां सिरम और भैक्सीन, एन्टी ब्लैक क्वार्टर सिरम और भैक्सीन आदि बनते हैं। सन् १९४१-४२ में यह इस्टिट्यूट बल्ड भाइरस बनानेके लिये १३२२ बकरियां काममें लाया। इसने ९६४ भैंसोंसे एन्टी-रिन्डरपेस्ट सिरमकी १३,९५,१५० मात्रायें बनायीं। प्रत्येकने औसतसे १,४४७ मात्रा सीरम दिया।

युक्तप्रान्तमें रिन्डरपेस्ट भैक्सीन बनानेका केन्द्र लखनऊमें है। सन् १९४०-४१ में, इस केन्द्रसे भैक्सीनकी ३ ०७,०२५ मात्राएँ चलान हुई।

१३८२. संक्रामक और छूतके रोगोंका नियंत्रण

छूतके रोग जब फैलें तो पशुपालक सावधान हो जांय और पशुओंके तापमानका ख्याल रखें। पास पडोसमें भी छूतके रोग फैलें तो बुद्धिमान पशुपालकोंको चाहिये कि, भेटेरिनरी विभागवालोंको खबर करें और रक्षात्मक उपाय काममें लावें। सरकार और जिलाबोर्ड सूई लगानेका मुफ्त प्रबंध करती हैं। इन संस्थाओंने यह सार्वजनिक सेवा अपने ऊपर ले रखी है। पहले कहा जा चुका है कि, हर साल इन रुक सकनेवाले छूतके रोगोंको रोकनेके लिये दवाओंकी लाखों मात्राएँ काममें लायी जाती हैं। हर प्रान्तके भेटेरिनरी विभाग अपने अपने प्रान्तोंको इन आफतोंसे बचाना चाहते और जो उनसे हो सकता है करते हैं। इनका उद्योग और भी सफल हो यदि पशुपालक इन सरकारी संस्थाओंको समझें और हर जरूरत पर इनके अफसरोंसे काम लें। जिलाबोर्डोंकी ओरसे भेटेरिनरी अस्पताल होते हैं, जिनमें भेटेरिनरी एसिस्टेन्ट सरजन रहा करते हैं। इनमेंसे कुछ तो प्रायः सदा दौरे पर ही रहते हैं। इन अस्पतालों और अफसरोंका पता ठिकाना जानना चाहिये कि, रोग

फैलने ही इनको खबर की जाय। इन केन्द्रोंको बुलावा मिलना भी है। पर जरूरत तुरत खबर भेजनेकी है।

पश्चिमी यूरोपमें पशुचिकित्साका प्रबन्ध उत्तम है। वहाँ ढोरकी देखभाल करनेके लिये सरकारी नौकर अधिक हैं। वहाँ उन लोगोंने भेटरिनरी पुलिस कायम की है। छुतहे रोगोंको रोकनेके उपाय करना उनके कामोंमें एक काम है। रोग फैलने पर वह "स्थितगति" ('stand still') उपाय काममें लाते हैं। इसे वह खासकर ढोरोंके प्लेग (माता) में काममें लाते हैं। ऐसे उपायोंसे काम लेने पर पश्चिमी यूरपसे अनेक रोग मिट गये।

१३८३. "स्थितगति" (स्टेन्डस्टिल) विधान

यह कहा जाता है कि, रोगी और उनके संसर्गमें रहनेवाले पशु अलग रखे जायँ। पर इतना ही काफी नहीं है। जब तक कुछ पशुओंमें रोगके लक्षण प्रगट हों तब तक उनकी छूत साथके दूसरोंको गोचर आदिमें लग जाना अधिक संभव है। यह जाननेका कोई उपाय नहीं कि, किननोंको छूत लग चुकी है। इसलिये इसका प्रबन्ध किया जाता है कि छूतवाले इलाकेके सभी पशुओंका इधर उधर जाना रोक दिया जाता है। महामारी फैलने पर समस्या यह नहीं रह जाती कि, रोगियोंका इलाज कैसे हो। समस्या रोगका फैलना रोकनेकी है। ढोरके प्लेग जैसे रोगोंके कीटाणु एक दो दिनमें धूपमें मर जाते हैं। असली खतरा उन पशुओंसे है जिन्हें रोग हल्के रूपमें है और जो दूसरोंको छूत लगाते हैं।

महामारी फैलने पर रोग-रोधक संचारण करनेवाले सहायक दलके आनेमें देर लग सकती है। यहाँ भेटेरिनरी विभागमें बहुत कम आदमी हैं। तुरत कार्रवाई करना उनसे शायद ही बन पड़े। इस विभागका अफसर जब एक ओर फँसा हो दूसरी ओरको उसका आसरा देखना पड़ सकता है।

ऐसी हालतमें पशुपालकोंको अपने इलाकेमें स्थितगति-उपाय काममें लाना बहुत अच्छा है। जिनके पास बहुत बड़ी संख्यामें पशु हैं, उन्हें अपने ही फार्म [illegible] लिये स्थितगति-उपाय करना चाहिये।

मकुल, स्थानोंसे दूर एक जगह चुननी चाहिये। जहाँ रोगी पशुओं को अलग रखना चाहिये। रोगीसे सटनेवाले पशु दूसरी जगह रखे जा[illegible]।

जहाँ व्यक्तियोंके लिये स्थितगतिका प्रवन्ध करना संभव न हो वहाँ तुरत ही मिल्जुलकर ऐसा प्रवन्ध करना बुद्धिमानीकी वात होगी। यहाँ पर सभी बीमार पशु जमाकर एक साथ रखे जायँ। वंगालमें जैसा स्थितगति-उपाय वताया गया है उसे लोग पसन्द कर रहे हैं। वंगालके भेटेरिनरी विभागकी १९४०-'४१ की रिपोर्टका अश नीचे दिया जा रहा है।

"प्रान्तके विभिन्न भागोंमें छूत और संकामक रोगोंके रोगी पशुओंको, खासकर माताके रोगियोंको, अलग रखनेके लिये "स्थितगति-शिविर" खोले गये। इनसे वहुत उपकार हुआ। क्योंकि, महामारी फैलने या सकुल स्थानोंमें उनके वढने पर खासकर आचारिक या स्वास्थजनक उपायोंसे जहाँ रोग निर्मूल करना कठिन या असभव होता वहाँ भेटेरिनरो अफसर तुरत पहुँच सकते थे। छूत लगे पशु वरावर खतरा और वुराई न वढाते रहे यह रोकनेके लिये उन्हें तुरत गाँवसे दूर हटा ले जाना इन शिविरोंके कारण ही संभव हो सका। ये शिविर रोगरोधनके तत्र वन गये। जैसा ऊपर कहा गया है इनसे तुरत काम लिया जा सका। एक जगह रहनेसे वहांके अधिवासी या पशुपालक स्वय ही रोगकी पहचान कर लेते थे। पासके प्रधान केन्द्रसे डाक्टरोंकी सहायता या कलकत्तेसे रस (सिरम) और भैक्सीन आनेके आसरे नहीं रहते थे। लोग अपने आप शास्त्रीय सहायता पानेके आसरेमें रहनेके वीचका सारा समय रोगी पशुओंको स्थितगति-उपायसे तुरत अलग करनेमें लगाते थे और इसका अच्छा असर होता था। इसका अभिप्राय यह कि, रोग फैलने पर तन्दुरुस्त पशुओंके वीचसे रोगी और शकावालोंको अलग करना और फिर रोगियों और शकावालोंको स्थितगति-शिविरोंमें पहुँचाना। इसे शुरू करनेमें कुछ कड़ाईसे काम लेना पडा पर फल उत्साहप्रद रहा"। —(पृ० ४)

अजात स्थानोंसे पशु खरीदते समय लोग सावधान रहें यह वचावका उपाय है। पर स्थान यदि जाना हुआ हो और उसमें कोई महामारी न फैली हो तो वहांसे खरीदनेमें खतरा नहीं हो सकता है।

पर मेलों और हाटों आदि अजात स्थानोंसे खरीद करनी ही होती है। इसलिये नये खरीदे पशु ठट्ठके पशुओंसे १५ दिनके लगभग अलग रखे जायँ जिससे कि, यदि किसी पशुको छूत लग चुकी है तो इस वीच प्रकट हो जायगी। ठट्ठके किसी पशुका अचानक मरना दुर्घटना या विषके कारण भी हो सकता है। पर साधारण तौर पर

गलघोंटू या गिल्टी जैसे छुतहे रोगोंके घातक आक्रमणसे भी यह होता है। चउडोंका मरना लगड़ीको वजहसे हो सकता है।

इसलिये ऐसी हालतमें इसे छूतका रोग मानकर ही कोई कार्रवाई करना बुद्धिमानी है। ठट्ठके अन्य पशुओंकी हिफाजतके ख्यालसे लाशको ठिकाने लगानेका उचित उपाय करना चाहिये।

लाशको खूब गहरे गाड़ दो। गाड़नेकी जगह लाश ले जानेमें सावधानी रखो। मुर्देके मुँह या गुदासे निकलनेवाला कोई पानी या मल राहमें इधर उधर न गिरे। लाशके तमाम छेद बन्द कर दिये जायँ। अच्छा यह हो कि, मुँह पर टाट कसकर बाँध दिया जाय जिससे मुँहसे चूनेवाली चीज उसीमें रह जाय। गुदा साफ कर बन्द कर दी जाय। सफाईवाली दूषित चीजें वहीं जला दी जायँ।

गहरे गढेमें लाश गिरा देनेके बाद चाकूसे उसके चमड़ेको जहाँ तहाँ टुकड़ा टुकड़ा कर काट दो। इससे चमार चमड़ेके लोभसे उसे नहीं उखाड़ेगा। फिर चूनेसे उसे ढक गढेमें मिट्टी भर दो। जब गढा भरनेको कुछ बाकी रहे तब कँटीली झाड़ियाँ डालो फिर मिट्टीसे पाट दो कि, उसे सियाल न खोदें।

गोशाला और बाँधनेकी जगहें अच्छी तरह जीवाणुरहित कर दी जायँ। जीवाणुरहित करनेकी जगह पर पुआल फैलाकर उसे जला दो।

अज्ञात कारणोंसे हुई अचानक मौतोंके लिये यह उपाय है।

मामोंमें छूतके सामानोंको दो दिन धूप दिखानेसे वह हानिकारक नहीं रहते। किसी छूतके रोगसे मृत्यु होने पर उस जमीन पर घासफूस फैलाकर आग लगा देनी चाहिये। वहाँके कूड़े करकट और फालतू सामान भी जला देना चाहिये।

लाश घसीट कर न ले जानी चाहिये। उसे टांग कर ले जाओ। जो सामान जलाये या झुलसाये जाने लायक न हों जैसे कि, परिचारकोंके कपड़े उन्हें उबाल लेना ठीक रहेगा। रस्सी आदि जला देनी चाहिये।
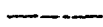
अध्याय ३९

छूत और संक्रामक रोग

(१३८४) Rinderpest : माता। (१३८५) Haemorrhagic Septicaemia : गलघोटू। (१३८६) Black Quarter : लंगड़ी। (१३८७) Anthrax : गिल्टी। (१३८८) Foot and Mouth Disease : खुरपका। (१३८९) Three Day Fever : डेंगू। (१३९०) Cow-pox : गोशीतला। (१३९१) Contagious Pleuro pneumonia : संक्रामक प्लूरो निमोनियाँ। (१३९२) Tuberculosis : क्षय। (१३९३) Johne's Disease : वाह। (१३९४) Actinomycosis कठजिभिया। (१३९५) Bang's Disease : संक्रामक गर्भपात। (१३९६) Tick Fever : जर्द बुखार। (१३९७) Surra : सड़ा। (१३९८) Tetanus : धनुष्टंकार। (१३९९) Rabies : कुकुर विष। (१४००) White Scour : सफेद दस्त। (१४०१) Navel Ill नवजातका रक्तदोष। (१४०२) Calf Diphtheria : वत्स रोहिणी। (१४०३) Cocci-diosis : खूनी दस्त।

१३८४. Rinderpest : Cattle Plague : माता।

पर्याय — बंगाली—गूटी, गो-वसन्त, जगदम्बा, माता। गुजराती—शिली। कन्नड़—दोड्डारोग। मलयालम—वसन्तरोगम्। पंजाबी—जहमत। सिंधी—सीन। तैलगी—पेड्डाजाड्यामु।

लक्षण : पशुओंका यह रोग उग्र है। इसमें छूतसे टाइफाइडकी तरहका बुखार लगता है। इसका आक्रमण अचानक और शीघ्रगामी है। बुखार तेज रहता है। अति निर्बलता, आँत और मुँहकी श्लैष्मिककलाकी सूजन। इस रोगसे अधिक मृत्यु होती है। कहा जाता है कि भारतमें मृत्यु संख्या २५ से ५० सैकडा है, यूरोपमें यह और भी जादे ८० से १०० सैकडा थी।

स्थान : पच्छिमी एशियाके पठार और भारत इसका घर माने जाते हैं। अब यह सारी दुनियामें फैल गया है। यूरोपमें इस रोग और इसके उन्मूलनके प्रयासमें काफी खींचतान हुई है। पच्छिमी यूरोप, उत्तरी अमेरिका और दक्षिणी अमेरिकासे यह मिट चुका है। किसी नये देशमें जब यह पहले पहल फैलता है तब एक छोरसे दूसरे तक फैल जाता है और अतमें खतम हो जाता है। पर कुछ अनुकूल स्थानोंमें बारहमासी बन जाता है। यूरोप और अमेरिकावालोंने रोगी पशुओंको मारकर अपने यहां इसको निर्मूल कर दिया है। जब जब रोग शुरु हो यही करके और पृथक्करण (quarantine) से उन लोगोंने इसके उन्मूलनमें पूरी सफलता पायी है। लेकिन कभी कभी पृथक्करणसे यह बच निकलता है। सन् १९२० में भारत-से ढोरोंका एक चलान एन्टवर्प गया था। इनमेंसे कुछ तो स्थानीय क्वेंटाइनमें मर गये जो बचे सो दक्षिणी अमेरिका भेज दिये गये। ६ महीनेके भीतर जुलाईसे सन् १९२० के अन्ततक सारे बेलजियममें यह रोग फैल गया। तब कृडा़न्त उपाय किये गये। "इस रोगसे २७९ पशु मर गये, ४९० रोगी हुए, ८५ जिलाके २२२ क्षेत्रोंमें १८५९ पशु जिनके बारेमें रोगका संदेह था मार डाले गये" —(हुटीरा-Hutyra)। बेलजियम इस रोगसे सन् १९२० में ६ महीनेमें मुक्त हुआ।

भारतमें यह बहुत पहलेसे है। इसीलिये भारतके ढोरोंको कुछ अशमें साधारण तौरपर क्षमता आ गयी है। पर भारतके पहाड़ी ढोरोंमें इस रोगकी ग्रहणशीलता बहुत है। इनकी मृत्युसख्या ८० से १०० सैकड़ा पहुंच जाती है।

भारतीय ढोरकी वगज प्रतिरोधशक्ति पूर्ण नहीं है। कुछ ऐसे पशु होते ही है जिनमें छूत रहती है। भारतमें यह प्राय: होता है कि महामारी फैलनेके बाद रोग किसी प्रान्त वा जिला या गावसे कई वर्षके लिये गायब हो जाता है। उस समय यही माना जाता है कि, ग्रहणशील पशु जितने थे सब रोगसे मर गये केवल प्रतिरोधी बच गये। वर्ष पर वर्ष बीतते हैं और ग्रहणशीलोंकी सख्यावृद्धि होती है। जब रोगकी दूसरी लहर आती है तब अनेक ढोर बहा ले जाती है। भारतको समय समय पर होनेवाली महामारी नुकसान पहुंचा रही है। एक वर्ष एक प्रान्तमें मारी फैलती है तो दूसरे वर्ष दूसरे प्रान्तकी बारी आती है। कुछ कुछ तो हर समय मरते ही रहते हैं या रोग पहचाने नहीं जाते। पहचाने इसलिये नहीं जाते कि, उन पशुओंमें रोगकी तीव्रता नहीं होती जिससे उन्हें कोई ताड़ सके।

किसी किसी नस्लमें मृत्यु बहुत होती है। विदेशी ढोरमें इस रोगकी ग्रहणशीलता बहुत है। इन्हें जब छूत लगती है तब १०० सैंकडा तक मृत्यु हो जाती है। भारतीय नस्लोंमें पहाड़ी ढोरकी बढ़ी ग्रहणशीलता और मृत्युसंख्या बतायी जा चुकी है। सिंधी नस्ल भी बहुत ग्रहणशील है, मरती भी बहुत है। रोगकी छूत भैंस, बकरी, भेड़ जैसे अन्य रोमन्थकोंको भी लग सकती है। भैंस बहुत ग्रहणशील है। मैदानकी भेड शायद ही इसका शिकार होती है। जंगली जानवरोंको भी यह महामारी पकड़ सकती है। अफ्रीकाके जंगली रोमन्थक एक बार इसकी लहरमें प्रायः नष्ट ही हो गये थे। घोड़े, कुत्ते, खरगोश, पक्षी और आदमी क्षमताशील अर्थात् इस रोगसे अनाक्रम्य हैं।

छूत : यह रोग दृष्टिपर रोगाणुके कारण होता है जो इतना सूक्ष्म है कि, बर्कफील्ड पोर्सलेन् फिल्टर (Berkfeld Porcelain Filter) से भी निकल जाता है। इसके रोगाणुके बारेमें पहले लोगोंका विचार अतिरंजित था। लेकिन बीमारी फैलनेके बारेमें अनेक विचार असिद्ध हो चुके हैं। जब छूत बढी रहती है तब निकट संपर्कसे रोग फैलता है। मुक्तेश्वरकी प्रयोगशालामें विषबीज पकनेके काल—पहलेसे चौथे दिन तक—छूत लगानेका प्रयास सफल नहीं हुआ। संपर्कके एक प्रयोगमें यह पाया गया कि, जिन पशुओंमें संचारणके जरिये छूत लगायी गयी, संचारणके दिनके ५ वें से १० वें दिन तक उनके संपर्कमें आनेवाले पशुको छूत लगी। छूत लगनेके १० दिन बादसे १५ वें दिन तक संपर्कका असर नहीं हुआ। (कूपर—Cooper, मुक्तेश्वर : इन्डियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनीमल हस्बैन्डरी, १९३२)

रोगाणु देहके बाहर बहुत कमजोर और अल्पजीवी होता है। सूखी आबहवामें वह साधारण तौर पर बाहर २४ घंटे जीता नहीं रहता। श्री बीटन (Beaton) ने नाइजेरियामें पाया कि, मातासे मरनेवाले ढोरकी खाल छायामें २४ घंटे सुखानेसे छूतही नहीं रहती। जैसा कि, बरसातमें होता है, यदि हवा नम हो और तापमान कम हो तो रोगाणु छायामें ३६ घंटे जीये, पर ४८ घंटेमें मर गये। धूपकी ३४ डिगरी सेन्टिग्रेड गर्मीमें रोगाणु दो ही घंटेमें मर जाता है। खुले मैदानमें, गोचरमें यह ३६ घंटेसे अधिक नहीं जीता। गोशालामें यह २० घंटेसे अधिक दारुण नहीं रहता। मुक्तेश्वरमें ग्रहणशील पशुओंको रोगी पशुओंसे लकडीके पर्देसे अलग कर देने पर छूत नहीं लगी। आधा सैंकड़ा कारबोलिक एसिडसे रोगाणु

नहीं मरता पर २ सैकड़ासे मर जाता है। परक्लोराइड ऑफ मरक्यूरी (perchloride of Mercury) १ : १००० या १ प्रतिशत चूनेके घोलमें रोगाणु मर जाता है। रोगाणु विभिन्न तापमानमें छाया और पानीमें ठीक कितने समय जी सकता है इस बारेमें कई मत हैं। परिचारकों, गाड़ियों, नावों और मक्खियोंसे यह फैल सकता है, यह पुराना विचार अब रोगाणुके लक्षण देख बदल रहा है। टीले और खाईसे घेरकर किसी स्थानमें यदि रोगी पशु रखे जायें कि, वह पार न जा सकें तो वह उस घेरेके बाहरके पशुको छूत नहीं लगा सकते। इससे मालूम होता है कि, छूत हवासे नहीं लगती।

सुखाने या सड़ानेसे रोगाणु आसानीसे नष्ट हो जाता है। प्रयोगशालामें रोगाणु जीता रखनेके लिये विशेष सावधानी रखनी होती है। तापमानका नियन्त्रण करना होता है और खास तरीकेसे पालना होता है। यदि रोगी पशुका खून सूख जाय तो ४८ घंटेके बाद उसकी छूत नहीं लग सकती।

सवाल यह उठता है कि, वास्तवमें छूत होती कैसे है और कैसे फैलती है। इस बारेमें खोज हो रही है।

खोजनेसे पता चला है (दत्त और राजगोपालन . मुक्तेश्वर) कि, रोगी पशु रोगवाहक हो सकते हैं। एक सांढको सचारण करके छूत लगायी गयी। उस पर प्रतिक्रिया हुई और वह बच गया। सचारणके १५ दिन बाद वह ऐसी जगह हटा दिया गया जहां सम्पर्कसे छूत नहीं लग सकती। लगायी गयी छूतके ७४ दिन बाद उसे माता हो गयी और वह मर गया। शव-परीक्षामे पता चला कि, मौत मातासे हुई। इससे सिद्ध होता है कि, पशुओंमें जीता रोगाणु बहुत दिन तक रह सकता है और इस तरह वे चुपचाप नयी जगहोंमें छूत ले जा सकते हैं। सन् १९२० में एंटवप और दक्षिणी अमेरिका भेजे गये भारतीय ढोरोंसे जो बीमारी फैली थी शोधक उससे मुक्तेश्वरकी खोजका समर्थन करते हैं। जहां तत्काल बाहरसे आये पशुओंका पता नहीं चलता वहां भी अचानक यह रोग कैसे फैलता है, यह इससे जाना जा सकता है। साधारण तौरपर यह देखा जाता है कि, रोगाणु रोगी शरीरमें १५ दिनसे ज्यादा नहीं जीता। स्वच्छ दिखायी पड़नेवाले स्थानोंमें रोग हो जानेके कारण इन अपवादोंसे स्पष्ट हो सकते हैं।

ऐसा समझा जाता था कि, कुछ मक्खियां यह रोग फैलाती हैं। मुक्तेश्वरके प्रयोगसे सिद्ध हुआ कि, यदि टबैनस ओरियन्टिस (Tabanus Orientis)

जातिकी अनेक मक्खियां रोगी पशुको काटनेके बाद किसी ग्रहणशील पशु पर भरपेट भोजन करें तो उस पशुको माता हो जायगी। पर बादके (मुक्तेश्वर) प्रयोग से पता चला कि, स्वाभाविक स्थिति प्रयोगशाला जैसी नहीं होती। और जहां तक इस मक्खीकी बात है इससे छूत फैलना असम्भव है।

आम रास्ते पर चलनेसे यह रोग लग सकता है। हिसारके सरकारी क्षेत्रमें एक बार ढोरोंमें यह रोग फैला। यहां लगभग ६००० ढोर रहते हैं। यह सब लगभग ६० वर्गमीलके घेरेमें स्वच्छन्द रहते हैं। इस स्वच्छ स्थानमें यह रोग आ कैसे सकता है? अनुमान होता है कि, इस अहातेमें होकर जो रास्ते हैं उन्हें पडोसी गांवोंके लोग काममें लाते हैं। छूत इसी ओरसे लगी होगी।

इन बातोंसे सिद्ध होता है कि, वाहक पशुसे छूत आरम्भ होकर संसर्गसे फैलती है। रोगी पशुके रक्तकी सूक्ष्मतम मात्राका सूईसे छूत लगायी जा सकती है। दूषित रक्त, थूक, नासिकास्राव, मूत्र, मल, अश्रु, योनिस्राव, पसीना आदि खिलानेसे भी छूत लगती है।

लक्षण : छूत पकनेमें ३ से ८ दिन लगते हैं। छूत लगनेके तीसरेसे ५ वें दिन तक साधारण तौरपर लक्षण प्रकट होने लगते हैं। छूत लगे पशुका तापमान बढने लगता है। प्रारम्भिक लक्षणोंमें यह एक है। इसके एक या दो दिन बाद अन्य लक्षण दिखायी देते हैं। तापमान १०४ से १०८ फ० तक चढता है। छूत पकनेके बाद रोगके तीसरे या चौथे दिन यह जाडेसे जाडे होता है। तापमान बना रहता है और मरनेसे पहले उतरता है। कभी कभी कठिन अतिसारके बाद यह साधारणसे नीचे बडी तेजीसे उतरता है। अनुकूल अवस्थामें यह धीरे धीरे साधारण तक उतर सकता है। तापके चढनेसे अन्य लक्षणोंका उग्र या कठिन होना जरूरी नहीं है। रोगग्रसित स्थानसे या छूतकी जगहसे आये पशुका ताप चढ़ना यह बताता है कि उसे छूत लगी है। निरोग स्थानमें एक ही समय यदि कई पशुओंका ताप चढा रहे तो भी छूत समझनी चाहिये

बुखारके दूसरे या तीसरे दिनसे अचेतनता और क्षीणता शुरू होती है। पशु सिर झुकाये खडा रहता है, कान भी झुके रहते हैं, पीठ कमानकी तरह टेढी हो जाती है। वह अन्य पशुओंसे अलग चलग खड़ा होता है। जब अन्य पशुओंके साथ उसे हांका जाता है तब वह पीछे पड़ जाता है और मर मर चलता है। किसीको कुछ घंटेके लिये बेचैनी हो सकती है पर उसके बाद अचेतनता आ जाती है।

सींग और कान गरम मालूम पडते हैं। थूथन सूख जाता है। जोड़ोंके पीठकी ओर चमडे पर पसीना रहता है। बाल, खास करके गेढ परके, खडे और रूखे रहते हैं।

भूख नहीं रहती पर कभी कभी प्यास बढ जाती है। रौंथ मन्द पड जाती है और पीछे बन्द हो जाती है। अनाह होता है। पेशाब पाखाना देरसे होता है। गोबर सूखा काले रंगका होता है। चोत लस्सदार नहीं होता और प्रायः आंवमें सना होता है। पेशाब कम, काले रंगकी होती है। कंधे, पीठ और पिछले अंगकी पेशियां फड़क सकती हैं। ताप बढ़ने पर सांस और नाडी तीव्र हो जाती हैं। प्रारम्भिक अवस्थामें खांसी भी हुआ करती है। श्लैष्मिक कलामें दूसरे दिनसे परिवर्तन दिखायी देता है। पलकें सूज जाती हैं। उसकी कलायें लाल हो जाती हैं और आंसू बहता है। पीछे यह स्राव गाढा पीवसा हो जाता है। नाकसे पानी बहता है। पीछे रेंट भी बहने लगती है। नाककी श्लैष्मिक कला लाल हो जाती है पीछे उस पर जमी रेंट भर जाती है। सूखे और फटे थूथन पर भूरी पपडी पड जाती है।

परीक्षाका महत्वपूर्ण स्थान मुंह है। इसकी श्लैष्मिक कला पर गहरा प्रभाव पडता है। लार जाँड बहती है। उसमें बुलबुले और कभी कभी रक्त मिले रहते हैं। लार लसलसी नहीं होती। इसलिये उसके तार नहीं बनते। गालकी भीतरी ओर ताल परकी श्लैष्मिककलामें लाल चकत्ते होते हैं। ये चकत्ते मिले जुले होते हैं, भूरे रंगके मालूम होते हैं। उनपरकी खुरट सरलतासे हटायी जा सकती है। इसमें लाल, दानेदार तन्तु जिनसे जरा जरा रक्त बहता है निकल आते हैं। मसूड़े भी लाल हो जाते हैं। उन पर थूककी खुरट या पपडी जम जाती है जिसे छीलनेसे लाल तन्तु निकल आते हैं। जीभ पर सफेद उभडी हुई तह जम जाती है।

रोग बढने पर आँख, नाक, और मुंहके स्राव बढ जाते हैं और दुर्गन्धित हो जाते हैं। सांसमें गन्ध आती है। गायकी योनिसे इसी तरहका स्राव होता है और वह लाल हो जाता है। इस पर पपड़ी जमती और इसके झड़ने पर वह जगह लाल दिखायी देती है जिससे रक्त चलता है। स्रियोनिमें परिवर्तन जल्दी ही हो जाता है इससे परीक्षाकी सुविधा जल्दी हो सकती है। नाक, थूथन, योनि और गुदाकी श्लैष्मिक कलापरकी भूरी पपडी लाक्षणिक वस्तु है।

पेशाव बारबार या लगातार बूँद बूँद होती है। कभी कभी चमड़ेपर खास तरहका असर होता है। दूसरे तीसरे दिन थन और वृषणसे मसूर जैसे रक्तस्राव होते हैं। दस्त होनेके बादकी अवस्थामें जाँघोंकी भीतरी ओर मुँह पर कभी कभी गर्दन पीठ और कंधेके पीछे मटरके आकारके छाले निकल आते हैं। छालों पर पपड़ी पड़ जाती है। इसलिये भारतके कई प्रान्तोंमें इस रोगको शीतला मान वही नाम दे दिया है और माता या गोटी आदि कहते हैं।

तीन दिनके बाद जब रोग बढता है तब अनाहके बदले दस्त आते हैं। दस्त पानीसा होता है जिसमें रक्त और आंवसे सनी गाठें होती हैं। आगे चलकर रक्त और आँवदार केवल पानी ही निकलता है। रग भूरा-पीला है। गध बुरी होती है। पेट कमजोर हो जाता है। पशु बहुत पड़ा रहता है। निगलनेमें कठिनाई हाती है। पीड़ा बहुत रहती है। पशु जब तक खड़ा रह सकता है इधर से उधर अपना सिर हलाता है। इसके बाद पड रहता है और बड़े कष्टसे मरता है।

अतकाल जब पास आ जाता है तब धँसी हुई निस्तज आँखें, आँख, नाक, मुँह और भगसे निकला पीबसा स्राव, फेनसा थूक, दांत पीसना, जबतब अपने आप पानीसा दस्त और उसकी बुरी गध तथा सारे शरीरसे निकलनेवाली सडी गध, यह इस रोगका दृश्य है। इन लक्षणोंके रहते दूसरा रोग भूलसे समझा नहीं जा सकता।

यदि आशिक आनुवंशिक क्षमता हो तो रोग बहुत कठिन नहीं होता है। ताप चढ़ना, पेट और आंतोंकी गड़बड़ी, सर्दी और गालकी कलाका क्षत जैसे हल्के लक्षण प्रगट होते हैं। ताप धीरे धीरे उतरता और पशुकी अवस्था साधारण जैसी हो जाती है। कभी ऐसा भी हो सकता है कि रोग लोगोंका कुछ भी ध्यान नहीं खींचे। कभी हल्की बीमारीमें तापमान भी नहीं चढ सकता है। पर ऐसे हल्के रोगमें भी छूत ता वैसी ही फैलती है।

रोग ४ से ८ दिन रहता है। कभी कभी २ से ३ सप्ताह भी लग सकता है। बड़े क्षेत्रोंमें माता बहुत तेजीसे नहीं फैलती। पहले कुछ बीमार होते हैं। इसके बाद ६, ७ दिनमें और कुछ। इसके बाद तेजी जादे से जादे होने लगती है और बहुत से पशु बीमार पड़ जाते हैं।

यह ध्यानमें रखना चाहिये कि, एक बारकी बीमारीमें या किसी एक बीमार पशुमें सभी लक्षण नहीं भी दिखाई दे सकते हैं। पर कुछ लक्षण तो जरूर रहेंगे।

भेददर्शी निदान (Differential Diagnosis)

कुछ रोग भूलसे माता माने जा सकते हैं :

(१) ढोरोंको सर्दीका सांघातिक ज्वर (Malignant catarrhal fever of cattle) : इस ज्वरसे लोगोंको प्रायः माताका भ्रम हो जाता है। कठिन ज्वरमें श्लैष्मिक कलामें परिवर्तन होता है जिसके सबब यह माता सा मालूम देता है। मातामें अचेतनता दूसरे दिनसे होती है पर इसमें शुरुसे ही। भेद इतना ही है कि, यद्यपि मुँह, नाक, और आँखकी श्लैष्मिक कला बुरी तरह पीडित होती है पर महास्रोतस और जननेन्द्रिय पर प्रभाव कम ही रहता है। रोग संक्रामक नहीं है। १ या २ पशु बीमार हो सकते हैं। आँखोंकी खराबी मातासे कहीं ज्यादे कठिन होती है। सींगों पर असर होता है और वह कभी कभी गिर जाते हैं।

(२) मुँह पकना (Thrush of the mouth) : ज्वर नहीं होता और पेटमें भी कोई उल्लेखनीय लक्षण नहीं होते।

(३) खुरपका : मुँह और खुरके ऊपर छाले पड़ते हैं। माताकी तरह पेटकी गडबडी नहीं होती। उसकी अपेक्षा खुरपका कहीं तेजीसे फैलता है।

(४) गलघोंटू : अतिशय स्राव, कठकी सूजन, मुँहमे क्षतोंका अभाव इसकी पहचान है। रक्तको परीक्षा करनेसे इसमें पेस्च्युरेला (Pasteurella) मिल सकता है। इस रोगमें बहुत जल्दी मृत्यु हो जाती है।

(५) खूनी पेचिश (Red Dysentery) : इसमें पहले पाचनकी गड़बडी होती है इसके बाद बुखार। रोग, पेट और आँतमे ही होता है। मुँहकी श्लैष्मिक कलापर कोई प्रभाव नहीं होता।

(६) गिल्टी इस रोगसे मृत्यु तुरन्त हो जाती है। मुँहमें कोई लक्षण नहीं होते। जीवाणु रक्तमें मिलते है। शव-परीक्षामें प्लीहा बहुत बढी हुई मिलती है।

(७) विष-प्रयोग : विष खानेपर बहुतसे मिलते जुलते लक्षण मिलते हैं। पर विषमें पेटका दर्द उल्लेखनीय है। मृत्यु साधारण तौर पर उतने विलम्बसे नहीं होती।

चिकित्सा

इस रोगकी चिकित्सा शायद नहीं है। पहली अवस्थामें अधिक मात्रामें लसीका (सिरम) देनेसे प्राण बच सकता है। पर लसीकाकी इतनी मात्रा सरकारी क्षेत्रोंमें

ही हो सकती है। लसीका दामी चीज है। अधिक मात्राकी जरूरत होने पर यह या तो मिले नही और नहीं तो दाम शक्तिसे जादे होगा। लसीका शुरू शुरूमें देनेसे प्राण बच सकता है। रोग अच्छी तरह बढ़ जाय तब इसे देनेसे कोई लाभ नहीं। हिसारके सरकारी क्षेत्रमें कुछ गायोंको प्रारम्भिक अवस्थामें यह दिया गया और वे बच गयीं।

इसके फैलने पर असली काम इसका फैलना रोकना और जिन्हें छूत नहीं लगी है उन्हे बचाना है। इसलिये रोगसे बचाना ही सामूहिक चिकित्सामें सभव है।

रोग फैलने पर नीचे लिखा उपाय करना चाहिये :

(१) सुस्थ ढोर और छूत लगोंको तीन दलमें अलग कर देना।

(क) जो ग्रस्त हो चुके हैं।

(ख) जो सपर्कमें रहे और सदिग्ध हैं।

(ग) सुस्थ, अग्रस्त और असदिग्ध।

इन सबको अलग अलग रखा जाय। (क) और (ख) खाईसे घिरे "स्थितिगति" स्थानोंमें अलग अलग रखे जायँ जिससे वहाँसे निकल वह दूसरोंके सपर्कमें नहीं आवें। एक घेरेसे काम नहीं चलता। इकहरे घेरेमें बाहरके पशुओंका सपर्क भीतरवालोंसे हो जाता है। जहाँ टीला या धुस्स और खाई सभव न हो वहाँ एक घेरेके कुछ गजोंके बाद दूसरा घेरा देना चाहिये। पर टीला या मेंड़ देना सबसे अच्छा है।

उस स्थानके सभी अछूते पशुओंको आगे बताये जानेवाले तरीकेसे संचारण करना चाहिये।

पृथक्करणके लिये भी ढोरोंको हटानेमें आम रास्तोंसे काम न लिया जाय जिससे कि दूसरोंके ढोरोंको छूत न लगे। एक बार बीमारी फैल जाने पर प्रकृति अपना काम करती है। बीमारीकी हालतमें परिचारक पशुओंको जितना आराम दे सके देनेकी कोशिश करे। वह उनका बिछावन ठीक करे, पानीका इन्तजाम रखे, करवट बदलनेमें असमर्थ होने पर उसमें मदत करे, और सुस्थ होनेवालोंको खिलावे।

छुतहे पशुओंमें केवल २५ से ५० सैकड़ाही मरते हैं। इसलिये सभीको आराम देना जरूरी है कि जिससे जितने बच सकें बचें। जाड़ोंमें रोग फैलने पर ओढनोंका भी प्रबन्ध रखना चाहिये। जब स्थितिगति-शिविरोंमें गांवके पशु अलग रखे जायँ तो गांववाले घर घरसे एक परिचारक दल संघटित करें जो इन शिविरोंमें पशुओंकी

खबरगीरीका प्रबन्ध करें। यह पृथक्करण कैसा हो इसके लिये मुक्तेश्वरका अनुभव मार्गदर्शक है।

"अभी हालमें इस संस्थामें श्री कूपरने (१९३२) दिखाया है कि, छूतवाले पशुओंके अस्तबलको केवल लकड़ीसे घेर कर अलग कर दिया गया था जिसमें तीव्र मातासे हाल ही एक पशु मरा था। उसमें एक तन्दुरुस्त सांढ़ को रखनेसे उसे छूत नहीं भी लग सकती है। (अनुसंधान-काल १५ दिनका था)। मुक्तेश्वरका इन्सटीट्यूट ४० वर्षमें कायम है। तबसे वहां ग्रहणशील और छूतवाले पशु एक दूसरेसे कुछ सौ फीटकी दूरी पर एक टीलेके आरपार रखे जाते हैं। वहांका अनुभव है कि, दूरी और रोग फैलनेका कोई उदाहरण नहीं है। आदमी और सवारीके आने जाने पर कोई रोक नहीं थी, केवल छूतवाले पशुओंपर रोक थी।"—(दत्त और राजगोपालन : मुक्तेश्वर)।

संपर्कवाले और संदिग्ध पशुओंको इसी तरह अन्य शिविरमें ले जाना चाहिये। यह जरूरी नहीं कि, यह स्थान छुतहे शिविरके बहुत दूर हो। उनपर इसी तरह देखभाल हो और जिनको छूत मालूम दे उन्हें छुतहे शिविरमें ले आया जाय। संदिग्ध शिविरके पशुओंको पहले केवल लसीका विधिसे बचाना चाहिये। इसके बाद अन्तमें साधारण तरीकेसे रोगाणु संचारण कर रक्षा करनी चाहिये। अस्तबलको और छूतके रोगीके खड़े होनेकी जगह पूरी तरह छूतरहित करो। तन्दुरुस्त पशुओंको कुछ दिनके लिये हटा ले जाओ। छूतरहित करनेकी विधिसे रोगाणु मार डालो। गांवके सभी पशुओंका बचाव करके और शिविरमें १५ दिन बितानेके बाद शिविर तोड़े जा सकते हैं।

माताके रोगाणु लाशमें सड़ जाते हैं। हवामें सुखानेसे कच्चे चमड़ेके रोगाणु ३६ घंटोंमें नष्ट हो जाते हैं। धूपमें सुखा छूतरहित चमड़ा बचा लेना चाहिये। लाशकी फालतू चीजें साधारण तरीकेसे खपा देनी चाहिये।

रक्षात्मक संचारण

माताकी छूतसे ढोरको बचानेके लिये कई तरीके काममें आते हैं। इनमें से कई भारतमें खोज करनेवालोंने निकाले हैं। ऐसा ही होना चाहिये। इस व्याधिसे अतिशय कष्ट भोगनेवालोंमें भारत भी एक है। यूरोप और अमेरिकामें रोगी पशुओंको

मार और उचित प्रतिकारी उपाय कर इस रोगको उखाड फेंका है। यह रोग उनके देशका नहीं है। अगर किसी तरह यह उनके देशमें पहुँच पाता है तो वहांकी सरकारें तुरत इसे मार भगानेका उपाय करती हैं। रोगी और सदिग्ध पशु मार डाले जाते हैं। अनेक वार सरकार इस हानिको पूरा करती है।

भारतकी हालत दूसरी है। यहां यह वारहमासी है। रोग इस या उस जगह बना ही रहता है। बगाल जेसे कुछ प्रान्तोंके अनेक जिलोंमें यह रोग हर साल होता है। पर भारतमे मृत्यु संख्या वहुत कम है। क्योंकि, पशुओंको आनुवशिक रोगक्षमता या अनाक्रम्यता कुछ हद तक आ गयी है।

यहांकी समस्या बचावकी है। यदि रोगका उन्मूलन संभव भी हो तो विशेषज्ञ सोचते हैं कि उनका तरीका अक्लमन्दीका है कि नहीं। क्योंकि, यदि देश इस रोगसे कई वर्षोतक मुक्त रहे तो इसकी परम्परीण क्षमता मिट सकती है। इसके वाद वर्मा, हिन्द चीन या तिव्वतसे यह महामारी आंत्र तो वहुत हानि कर सकती है। फिर कई वर्ष तक इस रोगसे मुक्त रहनेका जितना फायदा हुआ उससे जादे हानि महामारी फैलने और उसके वरावर जारी रहने से हो सकती है। यह इसलिये नहीं कहता हूँ कि, यह सरकारकी निश्चित नीति है। पर जव कभी पूर्वी भाग जिधरसे यह रोग फैलता है, उधर प्रतिरोधक प्रवन्ध करनेका सवाल आता है तव ऊपर कही दलील भी सामने आती है।

भारतमें इस रोगका विचित्र महत्व है। सभी रोगोंमें कुल जितनी मौतें होती हैं उसकी आधी इससे होती हैं।

खोज करनेवाले ऐसे उपाय की खोजमें है जिससे यह रोग रोका जाय और वह सस्ता भी पड़े, रामवाण (अचूक) भी हो और साथही देशमें जितने कम नौकर हैं उनके जरिये जादेसे जादे काम वन सके। यह आदर्श है। खोज करनेवालोंके पूर्ववर्त्तियोंने इस या दूसरे देशोंमें जो काम किये-है उनके आधार पर यह लोग काम कर रहे हैं।

खोजके कामोंमें पिछले १० वर्षोंमे आशातीत सफलता मिली है। १० वर्ष पहले जो अवस्था थी उससे आजकी अवस्था कहीं अच्छी है। इसके लिये खोज करनेवाले वधाईके पात्र हैं।

जिस आधार पर चेचकके टीके की खोज हुई है उसी पर इसकी भी हो रही है। यदि वीमारी अच्छी हो गयी तो चेचक की तरह इसमें भी जन्मभरके लिये क्षमता आ

जाती है। अब समस्या यह थी कि, यदि टीका जैसे उपायसे हल्की बीमारी पैदा की जा सके तो पशु सदाके लिये रोगसे बच सकता है।

छूतवाले पशुकी देहसे जीवित-रोगाणु टीकाकी सामग्री मानी गयी है। यदि किसी ग्रहणशील पशुके चमड़ेमें रोगी पशुके खूनकी सूई दी जाय तो उसे रोग पकड़ लेता है। रोगकी दारुणता एक कठिनाई थी। ऐसा हुआ कि, टीका लगाये अनेक पशुओंको कठिन रोग हो गया जिससे वह मर गये। इसके सिवा टीका लगानेसे छूत फैल गयी। क्योंकि, टीका लगे पशुके स्राव और मलके सपर्कसे छूत फैली। रक्तके रोगाणुका टीका लगानेमें ये कई त्रुटियाँ थीं। इन त्रुटियोंके होते भी इससे बचाव हुआ।

दूसरा उपाय क्षमताशील लसीकासे काम लेना था। पशुओंको माता-भेक्सीनकी हल्की मात्रा दी गयी जिससे बहुत हल्की बीमारी हुई। ऐसे पशु रोगाणुकी बड़ी मात्रा सह सके। बार बार ऐसा करने पर वह घातक मात्रासे भी कई गुणा सह सके। ऐसे पशुओंकी लसीका कई दिनों तक निष्क्रिय क्षमता पैदा करती है यह पहले बताया जा चुका है। अब माताकी प्रतिलसीका (एन्टी सिरम) केवल निष्क्रिय क्षमताके लिये ही नहीं दी जाती, भेक्सीनकी प्रतिक्रिया कम करनेके लिये भी दी जाती है। केवल लसीका या केवल भेक्सीनकी जगह इस तरह सिरम-साइमल्टेनियस विधि प्रारंभ हुई।

फिर भी सभी बातें संतोषप्रद नहीं थी। माताका रोगाणु अन्य पशुओं जैसे बकरीके देहमें डालकर निकाला जाय तो हल्का हो जाता है। इस जानी हुई बातका फायदा उठाया गया। भारतमें इसकी परीक्षा की गयी। भारतमें सांढके रक्तके रोगाणुके उपयोगके पहले बकरीके रक्तका रोगाणु काममें लाया गया। सांढके रक्तके रोगाणुसे बकरीके रक्त-रोगाणुकी प्रतिक्रिया कहीं कम थी।

पिरोप्लाजमोसिस (piroplasmosis) से स्वय पीड़ित हुओ बिना जो पशु पिरोप्लाजमके वाहक होते हैं उनके रक्तके रोगाणुमें पिरोप्लाजम हो सकते हैं। सांढके पिरोप्लाज्म-मिश्रित रक्तके रोगाणुकी सूई लगायी जानेवाले पशुओंको प्राय पिरोप्लाज्मोसिस हो जाती है जिससे मौत हो जाती है।

मुक्तेश्वरके भेटेरिनरी रिसर्च इंस्टिट्यूटके तत्कालिन डाइरेक्टर डा० अेडवर्डसने बकरी के रक्तका रोगाणु (blood virus) चालू किया था। सांढके रक्तके रोगाणुसे बकरी वालेमें ये लाभ हैं:

(१) बकरी पिरोप्लाज्मकी ग्रहणशील नहीं है इसलिये उसके रक्तमें यह नहीं होता।

(२) इस रोगाणुकी दारुणता निश्चित है और साँढ़के रोगाणु की दारुणतासे कम है। इसलिये अधिक निरापद है। बकरीके अन्दरसे निकलनेपर यह हल्की हो जाती है।

(३) प्रयोगशालासे प्राप्त बीजसे अधिक सरलता और कम खर्चीसे रोगाणु कार्यक्षेत्रमें बनाया जा सकता है। प्रयोगकर्ता इस बातकी दिलजमई कर सकता है कि, वह समर्थ रोगाणु काममें ला रहा है।

बकरीके रोगाणुने साँढके रोगाणुके उपयोगका रास्ता खोल दिया। आज सारे भारतमें नीचे लिखे तीन उपाय मातासे रक्षा करनेके काममें आरहे हैं :—

(१) केवल बकरीके रक्त का रोगाणु।

(२) बकरीके रक्तके रोगाणुके साथ लसीका (सिरम) या सिरम साइमल्टेनियस।

(३) केवल लसीका।

निष्क्रिय रक्षाके लिये केवल लसीका-विधि थी और है।

पता चला है कि, छुतहे पशुका केवल रक्त ही नहीं दूसरे अवयव भी रोगाणुवाहक भैक्सीनके काममें आ सकते हैं। आज इस खोजसे फायदा उठाया जा रहा है। यह पता चला कि माताके रोगाणु प्लीहाकी ओर बहुत आकर्षित होते हैं और उसमें अधिक सख्यामें रहते हैं। प्रयोगसे पाया गया कि, ग्रहणशील पशुका सचारण करनेमें बकरीके रक्तका रोगाणु जितना काम कर सकता है उतना ही बकरीके प्लीहेका भी।

सक्रिय रक्षाके लिये केवल बकरीके रक्तका रोगाणु सबसे पहले बगालके श्री पी० जी० कर्रने चालू किया। वह महामारीमें केवल रक्त-रोगाणुका उपयोग करना चाहते थे। पर अपनी विधि काममें लानेके पहले वह इसके हर पहलू पर श्री वेयर, इस्टिट्यूटके डाइरेक्टर और श्री हैदो, लसीका-शास्त्री (serologist) से विचार करने मुक्तेश्वर गये। वहाँ उन्हें पता चला कि, श्री हैदो बकरीके रक्तके बदले ततुका रोगाणु चलानेवाले हैं। इसलिये उन्होंने इस नयी चीज, बकरीके तंतुके रोगाणुके उपयोगका निश्चय किया।

जब श्री कर्र बकरीके रक्तका रोगाणु केवल काममें ला रहे थे तब उन्हें नीचे लिखी कठिनाइयाँ हुई थीं :—

(१) यह विधि साधारण भेटेरिनरी असिस्टेन्टकी योग्यतासे परेकी बात है, क्योंकि बकरीको सूई लगाकर उसका रक्त उस समय लेना होता है जब छूत पूरी उठानमें हो।

(२) छूतकी जगह पहुँचने पर ३-४ दिन भी लगाना जरूरी था। क्योंकि, बकरीको सुई लगा कर तब तक ठहरना होता था जब तक रोग खूबसे खूब न बढ जाय।

इसलिये जब कर्नेल बकरीके ततुकी विधि सुनी तो केवल रक्तके रोगाणुके बदले केवल ततुकी सुईका प्रयोग करने लगे। बकरीके ततुकी भैंक्सीनके फायदे ये हैं :

(१) यह प्रधान कार्यालयमें सरलतासे बनाया जा सकता है और सूई की शीशियोंमें भरकर बरफमें रखा जा सकता है। किन्तु रक्तके रोगाणुको तुरत बनाकर काममें लाना होता है।

(२) ये सूई-शीशियाँ (एम्पुल) डाकसे भेजी जा सकती हैं।

(३) भैंक्सीन पहुँचनेके साथ काममें आती है।

(४) एक बकरीसे २,००० से २,५०० मात्रा भैंक्सीन निकलती है। इसकी तुलनामें रक्तसे केवल ५०० मात्रा।

(५) बरफमें ४५ डिग्री फा० में इसकी शक्ति ३० दिन तक बनी रहती है। प्रयोगशालाके बाहर जाड़ोंके साधारण तापमानमें यह सात दिन तक काम कर सकती है।

मातासे रक्षा करनेमें केवल ततु-भैंक्सीनका उपयोग कर श्री कर्न बहुत सफल हुए। आगे चलकर उन्हें पता चला कि, डाकसे सूई-शीशी भेजनेकी अपेक्षा पसिंजर गाड़ीमें बर्फमें रख कर भेजना चाहिये। क्योंकि अधिक गर्मीसे रोगाणु मर जाते हैं।

विधि : बकरीको रोगाणुके ५ सी० सी० अवक्षका संचारण किया जाता है। तीन चार दिनमें बकरीको अधिकतम ताप १०३ से १०४ डिग्री फा० चढ़ता है। उसे मार दिया जाता है। उसका पेट मूँड़ कर उसे छूतरहित किया जाता है। इसके बाद पेट चीर कर प्लीहा निकाली जाती है। प्लीहाके प्राय १ ग्राम (१५ ग्रेन) के टुकड़े किये जाते हैं। इन्हें सूई-शीशीमें भर मुँह जोड़ दिया जाता है। इन्हें अगले पखवारेके भीतर काममें ले आनेके लिये प्रधान कार्यालयकी प्रयोगशालामें ४५ डिग्री फा० टेम्परेचर पर बर्फमें रखते हैं।

माँग होने पर एक ग्रामवाली शीशियाँ भेजी जाती हैं। जरूरतकी जगह पर शीशी तोड़ कर एक ग्राम ततु निकाल काँचके खरलमें ०·५ सैकडा नमकके घोलके साथ रगड़ कर अवद्रव बनाया जाता है। इस एक ग्राम ततुमें १०० सी० सी० नमकका घोल मिलाया जाता है। १०० सी० सी० घोल थोड़ा थोड़ा खरलमें डाला जाता है। इसे निचोड़ कर तामचीनी (इनैमल) के ढक्कनदार मगमें छान लिया जाता है। १०० सी० सी० अवद्रव कुलका कुल मगमें कर लिया जाता है। इस मगको ठडी जगहमें छायामें रखा जाना है।

इस अवद्रवकी एक सी० सी० एक पशुको दी जाती है। भैंस गायसे अधिक चेतनाशील होती है। इसलिये उसे आधा सी० सी० ही दी जाती है। अवद्रव उसी दिन उपयोगमें लाना होता है। जो बच रहे उसे फेक देना चाहिये। दूसरे दिन काममे नहीं लाया जा सकता।

सन् १९३५ मे बगालमे यह प्रयोग १ लाख पशुओं पर किया गया। टीकाके कारण ०·५ सैकडा मृत्यु हुई। इस तरह आयी क्षमता ठोस थी। क्योंकि, १ सी० सी० बकरी-ततुका टीका पायेहुए पशुओंको कुछ दिन बाद ततु या रक्तके रोगाणुकी सूई अधिक मात्रामे देने पर कुछ भी प्रतिक्रिया नहीं हुई।

तबसे बगालमे केवल बकरीके ततुका रोगाणु (G.T V.) ही मातासे बचावके लिये दिया जाता है। कठिन प्रतिक्रिया होने पर या सदिग्धोंकी निष्क्रिय रक्षाके लिये या रोगकी प्रारभिक अवस्थामे ही केवल रस (लसीका) दिया जाता है।

अब भारतमे बकरीके ततुकी भैक्सीनका उपयोग बहुत हो रहा है। कुछ ऐसे प्रात हैं जैसे मद्रास जहाँ जी० टी० भी० चालू नही की गयी है। किन्तु वहाँ बकरीके रक्तका रोगाणु, सिरम साइमल्टेनियसके साथ काममें लाया जाता है।

केन्द्रीय सस्था, इन्डियन काउन्सिल ऑफ एग्रीकलचरल रिसर्चकी नीति यह रही है कि, हर प्रात अपने पसन्दके रोगाणु और सिरम तथा भैक्सीन से काम लें। इसलिये भारतमे अभी पाँचों विधियाँ काममें आ रही हैं :

(१) निष्क्रिय रक्षाके लिये "केवल लसीका"।
(२) बकरीके रक्तके रोगाणुके साथ 'सिरम साइमल्टेनियस'
(३) केवल बकरीके रक्तका रोगाणु।
(४) केवल बकरीके ततुकी भैक्सीन (जी० टी० भी०)।
(५) 'सिरम साइमल्टेनियस'के साथ जी० टी० भी०।

यह प्रान्तीय भेटेरिनरी विभागोंके ऊपर छोड़ दिया गया कि, वह अपने प्रान्तके लिये सबसे उपयुक्त चुनाव कर लें।

सचारणसे हुई ०.५ सैकड़ेकी मौतसे बंगाल सतुष्ट मालूम होता है। किन्तु लाखोंकी गणनामें ०.५ सैकडा विचारणीय हो जाता है। जैसे कि, सन् १९४०-४१ में बंगालमें जो० टी० भी० सचारण कुल ४,९२,००० पशुओंमे किया गया। सचारित पशुओंमें २,६३० मर गये अर्थात् लगभग ०.६ सैकडा या प्रति हजार ६ मर गये।

मदरासमें 'सिरम साइमल्टेनियस'के साथ बकरीके रक्तके रोगाणुसे ४,१९,००० पशु सचारित किये गये। इनमेंसे कुल १३१ मरे। यह अनर चौंकानेवाला है। यदि मदरासके ४,१९,००० पशुओंको बंगालकी तरह केवल जो० टी० भी० दी जाती तो मृत्युसख्या वास्तविक १३१ के बदले २,२४० हुई होती। अर्थात् २,१०९ पशु व्यर्थको मर गये होते। मदरासमें मातासे कुल मृत्युसख्या १६,००० थी और केवल ४ लाख पशुओंको भेक्सीन देकर २,००० को मरने देना बुरा होगा।

मदरास और बंगालकी गाय भैंसोंकी कुल सख्या, माताकी सूईकी सख्या और सूईके बाद हुई मृत्यु-सख्या नीचे लिखे अनुसार हैं।

(१९४० की गणना)

	पशु सख्या	कुल सचारण	सचारितोंकी मृत्यु संख्या
मदरास—१९४०-४१	[illegible],८०,२९,५५९	४,३४,७९४	१६६
बंगाल—१९४०-४१	२,२७,५६,२८१	४,९[illegible],७१२	२,६३०

मदरासमें ग्रहणशील पशुओंको सचारित करनेका अनुपात कहीं ज्यादे है। फिर भी सचारितोंमें केवल १६६ मरे जब कि, बंगालमें २,६३० मरे। यह स्वाभाविक है कि, मदरासके किसान बंगालकी अपेक्षा टीकेका स्वागत अधिक करेंगे। रक्षार्थी पशुओंके मरनेका नुकसान किसान ही सहता है [illegible] हालतमें प्रति २०० रक्षार्थीमें १ का मरना बहुत अधिक है। मदरासकी सख्या नगण्य है। रक्षाके लिये आये ३,००० में वहाँ एक ही पशु मरता है। रक्तके रोगाणुके साथ सिरम साइमल्टेनियस देनेसे इतना अच्छा फल जब होता है कि, ३,००० में एक मरता है तब मदरास यदि सिर्फ जी० टी० भी० देना ना पसन्द करे तो यह स्वाभाविक ही है।

यह दुःखकी बात है कि, मदरासने जी० टी० भी० और सिरम साइमल्टेनियस विधिका प्रयोग नहीं किया। मदरासने केवल जी० टी० भी० का कुछ सचारण किया और फल भी वही बगालसा निकला। ०·५ सैंकड़ा मौतें हुईं। इससे मदरासको अपने किसानोंका विश्वास खो बेंठनेका डर हुआ। यह समझा जाता है कि, यदि बंगालने जी० टी० भी०के साथ सिरम साइमल्टेनियस विधि अपनायी होती तो मदरासकी तरह अच्छा फल मिलता। लसीका का दाम राहका रोड़ा बनता है। मुक्तेस्वरसे लसीका लेनेके बदले मदरासकी तरह बंगाल भी अपने लिये लसीका बनानेका प्रबंध कर सकता था। इससे दाम सस्ता हो जाता और वह सिरम साइमल्टेनियसका उपयोग करता। केवल भैक्सीनका टीका लगानेसे २,००० ढोर मरते हैं उससे जो आर्थिक हानि होती है उसका मुकाबला लसीकाके खर्चसे करना चाहिये।

मातासे बचनेके लिये जो विधियाँ काममें आती हैं उन्हें समझनेके लिये विस्तारसे लिखा गया है। किसी व्यक्तिके लिये यह संभव नहीं कि, वह अपने पसन्दकी विधि काममें लावे। माता या अन्य छुतही बिमारियोंसे अपने पशुओंको बचाना चाहनेवालोंको प्रान्तीय भेटेरिनरी विभागके पास जाना चाहिये। उस समय विभाग जो विधि पसन्द करे वही काममें आवेगी। बगालमें सिरम साइमल्टेनियसका टीका दाम देनेसे मिल सकता है। यह खर्च लगभग प्रति पशु एक रुपया होता है।

भैंसें माताके लिये अधिक ग्रहणशील और कम प्रतिरोधी हैं।

टीकाकी विधियोंमें महत्वका विषय क्षमताका टिकाऊपन है। मदरासने छागरक्त-रोगाणु की जाँच साढे पाँच वर्ष कर यह पाया कि, रक्षा ठोस होती है। केवल जी० टी० भी० के प्रयोगके बारेमें ऐसा निश्चित आँकडा नहीं मिलता। मदरासमें छागरक्त-रोगाणुके प्रयोगमें ७५ सैंकड़ा पशुओं पर प्रतिक्रिया हुई। पर जी० टी० भी० में केवल ५० सैंकड़ा। इस नतीजेके कारण मदरासको जी० टी० भी० की क्षमताके टिकाऊपनके बारेमें शंका है। बगालको निश्चित राय बतानी चाहिये। बगालके भेटेरिनरी विभागकी सन् १९४०–४१ की रिपोर्ट में माता के टीकेके बारेमें नीचे लिखा अस्पष्ट जिक्र है।

"साधारण तौर पर कहा जा सकता है कि प्रान्तोंके पच्छिमी भागमें टीकेका फल बहुत संतोषप्रद रहा। पर पूर्वी बंगालके गोवशको दी गयी क्षमता इतनी

टिकाऊ और मजबूत नहीं हुई। यह समस्या सचमुच बहुत आकर्षक है। विश्रिवत् प्रयोग और खोजकी इसे जरूरत है।"—(पृ० ११)

इस रोगसे बचनेके बारेमें निश्चित मत हमने अभी तक नहीं सुना है। खोज करनेवाले खोज कर रहे हैं। अधिक प्रगति होने की उम्मीद है।

मानाके लिये प्रति-लसीका बनानेमें सूखी लसीका बनानेका प्रयोग चल रहा है। श्री हैदो, सेन और रायने (मुक्तेश्वर) इसके सक्रिय पदार्थोंका क्षेपण (precipitation) कर सघन लसीका तैयार की है। ०·५ सैकड़ा कारबोलिक एसिड जिसमें हो ऐसी माताकी लसीका यदि अँधेरेमे रखी जाय तो वह चार वर्षों तक सक्रिय रहती है। रक्त-रोगाणु साधारण तापमानमे कुछ घटे टिकता है और जी० टी० भी० को बनानेके बाद सिर्फ पखवारे तक ४५ डिग्री फा० में रखनेके लिये कहा जाता है।

१३८५. Hæmorrhagic Septicæmia : गलघोंट्र।

पर्याय —बफेलो डिजीज, पेस्टियोरेलोसिस इन कैटल एन्ड बफेलो। **बंगला**—गलाफूला, कदी। **गुजराती**—गलघोंट्र। **कन्नड़**—गन्टलव्यानी। **मलयालम**—थोंडाभीरम। **मराठी**—गलसूजा। **उड़िया**—ततिकाता, सोहाना। **पंजाबी**—गलघोटू। **सिन्धी**—घेटर, घूटको। **तामिल**—थोंडियादप्पन। **तैलंगी**—गोंटुका वापु।

यह प्रायः सब देशोंमें होता है। पर समशीतोष्ण अचलमे इसका महत्व कम है। उष्णकटिबंध (tropics), मिश्र, हिन्दचीन, मालय प्रायद्वीप, फिलीपाइन द्वीप, यवद्वीप (Java) आदिमें यह उग्र रूपमें होता है।

इसको पैदा करनेवाला जीवाणु पास्टयूरेला है। भैंस और गायके लिये दो भिन्न भिन्न जातियाँ हैं। गायवाली जाति **पास्टयूरेला बोभिसेप्टिका** और भैंसवाली **पास्टयूरेला ब्रुबालीसेप्टिका** कही जाती है। ये दोनों जीवाणु सभी जरूरी बातोंमें समान हैं। भारतमें गाय और भैंस दोनोंको यह बीमारी एक ही मानी जाती है।

भारतमें इसका महत्व वहुत है। क्योंकि माताके वाद सबसे जादे मौत इसीसे होती है। छुतहे रोगोंकी कुल मृत्युसंख्याकी चौथाई और माताकी आधी इसकी है। यह मुख्यरूपसे भैंसोंको होती है। ढोरको कम। फिरभी ढोरोंकी मृत्युसख्या नगण्य नहीं है। बंगालमें भैंसें नाममात्रको हैं। वहाँ भी छुतहे रोगोंसे ३१,००० मौतें गाय भैंसोंकी हुईं। इसमें मातासे २३ हजार और गलघोंटूसे २ हजारसे जादे गाय भैंसे मरीं। वगालमें भैंस नाममात्रकी है इसलिये वहाँ गलघोंटूकी मृत्यु का अक लगभग ६ सैकडा होता है। मदरासकी तुलना करने पर भैंसकी अधिक ग्रहणशीलता इस आँकडेसे प्रकट होती है।

गलघोंटूसे मृत्यु

मदरास (१९४१-'४२)

		१९४० की गणना लाखमें पशु सख्या	१९४१-'४२ गलघोंटूसे मृत्यु
ढोर	...	१५९	२,८०७
भैंस	..	६१	२,४४१

लगभग १ करोड ६० लाख ढोरमें २,८०० मृत्यु हुई, पर केवल ६० लाख भैंसोंमें ही २,४०० मृत्यु गलघोंटूसे हुई। इससे पता चलता है कि, भैंसोंकी मृत्युसख्या करीव २½ गुना जादे है। पजावमें ९२ लाख ढोर हैं और ४९ लाख भैंस। वहाँ गलघोंटूसे भैंसोंकी मृत्युसंख्या और जादे होगी।

यद्यपि वूढे पशु क्षमताशील नहीं हैं फिरभी यह रोग जवानोंको अधिक होता है। गाय-भैंस और भेड-वकरी दोनों श्रेणीके पशु इस रोगके ग्रहणशील हैं। कुत्ते, चिडियाँ और मनुष्य सक्षम हैं।

यह रोग नम जमीनसे होनेवाला माना जाता था। यह देखा गया कि, नीचेकी डुव्वा जमीनमें यह वहुत होता है। और सिचाईवाले स्थानोंमे यह वारहमासी मालूम होता है। पंजावमें नदी, और नहरवाले इलाकोंमें इससे हरसाल गाय-भैंसोंकी वहुत हानि होती है। वीमारी वरसात और उसके वाद फैलती है। छूतवाले जिलोंमे यदि जाडेमें पानी पड जाय तो इसका होना प्राय॰ निश्चित ही है।

प्रयोगशालाके प्रयोगोंसे यह मालूम होता है कि, पास्च्यूरेलाकी प्रतिरोधशक्ति पशु-शरीरके बाहर बहुत मन्द है। यह साधारण छूतनाशकोंसे भी सरलतासे नष्ट हो जाता है। पशुशरीरमें जाते ही यह बहुत वेगसे बढ़ता है और दारुण विष पैदा करता है।

छूत : छूत कैसे लगती है यह अभीतक ठीक नहीं मालूम हुआ है। और इसी कारण इसका निरोध भी कठिन हो रहा है। फिरभी यह सिद्ध हो चुका है कि, यह रोग जीवाणुकी कृष्टि खानेसे नहीं होता। पर छूत लगे पशुओंकी चीजें खानेसे छूत लग जाती है। उग्र गलघोंट्के रोगी बछड़ेका मल १ ग्राम खानेसे ५४ घन्टेके बाद एक सांढ निमानियासे मर गया। —(बोलिंजर—हुटिरासे)

गैगर और डेमिस (भेटेरिनरी पैथोलजी एन्ड बैक्टीरियोलोजी, १९५१) कहते हैं :

"छूत पेटमें जानेसे लगती है। छूत पकनेका काल कई घंटोंका होता है। केवल संसर्ग या संगसे रोग नहीं लगता है।'

"प्रयोगके लिये गाय-भैंसोंको रुखो घास और जीवाणुकी कृष्टि खिलानेसे जितनोंको खिलायी गयी उनमेंसे कुछको ही छूत लगी। बाकी तो बहुत जल्द सक्षम हो गये कि, उन्हें जाँचके लिये घातक मात्रामें चमड़ेमें सूई लगायी जा सकी और उससे कोई हानि नहीं हुई। चमड़े या शिरामें जीवाणुकी कृष्टि की सूई बहुत कम मात्रामें लगानेपर भी रोगका निश्चितरूपमें घातक छूत लगती है।"—(पृ० १९४)

संचारणसे रोग तुरत पैदा होता है— यह छूतका सही तरीका माना जाता है। मुँहकी श्लैष्मिक कलाके क्षतसे छूत लग सकती है। भोजन सामग्री चरने और खानेके समय जीवाणुओंका संपर्क इस क्षतसे हो सकता है। कीटोंके डसनेसे छूत सीधे लग सकती है। बरसातमें काटनेवाली मक्खियाँ बहुत हो जाती हैं। उस मौसममें इस रोगकी वृद्धिसे इस अनुमानकी पुष्टि होती है कि, यह कीटदंशनसे लगता है। छूत कैसे लगती है इसके बारेमें अभीतक जानकारी अभी नहीं हो सकी है। रोग अपने आप फैलता है जिससे बहुत मौतें होती हैं फिर इसी तरह अपने आप गायब हो जाता है।

लक्षण : गलघोंट्से बहुत जल्दी मृत्यु होती है। उस मामलेमें यह निदान मिलता है। इसके लक्षण अचानक दिखायी देते हैं इसके बाद ही मृत्यु हो जाती

है। कभी कभी पशु मरा पाया जाता है। किसी लक्षणसे रोगकी ओर लोगोंका ध्यान जाय उसके पहले मौत ही इसकी सूचना दे देती है। जो पशु कुछ देर जीते हैं उनमें नीचे लिखे लक्षण दिखायी देते हैं :—

ताप बहुत चढता है—१०७ से ११० डिग्री फा० तक। खिन्नता बहुत रहती है। भालर, कंठ और निचले जबड़ेके बीच कष्टदायक, कडी और गरम सूजन होती है। सूजन बड़ी होती है। दबानेसे दबती नहीं। सूजन गाल तक बढ सकती है और बढते बढते छाती और कंधे तक भी। मुँहसे लार चलती है। पर माताकी तरह पतली और फेनिल लार नहीं होती। यह घनी लसीली और तारदार होती है। नाकसे गाढा रेंट निकलता है। मुँहकी श्लैष्मिक कलाका रंग रक्ताभावसा गहरा लाल होता है। इस रोगके यह खास लक्षण हैं। मुँह खोलने पर जीभ साधारण मालूम पड सकती है। पर मुँहमे नीचेकी तरफ दोनों ओर सूजन और लाली रहती है। कभी कभी जीभ सूज जाती और मुँहसे बाहर निकल आती है।

नाडी तेज और सांसकी कठिनाई इतनी बढ जाती है कि, दम घुटने लगता है। सांस लेनेकी कोशिशमें नथुने और छाती फूलती हैं। आंतोंकी अन्य गड्बडीके साथ पेचिश, पतले दस्त और पेटका दर्द भी होता हैं। दस्तमें मटमैला लालरंगका पानी और आंव गिरती है।

पशु सिर घुमाकर अपनी बगलें और पेट देखता है। यह पेटके दर्दका चिह्न है। वह मुश्किलसे चल पाता है और सुस्त होकर पड रहता है। गर्भिणीका गर्भ गिर जाता है। पशु दर्दसे कराहता और दांत पीसता है अथवा रंभाता है। दम घुटने या आक्षेपसे मौत हो जाती है। लक्षण प्रगट होनेके ६ से २४ घंटेके भीतर मौत होती है। रोगके एक दूसरे प्रकारमें पेचिश और दस्तके साथ कठकी सूजन नहीं भी हो सकती है। रोग छातीमें भी हो सकता है। तब बीमारी लबी होती है और मौत निमोनियांसे होती है।

भेददर्शी निदान

(१) **गिल्टी :** अचानक मृत्यु और ताप चढनेमें यह गिल्टीके समान है। गिल्टीमें भी पेटका दर्द और अगोंकी सूजन होती है। पर गलघोटूकी तरह इसकी सूजनमें दर्द नहीं होता और न वह गरम होती है। कभी कभी बाहरी लक्षणोंसे

इसमें और गलघोंट्में भेद करना कठिन हो जाता है। दोनोंके भिन्न भिन्न जीवाणुओंका पता अणुवीक्षण यन्त्रसे ही लग सकता है। शव-परीक्षामें रक्तके काले रंग, बहुत बडी प्लोहा जो काला और भुरभुरा हो जाता है, के कारण यह आसानीसे पहचान लिया जाता है। गलघोंटूकी शव-परीक्षामें ये दोनों चिह्न नहीं होते।

(२) **लगड़ी :** इससे गलघोंट्का भेद समझना आसान है क्योंकि, इसमें गला सूजता नहीं। इसकी सूजन पहले कष्टकारी और गरम होती है बादको ठंडी और कष्टरहित। यद्यपि इसके सभी रोगियोंको गैसके बुलबुलेकी आवाज नहीं भी हो सकती है पर कभी कभी सूजनमें गैसके बुलबुलोंकी आवाज महसूस की जा सकती है। अधिकतर यह ३ से ६ महीनेके बछडोंकी बीमारी है। गलघोंट् ज्यादा भैंसको होता है।

(३) **माता :** गलघोंटूकी आरम्भिक बातोंसे दोनोंका फर्क जाना जा सकता है। मातामें अचानक मौत नहीं होती। कंठ आदिकी सूजन भी इसमें बिल्कुल नहीं होती।

रोगका नियंत्रण रोग जिस तरह अचानक आ पहुँचता है उसी तरह चला भी जाता है। किसी जगह दस दिनमें तहलका मचा वह खतम हो जाता है। जिन्हें रोग पकडता है उनमें ८० से १०० सैकड़ा मर जाते हैं। जैसा बताया जा चुका है उसी ढंग पर पृथक्करण होना चाहिये। पशुओंके रहनेकी जगह बदल देनी चाहिये। रोगीके सपर्कमें जो रहें उन्हें अन्योंसे अलग रहना चाहिये। अगर पृथक् किये दलोंमें रोग दिखायी दे तो उनको फिर छंटाई कर अलग जगह हटा देना चाहिये। जगह बदलना बड़े महत्वकी बात है। क्योंकि दुष्ट जीवाणुओंको शरण देनेका दोष जमीनके मत्थे मढा जाता है। अस्तबल, गच, और दीवालें, छूतके केन्द्र हो सकती हैं। इसलिये पुराना अस्तबल एक महीनेके लिये खाली कर देना चाहिये।

क्षमता पैदा करना : लसीका (सिरम) देकर बचाव किया जाता है। निवारणके लिये सिरम साइमल्टेनियस का भी व्यवहार होता है। अगर कहीं किसी खास मौसममें रोग फैलता हो तो वहां मौसमके प्रारम्भके पहले ही सिरम साइमल्टेनियसका सचारण करना चाहिये।

रोग थोड़े दिन ही रहता है। इसलिये उसे रोकनेके लिये केवल लसीका (सिरमके) व्यवहारसे भी बहुत लाभ होता है। माताकी तरह निरोधक उपचारोंमें

इस रोगसे होनेवाली मौतें वैसी कुछ कम नहीं होतीं। पशुको एक बार रोग पकड़ ले उसके बाद दवा व्यर्थ है। लसीका रोगहारी होती है।

यह कहा जा चुका है कि हिन्दचीनमे बैक्टीरियोफेजके चलनसे यह रोग मिट सा गया है। पर मालूम होता है इस दिशामें भारतमें काम नहीं किया गया है।

१३८६. Black Quarter : लंगड़ी।

पर्याय :—ब्लैक क्वार्टर, ब्लैक लेग। **हिन्दी**—एकत्रकिया गोली. सुजवा, गाठी, जहरबाद। **बंगला**—बदला, सन्निपात। **आसाम**—गठिआ। **गुजराती**—गठ्यों-ताव। **कन्नड़**—चेप्पारोग, चप्पीवावु। **मलयालम**—करिंकाल। **मराठी**—घाट्टा, फर्या। **उड़िया**—बाटना। **पंजाबी**—गोली। **सिन्धी**—तूकली, कनाढो, धाधर्गी। **तामिल**—चप्पाई नोई। **तैलंगी**—जेव्वावापु।

यह रोग तीव्र, ज्वरयुक्त, बारहमासी और छूतका है। यह ढोर और भेड़ोंको होता है। देहके विभिन्न भागोंमें चरचराहटदार सूजन इसकी पहचान है। यह एक पशुसे दूसरेको नहीं होता। छूत क्लोस्ट्रीडियम चौभी (Clostridium Chauvaei) नामक जीवाणुके कारण होती है। ढोरके भीतर यह भोजनके जरिये और भेड़में साधारणतः क्षतोंसे पहुँचती है।

स्थान : यह रोग सभी देशोंमे होता है। पहाडी प्रदेशोंमे भी घाटियोंके बीच दलदलवाली जमीनोंमे या नीचे सतहके नम मैदानोंमें होता है। गोशालाओंमें खानेवाले पशुओंमे, गोचरोंमें चरनेवाले पशुओंकी अपेक्षा यह कम होता है। भारतमें दलदलवाली जमीनोंमें यह ज्यादे होता है। गोशालाओंमें छूत चाहे जब लग सकती है पर गोचरोंकी छूत गर्मियोंमे लगती है। छूतका मौसम जिलेके अनुसार भी अलग अलग होता है। आदमियोंकी गैस-गैंग्रीनकी तरह यह रोग होता है। इसके जीवाणु भी उसी वर्गके हैं जिससे गैंग्रीन होती है। आजकल यह माना जाता है कि, भारतमे लगडी कई तरहके सजातीय जीवाणुओंके कारण होती है। केवल क्लोस्ट्रीडियम चौभीके कारण नहीं। क्लोस्ट्रीडियम चौभीके साथ गैस-गैंग्रीनका जीवाणु क्लोस्ट्रीडियम वेल्ची (Cl. Welchii) प्रायः पाया जाता है। इसी तरह घातक शोथ (malignant oedema) के जीवाणु क्लोस्ट्रीडियम

इडिमोटिस मैलिगनी (Cl. Œdemotis maligni) भी पाये जाते हैं। ये मिले जुले जीवाणु ऐसी अवस्था पैदा करते हैं कि, जो बिलकुल लगड़ीसे मिलती है। वह इतनी समान होती है कि, फर्क जानना सभव नहीं।—(शिरलो)।

ग्रहणशीलता : ६ महीने से २ वर्ष तककी उमर सबसे जादे ग्रहणशील है। यह रोग जवान और बूढ़ोंको भी हो सकता है। जमीनकी छूतसे फैलनेवाले रोगोंका यह खास नमूना है। धूल आदिमें पड़े जीवाणुबीज (स्पोरस) आहार या पानीके साथ पेटमें पहुँचें तो छूत लगती है या क्षतकी राह भी इनकी छूत लग सकती है। ढोरकी अपेक्षा भेड़में क्षतकी छूत जादे होती है।

यद्यपि यह माना जाता है कि, छूत खाने पीने से लगती है पर यह देखा गया है कि प्रयोगके लिये कोई जीवाणु खिलाकर छूत नहीं लगा सकता। अभी तक छूत कैसे लगती है यह ठीक नहीं मालूम हो सका है। मनुष्यको इस रोगकी क्षमता या अनाक्रम्यता है।

यह जीवाणु अवायुजीवी है। इनके बीज बहुत प्रतिरोधी होते हैं। जो बहुत प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी बहुत दिनों तक छूत लगानेकी सामर्थ्य रखते हैं। गिल्टीके बीजके बारेमें पहले कहा जा चुका है। उसी तरह छूत लगा चीजों और लाशोंसे इसके जीवाणु मट्टीमें घुस सकते हैं। इससे रोग बहुत दिनों तक किसी स्थान या गोचरमें टिक जाता है। मृत्युसंख्याकी सूचीमें माता और गलघोंटूके बाद लगड़ीका नम्बर तीसरा है। अगरेजी भारतमें सन् १९.७-'३८ में इनसे कुल १९ ८७४ मृत्युएँ हुई। यह छुतही बीमारीके कुल मौतोंका ८ २ सैकड़ा है।

लक्षण · साधारण तौर पर पहला लक्षण जो देखनेमें आता है वह है लगड़ापन। अगले एक पैरमें या पिछले एक पैरमें हो सकता है। पशु सुस्त हो जाता है और सबसे अलग खड़ा होता और खाता नहीं है। साँसमें कष्ट होता है और ताप चढ़ जाता है। अगले या पिछले पैरके ऊपरी हिस्सेमें सूजन होती है। यह सबसे उल्लेखनीय लक्षणोंमें एक है। छातीके पास, कंधे, गर्दन तथा पैर पर और कभी कभी जबड़ेकी पेशी, जीभकी पेशी कंठ और गलेमें भी हो सकता है। बहुत बार खास पेशियोंमें ही सूजन होती है। सूजनका आकार तेजीसे बढ़ता है। यह पहले गरम और पीड़ायुक्त होती है। पीछे ठंढी और पीड़ारहित। सूजन दबानेसे पिलपिली (emphysematous) मालूम होती है और उसमें चरचराहट होती है। चरचराहटका स्पर्शानुभव इसका पक्का लक्षण है। कुछ दबाकर हाथ फेरनेसे

ऐसा मालूम होगा कि, सरसोंपर हाथ फेरा जा रहा है। पेशियोंकी दरारोंमें अटकी गैसके सरकनेसे ऐसा मालूम होता है। कभी कभी पेशियोंमें बहुत नीचे गैस रहनेसे उसकी चरचराहट नहीं मालूम होती। सूजन चीरने पर उसमें गहरा लाल और खूनसा स्राव दिखायी देगा। सूजनके स्रावमें सड़े घीकी तरह दुर्गन्ध होती है। सूजनकी सतहसे स्राव निकलता और गन्ध भी। खींचनेसे सूजी जगहका बाल प्रायः उखड़ जाता है। उग्र रोगमें कभी कदाच सूजन नहीं भी हो सकती है। प्राय लसीका-ग्रन्थियोंमें सूजन रहती है और उनमेंसे स्राव होता है। छूत पकनेका समय (incubation) १ से ३ दिन है। रोगका यह प्रच्छन्न काल ५ दिनसे जादे कभी ही होता है।

रोग बढने पर पशु खड़ा नहीं रह सकता है। वह बैठ जाता है। कभी कभी पेट फूलता है। साँस लेनेमें कष्ट बहुत होता है। साँस लेनेकी कोशिशमें तड़प तड़प कर बड़े कष्टसे पशु मर जाता है। इसकी अवधि १२ घटे से २ दिन है। पर कभी कभी ४ दिन भी खेप लेना है।

इस रोगसे मरने पर कुछ देरके बाद चीरनेसे रक्त हृदयमें थक्कासा मिलता है। लाश जल्दी सड़ती नहीं। सूजी पेशियोंसे बुरी गध निकलती है।

बचाव : कुछ ऐसी जगहें और मैदान हो सकते हैं जो छुतहे मशहूर हों। पर उसीके आसपास दूसरी जगहें अछूती हो सकती हैं। ग्रहणशील उमरके पशु छुतही जगहोंमें न जायँ इसकी सावधानी रखनी चाहिये। जोतने और चूना डालनेसे ऐसी जगहें सुधर सकती हैं। जहाँ जहाँ यह किया जा सके करना चाहिये।

भैक्सीन और लसीकाकी सूईसे बचाव किया जाता है। इन्डियन काउन्सिल ऑफ एग्रिकलचरल रिसर्च इस बारेमें गंभीरतासे सोच रही है। मुक्तेश्वरकी प्रयोगशालामें जो नये प्रयोग हुए हैं उनसे फायदा उठाया जा रहा है। पहले बीजकी कृष्टि (कलचर) के टीकेसे बचाव किया जाता था। छूत लगे बछडेकी सूखी पेशीके चूर्णसे या सुखाकर गरम की हुई पेशीसे यह बनता था। यह असरदार होता था। पर दारुणता अनिश्चित थी। किसी किसी पर कठिन प्रतिक्रिया होती थी जिससे मृत्यु हो जाती थी। और किसी किसी को कुछ भी क्षमता नहीं होती। इसका कारण शायद यह हो कि, बेहद गर्मीसे बीज मर जाते हों। एक मानका (standardised) भैक्सीन मिल नहीं सकी।

पीछे यह पता चला कि, जब जीवाणुओंकी वृद्धि होती है तब विप पैदा होता है और वही प्रतिविप भी बनता है। इस घटनाका फायदा उठानेके लिये किसी पेशीमें छूत डालकर उसका रस निचोड़ लिया जाता था। इससे प्रतिविप या एग्रेसिन (aggressins) की प्राप्ति हो जाती थी। इसका चलन भारतमें किया गया। पर एक और अच्छी विधिके लिये इसे छोड दिया गया।

इसके वाद दूसरी विधि फौर्मेलिनसे मारे हुए कृष्टिके उपयोगकी हुई। मृत कृष्टिकी प्रतिक्रिया कठिन नहीं होती और प्रतिविपसे चाही क्षमता मिल जाती है।

इसके वाद यह पता चला कि, सेंद्रिय पिंडोंके वदले किसी रासायनिक द्रव्य पर कृष्टि तैयार या विकसित करनेसे उनका रोगोत्पादक गुण नष्ट हो जाता है। इन कृष्टियोंकी रोगकारिता यद्यपि नष्ट हो जाती है फिर भी उनका क्षमताकारी गुण वना रहता है। मुक्तेश्वरमें इस खोजका समर्थन हुआ।

आजकल मुक्तेश्वर प्रतिलसीका (एन्टी सिरम) और भैक्सीन दोनों ही इस रोगके लिये दे रहा है। दोनोंही निरापद और गुणकारी हैं।

प्रतिलसीका या प्रतिरस ९ से १० दिन तक वचाता है। रोग फैलना दूर करनेके लिये यह काफी है। रोग फैलना खतम हो जाने पर ठट्ठकी रक्षा भैक्सीनसे की जाती है। यह क्षमता ६ महीने से १२ महीने तक टिकनी है। वछरुओंके जीवनका सवसे ग्रहणशील काल वीत जानेके लिये यह काफी है।

रोग फैलने पर छूतरहित करने और लाशोंको ठिकाने लगानेके लिये क्या किया जाय, इसके वारेमें जोर देकर यही कहना है कि गिल्टी (१३८७) के वारेमे जो वताया गया है वही किया जाय। क्लोस्ट्रीडियम चौभीके वीज वहुत प्रतिरोधी हैं। इसलिये पृथक्करण, छूतरहित करने और लाश गाड़नेमें ढिलाई या अधकचरा काम कभी नहीं करना चाहिये।

१३८७. Anthrax : गिल्टी।

पर्याय :— एन्थ्रैक्स, स्प्लीनिक फीभर, स्प्लीनिक एपोप्लैक्सी, मेलिगनेन्ट कारवंकल। हिंदी—गढी, गोली, गिल्टी। वंगला—तरका, पश्चिमा। गुजराती—भामरिया, क्रिओनाव। कन्नड़—गटलकट्टू। मलयालम—अदप्पन। मराठी—गोली, फन्सी, सुज्या। उड़िया—चोरा, पिल्हो। पंजाबी—गाट। सिंधी—कारो वा। तामिल—अदप्पन। तैलंगी—दोम्मा।

यह रोग बहुत तेजीसे मारनेवाला है। यह बैसीलस ऐन्थ्रासीस (bacillus anthracis) जीवाणुके कारण होता है। यह जीवाणु रक्त नष्ट कर देता है और उसे काम नहीं करने देता। यह मिट्टीका रोग है और जहाँ खेती होती है वहाँ पाया जाता है। कुछ जगहोंका यह देशी रोग है। दल्दल और कभी कभी डूबनेवाली जमीन इसकी वृद्धिके अनुकूल है। ऐसी जगहोंमें यह बारहमासी है। गर्मी इसकी छूतके लिये बहुत अनुकूल मालूम होती है। एशिया और यूरोपमें भी पुराने जमानेमें भी इसका पता था। जिस तरह एशिया, भारत, बर्मा, हिंदचीन आदिमें इसका घर है उसी तरह अफ्रीकामें भी है।

सभी पशुओंको संपर्कसे यह रोग हो सकता है। तरुण सबसे ज्यादा ग्रहणशील हैं। ढोर, भेड़ और बकरियोंको यह बहुधा हुआ करता है। जिन अन्य पशुओंको भी यह ग्रसता वह हैं — ऊँट, घोड़े, सूअर, कुत्ते, लोमडी, बिल्ली, खरगोश और विलायती चूहे। चूहोंको भी यह हो सकता है। पक्षियोंको काफी क्षमता होती है। मेढ़क सक्षम हैं। मनुष्योंको यह संचारणमें हो सकता है। जीवाणु अतोंसे देहमें घुस सकते हैं। बीजयुक्त मास यदि पूरी तरह पका न हो तो उसे खानेसे और साँसके जरिये भी जीवाणु शरीरमें पैठ जाता है जैसा कि, ऊन और बुरुशके कारखानोंके मजदूरोंको हुआ करता है। जंगलके मासभोजी पशु बहुत ग्रहणशील हैं। इस रोगके जीवाणु दीर्घाकार रोगकारी जीवाणुओंमें एक हैं, इसलिये अणुवीक्षण यन्त्रसे सरलतासे पहचाने जा सकते हैं। यह जीवाणु बीज पैदा करनेवाला है। यह वायु-जीवी है। इसे जीनेके लिये ऑक्सीजनकी दरकार होती है। पर जब इसे कठिनाई होती है तो यह अपनी देहसे बीज बनाता है। बीजकी हालतमें यह बर्षों तक ऑक्सीजनके बिना मूर्छित अवस्थामें रहता है। उचित ताप और वातावरण देनेसे बीजसे जीवाणु पैदा किये जा सकते हैं। जीवाणुकी सूरतमें आकर वह फिर बीज पैदा कर सकता है और अनिश्चित काल तक बीजकी हालतमें रह सकता है। इसलिये इस रोगसे मरे रोगीकी लाशके जीवाणुओंके बीज बनकर जमीनमें रहते हैं। बरसात आनेपर उचित नमी और गर्मीसे बीजसे जीवाणु फूट निकलते हैं और फिर बढ़ते हैं। और इससे उस जमीनकी घासमें छूत लग जाती है। वह घास जो पशु चरते हैं उन्हें छूत लग जाती है। सूखे मौसममें जीवाणुसे बीज बन जाते हैं और उसी हालतमें रहते हैं। इस तरह छूत लगी जमीन हर साल छूत फैलाती रहती है।

यह जीवाणु वायुजीवी है इसलिये लाशमें नहीं रह सकता। क्योंकि, वहां ऑक्सीजनका अभाव है और इसी सबब बीज भी नहीं बना सकता। इसलिये यदि इस रोगकी मरी लाश चीरी न जाय और गहरे गाड़ दी जाय तो छूतका मूल नष्ट हो जाता है। पर यदि कहीं कुछ खून निकल कर सूख जाय तो जीवाणु उसमें बीज बनाते हैं जो उस रूपमें बने रहते हैं। इसलिये सूखा खून छूतकी जड़ बना रहेगा। जब कभी अनुकूल मौका मिलेगा वह सक्रिय हो जायगा। जमीनमें अन्य जीवाणु भी हैं और देहके सड़ानेवाले जीवाणु भी बीजको मार सकते हैं। पर सूखा खून या मलमूत्र आदि छूतकी जड़ बने रहते हैं।

बीज, पानीमें और पानीके नीचे कीचमें रह सकता है। बीज भरा ऐसा पानी जो पशु पीता है उसे छूत लग जाती है। यदि गिल्टीसे मरेकी लाश जलाशयमें फेंक दी जाय तो उसके बीज पानीमें चले जायेंगे और पानीको अशुद्ध कर देंगे। इसी कारण जलाशयोंके किनारे उगी घासें छूत फैलाती हैं। श्री नायकने किसी नालेके बँधे पानीमें गिल्टीकी छूतकी जड़के पता चलनेका हाल बताया है। (इन्डियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स ऐन्ड ऐनिमल हस्बैन्डरी, सितम्बर १९३८, पृ० २४३)। बरसातमें छूत लगे जानवर नाला पार किया करते थे। बरसात में वह बीज गिराते जाते थे जिससे सूखे मौसममें पशुओंको छूत लगती थी। गर्मीमें उन पशुओंको खूँटे पर सूखी घास खिलाई जाती थी। इसलिये प्रगट रूपसे उस मौसममें उनको छूत लगनेका कोई खतरा नहीं था। पर, उन्हें छूत इसलिये लगती थी कि, उन सबोंको उस नाले पर ले जाकर पानी पिलाया जाता था। उस संदिग्ध नालेके फेन और कीच की सूई पशुको लगानेसे गिल्टी हो गयी। अणुवीक्षण यन्त्रमें अन्य जीवाणुओंके होने की खोज की गयी।

धूपमें पतली तहमें फैलाकर सुखानेसे जीवाणु ६½ से १५ घंटोंमें मर जाते हैं। मोटी तहमें और अंधेरेमें वह दो तीन हफ्ते जीते हैं। सूखे खूनमें ये महीने भर या और ज्यादे भी जी सकते हैं। फिर पानी मिलनेसे बीज बनाते हैं। आमाशयके रस (gastric juice) में जीवाणु १५ मिनटोंमें मर जाते हैं। तरल खादसे जीवाणु दो तीन घंटेमें मर जाते हैं पर बीज नहीं। बीज दारन बने रहते है। १ : ५०,००० जलमिश्रित सालभरसन (salvarson) जीवाणुकी वृद्धि रोक देता है।

साधारण सुखानेसे बीज नहीं मरते। रेशम पर सुखाने पर वह ३२ वर्ष तक अकुरित होनेकी शक्ति रखते हैं। बीज ७२ से ७६ डिग्री से० तापमें खादमें ४ दिनमें मर जाते हैं। खालमें लगे बीज सुखाने और नमक देनेसे नहीं मरते। चूनेके पानीमें डुबानेसे वह १२५ दिन जीते हैं। कुछका मत है कि, कमानेके समय चूनेके पानीमें वह १२ से १७ दिनमें मर जाते हैं। पर दूसरे कहते हैं कि, कमानेकी नादके पानी और चर्मालयकी नालियोंमें जीता बीज पाया जाता है। चर्मालयकी नालीके पानीके बीज मारना कठिन काम है। इस रोगसे मरे पशुकी खालके जरिये चर्मालयमें इसके बीज आते हैं और वह चूनेके पानीकी नाद और नालीके पानीमें सदा पाये जाते हैं।

छूतनाशक : साधारण छूतनाशकोंसे ये जीवाणु सरलतासे मारे जा सकते हैं। पर साधारण तौर पर छूतनाशकका जैसा घोल काममें लाया जाता है, उससे यह बीज नहीं मरते। कोरोसिभ सवलीमेट १ : १,००० बीस मिनटमें बीजोंको मार देगा। इसमें आध सैकड़ा हाइड्रोक्लोरिक तेजाव या दो सैकड़ा कारवोलिक तेजाव मिलानेसे इसकी तेजी और बढ जाती है। आयडिन या क्लोरीनका पानी दो सैकड़ा, फौर्मेलडिहाइड २ सैकड़ा, परमैंगनेट ५ सैकड़ा, कारवोलिक तेजाव ५ सैकडा, क्लोराइड ऑफ लाइम ५ सैकड़ा से बीज मर जाते है। एक सैकडा कास्टिक सोडा इन्हें मार देता है। नस्लके अनुसार बीजोंकी प्रतिरोधशक्ति विभिन्न होती है। २४ घंटे तक २४ डिग्री से० तापमें ३ सैकडा नमकके घोलमें, और इसके बाद २ सैकड़ा हाइड्रोक्लोरिक तेजाब और १० सैकडा नमकके मिले घोलमें २८ डिग्री से० तापमें ४८ घंटे डुवानेसे खाल छूतरहित की जा सकती है। इससे खालमें खराबी नहीं होती। ४ से ६ घटे तक १ सैकड़ा फौर्मेलिनके घोलमें डुवानेसे बाल छूतरहित हो सकता है और ऊन पहले भिगाकर फिर २ से २·५ सैकड़ा फौर्मेलिनमें रखनेसे। भाफमें नाममात्रके अर्थात् २½ रत्तलके दवावके अन्दर ये छूतरहित हो सकते हैं।

बीज भरा खाना खानेसे शाकभुक् पशुओंको छूत लगती है। चरने और सूखा चारा खानेमें कुछ धूल पेटमें जाती ही है। छुतही सामग्रीकी हवामें उडी धूलसे भी धरती की ऊपरी मिट्टी और पानी अशुद्ध हो सकते हैं। पानीकी सतह ऊपर उठनेसे मिट्टीमें दवे बीज ऊपर उग सकते हैं। जमीनके नीचेके बीज को केंचुए खोद कर ऊपरी सतह पर ला सकते हैं। छुतहे पशुओंके मलभी

छूत फैलानेमें हिस्सा ले सकते हैं। छुतही गायोंके दूधसे भी शायद छूत फैल सकती है।

पशुओंको छूत भोजनके जरिये लगती है पर चमड़ेके जरिये छूत लगना कम ही देखा जाता है। खुरपकाके समय गिल्टी प्रायः हुआ करती है। यह जीवनी शक्तिकी कमीसे हो सकती है। और इसीसे ग्रहणशक्ति भी बढ़ जाती है। यह रोग सीधे तौर पर एकसे दूसरे पशुको साधारणतः नहीं होता।

यह साधारण तौर पर माना जाता था कि, बीज और जीवाणु खा लेनेमें, जीवाणु तो आमाशयके रसमें मर जाता है पर बीज पर उसका कोई असर नहीं होता। वह आँतोंमें जा पहुँचता है। वहाँ उसमेंसे जीवाणु निकल पड़ते हैं और बढ़ते रहते हैं। कोचके सचारण-प्रयोगसे यह मत पुष्ट होता है। इसके विरुद्ध बेसरेडका (Besredka) का सिद्धान्त है कि, छूत केवल त्वचामें ही लग सकती है। और उसमें साधारणतः छूत लगनेका कारण यह है कि, त्वचामें भी साथही साथ क्षत होता है। यद्यपि बेसरेडकाके सिद्धान्त पर बचावके लिये सचारणकी एक नयी विधि बनी है, फिर भी त्वचाकी छूतका सिद्धान्त अधिक नहीं माना गया।

लक्षण : पशुकी उमर, ग्रहणशीलता और जीवाणुकी नस्लके अनुसार छूत उग्र, मन्द, अति उग्र और बाहरी प्रकारकी होती है। अनेक छुतहे रोगोंकी तरह इसके भी प्रथम आक्रमण बहुत घातक होते हैं। जब बीमारी मिटने लगती है तब केवल हल्का आक्रमण होता है जिनमें बहुतसे बच जाते हैं।

साधारण तौर पर महामारी उग्रतम रूपमें प्रकट होती है। अच्छी से अच्छी हालतमें भी एक या अनेक पशु मरे पाये जाते हैं। प्रायः यह रोग फैलनेका पूर्वसूचक है। नाकसे रक्तस्राव या पीताभ रंगका स्राव होता है, गुदा उलट जाती है जिससे गहरे रंगकी श्लैष्मिक कला दिखाई पड़ती है। लाश तुरत बहुत ज्यादा फूल जाती है। ये चिन्ह गिल्टीके सूचक हैं। पर अणुवीक्षण यन्त्रकी परीक्षासे ही मृत्युका कारण सही जाना जा सकता है। यदि पशुको मरे बहुत देर न हुई हो, आठ ही दश घंटे हुए हों तो उसका कान सूईसे छेद काँचके स्लाइड पर एक बूँद खून निकाल दूसरी पट्टी या स्लाइडसे ढक दिया जाय। इसे निदानके हेतु परीक्षाके लिये भेज दो। पर मालिक इसे गिल्टी मानकर ही आवश्यक सावधानी बर्ते।

अति उग्र रोग (fulminant or apoplectic anthrax) में यदि कोई रोगी जीवित अवस्थामें पाया जाय तो उसे सांस लेनेमें कठिनाई, नीलिया (Cynosis), कराहना और आक्षेप होता पाया जायगा। नाकसे खून निकलता देखा जायगा और कुछ मिनट या घन्टेमें मृत्यु हो जायगी।

इसके वाद उग्र और मन्द रूप हैं। इन प्रकारोंको गिल्टी-ज्वर, प्लीहा-ज्वर या भीतरी गिल्टी (internal anthrax) कहते हैं। उग्ररूपमें मृत्यु २४ घंटेके भीतर हो जाती है। मन्दरूपका रोगी पशु कई दिन खेप मर सकता है या वच भी जा सकता है। ताप १०४ डिग्री से १०७ डिग्री फा० तक या इससे भी जादे चढ़ सकता है। नाक वहती है जिसमें कभी कभी खून मिला रहता है। गोवर और मूतमें भी खून रहता है। नाडी मन्द हो जाती है। सांसकी तकलीफ वहुत वढ़ जाती है। उदरशूल और पेट वहुत फूला रहता है। साधारण तौर पर ये लक्षण ढोरको होते हैं और घोड़ोंको भी होते हैं। कभी कंठ और गर्दनमें सूजन होती है। दूध उतरना वन्द हो जाता है। यदि कुछ उतरा तो उसमें पोलापन या खूनके रंगका दाग होता है। गर्भिणीका गर्भ प्रायः गिर जाता है। ७० से ९० सैकड़ा मृत्यु हो जाती है।

तीसरा प्रकार वाहरी गिल्टी है। यह प्रकार कम कठिन है। काफी रोगी अच्छे हो जाते हैं। भारतमें घोड़े साधारण तौर पर इससे वीमार पड़ते हैं। त्वचाके नीचे, सिर, गला, गर्दन, छाती, कंधा और अन्य अङ्गोंमें सूजन होती है। सूजन अचानक होती और वेगसे फैलती है। पहले वह गरम और पीड़ाभरी होती है बाद को ठंढी और नरम हो जाती है। इसकी सूजनमें उँगलीसे दवानेपर गैस की चरचराहट नहीं होती। लंगड़ी और इसमें यह फर्क है। गिल्टीका संदेह होने पर शवपरीक्षामें सावधानी करनी चाहिये। क्योंकि, देह चीरनेका अर्थ है जीवाणुओंको हवामें ले आना और उन्हें वीज वनानेमें सहायता देना। लाशकी परीक्षा गाड़नेकी जगह पर करनी चाहिये।

व्यापकता: छूतकी बीमारियोंसे मरे कुल पशुओंमें लगभग ५ सैकड़ा इससे मरते हैं। अंगरेजी भारतमें इससे हुई कुल मृत्यु संख्या नीचे लिखे अनुसार है :—

वर्ष		मृत्यु संख्या
१९३४–'३५	...	५,८६९
१९३५–'३६	...	७,११८
१९३६–'३७	...	१०,४७८
१९३७–'३८	..	१०,३९६

इस रोगसे जितने पशु मरते थे रिपोर्टमें उनसे कमही रहता था। क्योंकि इसके कुछ शिकार उचित निदान या शव-परीक्षाके अभावमें दूसरे रोगोंमे दर्ज कर लिये जाते थे। यद्यपि बचावके उपाय अधिक किये जा रहे हैं तो भी मृत्युका हिसाब सन् १९३५ से १९३८ तक दूना हो गया है। पर असल बात यह है कि, जैसे जैसे भेटेरिनरी विभाग सचेत होता गया तैसे तैसे अब अधिक मौतें इसीने मानी जाती हैं। यह भी माना जा सकता है कि, बचावके लिये किया गया साधारण अभी तक मृत्युसंख्या कम नहीं कर सका है। सन् १९३४–३५ में जितने पशुओंके बीमार पड़नेकी रिपोर्ट आई सबके सब मर गये जिससे मृत्यु संख्या सौ सैकड़ा दिखाती है। प्रान्तोंमें सन् १९३४–३५ मे नीचे लिखे अनुसार गिल्टीके रोगी और उनकी मृत्यु संख्या हैं :—

प्रान्त	कुल रोगी	कुल मृत्यु	टिप्पणी
आसाम	८३९	८३९	
बंगाल	१,१६७	१,१६७	
	८	१	घोड़ा
बिहार और उड़ीसा	२४६	२४६	
	३	३	घोड़ा
युक्तप्रान्त	२७५	२७५	
पंजाब	३	३	
सीमाप्रान्त	१२	१२	
मदरास	२,३००	२,३००	
मध्यप्रान्त बरार	१,६७०	१,६७०	
	६,५१३	६,५१३	

—(पशुपालन शाखाकी दूसरी बैठककी रिपोर्ट, १९३६, पृ० १११ में रू० आई० मालिकके भाषणसे लिया गया आंकड़ा)।

क्षमता पैदा करना और बचाव : क्षमताके लिये यूरोपमें पाश्चरकी भैक्सीन काममें आती है। भारतमें प्रतिलसीकाका व्यवहार होता है। पर इसकी उपयोगितामें शंका है। क्योंकि इससे आयी क्षमता क्षणस्थायी है।

सन् १९३६ में पशुपालन शाखाकी दूसरी बैठकमें इस विषय पर श्री मालिकने ध्यान दिलाया था। बर्मा और अन्य देशोंमें जैसे भैक्सीन बनायी जाती है उसी तरह मुक्तेश्वरमें केवल प्रतिलसीकाकी जगह भैक्सीन बनाने पर जोर दिया गया।

श्री मिचेल (Mr.Michell) ने उस बैठकमें बताया कि, वह एक जातिकी भैक्सीन दक्षिण आफ्रिकासे लाये हैं और बर्मामें बना रहे हैं। इसका नतीजा बहुत संतोषप्रद रहा है। उस बैठकमें सूचित किया गया कि, मुक्तेश्वरमें भैक्सीनोंकी जाँच हो रही है। कठिनाई उपयुक्त जातिकी भैक्सीन पानेमें हो रही है। जातियोंमें तीव्रताकी भिन्नता होनेकी प्रवृत्ति रहती है।

सन् १९४०-४१ की मुक्तेश्वरकी रिपोर्टमें है कि, गिल्टीके बीजकी भैक्सीन बाहर भेजनेके लिये उस साल पहले पहल बनायी गयी।

दक्षिणी आफ्रिका गिल्टी-बीज-भैक्सीनसे क्षमता पैदा करनेमें बहुत आगे बढ गया है। सन् १९३९ में ऑंडर्सटेपूर्ट के श्री मैक्स स्टर्न ने एक लेखमें दिखाया है कि, वे लोग गिल्टी बीजका अदारुण प्रकार बड़ी सफलतासे काममें ला रहे हैं। ३४ एफ$_2$ ($34F_2$) प्रकार ऐसा था कि, भैक्सीन सालभर तक रखी जा सकती थी और इससे उसके गुणमें कुछ कमी नहीं होती थी। सन् १९३८ के बिचले हिस्सेके बाद ५०% गिलसरीन-सैलाइनमें ०·५ सैकड़ा सैपोनीन (saponin) घोलकर उसमें भैक्सीन मिलाकर बाहर भेजी जाने लगी। इससे भैक्सीन की क्षमता पैदा करनेकी शक्ति बढ़ गयी और पशुपालकोंने भी अत्यधिक प्रतिक्रियाकी शिकायत नहीं की।

ट्रान्सकीमें हर साल इससे हजारों मरते थे। जैसे भारतमें माता उसी तरह वहाँ यह बहुत फैला हुआ था। पर बीजकी भैक्सीनने अद्भुत फल दिखाया। सन् १९३८ के मई-जूनमें अदारुण बीज-भैक्सीनसे १५,५९,५३० पशुओंको टीका लगाया गया। इस मौसममें इनमेंसे कुल ३० पशु मरे जहाँ साधारण तौर पर हजारों मरते। अदारुण भैक्सीनें बिनाथैलीवाली या अनावरक जातियों (uncapsulated variants) से तैयार की जाती थीं। गिल्टीके जीवाणुओंको साधारण तौर पर थैली (कैपस्यूल) होती है। इस प्रयोगमें भैक्सीन बनानेके लिये बिनाथैलीवाले जीवाणु काममें लाये गये। मुक्तेश्वरकी रिपोर्टमें यह नहीं लिखा

गया है कि, वह लोग भी दक्षिण अफ्रिकामें इतनी सफल अदाहग प्रकार की भैक्सीन काममें ला रहे हैं या नहीं। मैक्सस्टर्नकी बतायी विधि सैपोनिनवाली भैक्सीनोंकी विधिसे सुधरी हुई थी। पाश्चरकी द्विविध-भैक्सीन-क्षमताकरणकी विधिके बदले सैपोनिनवाली विधि ही सब जगह काममें आती थी।

रोग फैलने पर : छूत लगे पशु नीचे बतायी विधिसे पृथक् कर दिये जायँ और अछूते पशुओंको प्रतिलसीका और भैक्सीन सचारण करना चाहिये। पर इसमें एक व्यावहारिक कठिनाई है। भेटेरिनरी विभाग तभी लसीका सचारण करता है जब मृत (या जीवित) पशुमें गिल्टी के जीवाणु पा लिये जायँ। लाश बहुत जल्दी सड़ जाती है। इसलिये जब डाक्टर लाश देखने आता है तब साधारण तौर पर अणुवीक्षण-परीक्षाके लायक रक्त इत्यादि नहीं मिल सकते। रोगके दूसरे आक्रमणके समय यदि डाक्टर वहां मौजूद हो तो वह रक्त लेकर प्रधान केन्द्रको परीक्षाके लिये भेज सकता है। यदि परीक्षामें गिल्टीके जीवाणु मिलें तब कहीं लसीका-सचारण का उद्योग शुरू किया जाता है। जिस समय तक, प्रतिलसीका उस स्थान पर पहुँचती है रोग खतम होनेको रहता है और तब वहां इसकी कोई जरूरत नहीं रहती। यह कठिनाई सही है पर ऐसी नहीं कि, दूर न हो सके। यदि इस रोगसे पशुओंकी रक्षा करनी है तो यह कठिनाई दूर करनी चाहिये। जिन प्रांतोंमें या जगहोंमें भेटेरिनरी विभाग मौसमी छूतकी सभावनासे सचारण या टीका दिया करता है उन्हें छोड़ बाकी जगहों पर क्षमताके लिये सचारण या टीकाकी बात अभी हमें छोड़ देनी चाहिये। रोग फूटने पर जो दूसरे उपाय किये जायँ वह नीचे लिखे जाते हैं :—

(१) छूत लगा अस्तबल खाली कर देना।
(२) मरे और मरतोंको ठिकाने लगाना।
(३) गोचर या चारा लेनेकी जगह बदलना।
(४) छूतकी शुद्धि करना।
(५) चिकित्सा।

१. छूत लगा अस्तबल खाली करना : यदि गिल्टीसे कोई मौत हो जाय या अचानक मृत्युसे शका हो जाय तो उचित यह है कि, वह स्थान छोड़ दिया जाय। जो पशु छूत लगे पशुके निकट सपर्कमें हों उन्हें बिना सम्पर्कवालोंसे पृथक्

कर दिया जाय। दोनों दलोंको सूखी ऊँची जमीन पर रखनेके लिये ले जाना चाहिये। स्थान-परिवर्तनसे नयी छूतकी गुंजाइश बहुत कम हो जाती है। अलग किये गये पशुओंका ताप नित्य सवेरे और साँझ लेना चाहिये। जिन्हें ताप चढ़े उन्हें अलग कर देना चाहिये। जब जब कोई नया रोगी हो जगह बदलना चाहिये।

२. **मरे और मरतोंको ठिकाने लगाना:** मरते हुए पशुओंको मरने देना चाहिये और इस बातकी सावधानी रखनी चाहिये कि, छूत फैलने न पावे। इसलिये मलमूत्र और खून वगरह जला दिये जायँ। लाश खूब गहरे (६ फूट) गाड दी जाय। सभव हो तो गढ़ेमें पहले चूनेकी एक तह बिछा तब लाश गिरानी चाहिये और उसके चारों तरफ चूना भर देना चाहिये। इसके बाद लाशके ऊपर चूनेकी एक तह और देनी चाहिये। उस मृत पशुने जो जमीन गन्दी की है उसे भी खुरच कर गाड़ दो। पशुकी लाश रास्तेमें घसीटकर मत ले जाओ। टाँगकर ले जाना चाहिये। शव परीक्षाके सिवा और कभी हरगिज फाड़ा न जाय, सो भी दफनानेकी ही जगह पर।

यदि शवपरीक्षा की जाय तो प्लीहा और हृदयके रक्तकी छाप (स्लाइड) ले लेनी चाहिये। इस रोगसे मरनेवाले पशुका रक्त और पेशियाँ काली मालूम होती हैं। प्लीहा बहुत बढ जाता है और भगुर हो जाता है। रक्त और पेशियोंका कालापन और प्लीहेका बढ़ना इन दो चिह्नोंसे निदान हो सकता है। इसकी पुष्टि अणुवीक्षणसे की जाय। इस रोगमें रक्त थक्का नहीं होता। यदि किसी अगमें थक्का खून मिले तो गिल्टीकी बीमारी नहीं है।

दफनानेके बाद दफनानेकी जगह और आसपास जला दो और उस जगहको घेर दो। शवपरीक्षाके औजार अच्छी तरह खौला लिये जायँ।

३. **गोचर और चारा लेनेकी जगह बदलना:** छूत कहींसे भी लग सकती है। जब तक यह ठीक ठीक न मालूम हो तब तक गोचर और चारेकी जगह बदल देनी चाहिये। क्योंकि, हो सकता है छूत लगे गोचर या छूत लगे सूखे चारेसे छूत लग सकती है।

४. **छूत मिटाना:** आग और ब्लीचिंग पाउडर भी इसके लिये बताये गये हैं। छूत लगे पशु और अस्तबलका सारा सामान सोडा या अन्य छूत नाशक मिलाकर खौलाना चाहिये। हिफाजतके लिये, जिनके जलानेमें अधिक हानि न हो ऐसी सभी चीजें जला दी जायँ।

५. **चिकित्सा :** रोगी पर मक्खी न बैठने पावे। इससे वह छूत नहीं फैला सकती। इसलिये कई जगह भीगा पुआल और गोवर जलाया जाय कि, वह सदा धुआँता रहे। धुएँसे आँखमें जलन हो सकती है पर मक्खियाँ दूर रहेंगी।

गिल्टीकी छूतमें पशुओंके वर्ग और उनकी ग्रहणशीलताके अनुसार रोगकी प्रच्छन्नावस्था का (incubation period) काल भिन्न भिन्न होता है। ढोर और घोड़ेके लिये यह काल ३ दिन और भेड तथा बकरियोंके लिये २ से ४ दिन है। खरगोश और विलायती चूहोंको कृत्रिम सचारण करने पर २४ से ४८ घटेमें रोग हो जाता है।

रोगके आक्रमणकी निगरानी रखनेके लिये थरमामीटरका व्यवहार करना चाहिये। छूत कितने दिनोंमे पकती है या छूत लगने पर रोग कितने दिनों तक प्रच्छन्न रहता है इसका ज्ञान ऐसी निगरानीमें साधक होता है।

चिकित्साके लिये प्रतिलसीका पर भरोसा करना चाहिये। जहाँ यह न हो वहाँ कारबोलिक का घोल पिलाना चाहिये।

कारबोलिक तेजाब — १ ड्राम।
नमक — १ आउन्स।

इसे गाढे मडमें मिलाकर पिला दो। सूजन पर ५ सैकड़ा कारबोलिक घोल लगाओ। दूसरे कोथघ्न, जैसे एम० बी० ६९३, दिये जा सकते हैं। ढोरको आदमीकी मात्राका १० गुना सालभरसन या निओसालभरसन दिया जा सकता है।

पशु पी सकता है तो उसे मड और पानी दो। और इसके बाद हरी घास भी दो। कोथघ्न कार्योंके लिये नीमकी पत्ती और उसका काढा खूब व्यवहार करो।

मनुष्योंकी गिल्टी : मनुष्योंको त्वचा की राह छूत लग सकती है। घातक छाले और कारबंकल हो जाते हैं। यह रोग उनलोगोंको साधारण तौर पर हो जाया करता है जो मरे पशुओंके सपर्कमें आते है जैसे पशुचिकित्सक या गो-परिचारक, कसाई, चमार, बाल और ऊनका काम करने वाले। मनुष्योंको मरसींमें भी छूत लग सकती है।

छाले या गिल्टीका कारबकल निकलनेके पहले छूतकी जगहोंपर (जो साधारण तौर पर मुखमडल, गरदन और बाँह पर होती है) छिदनेवाली पीड़ा होती है। इसके बाद लाल गाँठें निकलती है जो काले रगकी डिम्बिकायें (bulla) बन जाती हैं। इनमे लाल पानी भरा रहता है। यह फट जाता है और तन्तु मृत

या निष्प्राण (necrosed) हो जाते और पासही नयी गाँठें और नयी डिम्बिकायें बनती हैं। ताप चढ़ता है। रक्त-विकारके साधारण लक्षण दीख पड़ते और रोगी मर जाता है।

ऐसी हालतमें प्रतिलसीका बहुत उपयोगी है। सालभरसन और निओ-सालभरसन जैसी दवाओंकी, शिरामें सूई देनेकी परीक्षा हो रही है।

१३८८. Foot-and-mouth disease : खुरपका : मुँहपका।

पर्याय :—फुट-एन्ड-माउथ डिजीज। हिन्दी—मुँहखुर, मुँह-पाँवकी बीमारी, खुरपका, रोड़ा, खोरा। आसामी—चबका। बंगला—खुरा, एशो। गुजराती—मोवासा, मोवा, खरवा। कन्नड़—काल्ल बोई ज्वर। मराठी—लाल, खुर, कुट। उड़िया—फटूआ, अमुआ। पंजाबी—मुनखुर। सिन्धी—समारो, छारी। तामिल—कोमारी। तैलंगी—गल्लू, कालीगल्लू।

रोगका स्वभाव : यह रोग बहुत छुतहा, तेजीसे फैलनेवाला, उग्र, सक्रामक, विशेषतः रोमन्थकोंको होता है। मुँहमें, पैर और थन पर दाने निकलते हैं। ढोर, भैंस, भेड़ बकरियोंको यह होता है। सूअर और घोड़ेको भी छूत लगकर हो सकता है। मनुष्योंको कभी कदाच होता है। यह रोग भारतमें सदा बना रहता है।

इसका जनक-रोगाणु : यह एक रोगाणुके कारण होता है। मालूम होता है यह सभी रोगाणुओंमें सबसे सूक्ष्म है। यह रोगाणु अणुवीक्षणकी शक्तिके परे है और पशुशरीरके बाहर किसी वस्तुमें पैदा नहीं किया जा सकता है। छूत लगने पर मुँहकी श्लैष्मिक कला पर कुछ छाले निकलते हैं। ये अनदेखेही रह जाते हैं। बाहरी लक्षण कोई नहीं हैं। जब ये छाले पक कर फूटते हैं तब उनका रोगाणु रक्त-स्रोतमें मिल जाता है। इसके बाद लक्षण प्रगट होते हैं। ताप चढ़ने और थूथनकी ललाईसे ये प्रगट हो जाते हैं। इसके बाद छाले निकलते और लार चलती है। छूत फैलानेमें यह रोगाणु सबसे चढ़बढ़ कर है। छालोंमें एक द्रव रहता है जो रोगाणुसे भरा रहता है। यह इतना शक्तिशाली होता है कि, इस द्रवको; ५० लाखमें एकके अनुपातसे हल्का करने पर भी यह छूत लगा सकता है।

छूत संसर्गसे फैलती है। खाने पीने और सजीव माध्यम जैसे आदमी, कुत्ते, कीड़े, चिड़ियोंसे फैलती है। ये छूतवाले पशुके संसर्गसे छूतको इधर उधर ले जाते हैं। लारपर पैर रखने मात्रसे तलवे या जूतेके तलेमें लगकर छूत कितनी ही दूर जा सकती है। ब्लैककी डिक्सनरीमें (Black's Vet. Dictionary) एक काल्पनिक उदाहरणके द्वारा यह दिखाया गया है कि, रोग कैसे फैल सकता है। श्री क चरवाहे हैं। इनके ठट्ठमें खुरपकाकी बीमारी है। वह बाजार जाते हैं और वहाँ श्री ख से हाथ मिलाते हैं। श्री ख सर्वश्री ग, घ, ङ और च से मिलते हैं। ये सब अपने घर जा अपने ढोरोंकी परिचर्या करते हैं। इससे ग, घ, ङ और च के ढोरोंको भी छूत लग जाती है। इसकी छूत कितनी संक्रामक है उसका यह उदाहरण एक नमूना है। ऐसे प्रसारक रोगाणुके रहते यदि ठट्ठका एक पशु भी बीमार पड़ जाय तो रोगका रोकना असंभव है।

एक बार यह बीमारी होनेसे पशुको सालभर क्षमता रहती है। यह भी देखा गया है कि, आराम होनेके तुरत बाद पशु दूसरी बार बीमार पड़ सकता है। इसका कारण यह है कि, रोगाणुकी तीन जातियाँ ए, बी, और सी—A. B, & C, हैं। एक जातिके रोगाणुसे आराम होने पर उसी जातिकी क्षमता आती है पर अन्य जातियोंकी ग्रहणशीलता बनी रहती है।

रोगाणुका लक्षण : आच्छादक तन्तु (epithelial tissue) का रोगाणु सुखाने पर मरता नहीं। सूखी हालतमें ढोरके बाल पर ४ हफ्ते तक छूत फैलानेकी शक्ति इसमें रहती है। सूखी घास पर १५ दिन, और चोकरमें २० हफ्ते। पर छालों या फफोलों की लसीका (vesicular lymph) का रोगाणु कमरेके तापमें २४ घंटेमें मर जाता है। आच्छादकीय तन्तुका रोगाणु जल्दी सड़ांदसे भी नहीं मरता। धोअनमें यह १०३ दिन तक छूत फैलानेवाला रह सकता है और नालीके पानीमें ३९ दिन तक। पेशाबमें मिलते ही इसकी शक्ति उसमें निकले अमोनियासे नष्ट हो जाती है। गोबरकी छूत फैलानेकी शक्ति ३ से ४ दिनमें नष्ट हो जाती है।

कीटघ्नोंमें कास्टिक सोडा या पोटाश बहुत अच्छा काम करते हैं। इनका १ से ३ सैकड़ा घोल रोगाणु मार डालता है। ४ सैकड़ा घोलमें ५० से ६० डिग्री से० तक गरम करनेसे रोगाणु मरता है। एक सैकड़ा फार्मेलीनका असर कास्टिक सोडाके घोल सा ही होता है। छूतनाशका काम लेनेके लिये सोडाको गरम पानीमें

कुछ चूना मिला उसे थिरा लेना चाहिये। इससे वह कास्टिक वन जाता है। इसमें परिचारकोंके कपड़े उवालनेसे उनकी छूत मिट जाती है।

व्यापकता (prevalence): इंगलैन्ड और यूरोपमें वहाँकी सरकारोंने खुरपका पर गहरा ध्यान दिया है। इंगलैन्डमें यह कोशिश हो रही है कि छुतहे पशुओंको मार रोग निर्मूल कर दिया जाय। हजारों पाउन्ड (स्टर्लिङ्ग) इस काम पर खर्च हो रहे हैं। नियम यह है कि, जिसका पशु मारा जाय उसकी क्षतिपूर्ति सरकार करे। इतना होते हुए भी लगातार वहुत दिनों तक इगलैन्ड इस रोगसे मुक्त नहीं रहता। कुछ वर्षोंके वाद यह फिर हो जाता है। क्योंकि यद्यपि रोगी पशुओंके आने पर रोक है और छुतहे मार भी दिये जाते हैं तौभी चलानी सूखी घासमें छूत-रोगाणु पहुँच जाता है। विलायतमें एक वारकी विमारीके कारणका पता चलानी सूखी घासमें लगा।

भारतमें भी यह देखा गया है कि, छूत फैली जगह से आये चारे और गाड़ीसे भी छूत फैलती है।

यह हल्का रोग है। सांघातिक नहीं होता। इसमें पशु कम मरते हैं। दुवले पतले कमजोर पशु इसके फलस्वरूप हुई कमजोरी या अन्य रोगोंसे मर जाते हैं। यूरोपमें इसका एक घातक रूप भी है जिसमें वहुत पशु मरते हैं। पर भारतमें यह नहीं पाया जाता। यूरोपमें भी घातक रूपके अधिक रोगी नहीं होते। घातक रूपका रोगाणु हृदयकी पेशियों पर सीधा प्रहार करता है इसलिये प्राण लेता है।

छूत: गन्दे खानपानसे तुरत छूत लगती है। छूतका मुख्य कारण यही है।

छुतहे पुआल, नाद, अस्तवलकी फर्श, गोचर, पगडंडी, रेलके डव्वेके व्यवहार और रास्ते या रेलसे आनेवाले रोगी पशु भी छूत फैलाते हैं। पशुकी हाट, व्यवसायी, परिचारक और अन्यलोगोंका छूत फैलानेमें मुख्य हाथ है। पुआल, भूसा, चोकर, खली आदिके चलान से भी दूर दूर तक छूत फैलती है। क्योंकि भूसे आदिमें सूखे अच्छादक तन्तु (epithelium) का रोगाणु महीनोंतक जीवित रहता है।

इन सभी तथा अन्य मार्गोंसे वडी सरलतासे छूत फैलती है। किसी छुतहे पशुका संसर्गमात्र ही छूत लगानेके लिये यथेष्ट है। मुँहमें प्राथमिक छालोंके भी

निकलनेके पहले, छूत लगनेके ९ घन्टे बाद, लारमे रोगाणु हो सकता है। जब छाले निकलते हों और फूटते हों वह समय सबसे ज्यादे छुतहा है। तब छालेका मवाद क्षत आच्छादक या बहिस्त्वक्के टुकड़ोंसे मिल जाता है। पीछे जाकर लारका छुतहापन घट जाता है। लक्षणोंके प्रगट होनेके दश दिन बाद लार छुतही नहीं रहती। छूत लगनेके पांचवें या छठे दिन से अर्थात् लक्षणप्रकाशके चौथे और पांचवें दिनसे यह छुतही नहीं रहती।

सर अलवर्ट होवर्डके बैल, बाड़ेके पारसे उन रोगी बैलोंके थूथनसे थूथन रगड़ा करते थे फिर भी छूतसे बच गये। (देखो खंड १, विषय परिचय, पृ० २९)। समझा यह गया कि, यह प्रतिरोध-शक्ति पशुओंको अधिक स्वास्थ्यप्रद ढंगसे पालनेके कारण है।

यह भी हो सकता है कि, जब पांच दिनके बाद रोगाणुकी दारुणता खतम हो गयी तब उन्होंने थूथन रगड़ा हो। यह भी हो सकता है कि, पहले कभी यही रोग होनेके कारण वह पशु क्षमताशील हो गये हों। यह भी हो सकता है कि, संसर्गसे हुए सचारणसे उनमें रोगके प्रकट-लक्षणके बिना भी क्षमता आ गयी हो।

लक्षण : छूत लगनेके बाद पहला लक्षण (प्राथमिक छालेका निकलना नहीं देखने पर) ताप चढ़ना है। जवान हट्टे-कट्टे पशुओंको पूरा ताप चढ़ता है। बूढ़ोंको इतना कम ताप चढ़ता है कि, ध्यानमें भी नहीं आ सकता। एक दो दिन तक तेजीसे बुखार बढ़ता है। और छाले निकलने पर तेजी से उतरता है। पहले पहल बुखार चढ़ने पर कँपकँपी हो सकती है। मुँह, सींग और पूँछ गरम हो जाती हैं। पाँवमें छाले पड़ सकते हैं जिससे पशु लँगड़ाने लगता है। यह पहले लक्षणोंमें एक है। ओठके भीतर की ओर और मसूढ़ेकी श्लैष्मिककला गरम, सूखी, और लाल हो जाती है। मुँहसे लारका तार छूटता है। रोमन्थ बन्द हो जाता है। खाना भी बन्द हो जाता है। पशु मुँह बन्द रखता है। जब कभी खोलता है तब चपचप आवाज होती है। जबरदस्ती मुँह खोलनेसे बहुतसा थूक निकल पड़ता है। मुँहकी श्लैष्मिक कला में भी वही परिवर्तन होते हैं जो ओठ और मसूड़े पर होते हैं।

रोगके दूसरे तीसरे दिन छाले निकलते हैं। छालोंका व्यास ½ से १ इन्च होता है। जीभके नीचेके छाले बड़े भी हो सकते हैं। एकसे तीन दिनमें छाले फूट जाते हैं। फूटा क्षत लाल रंगका और गीला रहता है। उसमें दर्द भी

होता है। छालेका सफेद या भूरे रंगका बचाखुचा अंश इसके चारों तरफ होता है।

एक या दो दिनमें क्षत पर नयी चमड़ी आ जाती है और घाव आराम हो जाता है। घाव आराम होते ही पशु चारा खाने लगता है। गायके थन पर छोटे छोटे छाले निकलते हैं। यदि दुहनेवालेके हाथों वह न फूटें तो ३६ से ४८ घंटेमें फूट जाते हैं। इनका रंगढंग भी मुँहके छालोंसा ही होता है। थूथन और सींगकी जड़में भी छाले निकल सकते हैं।

मुँहके साथ साथ खुरमें भी बीमारी हो जाती है। लंगड़ापन या चलनेमें कठिनाई प्रत्यक्ष होती है। खुरकी चारों तरफ की चमड़ी और खुरकी दरार गरम और सूजी रहतीं और उनमें दर्द रहता है। खुरके ऊपरके छाले छोटे हो सकते हैं। उनमें पहले साफ और बाद को गदले रंगका द्रव भरा रहता है। खुरके नीचे धीरे धीरे नयी चमड़ी निकलती है। एक दो सप्ताहोंमें पैरकी सूजन और दर्द मिट जाते हैं। बहुत जादे छाले निकलने पर खुरके चारों तरफकी चमड़ी अलग हो जा सकती है और नीचेकी चमड़ी भी निकल आ सकती है। कभी केवल मुँह और कभी केवल पैरमें रोग होता है।

साधारण तौर पर तीन चार दिनमें बुखार उतर जाता है। १५ से ३० दिनमें आराम होता है। बीमारीकी हालतमें यदि पशुकी देख भाल नहीं की गयी या उससे काम लिया गया तो खुर गिर सकता है, फोड़ा हो सकता है और पशुकी मृत्यु भी हो सकती है।

चिकित्सा: शुश्रूषा और संभालकी बहुत जरूरत है। पैरमें कीड़े न पड़ें इसलिये बहुतसी जगहोंमें रोगी पशुको छिछले पानीमें खड़ा रखते हैं। इससे पृथक्करणके साथ साथ कीड़ोंसे पैरकी हिफाजत हो जाती है जिससे खुर खराब नहीं होते। पर ऐसा करना अच्छा नहीं। क्योंकि खुरकी दरारमें कीच और गंदगी भरनेसे जलन होती रहती है और इससे छाले निकल सकते हैं।

पशुओंको खुलेमें कड़ी जमीन पर रखना चाहिये। घास फूसका बिस्तर बिछाया जा सकता है। मुँह साफ रक्खो। नीमकी पत्तियाँ और नोन डालकर उबाले पानीसे दिनमें कई बार मुँह धोओ। दिनमें दो तीन बार थन, चूची और पैर धोना चाहिये। पैरकी हिफाजतके लिये तूतियेके बहुत हल्के घोलसे धोना चाहिये। धोनेके बाद किरासनमें अलकतरा घोलकर पोतना चाहिये। इससे मक्खियाँ नहीं बैठेंगी और यह कीटघ्न भी होगा। एक एक करके पैर उठाकर उसकी गंदगी

साफ करनेके बाद धो देना चाहिये। ढेलोंकी नाल उखाड़ देनी चाहिये। नहीं तो उसके नीचेका क्षत बहता रह सकता है। यदि गाय दूध देती है तो इसका ध्यान रखना चाहिये कि, चूचीमें दूध लगा न रहे। इसका भी ध्यान रहे कि, दुहनेके समय चूचीको चोट न पहुँचे। गहरी बीमारीमें बच्चे मर जाते हैं। दूध पीनेवाले बच्चोंकी मृत्यु बहुत होती है। रोग फैलने पर पृथक करने या निरोधक उपाय करनेके समय इनकी देखभाल खास तौर पर की जाय।

पंजाबके श्री बाकर और श्री टेलरने मन्या शिरामें (जुगुलर भेन) आयडिनकी सूई लगानेको बताया है।

आयडिन		१ ग्राम।
पोटाश आयडाइड	...	२ ग्राम।
डिस्टिल्ड (चुलाया) पानी	..	३०० सी० सी०।

सयानोंके लिये १०० सी० सी० और छोटोंके लिये २५ से ५० सी० सी० मात्रा है।

ताप चढ़ने पर छाला निकलनेके पहले सूई लगानी होती है। कहा जाता है कि, आयडिनकी सूई से रोग जल्दी आराम होता है।

इंगलैन्डकी खुरपका-अनुसंधान-समितिकी चौथी रिपोर्टमें लिखा है कि, भारतमें पाये गये परिणाम पूरी जाँच करने पर सिद्ध नहीं हो सके। आगे चलकर भारतमें वेयरने इसे अनेक बार अजमाया। पंजाबके नुस्खेके मुताबिक आयडिनका प्रयोग उसने भी किया। पर उसका भी यही मत है कि, खुरपकामें आयडिनका साधारण पुष्टईके सिवा कोई असर नहीं है।

आहार . रोग जब पूरे जोर पर रहे और छाले भरे हो तो पशुको कुछ भी चबाना कठिन है। मंड खिलाना और प्यास बुझानेके लिये पानी पिलाना सबसे अच्छा है। थोड़ीसी हरी और नरम घास दे देनी चाहिये कि, वह मन हो तब खाय। जैसे जैसे वह आराम होता जाय हरी घासके साथ थोड़ा मड उसे दिया जाय। जबतक वह साधारण चारा खाने लायक न हो जाय यही उसका आहार होना चाहिये।

उपद्रव (Complications) : रोगके बीच उपद्रव या उपसर्ग भी हो सकते हैं जिससे इसका स्वभाव विषम हो जा सकता है। क्षतोंमें पूयकारक जीवाणुओंका आक्रमण हो सकता है। ऊपरी क्षत गहरे भी हो जा सकते हैं। इनमें पीब हो सकती है

और अगल बगलके तन्तु सूज सकते हैं। पैरोंमें पीव हो सकती है, यह प्रायः होती भी है। सफाई रखने और नित्य कोथन्न से कई बार धोनेसे पीव नहीं होनी चाहिये। पर असावधानी करनेसे प्रायः पैरमें खराबी हो जाती है। चलनेसे प्रदाह बढ जाता है। क्षतोंमें कीच और गंदगी लगनेसे यह अधिकतर होता है। कठिन प्रदाहसे खुरके ऊपर फोड़े निकल आ सकते हैं। कभी कभी क्षत ऊपर की ओर बढ सकता है। कभी पीव गहरे तक हो सकती है जिससे दरार हो जाती है। इस कारण खुर अलग होकर गिर जाता है।

कभी कभी दुधार गायके थनमें जमे दूधसे थनैला (स्तनप्रदाह) हो जाता है जिससे थनका रोगी भाग नष्ट हो जाता है। क्षतोंकी छूतसे पशुको जीवाणुजनित रक्तविकार (बैक्टीरियल सेप्टीसीमिया) हो सकता है जो घातक भी हो सकता है। पैरोंमें पीव या दर्द होनेके कारण यदि पशु पडा रहता है तो जिस करवट पड़ा हो उस तरफ गैंग्रीन हो जा सकती है। जिससे उसकी मृत्यु हो सकती है।

प्रति वर्ष प्रत्येक प्रान्तमें खुरपकासे बहुत पशु मरते हैं। दुधमुँहे बच्चे सबसे अधिक मरते हैं। कमजोर पशु बहुत मरते हैं। पर इसका कोई आंकड़ा नहीं है। बात यह है कि, भारतमें छूतके बहुत घातक रोग इतने हैं कि, अपेक्षाकृत कम मृत्यु-संख्यावाले खुरपकाको लोग प्रायः सह लेते हैं। इसके सिवा अभीतक क्षमताकारी कोई सस्ती दवा भी नहीं निकली है। यह रोगका नियन्त्रण करने और तज्जन्य मृत्युसंख्या घटानेमें बाधक है।

क्षमताकरण : यूरोपमें हाइपर इम्यूनाइज्ड सिरम काममें लाया जाता है। इससे क्षणिक निष्क्रिय क्षमता आ जाती है। इससे किसी स्थानमें रोगका आगे बढना रुक जाता है। भारतमें यह नहीं किया जाता। डा० जे० टी० एडवर्ड्स, डिरेक्टर भेटेरिनरी रिसर्च इस्टिट्यूट, मुक्तेश्वर, १९२७ ने अपनी किताब "ए हैन्ड बुक फौर सटॉक ओनर्स" में ठट्ठसे रोग झटपट भगानेके लिये नीचे लिखी विधि सुझायी है :—

"जब किसी ठट्ठमें खुरपका शुरु होता है तब उसका फैलना रोकना प्रायः असंभव है। ऐसी हालतमें यही उचित और सुकर है कि, उसे कृत्रिम उपायोंसे जल्दी फैल जाने दिया जाय। इसका फल यह होगा कि, इसके कारण हुई गड़बड़ी थोड़े समयमें खतम हो जायगी। इसके लिये रोगी पशुकी लार सभी पशुओंके मुँहमें चुपडी जाती है। यह तरीका बहुत अच्छा है। क्योंकि, लारमें जीवाणु बहुत कम होते

हैं। और प्रायः बादकी हालतमें लारमें जीवाणु बिलकुल नहीं होते। (ऐसी हालतमें सारी क्रिया निःसन्देह व्यर्थ है), इसलिये यह अच्छा होगा कि, चुपडनेके लिये कई पशुओंकी लार लेकर मिला ली जाय। (रोगकी प्रारंभिक अवस्थावाले पशुके) संसर्गसे अपने आप होनेवाले रोगकी अपेक्षा इस तरीकेसे हुआ रोग बहुत हल्का होगा। बहुत दिनोंतक रोगको फैलनेसे रोकनेमें यह उपाय बहुधा कारगर होता है।"—(पृ० ३७-३८)

रक्षाका यह उपाय संकटकालका जरूरी संचारण (एमर्जेन्सी इनअकुलेसन) कहा जाता है। हुटीरा कहते हैं कि, "गहरी हानि रोकनेके लिये यह विधि तभी काममें लानी चाहिये जब छूत हल्की हो और सयाने पशुओंमें कोई मरा न हो।"

इसका तरीका यह है कि, रोगीको कपड़ेका एक टुकड़ा चबानेको दिया जाता है। फिर उसीको चंगे पशुओंको चबाने देते हैं।

यह संचारण काममें लानेपर पृथक्करणके लिये स्थितगति-शिविरकी जरूरत नहीं रहती। मैं यह कहूँगा कि दोनोंमें पहला तर्जीहके लायक है। यह रोग बहुत वेगसे फैलता है और पृथक्करणकी कोशिश बेकार कर देता है। इसलिये पृथक्करण-शिविरसे बचाव संशयकी बात रह जाती है।

पृथक्करण : रोगी पशु और (उसके दोनों तरफके) सबसे नजदीकी संसर्गवाले पशुओंको अलग अलग रखना चाहिये। रोगीको एक शिविरमें और संसर्गवालोंको दूसरेमें। संपर्कवालोंको २ सैकडा कारबोलिक घोलसे धोना चाहिये। उनके सिर और पैरका ख्याल अधिक रखना चाहिये। दुहनेके पहले गायोंका थन छूतरहित कर लेना चाहिये।

पृथक्करण-शिविर माता-प्रकरणमें बताये स्थितगति-शिविरसा होना चाहिये। इन दोनोंमें केवल एक भेद परिचारकोंके बारेमें हो। मातामें परिचारक शिविरमें नहीं भी रह सकता है। पर खुरपकामें शिविरमें उसे वहीं पशुओंके साथ ही रहना होगा। क्योंकि यह रोग मनुष्यके द्वारा भी फैलता है। परिचारक और पशु दोनोंका खाना वहीं पहुँचा दिया जाय और घेरके बाहर रख दिया जाय। देनेवाले भीतर न जायँ। यदि एक सप्ताहके बाद कोई नया रोगी न हो तो शिविर तोड़ा जा सकता है।

रोगी पशुका दूध गरम करके काममें आ सकता है। पर शर्त यह है कि, थन पर छाले न हों और दूधका रंग बदला हुआ न हो।

अतमें इस रोगके वारेमें अपनी निस्सहाय स्थितिका उल्लेख करना जरूरी है। वेयर और वनर्जीका लिखा (इडियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्वैन्डरी, १९३२) ऊपर कहो आयडीनके द्वारा खुरपकाके नियत्रणवाला लेख इस तरह शुरू होता है :

"यूरोपकी अपेक्षा भारतके पशु कम मूल्यके होते हैं, इसलिये भारतमें यह रोग उतना भयकर नहीं माना जाता जितना यूरोपमें। फिर भी जब कभी यह वैलों या दुधार गायोंमें फैलता है तो वडी कठिनाई होती है। आर्थिक हानिकी तो वातही क्या? यह रोग प्रायः फैलता है। जान्तव या रासायनिक औषधियोंसे यदि इसका होना रोका जा सके तो इस देशके पशुपालक इसे चाहेंगे। इसी सिलसिलेमें यह कहा जा सकता है कि, मुक्तेश्वर इस्टिट्यूटके प्रयोगोंमें इस रोग से वडी वाधा होती है। वहाँ कई सौ पशु वरावर रहते हैं। नये खरीदे पशुओंमें वर्षमें कई वार नियमित और इतने उग्ररूपसे यह फैलती है कि, तवियत ऊव जाती है।"—(पृ० १०३)

इस लेखमें रोगी पशुओंपर हुए आयडिनके प्रयोगका वर्णन है। हमारे केंद्रीय पशुरोग-गवेषणामदिरमें यह रोग 'ऊवानेवाली नियमिततासे' फैलता है, इसका भी उदाहरण इसमें मिलेगा। साथ ही रोगी पशुओंकी मृत्युसख्याका अदाज भी मालूम होगा।

१. "मुक्तेश्वरके सिल्गुरी कालमें सन् १९२६ में ३० सॉढ थे। २७ सितवरको उनमें से ५ या ६ के वारेमें खवर मिली कि, उन्हें खुरपका हो गया है।...दूसरे दिन उनमेंसे २२ को इस रोगके क्षत स्पष्ट दिखायी दिये।"—(पृ० १०८)। औसत २० दिनोंमें सभी चंगे हो गये।

२. "१९२६ में भुलमरिया कालसे भी रोग फैलनेकी खवर ३० सितम्वरको मिली। दूसरे दिन जांच करने पर २९ मे २० सॉढों पर खुरपकाके वडे वड़े क्षत दिखायी पड़े।"—(पृ० ११२)।

..."२० में से ९ पशु जिनकी हालत पहले से ही गिरी हुई थी इसके शिकार हो गये।"—(पृ० ११६)

३. इसके वाद सन् १९३० की अप्रैलको काम शुरु हुआ। लेखमें लिखा है कि : .. "इस सालके अप्रैलमें ८३ सॉढ़ खरीदे गये। उन्हें इस इंस्टिट्यूटसे सलग्न सीतला कालमें रखा गया। उसी महीने को २६ तारीखको पाया गया

कि १९ पशुओंको इस रोगके क्षत हो गये है।"—(पृ० ११६)। क्षतोंकी औसत अवधि ३०·३ से २३·५ दिन दो दलोंमें रही।

४. २६ पशु खरीदे गये जिनमें ३ को खुरपकाके क्षत थे। सबके सबको रोग-रोधनके लिये आयडीन दी गयी। केवल ११ परिमापक रखे गये। आयडीन देने पर भी केवल ६ पशुओंको ही रोग नहीं लगा।

मुक्तेश्वर इंस्टिट्यूटकी निगरानीमें यह हाल है। इससे भारतके साधारण पशुओंमें कैसा उत्पात मच जाता है और कितने कमजोर पशु हर साल मर जाते हैं यह पाठक अनुमान कर लें। आरम्भकी टिप्पणीमें "कममूल्यके" पशुओंका जिकर है। पर यही कम मूल्यके पशु किसानकी एकमात्र चल या अस्थावर संपत्ति है इसलिये हानि बहुत बड़ी होती है।

भारतमें इस रोगके बारेमें अधिक ध्यान नहीं दिया गया है इसका यह कारण हर्गिज नहीं कि, "पशु कम मूल्यके" होते हैं। क्योंकि, यह बात तो माताकी छूतके बारेमें भी लागू होती है। कारण यह है कि, हमारे कार्यकर्ता अधिक मारक रोगोंके कार्यमें बेतरह फँसे हैं। साथ ही भारतीय स्थितिके अनुकूल उस रोगका कोई बढ़िया रोधक मिल नहीं सका है।

"भारतमें खुरपका बहुत फैलता है। ढोरके प्लेग (माता) से भी ज्यादे यह फैलता है। इस रोगके बीज दृष्टिपर-रोगाणु भी हैं। औरोंसे अधिक प्रतिरोधी हैं तथा अधिकतर अप्रत्यक्ष उपायोंसे फैलते हैं—जैसे, मनुष्य, चारा, बिस्तर या अन्य सामान जो रोगी पशुके संपर्कमें रहे हों उनके जरिये। यह वायुके द्वारा भी फैलते है ऐसा मालूम होता है।

"यूरोपमें और विशेषकर इंगलैन्डमें खुरपकाके नियन्त्रण पर बहुत खर्च किया जाता है। पर भारतमें यह इतना ध्यान देने लायक नहीं माना जाता। इसके अपेक्षाकृत कम महत्वके दो कारण माने जाते हैं, जिनमें मुख्य ये हैं —(१) भारतमें ऐसे संक्रामक रोग हैं जिनसे मृत्यु अधिक होती है जैसे कि माता और गलघोंट्र। इसलिये इन पर अधिक ध्यान देना होता है। (२) इस रोगसे भारतीय ढोर बहुत कम मरते हैं। इसलिये बहुत व्यापक नियन्त्रण की जरूरत नहीं होती। ऐसे नियन्त्रणोंका भारतकी अवस्थामें काममें लाना बहुत कठिन है।"

"रोगकी उग्रता इसके अलग अलग आक्रमणोंमें (outbreaks) में विभिन्न होती है। कुछ जिलोंके, खासकर पहाड़के ढोर औरोंकी अपेक्षा अधिक ग्रहणशील

मालूम होते हैं। कभी कभी उग्ररूपमें खुरपका होने से छोटे बछड़ मर जाते हैं। बूढ़े पशु मजबूत सयाने पशुओंकी अपेक्षा अधिक ग्रहण-शील मालूम होते हैं।

"पर इस रोग से हुई हानियाँ मृत्युसंख्यासे नहीं आँकी जा सकतीं। रोग होने पर पशुओंकी हालत खराब हो जाती है। खासकर वह अपना नियमित आहार नहीं खा सकते। दुधार पशुओंका दूध घट जाता या बन्द हो जाता है, कामके पशु लंगड़ाने के कारण काम नहीं कर सकते। मिलनेवाला आहार यदि कड़ा या कम हुआ तो छूत लगे ठट्ठके बहुतसे, खासकर कमजोर पशु, मर जा सकते हैं। मृत्यु रोगके कारण उतनी नहीं होती जितनी जीवनधारण करनेलायक आहार नहीं खा सकनेके कारण होती है।"—(एडवर्ड : ए हैन्डबुक ऑफ स्टॉक ओनार्स, पृ० ३४-५)

भारतमें खुरपकाका सही चित्र ऊपरके वर्णनमें दिया गया है। यह सन् १९२७ में लिखा गया था। तबसे १८ वर्ष बीत गये। पशुचिकित्सा शास्त्रने तबसे उल्लेखनीय प्रगति की है। पर भारतमें हम १९२७ में जहाँ थे वहीं हैं, एक डेग भी आगे नहीं बढ़े हैं। यह असहाय स्थिति है। इस ओर अधिक ध्यान दिया जाय और जो लोग देश विदेशमें गवेषणा कर रहे हैं वह सफल हों, हम लोग तो यही केवल चाह सकते हैं। आयडिन की सूईसे कुछ आशा हुई थी पर वह भी भ्रामक सिद्ध हुई। इसके बाद अनेक दूसरी रसायनिक दवायें, रजन पदार्थ, जीवाणुनाशक आदिके प्रयोग हुए और विभिन्न स्थानोंसे उनके लिये सिफारिशें हुईं। पर साधारण जांचमें एक भी नहीं ठहरा।

पारद और लौहजन्य औषधियाँ अच्छी मानी गयीं। पर कमी उनमें भी पायी गयी। संखियाकी बनी विभिन्न दवायें भी जोशके साथ अजमायी गयीं। पर व्यावहारिक फल कुछ नहीं निकला। टारटर एमेटिक (वामक), पोटैशियम आयोडाइड और कुनैन भी इस रोग पर व्यर्थ हुये। विभिन्न नीलरजकों, उनके संखियायुक्त पदार्थ, यूरियाजन्य पदार्थ, आयडिन, गंधक, फौर्मोल और टार (अलकतरा) के भी व्यापक प्रयोग निष्फल हुए।

खमीर (ईस्ट) की वस्तुओंका अलबूमेनके साथ योग खास कमीशनने अजमाया। उसके बारेमे भी जो दावा था वह सिद्ध नहीं हो सका।

भैक्सीन और सिरमके प्रयोग भी निराशाजनक रहे। कृत्रिम माध्यममें रोगाणु तैयार नहीं किये जा सकते। इसलिये यह काम भी जहाँका तहाँ है। क्षमताके लिये सिरम अबतक बनाये जा रहे हैं। पर अधिक मात्राके उपयोगसे

ही यह क्षमता पैदा कर सकते हैं। वह भी इतने थोड़े दिनके लिये कि, जबतक रोग फैला रहता है तब तक भी उसका असर नहीं रहता। इसलिये प्रायः दो तीन बार सूई लगानी होती है जिसमें बहुत खर्च होता है।

इन कारणोंसे खुरपकेकी बुराई हमें अन्य बुराइयोंकी तरह धीरजसे सहनी होगी। साथही हमें अच्छी परिचर्या (तीमारदारी), अच्छे अक्रोधीय ढगसे पशुकी सभाल, उन्हें जादे अच्छे वातावरणमें रखना, उन्हें जादे अच्छा खाना देना कि, उनमें सहज प्रतिरोध-शक्ति अधिक हो जाय, इन बातों पर अपना ध्यान जमाना होगा।

१३८६. Dengue तिनदिना बुखार : डेंगू।

पर्याय :— एफेमेरल फीभर, स्टिफ सिकनेस। हिंदी—भिलं, चारमेस, ऊचवाली।

यह सभी जातिके ढोरोंको होनेवाला उग्र ज्वर है। यह एक तरहका डेंगू है। इसकी अवधि ३ दिनोंकी है। इसके बाद रोगी अच्छा हो जाता या कभी कभी मर जाता है। पश्चिमोत्तर भारत और उसके आसपास यह बहुत होता है। मिश्र, ट्रांसवाल, नेटाल, केपकलोनी और वेस्ट इंडीजमें यह हुआ करता है। यह प्रायः बरसातमें या उसके बाद होता है। यह संक्रामक नहीं है। पर इसकी छूतके वाहन कीड़े (मच्छर, डांस) हैं। छूत लगानेवाले जीव, दृष्टिपर-वर्गके रोगाणु हैं। ये रक्तमें विकार पैदा करते हैं। लक्षण-प्रकाशका समय २ से ३ दिन है। यह अचानक हो जाता है, एक साथ कई पशुओं पर इसका आक्रमण हो सकता है। आक्रमण एकही समयमें विभिन्न स्थानों पर हो सकता है।

लक्षण : अचानक आक्रमण होता है। इसमें तापमान १०४ से १०७ डिग्री फा० तक हो जाता है। बुखारमें एक या अनेक जगहोंकी पेशियाँ कड़ी हो जाती है। यह अकड़न गर्दन या सारे शरीरमें फैल सकती है। अकड़नसे पशु लंगड़ाने लगता है। कभी कभी वह खड़ा नहीं हो सकता और खड़ा भी होता है तो कमर कमानसी तिरछी हो जाती है। भूख नहीं लगती, रौंथ बंद हो जाती है और निगलनेमें कठिनाई होती है। कब्जियत या पतले दस्त, दुछ भी हो सकते हैं।

तापमान चढ़ने और लगडेपनसे लँगडीका भ्रम हो सकता है। उसी तरह तापमान और पतले दस्तसे माताका संदेह हो सकता है। ठहके बहुत थोड़े पशु, प्रायः २० सैकड़ा बीमार पड सकते हैं।

रोग तीन दिनमें खतम हो जाता है। मृत्यु बहुत कम होती है। शवपरीक्षामें देखा जाता है कि खून बहुत जल्दी थक्का हो जाता है।

चिकित्सा : लक्षणोंके अनुसार केवल परिचर्या करनेकी जरूरत है। पूर्वावस्थामें एपूसम नमककी (मैगसल्फकी) एक मात्रा (½ से १ रत्तल) देनी चाहिये।

निरोधक उपाय : यदि लगडी या माताका शक हो तो बीमार पशुओंको अलग कर देना ही बुद्धिमानी होगी। क्षमताकारी दवाकी कोई जरूरत नहीं। कुछ है भी नहीं।

१३६०. Cow-Pox : चेचक : गोशीतला।

पर्याय :— भेरिओला, भैक्सीना। हिंदी— माता, चेचक।

मनुष्य और पशुकी चेचक : मनुष्य, गाय, भेड़, बकरी, ऊँट और घोड़ेकी इस बीमारीका साधारण नाम चेचक है। इस रोगमें बुखार होता है। यह संक्रामक और उग्र है। इसमें त्वचा और उससे संलग्न कलापर पतले छाले निकलते हैं। एक भीषण रोगाणुके कारण यह रोग होता है।

सभी पशुओंकी चेचकका मूल एक ही माना जाता है। पर विभिन्न पशुओंमें अगिनत बार होनेके कारण उसके विभिन्न लक्षण हो गये हैं। सभी पशुओंके चेचकके रोगाणु जब खरगोशमें डाले जाते हैं तो वह बदल कर गोचेचक हो जाते हैं। यही इसकी पहचान है। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि, गोचेचक और नर-चेचकमें बहुत निकट सम्बन्ध है। यह माना जाता है कि, जब नरचेचकका रोगाणु गायमें डाला जाता है तब वह गोचेचक बन जाता है। यह माना जाता है कि मूलमें गायको चेचक मनुष्यसे मिली। यूरोपमें नरचेचकके उन्मूलनके साथ ही साथ गोचेचक भी खतम सी हो गयी है। यह बात ऊपरके अनुमानको पुष्ट करती है। अन्य पशु भी नरचेचकके लिये ग्रहणशील हैं। गायमें जानेके बाद नरचेचकका रोगाणु कमजोर हो जाता है। गायसे प्राप्त यह कमजोर किया हुआ रोगाणु मनुष्यको टीका लगानेके काममें आता है। इससे चमडेमें केवल उसी स्थान पर छाला निकलता है। एकस्थानीय छालेमें

प्रतिपिंड बनते हैं जो रक्तमें मिल जाते हैं। इससे पूरी क्षमता आ जाती है। टीका लगने से मनुष्यको कई सालके लिये क्षमता हो जाती है। गायको क्षमता इतनी स्थायी नहीं होती।

चेचकका रोगाणु तापका बडा भारी प्रतिरोधी है। ग्लिसरीनमें १८० डिग्री से० तक की गर्मीमें भी वह जीता रहता है। अंधेरेमें रखनेसे ग्लिसरीनमें वह ८ से १० महीने तक उग्र बना रहता है। साधारण तौर पर ६ मिनट तक ५७.५ डिग्री से० ताप पर सुखानेसे यह मर जाता है।

विस्तार (Incidence): तन्दुरुस्त गायोंको यह रोग रोगी गायोंसे होता है। पर अधिकतर चेचकका टीका तुरत लगवाये हुए आदमीसे हुआ करता है। इसका प्रमाण यह है कि, मनुष्योंको टीका लगनेके बाद गायोंको चेचक होती है। दुहनेवालोंसे ठट्ठको गायोंमें छूत फैलती है। एक गायकी छूत अन्योंको इनके हाथों दुहनेके समय लग जाती है। पुआल, चारा या गोबर आदि जैसे पदार्थोंसे भी छूत फैल सकती है।

लक्षण: गायोंका यह हल्का रोग है। चार से सात दिनकी प्रच्छन्नावस्थाके उपरान्त रोग प्रगट होता है। इस समय हल्का बुखार हो जाता है। भूख घट जाती है। रौंथ बन्द हो जाती है। चूचियां गरम हो जाती हैं और सूज जाती हैं। दूसरे या तीसरे दिन चूचियों पर छाले निकल आते हैं। वह मटरके बराबर होते हैं और एक दो दिनमें वह भर जाते हैं। भरे छालोंका रंग चमड़ेमें उनकी गहराई के अनुपातसे गुलाबी, नीला या मटमैला हो सकता है। वे ८ से ११ दिनमें पूरा बढ़ जाते हैं। इसके बाद वह बीचमें कुछ धँस से जाते हैं। इसके बाद उनमें पीव होती है और तब वह सूखते हैं और पपड़ी पड़ती है। पपड़ी झड़ने पर दाग रह जाते हैं। थन और चूची पर कम ही दाने एक से २० तक निकलते हैं। नरके फोते या अंडकोष पर छाले निकल सकते हैं। कठिन रोगमें छाले जांघ, पेड़ू, छाती, गरदन और थूथनपर निकल सकते हैं।

खुरपकाके छाले चेचकके छालोंसे बहुत बड़े होते हैं। इसलिये वह अलग पहचाने जा सकते हैं। खुरपकामें खुरके शिखरदेशपर भी छाले निकलते हैं पर चेचक में नहीं।

चिकित्सा: गायका थन साफ और सूखा रखना चाहिये। दुधारू पशुओंको सावधानी से दुहना चाहिये। थनमें दूध छोड़ना बुरा है। इससे थनैला हो

सकता है। बछरू को पिलानेसे छालेंमें क्षत हो सकते हैं। इसलिये सावधानीसे दुहना होता है। फुसियोंमें पकनेवाले जीवाणु रह सकते हैं। इससे घाव या अन्य उपद्रव हो सकते हैं। छाले जब फूटें तब नित्य दो बार नीमकी पत्तीके साथ उबाले पानीसे धोना चाहिये। इसके बाद बोरिक मलहम जैसे कोथघ्न लगाना चाहिये। जिस लसीकाका टीका मनुष्यको लगता है और जैसे लगता है उसी तरह टीका लगा कर पशुकी रक्षा की जा सकती है। पर यह अनावश्यक है। गायोंमें यह रोग वेगसे नहीं फैलता। स्वास्थ्यसम्बन्धी सावधानी और दुहनेवालों तथा रखवालोंकी सतर्कता ही जरूरी है। स्वस्थ और रोगी गायोंको एक ही आदमी न दुहे। रोगी गायके दूधका रंग यदि स्वाभाविक हो तो उबालकर काममें लाया जा सकता है।

मनुष्यके लिये भैक्सीन बनानेके लिये लगभग ६ महीनेके बछरूका उपयोग होता है। पेटपरका सारा रोंआं मूंडकर त्वचा साफ की जाती है। इसके बाद पाछकर ऐसी भैक्सीनका सचारण किया जाता है, जो पहले खरगोश और बछरू में क्रमसे पाछकर निकाली हुई रहती है। छाले और फुसियाँ समय पर निकलते हैं। खास तरहके निचोड़नेवाला चमच से छाले जमा किये जाते हैं। इससे मंड बनता है। मंडमें ५० सैकड़ा ग्लिसरीन मिलायी जाती है, इसे पी एच (pH) ७·६ तक क्षारीय बनाया जाता है और ०.१ सैकड़ा लौंगका तेल मिलाया जाता है। यह वस्तु –११ डिग्री से० ताप पर रख दी जाती है जो दो वर्ष तक रह सकती है। इसमें यदि कोई दूषित करनेवाले जीवाणु हों तो उन्हें ग्लिसरीन और लौंगका तेल मार डालता है। एक बछरूसे भैक्सीनकी एक हजार मात्राएँ जमा की जा सकती हैं। चेचकके रोगाणु बछरू और खरगोशकी देहमें टालनेके बाद भैक्सीनिया (गोचेचक) बन जाते हैं। इनका पाछ लगानेसे मनुष्यको कई वर्षतक चेचक की छूत नहीं लगती।

१३६१. Contagious Pleuro-Pneumonia : संक्रामक प्लूरोनिमोनियाँ।

यह ढोरका विशिष्ट रोग है और संक्रमक है। मुख्यरूपसे फेफड़ा और उरस्याकलामें रोगका असर होता है। फेफड़ेके संयोजक ततुओं और उरस्याकी

दरीमें बहुतसी लसीका भर जाती है। यह रोग एक विशेष प्रकारके बहुरूपी (पोलीमौरफस) जीवणुके कारण होता है।

पहले यह समझा जाता था कि, यह रोग भारतमें नहीं होता। पर हालकी खोजसे स्पष्ट पता चला है कि, यह भारतमें सक्रामक रूपमें है और इसके कारण बहुतसे पशु मर जाते हैं। उदाहरणके लिये आसाम भी एक प्रान्त है जहां इस रोगका होना निश्चित रूपसे सिद्ध हो चुका है। वहां आजकल मुक्तेश्वर इंस्टिट्यूटकी ओर से इसका मुकाबला करनेका उपाय खोजनेके लिये गवेषणा हो रही है।

यूरोपमें यह बहुत होता था। पीडित और सदिग्ध पशुओंको मारकर वहां यह वश कर लिया गया है। इगलैन्डमें बहुत खर्च करके यह निर्मूल कर दिया गया। सरकारकी तरफसे रोगी और सदिग्ध पशुओंको मार देनेके लिये उनके मालिकोंको पशुओंका दाम दे दिया जाता था। इस रोगका घर एशिया है। यहां यह बारहमासी है।

जीवाणु (micro-organism) : पहले यह समझा जाता था कि, इसके जीवाणु छन जाने लायक (ममृजनीय) रोगाणु हैं और प्रयोगशालामें प्रस्तुत कृटि-रूपमें ही इन्हे देख सकते हैं। पर अब हालकी गवेपणासे इनके लक्षणोंका पता चल गया है। विभिन्न लोगोंने इसके विभिन्न नाम रखे हैं। सर्वश्री टरनर, कैंपबेल और डिकने इसका एक नाम बोरेलोमाइसेस पेरीनिमोनियां रखा। यह एक प्रकारका स्किजोमाइसीटीज (स्वयं विभक्त होकर वशवृद्धि करनेवाला फजी या बैक्टीरिया) है। इसे एम' फैडियनने (M' Fadyan) दिखा दिया है।

ग्रहणशीलता : स्वाभाविक अवस्थामें यह रोग गाय भैंसको हो जाता है। अन्य पशु या मनुष्यको इसकी छूत नहीं लगती। इसकी ग्रहणशीलता व्यक्ति, नस्ल और रहनसहनके अनुसार विभिन्न होती है। किसी ठट्ठमें बहुत से ऐसे पशु पाये जाते हैं जो इस रोगके प्रतिरोधी हैं। प्रायौगिक सचारणमें लगभग २० सैकडा बछरुओंपर कुछ भी प्रतिक्रिया नहीं होती।

सहज छूत (Natural infection) · रोगी पशुकी छोड़ी सांस लेनेसे नाकके द्वारा छूत लगती है। किसी ठट्ठमें एक रोगी पशुका रहना ही धीरे धीरे छूत फैलानेके लिये काफी है। सबसे पासवाला पहले छूत पकड़ता है। निरोग होनेके दो तीन वर्ष बाद सुस्थ दिखायी पडनेवाले पशुके फेफड़ेमें इसके जीवाणु हो

तो वह भी छुतहे हो सकते हैं। यदि सचारित पशुके फेफड़ेमें कुछ फेर वदल हो गया है तो संचारणकी प्रतिक्रिया मिट जानेके वाद वह भी छुतहा हो सकता है।

लक्षण : त्वचामें छूत लगनेके वाद लक्षण प्रकट होनेका काल ६ से २७ दिनका होता है और साँस द्वारा छूत लगनेसे १२ से १६ दिनका। पर सहज छूतमें यह काल शायद जादा, प्राय: चार सप्ताहका होता है। क्रूपस निमोनियाँकी तरह इसके लक्षण धीरे धीरे वढते हैं। तापमान थोड़ा बढ़ता है। कष्टदायक सूखी खाँसी होती है। इसीसे इस रोगका सदेह होना चाहिये। खाँसी धीरे धीरे वढती है। विशेषकर सवेरे, खड़े होने या पीने के समय या ठंड लगनेसे खाँसी वढती है। भूख घट जाती है, रौंथ देरसे होती है और दूध घट जाता है। कभी कभी गरदन पर सूजन हो जाती है। साँस-कष्टके चिह्न क्रमशः अधिकाधिक स्पष्ट होते हैं। नाकसे रेंट (नेटा) वहती है। ताड़न-परीक्षासे कधेकी हड्डीके पीछे और कुछ ऊपर तक प्रतिध्वनि अस्पष्ट मालूम पड़ेगी। श्रवण-परीक्षासे साँसमें क्षीणता और कुछ करकराहट सुनाई पड़ेगी। उरस्याकला या फुसफुसावरण आक्रान्त हो तो घर्षण-स्वर सुनाई देगा। कड़ी वीमारीमे कराहनेका स्वर सभी स्वरोंको दवा सकता है।

पेशाव कम और गहरे या काले रगकी होती है। जैसे जैसे रोग वढ़ता है तापमान १०५ या १०६ फा० हो जाता है और अत तक वना रहता है। पिछली अवस्थामें त्वचाकी फैलने सिकुडनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। वालकी चमक मिट जाती है। कब्ज या दस्त हो सकते हैं। जीवन-शक्ति घट जाती है।

इस रोगसे रक्त विषाक्त हो सकता है जिसमें केवल वुखार होता है। इसके वाद यह वन्द हो जाता है और रोगी स्वस्थ हो सकता है। वहुत जाडे वुखार होनेसे इस रोगसे सप्ताह भरमें ही रोगी मर सकता है। पर साधारण तौर पर रोगका समय करीव चार सप्ताहका होता है, जिसमें प्राय: ३० से ५० सैकड़ा रोगी मर जाते हैं। जो आरोग्य हो जाते हैं, उनके फेफड़ेमें क्षत वना रह सकता है जो कभी रोगको फिरसे प्रगट कर सकता है। हल्की वीमारीमे रोगी पूरी तरह निरोग हो सकता है।

भेदसूचक निदान : अणुवीक्षण या शवपरीक्षाके विना केवल ऊपर कहे लक्षणोंसे उरस्याकलाकी निमोनियाँ या यक्ष्मा (Pneumona Pleuritis or Pulmonary Tuberculosis) का भेद समझना वहुत कठिन है।

भेदसूचक निदानमें गलघोंट और सेपटिक निमोनियाँ का भी विचार करना चाहिये। ट्यूबरक्युलिन-परीक्षासे यक्ष्मा पाये जानेसे दोनों बीमारियोंके सयुक्त आक्रमणकी सभावना मिटती नहीं।

चिकित्सा इस रोगकी कोई अव्यर्थ औषधि अब तक नहीं मिली है। "नियो-सालभरसन" की बडी तारीफ हुई थी पर वह लाभप्रद सिद्ध नहीं हुई। आसाम प्रान्तके भेटेरिनरी रिपोर्टमें (सन् १९४०-४१) लिखा है कि, "नोभरसेनोबियोन (N.A.B.)" की सूई शिरामें लगानेसे "फायदेकी उम्मीद मालूम हुई"।

प्रतिरसकी चिकित्सा बहुत तारीफके लायक नहीं। यद्यपि कुछ अवस्थामें सिरम और भैक्सीनकी रक्षात्मक सूईसे पशुओंकी मृत्युसख्या घटी है फिर भी भारतमें यह उपाय काफी बढ़ नहीं सका। पर इस उपायमें कई व्यावहारिक दोष हैं। उनमेंसे एक यह है कि, सचारित पशु भी कुछ समयके बाद छूत फैला सकते हैं।

पृथक्करण : छूत लगे पशुओंको पृथक् कर देना चाहिये। इन पशुओंको स्वास्थ्य-विधिसे रखना और अच्छी तरह खिलाना पिलाना चाहिये। उनकी सभाल भी अच्छी हो। पुराने रोगियोंको खुली आबहवा और धूपमें पुष्ट भोजनका उपयोग स्वच्छन्द करने देनेसे वह रोगमुक्त हो सकते हैं। रोगमुक्त दिखायी देनेवाले पशुओंको अन्योंसे मिलने देनेके पहले उनकी जीवाणुशास्त्रीय परीक्षा कर लेनी चाहिये।

१३६२. Tuberculosis : यक्ष्मा या क्षय।

पर्याय :— ट्यूबरक्यूलोसिस, कसपसन, थाइसिस। हिंदी—सूखा, खानाजीर, क्षय, छयी, तपेदिक। आसाम—खेह रोग। गुजराती, मराठी, कन्नड़, मलयालम, तैलंगी—क्षय। पंजाबी—हजीरन। सिंधी—सिला। तामिल—क्षयम्।

यक्ष्मा : मनुष्योंमें होनेवाले रोगका ही यह एक प्रकार है। गायकी यक्ष्मा प्राय• बच्चोंको हो जाती है। इसमें लसीका-वाहिनियाँ, हड्डी और जोड़में रोग पकड़ता है। पर गायकी यक्ष्माका फेफड़ेकी यक्ष्मासे कुछ लेना देना नहीं है। गायसे

मनुष्यको साधारणतः छुतही गायके दूध द्वारा छूत लगती है। क्षयीके जीवाणु उबालनेका ताप नहीं सह सकते। उबालनेसे दूधके जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। इसलिये भारतमें गोक्षयकी छूत मनुष्योंको लगनेकी संभावना कम है। क्योंकि, यहाँ साधारण तौर पर लोग उवाल कर ही दूध पीते हैं।

गोक्षयका यूरोपमें बडा आतंक है। क्योंकि, वहाँ बहुत जादे गायोंको इस रोगकी छूत रहती है। वहाँ दुधार गायें कृत्रिम रीतिसे रखी जाती हैं। उन्हें धूप कम नसीब होती है। इसीलिये वहाँ गाय और अन्य ढोरको क्षयी होती है। भारतमें भी यह रोग है। पर अपेक्षाकृत बहुत कम। कसाईखानेकी रिपोर्टोंसे कुछ क्षयग्रस्त गायोंका पता चलता है। लेकिन उरस्या और उरकी लसीका-ग्रन्थियोंमें भी रोग घुस गया हो ऐसे रोगी शायद ही देखे जाते हैं।

भारतमें भी यूरोपके ढग पर जो पशु जादेसे जादे दूधके लिये पाले जाते हैं उनमें क्षय अधिक होता है। किसानोंके ढोर जिन्हें अधिकतर बाहर रहना होता है उन्हें अपेक्षाकृत यह रोग नहीं के बराबर है। यह रोग कदाचित् ही होता है। तो भी इसके बारेमें पूरी जानकारी होना अच्छा है। क्योंकि इससे यह जाना जा सकेगा कि, किस पशुको यह रोग है और तब उसकी रोकथाम की जा सकती है।

ग्रहणशीलता : बहुतसे पशुओंको सहजही या संचारणसे यह रोग लग जाता है। गायमें इसकी ग्रहणशीलता विशेपकर है। भेड़-बकरीकी क्षमता उल्लेखनीय है। घोड़े खच्चर और गदहोंको शायद ही इसकी छूत लगती है। उसी तरह कुत्ते बिल्लियोंको भी नहीं। ऊँटको यह हो जाता है। बँधे रहनेवाले बनमानुस और बंदर इस रोगसे मर जाते हैं। यह गोक्षयके बारेमें है जो नरक्षयसे भिन्न है। एक तरहका क्षय चिडियोंको होता है। इसे पक्षिक्षय (avian tuberculosis) कहते हैं। कभी कभी मुर्गियों, तुर्की (पेरू पक्षी) और बतकोंमें यह महामारीकी तरह फूट पडता है।

क्षयका जीवाणु परोपजीवी ही है। पर यह माना जाता है कि, यह मृतजीवीकी तरह भी रह सकता है। यह एसिड-फास्ट वर्गका जीवाणु है। इस जीवाणुके धब्बे (stain) पर तेजाबका असर जल्दी नहीं होता। इस वर्गके केवल कुछ ही जीवाणु हैं। यह ऑक्सीजनमें या उसके बिना भी जीता है। इसकी कृष्टिपर सूर्यप्रकाश पडनेसे ७ से १८ दिनमें उसके सब जीवाणु मर जाते हैं। तीव्र प्रकाशसे थूकके जीवाणु कुछ घंटोंमे ही मर जाते हैं। सुखाये थूकमें यह

महीनों तक छूत फैलाने लायक रह सकते हैं और पानीमें कई सप्ताह। १४० डिग्री फा० का आर्द्र ताप (ऊमस) इसे घंटे भरमें मार देता है। यह साँस और खाने पीनेसे भी फैलता है। बछड़ेको अपनी माँसे यह रोग लगनेका कारण प्राय: क्षययुक्त दूध पीना होता है।

ग्रेट ब्रिटेनमें यह अनुमान है कि, वहाँ कमसे कम ३० सैकडा ढोर क्षयग्रस्त हैं। आर्थिक सलाहकार समितिकी साक्ष्यके अनुसार क्षयपरीक्षामें ४० सैकड़ामें इसकी छूतका पता चला। ग्रेट ब्रिटेनमें गोक्षयसे प्रतिवर्ष बीस लाख पाउन्डकी आर्थिक हानिका अनुमान किया जाता है। रोगियोंकी संख्या बहुत बडी है। इसलिये वहाँ इस रोगके उन्मूलनका सरकारी प्रयासभी उतना ही बडा है। ग्रेट ब्रिटेन तथा और कई देशोंमें कानून है कि, ढोरको क्षय प्रगट होने पर उनके मालिक सरकारको इसकी सूचना दें। रोगका स्पष्ट पता पाकर कानूनी तौर पर उनका वध कर दिया जाता है। मालिकोंको उनके लिये हर्जाना दिया जाता है। सन् १९३४में ग्रेट ब्रिटेनमे ७८,०७७ पाउन्ड अर्थात् लगभग १० लाख रुपये हर्जाने की रकमके चुकाये गये। २२,००० ढोर मार डाले गये थे।

जीवाणुकी दारुणता : ढोरमें गोक्षयके जीवाणु अत्यन्त दारुण हो जाते है। त्वचामें इसकी कृष्टिका ०.०५ ग्राम संचारण करनेसे क्षयकी प्रगति बढ जाती है। पर ढोरमें नरक्षय का संचारण करनेसे एकस्थानीय क्षय विकार ही चकत्तेके रूपमें होता है, यह चकत्ता या उभार सब शरीरमें नहीं होता। तरुण पशु यदि गोक्षय जीवाणुयुक्त कोई वस्तु खा लें तो उन्हे कठिन छूत लग जाती है। यद्यपि थूक छूत फैलानेवाली मुख्य वस्तु है तौभी छुतहे पशुके थूकमें जीवाणु प्रायः नहीं पाये जाते। पर छुतहे पशुके गोवरसे छूत बहुत फैलती है। प्रायः यह होता है कि, छुतहे पशु फेफड़ेके जीवाणुसे भरे कफ या थूक निगल जाते हैं। यह पेट या आँतमें मरते नहीं, गोवरके साथ बाहर निकल आते हैं। इसके अलावा आँतोंके व्रण या छुतहे यकृतके जीवाणुभी गोवरके साथ निकल आते हैं। इसलिये छुतहे पशुका गोवर जीवाणुसे भरा रहता है और गोशाला या जमीनमें छूत फैलाता है। गोशाला या जमीनकी धूलके साथ ये जीवाणु जीते जागते साँसकी राह पशु-शरीरमें पहुँच जाते हैं।

मूत और दूधमे भी जीवाणु होते हैं और छूत फैलाते हैं। जिस पशुसे क्षयके जीवाणु बाहर निकलते हों या जो रोगग्रस्त हो चुका है वह बराबर छूत फैलाता

रहता है। ट्यूबरक्युलिन परीक्षामें जिन पशुओं पर प्रतिक्रिया होती है उन्हें स्पष्ट रोगियोंकी श्रेणीमें नहीं रखना चाहिये। जिनमें इस परीक्षाकी प्रतिक्रिया होती है वह बुरी तरह छुतहे नहीं भी हो सकते हैं। यदि इनमें रोग-लक्षण नहीं हों, इनके मलमूत्र और स्रावोंमें जीवाणु नहीं पाये जायँ तो केवल प्रतिक्रियाके कारण पशुको केवल सदिग्ध ही मानना चाहिये। ग्रेट ब्रिटेनमें केवल उन्हीं पशुओंको कानूनके द्वारा वध कर दिया जाता है जो स्तनके क्षयसे ग्रसित हों या जिनके दूधमें क्षयका असर हो या जिनमें जीर्ण खांसीके साथ क्षयके स्पष्ट लक्षण मिलते हों।

अर्बुद या क्षत : ढोरमें क्षयके अर्बुद प्राय उर और फेफड़ोंमें होते हैं। उनकी पार्श्ववर्ती ग्रन्थियाँ विशेषकर आक्रान्त हो जाती हैं। क्षयके अर्बुद फेफड़ोंके ततुमें भी पाये जा सकते हैं। वहाँ उनका रूप भूरे पनीरके अर्बुद या अर्बुदसमूहसा होता है। श्लोमशाखामें भी इसका असर हो जाता है। महाश्रोतस् या अन्नवहा नाली, यकृत, उरस्या, आँतोंकी लसीका-ग्रन्थियाँ, प्लीहा, वृक्क, नासाखात, कठ, थनमें भी रोगका असर हो सकता है।

लक्षण : सहज छूतमें प्रच्छन्नकाल दीर्घ होता है। देरसे लक्षण प्रकट होते हैं। कई महीनों या वर्षोंपर रोगके लक्षण प्रकट हो सकते हैं।

फेफड़ेका क्षयही जादा होता है। प्रारंभिक अवस्थामें हल्की, सूखी और कष्टकारी खाँसी होती है। ठंढी या धूलभरी हवासे या दौड़ने और मेहनतके कारण रक्तसचार की अधिकतासे अथवा ठढा पानी पीनेसे साँसकी नलीकी श्लैष्मिक कलाकी उत्तेजना इसका कारण होती है। मेहनतसे थकावट बहुत होती है।

आगे चलकर जैसे जैसे रोग बढ़ता है फेफड़ेके लक्षण अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। खाँसी प्रायः होने लगती है और कष्टदायक भी होती है। कभी यह सूखी होती है। कभी मुँहमें पीवमिश्रित कफ भर आता है और कभी यह नाककी राह बाहर निकल आता है। पर अधिकतर यह कन्ठके नीचे उतर जाता है। खाँसीके बाद मुँह खोलने पर कोमल तालुके आगे जीभ और पिछले चर्वणक दाँतोंके बीच थूक पाया जा सकता है। सूक्ष्मदर्शकमें परीक्षा करनेसे इसमें पीव, फेफड़ेके वायुकोषकी झिल्लियाँ, ततु और कभी कभी क्षय-जीवाणु मिलते हैं। रोग जैसे जैसे बढ़ता है साँस लेनेकी तकलीफ वैसे वैसे बढ़ती है।

श्रवण-परीक्षामें सांसका स्वर कभी जोरका, कभी मन्द सुनाई पड़ता है और कहीं सुनाई भी नहीं पड़ता। थोड़े बढ़े रोगमे घरघराहट या पानीदार पटपट आवाज भी सुनाई पड़ सकती है। जब फेफड़ेका क्षत सतहकी ओर जादे बढ़ने लगता है तब ताड़नस्वर मन्द या अस्पष्ट होता है। जब बड़े बड़े छेद बन जाते हैं तब दुन्दुभी-स्वर या घनघनाहट सुनाई पड़ती है। लसीका-ग्रन्थियोंमें परिवर्तन और प्रदाह होने लगता है।

कहा जा चुका है कि, क्षय केवल फेफड़ेमें ही नहीं होता। यह किसी अवयव, अस्थि या सन्धिमें भी हो सकता है। जिस अग या अस्थिविशेषमें इसका आक्रमण होता है उसके अनुसार इसके लक्षण भी विभिन्न होते हैं।

खूनकी कमी होती है और देह दुबलाने लगती है। इससे पुराने क्षय रोगीका विशिष्ट रूप या बाहरी लक्षण मालूम होता है।

यदि पाचन-प्रणाली पर आक्रमण हुआ तो मुँहके भीतर घाव और फुड़ियां निकल सकती हैं। आँतोंके क्षयमें पाचनकी गड़बड़ी होती है और समय समय पर शूलसा दर्द होता है। दस्त थोड़ा या जादे पतला होता है जिसमें पीब, रक्त और आंव भी हो सकती हैं।

यदि जीवाणु थनमे घर कर लेते हैं तो वह कड़ा हो जाता है। कभी कभी ग्रन्थि-तन्तुओंमे कड़े और पीड़ाहीन अर्बुद हो जाते हैं। चूचियां टेढी मेढी हो जाती हैं और कभी कभी सूख जाती हैं। थनके क्षयमें प्रारम्भिक अवस्थामें दूध साधारण रहता है पर पीछे दूषित हो जाता है और उसके रंग ढंग बदल जाते हैं। वह पतला हो जाता है और उसमें बारीक छिलके के टुकड़े दिखाई पड़ते हैं। और आगे चलकर वह पिलौंहा (पीताभ) और पानीकी तरह पतला हो जाता है, जिसमें छिलकेसे टुकड़े बहुत जादे दिखाई पड़ते हैं। ये टुकड़े थिराने पर तलमें बैठ जाते हैं।

अस्थियोंके क्षयमें साधारण तौरपर किसी एक पसली पर इसका आक्रमण होता है जिससे वहां पर सूजन हो जाती है। सन्धियोंमें साधारणतः घुटना पहले ग्रसित होता है। पीडा सहित सूजन होती है और ग्रसित सन्धि अपना काम नहीं कर सकती। पार्श्ववर्ती कडरायें भी ग्रसित हो जाती हैं। वह कड़ी और पीडायुक्त हो जाती है।

निदान: प्रारम्भिक अवस्थामें रोगलक्षणोंसे क्षयका निदान नहीं किया

जा सकता। साधारण स्वास्थ्यका क्रमशः ह्रास, तरुण पशुओंकी वृद्धिमें रुकावट, नियमित समयपर बुखार, फेफड़ेकी गड़बड़ी और लसीका-ग्रन्थियोंका बढ़ना ये क्षय-सूचक बड़े लक्षण हैं। यदि अन्य लक्षण न हों, केवल ग्रन्थियां ही बढ़ गयी हों तो यह सन्देह किया जाता है कि, वह ग्रन्थिवाला अवयव ग्रसित हुआ है। अवयवीय जीर्ण क्षयमें लसीका ग्रन्थि साधारणतः ग्रसित नहीं होती।

निदानका पक्का उपाय यह है कि, थूक, कफ या क्षय-खातोंके भीतरकी वस्तुओंकी अणुवीक्षण-परीक्षा करके उनमें क्षय-जीवाणुका होना देखा जाय। सिरम-परीक्षा भी महत्वकी है। इसमें रोगीकी अतिचेतना (allergy-एलर्जी) या सिरमकी प्रतिक्रिया से काम लिया जाता है।

कुछ रोगोंसे पीड़ित पशुओंमें उसी रोगके जीवाणुसे निर्मित प्रतिपिंडक (एन्टीजेन)के संचार से अतिचेतना (एलर्जी) हो जाती है। यह अति ग्राहकताके (anaphylaxis) बहुत कुछ समान है। पर इसमें एक महत्वका भेद है। अतिचेतनामें सूई लगानेकी जगह पर गहरी प्रतिक्रिया होती है। और कुछ घंटोंके लिये तापमान भी बढ़ सकता है। इसके सिवा कोई दूसरी साधारण प्रतिक्रिया या आघात नहीं होता। अतिग्राहकता (एनेफाइलेक्सिस)में स्थानीय प्रतिक्रिया कुछ भी नहीं होती और साधारण तौर पर आघातके साथ तापमान घट जाता है।

क्षय और पाराट्यूबरक्युलोसिस (क्षयका भेद) के निदानके लिये परीक्षणीय पशुके शरीरमें अतिचेतनाकी प्रतिक्रिया की जाती है। इसके लिये क्षय-जीवाणुकी कृष्टिसे तैयार प्रतिपिंडक की सूई दी जाती है। क्षयके निदानके लिये जो प्रतिपिंडक काममें लाया जाता है उसे ट्यूबरक्युलिन और पाराट्यूबरक्युलोसिसवालेको पाराट्यूबरक्युलिन कहते हैं। एक विशेष प्रक्रियासे निर्मित पाराट्यूबरक्युलिनको "जोनिन—Johnin" कहते हैं।

क्षय-जीवाणुकी कृष्टिको छानकर ट्यूबरक्युलिन बनाई जाती है। छाना हुआ रस जीवाणु रहित होता है। पर सूई लगनेसे तन्तुओं पर जिनकी प्रतिक्रिया हो ऐसे पिंड उसमें रहते हैं। इसके निर्माणमें कई विधियां काममें लायी जाती हैं। कोई कृष्टिको गरमाकर शुद्ध कर लेते हैं और दूसरे लोग छनेहुए (परिस्रुत) रसको ०·५ सैकड़ा फौर्मेलीनसे शुद्ध (जीवाणुरहित) करते हैं। फिर अमोनियम सल्फेट और ग्लिसरीनके घोलके साथ उसे मिलाने पर जो तलछट (precipitate) होता है

उससे ट्यूबरक्युलिनका काम लिया जाता है। मुक्तेश्वरमें भी ट्यूबरक्युलिन बनता है जो भारतमें कामके लिये मिल सकता है।

ट्यूबरक्युलिन परीक्षाकी कई विधियाँ हैं। विभिन्न विधियोंके विभिन्न लाभ बताये जाते हैं।

अन्तस्त्वक्-ट्यूबरक्युलिन परीक्षाके लिये ट्यूबरक्युलिनकी सुई त्वचामें (sub-cutaneous) लगाई जाती है। प्रतिक्रियावाले पशुका तापमान ८ से १६ घंटेमें बढ़ता और उतने ही समयमें घटता है। जिन पशुओंमें तापमानका यह चढाव उतार होता है उसे प्रतिक्रियाधारी (reactors) माना जाता है।

दूसरी चाक्षुषी ट्यूबरक्युलिन परीक्षा है। इसमें ट्यूबरक्युलिनकी कुछ बूँदें आंखोंमें डाली जाती है। ग्रसित पशुमें प्रदाहयुक्त प्रतिक्रिया होती है। गोक्षयके घने ट्यूबरक्युलिनका उपयोग निदानके लिये बहुत उपयोगी पाया गया।

पलक-परीक्षा : पलकमें ट्यूबरक्युलिनकी सूई देना भी एक विधि है। इसमें प्रतिक्रियाधारीकी पलकमें सूजन होती है, साथ साथ आंखोंसे बहुत पानी गिरता है। तापमान नहीं बढता।

त्वक्परीक्षामें चमड़ेकी मोटाईमें सूई लगायी जाती है जिससे ग्रसित पशुको सूजन हो जाती है। ग्रेटब्रिटेनके कृषि-विभागने दोहरी अन्तस्त्वक् (double intradermal) परीक्षा चलायी है। क्योंकि परीक्षाकी सभी विधियोंमें यह भरोसे की मानी गयी है। इस विधिमें पहले त्वचामें ट्यूबरक्युलिनकी कुछ बूँदोंकी सूई लगाई जाती है। अप्रतिक्रियाधारीमें जरासी सूजन होती है। पर प्रतिक्रियाधारीमें कहीं ज्यादे सूजन होती है। ४८ घंटेके बाद उसी जगह दूसरी लगाई जाती है। दूसरी सूईके २४ घंटेके बाद, और फिर ४८ घंटेके बाद नाप ली जाती है। मुक्तेश्वरकी रिसर्च इंस्टिट्यूटने नीचे लिखे तरीके की सिफारिश की है :—

मुक्तेश्वर इंस्टिट्यूटमें बना सघन ट्यूबरक्युलिन प्रति सूई (इन्जेक्सन) $\frac{1}{50}$ सी० सी० काममें लाया जाता है। यदि अप्रतिक्रियाधारियोंमें ज्यादे सूजन हो तो ट्यूबरक्युलिनको पानीमें घोलकर उसकी शक्ति आधी या चौथाई अथवा $\frac{1}{8}$ कर दी जाय। इस पतले या हल्के ट्यूबरक्यूलिनका $\frac{1}{50}$ सी० सी० काममें लाया जाय।

१. गरदनपर एक वगल वीचमें वाल मूँड़कर जगह साफ करो।

२. मूँड़े चमड़ेको वाँयें हाथकी चुटकीसे जोरसे पकड़ो।

३. चुटकीसे पकड़े भागमें सूई तिरछी घुसेड़ो। छोटी और मोटी सूई काममें लाओ। ध्यान रहे कि सूई वहिस्त्वक् छेदकर अतस्त्वक्में घुस जाय। जितनी मात्रा देनी है दे दो। सूईकी जगह पर चकत्ता या गाँठ उभड़ आवेगी।

४. ठीक पहली सूईकी जगह पर ४८ घंटेके वाद दूसरी सूई लगाओ। इस वार मात्रा ठीक उतनी ही होनी चाहिये जितनी पहले थी।

अप्रतिक्रियाधारी पशुओंमें भी कुछ सूजन हो जाती है पर क्षयग्रस्तकी सूजन कहीं जादे होती है।

५. परीक्षाके आरम्भमें कैलीपर (कालापास, कर्कटी) की सहायतासे मुटाईकी नाप ले लो।

६ पहली जाँचके २४ घंटे वाद और ४८ घंटेके वाद यानी दूसरी जाँचके प्रारम्भमें नापो। दूसरी जाँचके २४ घंटे और ४८ घंटेके वाद फिर नापो। प्रतिक्रियाधारियोंमें काफी सूजन होगी। यह सूजन काफी गरम और नरम तथा कुछ फैली रहती है। वहाँ पर छूनेसे खास तरहकी स्पर्शानुभूति होती है। वढे नापसे जादे यही लक्षण-सूचक होती है। भैंस गायसे जादे प्रतिक्रिया करती है।

जाँचका महत्व : जाँचसे शरीरमें क्षयाणुके होनेका ठीक पता चलता है। यह आक्रमणकी गभीरताके वारेमें कुछ नहीं वताती। वहुतसे प्रतिक्रियाधारियोंमें रोगके लक्षण विलकुल प्रगट नहीं होते, सुस्थ पशु जैसे वे मर जाते हैं। जाँच केवल यही वताती है कि, इस पशुमें क्षयाणु हैं। कहा जाता है कि, शहरवाले मनुष्योंमें ९० सैकड़ाकी देहोंमें क्षयाणु किसी न किसी अवस्थामें होते हैं। ये या तो प्रसुप्ति-अवस्थामें रहते हैं या फेफड़े पर असफल आक्रमण करते पाये जाते हैं। कहा जाता है कि, ग्रेट व्रिटेनमें ८० सैकडासे ऊपर गायोंमें क्षयाणु किसी न किसी अवस्थामें होते हैं और सभी तरहके ढोरोंको मिलाकर ४० सैकड़ेमें। जहाँ छूत इतनी फैली हुई है वहाँ इससे सावधान रहनेके लिये ट्यूवरक्युलिन जाँच एक नियमित आवश्यकता वन गयी है।

विभिन्न देशोंमें व्याधिकी भयंकरता और आशंकाके अनुसार इससे निवटनेके लिये विविध उपाय है। हम देख चुके हैं कि, ग्रेट व्रिटेनमें इस रोगको निर्मूल करनेके लिये ग्रसित पशुको मार डालते हैं। दूसरी विधि यह है कि, गव्य व्यवसाइयोंको

इनाम देकर गव्यशालाओंको इस रोगसे पाकसाफ रखनेके लिये प्रोत्साहित किया जाता है। ग्रेट ब्रिटेनमें क्षयाणु-रहित दूध लाइसेंस लेकर, एक विशेष नामसे, वेचा जाता है। ठट्टकी ट्यूवरक्युलिन जाँच हर ६ महीने पर होती है। सन् १९३४ के रेगुलेशनके अनुसार पूरी तरह क्षयाणु-रहित ठट्टके मालिकोंको केवल प्रमाणपत्रही नहीं, उत्पन्न दूध पर पुरस्कार भी दिया जाता है। ऐसी हालतमें सभी ढोरोंकी जांच की जाती है, केवल दुधारकी ही नहीं।

क्षमताकरण : अनेक उपाय अजमाये गये हैं पर अवतक कोई बहुत संतोषदायक सिद्ध नहीं हुआ है। जो सबसे जादे सफल माना जाता है वह बी॰ सी॰ जी॰ (B C G) भैक्सीन कहा जाता है। बी॰ सी॰ जी॰ का अर्थ है वैसीलस कैलमेट और गुएरिन कैलमेट। गुएरिन तथा कैलमेट और दूसरोंने पाया कि, आलू पर लगातार बहुत दिन कृष्टि-विकाश करनेसे गोक्षयकी तीव्रता इतनी मन्द हो जाती है कि, वह ढोरमें क्षय पैदा नहीं कर सकती पर कुछ दिनोंके लिये उसे क्षमताशील बना देती है। फल सही सिद्ध हुआ। पर प्रायः ६ महीनेके बाद क्षमता शीघ्रतासे घटने लगती है और सालभरके बाद प्रायः कुछ भी नहीं रहती। प्रतिवर्ष टीकेसे सभी पशुओंका क्षमताकरण होता नहीं मालूम पड़ता। पहले या दूसरे वर्षके बाद उनमेंसे अधिकांशको क्षमता नहीं रहती। यद्यपि इनको २ से ५ टीका समय समय पर लग चुका रहता है।

बी॰ सी॰ जी॰ क्षमताकरणमें दूसरी कठिनाई यह है कि, पशु पर ट्यूवरक्युलिन जाँचकी प्रतिक्रिया हमेशा होती है। इसलिये प्रदर्शन या पुरस्कारवाले पशुपर इसका प्रयोग नहीं हो सकता।

इस देशमें इस रोगका फैलना रोकनेके लिये ठट्टकी दुहरी अन्तस्त्वक् ट्यूवरक्युलिन जांच करनी होगी और प्रगट रोगियोंकी अणुवीक्षण परीक्षा। ठट्टको ३ भागमें बाँटना होगा। खाँसी, दुवलेपन या प्रगट क्षयपरीक्षामें जो स्पष्ट ग्रसित पाये जायँ और जो देखनेमें भी ग्रसित हों उन्हें अलग रखना चाहिये। यह क वर्ग हुआ।

जिनमें ट्यूवरक्युलिन जांचके स्पष्ट लक्षण मिलें पर प्रगट व्याधिलक्षण दिखाई न दें उन्हें भी निरीक्षणके लिये अलग रखना चाहिये। यह ख वर्ग हुआ।

तीसरा वर्ग ट्यूवरक्युलिन जाँचमें अप्रतिक्रियाधारी पशुओंका होगा। यह ग वर्ग हुआ।

चिकित्सा : क वर्गके पशुका प्राकृतिक उपचार करना चाहिये। उन्हें पोषक आहार, विश्राम और धूप मिलनी चाहिये। और यदि उनके लिये अलग चराई का प्रबध हो सके तो वह भी करना चाहिये। ख वर्ग पर दृष्टि रखनी चाहिये। यदि किसी पशुमें क्षयके चिह्न प्रगट हों तो उसे क वर्गमें भेज देना चाहिये। इस वर्गकी ट्यूबरक्युलिन जांच हर ६ महीने या वर्षपर करके देखना चाहिये कि इसमें से कुछमें सुधार हुआ है या नहीं।

इडियन काउन्सिल ऑफ एग्रिकलचरल रिसर्चने हालमें मदरास और मैसूरमें जांच कराई थी। इससे पता चला कि, पशुओंमें क्षय नहींके बराबर है किन्तु मदरासकी कूड़ागाड़ीके बैलोंमें यह रोग कई वर्षोंसे है। और जगह की तुलनामें वहाँ रोगका कम होना क्षयके भारतीय जीवाणुओंकी कम तीव्रता और भारतोय ढोर की बढ़ी प्रतिरोधी शक्तिके कारण माना जाता है। काउन्सिल इस मामलेमें गहरा अध्ययन कर ऊपरके मतको सचाईकी जांच करना चाहती है। सन् १९४१-४२ की काउन्सिलकी रिपोर्टमें कहा गया है कि, भारतमें क्षयकी तुलनात्मक अभावका चाहे जो कारण हो पर जैसा कि, हिसारके सरकारी पशुक्षेत्रमें पाया गया, अनुकूल अवस्था मिलते ही रोग भीषणरूपसे फैल सकता है।

१३६३. John's Disease : वाह (जोन्स डिजीज)।

पर्याय :— पाराट्यूबरक्युलोसिस, पाराट्यूबरक्युलस एन्टराइटिस आफ कैटल, क्रोनिक बैक्टीरियल एन्टराइटिस आफ कैटल। हिन्दी— वाह, दस्त।

यह ढोरका जीर्ण, छुतहा रोग है। इसमें पहले क्षुद्र आंतमें प्रदाह होता है जिसके कारण पतले दस्त होते हैं। दुबलापन इसका लक्षण है। यह एसिड अलकोहल-फास्ट जीवाणुके कारण होता है जो क्षयाणुकी सूरतसा होता है।

स्थान : व्यापकता : यह रोग दुनियां भरमें होता है। पहले भारतमे लोगोंका ध्यान इसको ओर अधिक नहीं गया। ग्रेट ब्रिटेनमें क्षयके बाद ही इसका महत्व है। पर भारतमें इसका महत्व क्षयसे कहीं जाढे है। इसकी छूत मनुष्यको नहीं लगती।

जीवाणुशास्त्र : सन् १८९५ में जोन और फरदिघमने देखा कि, इस अतिसारका कारण एक जीवाणु है जो क्षयाणुकी तरह शलाकाकार तो है पर छोटा और कुछ वक्र। जोनके नाम पर इसका नाम जोनका रोग या पारा ट्यूबरक्युलोसिस पड़ा। क्षयसे इसकी समानता केवल आकृतिहीमें नहीं अनेक बातोंमें है।

इसके जीवाणुकी कृष्टि विकसित करना पशुशरीरके बाहर कठिन कार्य था। पर अव एक उपाय निकल आया है। यह जीवाणु (माइकोबैक्टीरियम पाराट्यूवरक्युलोसिस) नरक्षयके मृत जीवाणु या अन्य मृत एसिड-फास्ट जीवाणु जिस कृष्टिमें हों उसमे वढ सकते हैं। अव यह देखा गया है कि, एसिड-फास्ट जीवाणुकी कई वार की हुई कृष्टिमें एसिड-फास्ट मृत जीवाणु मिलाये विना भी ये वढ सकते हैं। अव संश्लिष्ट माध्यम काममें लाये जा रहे हैं।

छूत : छूत मुँहके रास्ते खायी चीजोंके साथ पेटमें पहुँचती है। छूतलगे पशुके मलसे निकले जीवाणु खानेके सामानमें मिल जाते हैं। छूत लगने पर रोग मन्दगतिमे वढता है। दो वर्ष तक रोगके कोई लक्षण प्रगट नहीं भी हो सकते हैं। यह माना जाता है कि सभी ग्रसित पशुओंमे स्पष्ट लक्षणोंका विकाश नहीं होता। ग्रसित पशुओंके मलसे दूषित गोचर, जलस्रोत और गंदे नाले छूत फैलाते हैं। जीवाणु खुलेमें स्वाभाविक अवस्थामें वढते रह सकते हैं। बाहरी प्रभावोंसे सरलतासे नष्ट नहीं होते। एकवार ग्रस्त हुआ गोचर हफ्तों या महीनों तक भयावह वना रह सकता है।

ग्रहणशीलता : तरुण पशु विशेषकर ग्रहणशील हैं। परन्तु रोगके विकार गायोंमें ३ से ६ वर्षकी उमरमें देखे जाते हैं। रोग वर्षोंतक सुप्त रह सकता है और जव पशुकी शक्ति क्षीण होती है या उसकी प्रतिरोध-शक्ति घट जाती है तव वह प्रकट होता है। इस कारणसे व्यानेके कुछ सप्ताह वाद गायमें रोगके लक्षण देखे गये हैं। सांढ या वैलोंको यह कदाचित् होता है। उनमें भी शिथिलता और थकावटके कारण इस रोगका होना हो सकता है। खनिजोंकी कमी इस रोगके भीतरी कारणोंमें एक माना गया है।

महास्रोतमें पहुँच कर जीवाणु श्लैष्मिक कलामें प्रविष्ट हो जाते हैं और अन्नप्रदाह पैदा करते हैं। इसका एक विशेष लक्षण श्लैष्मिक कलाका मोटा होना है। कभी कभी उनके दवावसे आँतोंकी ग्रन्थियाँ क्षीण हो जाती हैं।

लक्षण : कहा जा चुका है कि, यह रोग गुप्त या अलक्षित रूपसे वढता है। मन्दाग्नि, दूध घटना और क्रमिक दुवलापन इसके आरम्भिक लक्षण हैं। कुछ सप्ताह या महीनोंके वाद विशेष लक्षण प्रगट होते हैं। इसमें समय समय पर पतला और पनीला आँवयुक्त दस्त होता है जिसमें वहुत दुर्गन्ध रहती है। इसमें प्रायः हवाके वुलवुले रहते हैं। दस्तसे पशुकी जांघ, गोशालाकी जमीन और दीवार

गन्दी हो जाती हैं। आगे चलकर दस्त और जल्दी जल्दी आने लगते हैं। श्लैष्मिक कलामें पीलापन आ जाता है। साधारण अवस्था कुछ दिनों तक सह लेने लायक रहती है पर भूख घटती जाती है।

जब अतिसार बहुत जल्दी जल्दी होने लगता है और अधिक समय तक बना रहता है तब दुबलापन बहुत तेजीसे बढता है, रक्ताल्पता बहुत ज्यादे हो जाती है. चमडा रुखडा हो जाता है और अंतमें मौत हो जाती है। गुदाकी परीक्षासे आँतका ग्रसित अंग मोटी नलीसा मालूम हो सकता है।

इस रोगकी विभिन्न गति है। कभी कुछ सुधार मालूम होता है और पुनराक्रमण हो जाता है। साधारण तौर पर इसकी अवधि कई महीनोंकी होती है और १ या २ वर्ष लम्बी भी हो सकती है। ४ सप्ताहमें ही रोग तेजीसे बढ कर मृत्यु होनेकी भी खबर है।

निदान : यदि विशेष प्रकारके अतिसारसे संदेह पैदा हो तो रोगके बारेमें मलकी अणुवीक्षण परीक्षासे निश्चय कर लेना चाहिये। इसमें पाराट्यूबरक्युलोसिसके एसिड-फास्ट जीवाणु मिल सकते हैं। मलकी परीक्षाके लिये आँवके लच्छे चुन लेना चाहिये। पेटकी धोअनसे मल ज्यादे अच्छा मिल सकता है। पेट धोनेकी विधि श्री कूपर और श्री श्रीनिवासनके लेखमें है। (इंडियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बैन्डरी, १९३१, पृ० २१५) हाथको जीवाणुरहित करके गुदामें जहाँ तक वह घुस सके घुसाना होता है। इसके बाद सारा मल बाहर निकालकर रबरकी एक नली कुछ आगे तक घुसेडी जाती है। इसके बाहरी छोर पर लगे हुए जलपात्र (डूश-केन) से पानी चढाते हैं। धोअनका पानी एक नांदमें जमा करना होता है। इसे निथारकर बीस मिनट तक चाक (सेन्ट्रीफ्यूज) पर घुमाना होता है। चाक पर घुमायी काँचकी नलीके ऊपरी सतह पर जमी जो निथार आ जाती है उसमें श्लैष्मिककलाका अंश होता है। इसे अणुवीक्षण परीक्षाके लिये लेते हैं। धोते समय गुदाके भीतरी छोर पर लगी आँवको उंगलियोंसे पोंछ लेना चाहिये। यह धोअनके साथ निकल आती है।

संदेहकी हालतमें अतिचेतना की प्रतिक्रियाका सहारा लिया जाता है। यह पाराट्यूबरक्युलिनकी सूई अथवा उसी तरहके पदार्थ जिसे 'जोनिन' कहते हैं, उससे पैदा करते हैं। जोनिनसे क्षयकी तरह दुहरी अतस्त्वक् सूई लगानेसे संतोषप्रद फल मिलनेकी प्रसिद्धि है। ट्यूबरक्युलिनसे क्षय में जैसा निश्चय हो जाता है वैसा

पारा-ट्यूबरक्युलोसिसमें अतिचेतना-जांचसे नहीं होता। इस रोगमें यदि सही प्रतिक्रिया हुई तो वह निदानकारी होती है। पर उल्टी प्रतिक्रिया होने से यह नहीं कहा जा सकता कि, छूतका असर नहीं है। श्री मिनेटने जोनिनकी दुहरी अनस्त्वक् परीक्षामें पाया कि, इस रोग के ५९ रोगी पशुओंमें केवल ६ में प्रतिक्रिया नहीं हुई। इनमेंसे ४ का रोग कड़ा था और ३ की जांच केवल एक वार हुई थी।—(इंडियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बैन्डरी, १९३५, पृ० ३८९)

चिकित्सा : पूरी तरह रोग दूर करनेका कोई उपाय ज्ञात नहीं। आंतकी व्याधियाँ कोथघ्नों, रक्तस्रावरोधकों और पशुके साधारण स्वास्थ्यके सुधारसे दूर हो सकती हैं। यदि ठट्ठमें परोपजीवी व्याधियाँ हो तो पारा-ट्यूबरक्युलोसिस सरलतासे अपना शिकार खोज लेती है। आसाममें श्री पांडेने कई तरहकी जाँच की। उन्होंने पाया कि, परोपजीवी व्याधिग्रस्त पशुको परोपजीवियोंसे छुटकारा दिलाने और आहारमें खनिज मिलानेसे वाह (John's disease) की संख्या घट गयी। मुक्तेश्वरमें वाहवाला एक ठट्ठ १० वर्ष तक सुस्थ ढोरोंके साथ रखा गया। उनसे कोई स्पष्ट परिणाम नहीं मिलने पर उन्हें हटा दिया गया। श्री वेयर और श्री श्रीनिवासनने मुक्तेश्वरके प्रयोगके बारेमें एक लेख लिखा है। —(इंडियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड ऐनिमल हस्बैन्डरी, दिसम्बर, १९४१, पृ० २८९)।

लेखकोंका निष्कर्ष है कि, इस तरह उम्मीदके मुताबिक ठट्ठमें रोग नहीं फैलनेका कारण पशुओंके रहनेका सहज स्वास्थ्यपूर्ण ढंग है। उनका मत है कि, अच्छी अनुकूल अवस्थामें रोग आसानीसे फैलता है।

"(क) जब किसी सीमित स्थानमें छूतही चीजें बहुत हों,

(ख) जबकि पशुओंमें ग्रहणशीलता बहुत जादे हो जैसे कि, बहुत तरुण पशुओंकी संख्या अधिक हो।"

मुक्तेश्वरके ठट्ठके बारेमें भी उनका मत है कि, "छूत फैलनेका डर किसी समय जादे नहीं हो सका, उसका कारण संसर्गमें आनेवाले पशुओंकी अधिक उम्र और प्रगट रोगी पशुओंकी कम संख्या है। ऐसी हालतमें सबसे अधिक ग्रहणशील उम्रके लगभग ७५ सैकड़ा पशु छूत लगनेसे बच गये। मुक्तेश्वरके प्रयोगका फल श्री हेगन और श्री जीसिंग के प्रयोगके (१९३३) अनुसार साधारण

तौरपर है। इन लोगोंने प्रयोगके लिये छूत लगाये पशुओंके ६ वर्षके अनुभवसे पाया कि, बुरी तरह छुट्टा रहने पर भी काफी पशुओंको सहज रीतिसे छूत नहीं लग सकी।"

उनका निष्कर्ष है कि: ... "यद्यपि सहज छूतसे कुछ सयाने पशु मर गये और ठट्ठमें उत्पन्न लगभग २५ सैकड़ा बछड़ओंको छूत लगी और वह मर भी गये फिर भी वहां जैसी अवस्था थी उसमें साधारण तौर पर छूत फैली हुई नहीं थी। प्रयोगकी समाप्ति पर पूरे ठट्ठकी जोनिन परीक्षा और सोचे समझे विना चुने गये ६ पशुओंकी शवपरीक्षासे मालूम हुआ कि रोग गायव हो चुका है।

"इसलिये मालूम होता है कि, जबतक सीमित स्थानमें छूत वहुत जादे न हो और अत्यधिक ग्रहणशील अर्थात् वहुत छोटे पशुओंका तुलनात्मक प्रतिशत अधिक न हो तो सुव्यवस्थित ठट्ठमें वादके रोगके जड़ पकड़नेकी आशका अधिक नहीं है।"

छूतग्रस्त पशुओंके साधारण स्वास्थ्यका सुधार करना चाहिये। साथ ही उन्हें अतिरिक्त खनिज आहार देना चाहिये। आँतोंके परोपजीवियोंका उपद्रव हो तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। इसमें तूतिया और कमला या कबीला देना चाहिये। ये सुन्दर कृमिघ्न हैं।

क्षमताकरण : वाहकी क्षमताके लिये कोई विशेप साधक नहीं है। रोगका प्रसार रोकनेके लिये ठट्ठकी परीक्षा क्षयकी तरह जोनिनसे करनी चाहिये। सही प्रतिक्रियाधारियोंको पृथक् करना और उनकी चिकित्सा करनी चाहिये।

कष्टनिवारणके लिये तात्कालिक उपायकी तरह भी अतिसारकी चिकित्सा होनी चाहिये।

एम'फैडियनने (M'Fadyan) हल्के गन्धकाम्लके साथ फेरस सल्फेट या हीराकससे अनिसार मिटाकर साधारण अवस्था सुधरते पाया है। १ रत्तल पानीमें ३० ग्रेन मेथिलीन ब्लू घोल कर लगातार पाँच दिनों तक प्रति दिन पाँच मात्रा और ८ दिनके वाद इसेही फिर दुहराना यह दूसरोंने अजमाया है। कोढ़ एक एसिड-फास्ट जीवाणुके कारण होता है। चालमूगरा इसकी खास दवा है। इसी आधारपर वाहमें चालमूगरेका उपयोग हुआ पर कोई फल नहीं मिला। श्री अचारने (मैसूर सिरम इंस्टिट्यूट) वाह पर एक लेख लिखा है। इसमें लिखा है कि, श्री डाउनहमने (सन् १९२८ में) ६ रोगियों पर चालमूगरा अजमाया जिसमें ५० सैकड़ा फल मिला और मैसूरमें चालमूगरेका रोगनिवारण-गुण खोजा जा रहा है (सन् १९३९)।

इंडियन काउन्सिल ऑफ एग्रिकलचरल रिसर्चने क्षय और वाहकी खोजके लिये खास अफसर नियुक्त किया है ।

१३६४. Actinomycosis : कठजिभिया ।

पर्याय :— रे फगस डिजीज, एक्टिनोमाइकोसिस, एक्टिनोव्हैसीलोसिस, ऊडन टग (Wooden tongue), लंपी जॉ (Lumpy Jaw)।

यह रोग छुतहा और जीर्ण है । इसमें अर्बुद उभड़ते हैं जिससे विशेप प्रकारके दाने होते हैं, जिनमें पीव भरी रहती है । यह साधारण तौर पर जीभ, मुँह, जबड़ा, त्वचा और मुँह तथा गरदनकी त्वचाके भीतरी ततुओं पर निकलते हैं ।

कभी कभी इनका ढग महा मारीकी तरह होता है । भारतमें कुछ घटनाओंके मिलनेकी रिपोर्ट हैं । श्री मगहलकरने भिन्न समय पर १० रोगियोंकी मुक्तेश्वरमें हुई निदान-शास्त्रीय (पैथोलोजी) परीक्षाका वर्णन और चित्र छापा है । —(इडियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बैन्डरी, दिसम्बर १९३८, पृ० २७१)

छूत : इस रोगसे सबंधित जीवाणु स्ट्रेप्टोथ्रिक्स बोभिस या एक्टिनोमाइसेस बोभिस (Streptothrix bovis or Actinomyces bovis) है । यह जीवाणु अपने वृद्धिकालमें शाखा फैला सकता है । यह तीन रूपोंसे बढ़ता है— फिलामेन्ट, क्लब और कोक्सी (filaments, clubs and cocci) । यदि किसी क्षतकी पीव कॉचकी पट्टी (स्लाइड) पर फैलाकर खाली आँख देखी जाय तो दाने दिखायी पड़ेंगे । यदि इन दानोंको फोडकर कम शक्तिवाले अणुवीक्षण यन्त्रसे देखा जाय तो वह सौत्रिकपिंड (filamented bodies) दिखायी पड़ेंगे अथवा मूसलाकृति, जो एक केन्द्रके चारों तरफ किरणकी तरह सजे हैं । मूसलाकृति, सौत्रिकोंका एक रूप है जो प्रारभिक अवस्थामें देखा जाता है । अलबुमिनयुक्त माध्यममें शरीरतापमें कृषि तैयार हो सकती है ।

यह कहा जाता है कि, यह जीवाणु मनुष्य और पशुशरीर पर अवलम्बित परोपजीवी हैं और पाचन-प्रणाली तथा सभवतः श्वासप्रणालीके ऊपरी भागमें रहते हैं । किसी भाग की कलाके क्षत द्वारा यह रोग देहमें अपने आप घुस सकता है । दाँत टूटनेमें, खुरपका या छूतके अन्य रोग, जिनसे श्लैष्मिक कला त्रसित होती है। होनेसे रोगको मौका मिलता है ।

अनाजके नुकीले कण का भी महत्व है। नुकीले अनाज जीभ जैसे कोमल भागमें लगकर उसीमें टूट जाते हैं और पेशियोंके सकोचसे भीतर धँसते जाते हैं। इससे बने छेदकी राह इस रोगके जीवाणु तंतुओंमें घुस जाते हैं। इसी तरह मसूढ़ेमें घुसकर ये जीवाणु जबड़ेकी बीमारी पैदा कर सकते हैं। इसी तरह बछड़के दूध पीनेसे हुए क्षतके कारण थनमें रोग हो सकता है।

लक्षण : ढोर की जीभ सबसे जादे ग्रसित होती है। इसके बाद जबड़ेकी अस्थिका नम्बर है। जीभके ग्रसित होने पर पहले कड़े और दृढ़ अर्बुद उभड़ते हैं। यह भीतरकी ओर बढ़ते हैं। सौत्रिक ततु पैदा होकर जीभको लकड़ीकी तरह कड़ी कर देते हैं। इसलिये इस रोगका नाम "काष्ठ-जिह्वा" पड़ गया है। खानेमें पशु जीभसे काम नहीं ले सकता और उसके भूखे मर जानेका भी डर रहता है। कभी कभी जबड़ा, खासकर निचला जबड़ा ग्रसित होता है। हड्डी स्पंजकी तरह हो जाती है और उसकी आकृति विकृत हो जाती है। वह भंगुर हो जाती है और उसमें जीवाणुके उत्पन्न विकार भर जाते हैं। गलपर भी आक्रमण हो सकता है और वहाँ अर्बुद निकल सकते हैं।

सिर और गर्दनकी त्वचा और अतस्त्वक्के तंतु ग्रसित हो सकते हैं और उनमें अर्बुद उभड सकते हैं।

रोगजीर्ण हो जाता है और महीनों या वर्षों तक लटपटा सकता है। यह अलक्षित रूपसे शुरू होता है, खासकर जब अस्थियोंपर आक्रमण करता है। जब बाहरी परिवर्तन होने लगे या पोषण अथवा श्वासकी गड़बड़ी होती है तब यह प्रगट मालूम होता है। जब तक रोग एक स्थान पर रहता है तापमान नहीं बढ़ता। जब पीब पैदा होने लगती और कोथ रक्त तक पहुँचता है तब ज्वर होता है।

चिकित्सा : जबतक अर्बुद बाहरी उभाड मात्र है और सरलतासे अलग किया जा सकता है उसे काटकर निकाल देना तुरत-फुरतका इलाज है। यदि रोग काटनेके सुबीते की जगह पर न हो तो उसे गहरा चीर देना चाहिये और दूषित पदार्थ पोंछकर साफ कर देना चाहिये और उसमें कोथघ्न, खासकर आयडिनकी पट्टी भर देनी चाहिये। मुँहके बाहर यदि अर्बुद हो तो उसमें छेद कर दबाकर पीब निकाल देनी चाहिये। फिर जिलेटिनकी बनी कैपस्यूलमें १५ से ३० ग्रेन संखिया भरकर उस छेदमें घुसेड़ देनी चाहिये। इससे अर्बुदपिंड सूख जाता है और गिर पड़ता है। इसके बाद क्षत भर जाता है। जीभके अर्बुदमें छेदनके बाद टिंक्चर

आयडिन लगानी चाहिये। जहाँ छेदन सम्भव न हो वहाँ आयडिनकी सूई लगाना उत्तम उपाय है।

५ सैकडा आयडिनके घोलकी २०० सी० सी० शिराकी सूई (सयानोंके लिये) बहुत उपयोगी होती है। यह जीभ, कंठ, त्वचा और अतस्त्वक् तन्तुओंके ग्रस्त होने पर विशेषकर लाभप्रद होती है। पर यदि अस्थियां बहुत जादे ग्रसित हो तो आयडिनका आभ्यन्तरिक उपयोग अधिक लाभका नहीं होता। ग्रेट ब्रिटेनमें शल्यचिकित्सा की जाय चाहे नहीं, आयडिन खिलानेकी प्रथा है।

पोटाशियम आयडाइड भी दिया जाता है। छोटे पशुओंके लिये ३० ग्रेन से १ ड्राम तक मात्रा है। सयाने पशुओंके लिये दूनी मात्रा है। दो से चार सप्ताह तक पानीके साथ एक मात्रा प्रतिदिन तब तक दी जाती है जब तक सभी अर्बुद खतम न हो जाँय। अधिक मात्रामें आयडाइड या आयडिन देनेसे आयडिनकी व्याधि (आयडिज्म—iodism) हो जाती है। नाक या गले की सर्दी, त्वचामें फुंसी निकलना, बाल झड़ना, दुबलापन इसका पता बताते हैं। ऐसी हालतमें कुछ दिनोंके लिये चिकित्सा बन्दकर फिर थोडी मात्रासे शुरू करनी चाहिये आयडिन खिलानेका असर अर्बुदों पर (खासकर जीभके) टिकचर आयडिन लगाने और आयडिन तथा पोटाश आयडाइडके घोलकी सूई लगानेसे और बढ़ जाता है।

१३६५ Bang's Disease छुतहा गर्भपात।

पर्याय :—बैंगस डिजीज, ब्रुसीलोसिस, कन्टेजियस एबोर्शन।

छुतहे गर्भपातमें एक के बाद दूसरे पशुका गर्भ गिर सकता है। इससे गायको कोई बाहरी क्षत नहीं होता। यह रोग ब्रुसेला नामक जीवाणुके (Brucella abortus) कारण होता है। यह जीवाणुयुक्त चारा खानेसे एकसे दूसरी गायको होता है।

एक तरहके ब्रुसेला जीवाणु मनुष्योंका माल्टाज्वर पैदा करते हैं। दूसरी तरहके गायका गर्भ गिराते हैं और तीसरी तरहके शूकरीका गर्भपात करते हैं। तीनोंके नाम क्रमसे ब्रुसेला मेलीटेनसिस, ब्रुसेला एबोर्टस और ब्रुसेला सुइस (Br. Melitensis, Br abortus and Br suis) हैं।

ब्रुसेला एबोर्टस अवायुजीवी है। प्रयोगशालाके कामके लिये यह कार्बन-डाइऑक्साइड की उपस्थितिमें शुद्ध कृष्टिमें वढ़ सकता है।

कृष्टिमें जीवाणु दो वर्षोंतक तीव्र रह सकता है। जरायुके भीतर और मरे भ्रूणमें यह महीनों तक दारुण रहता है। धूपसे यह तुरत मर जाता है। भ्रूणकी कला, छाया और शीतकालमें यह ४ महीने तक जीता है। ५० से ५५ डिग्री से० की सूखी हँवामें यह दो घटेमें मर जाता है। प्रचलित छूतनाशक इन्हें कुछ ही मिनटोंमें मार डालते हैं।

आहार या प्रजनन-इंद्रियोंके द्वारा देहमें जीवाणुके प्रवेश करनेसे तुरत ही गर्भपात नहीं होता। यह सच है कि अनेक गायोंका गर्भपात यह नहीं भी कर सके।

जहाँ खूब अधिक ढोर सम्वर्धन किया जाता है वहाँ यह रोग बहुत होता है। यह भारतमें होता है। पहले इस तरफ ध्यान नहीं दिया गया था तब यह रोग अव्यापक माना जाता था। अब इधर ध्यान देने पर पता चला है कि, अनेक ठह्र ग्रसित हैं और रोग बहुत व्यापक माना जाता है। किसी किसी देशमें ४० से ६० सैकडा पशु छूतग्रस्त हैं। उत्तरी और दक्षिणी अमेरिकामें यह जितना व्यापक है भारतमें भी उतना ही है। इससे गव्यक्षेत्रोंको आर्थिक हानि बहुत होती है। क्योंकि, एक बार गर्भ गिरनेसे गायें कठिनतासे गाभिन होती हैं और नहीं भी होती हैं। यदि कोई विशेष उपाय नहीं किया गया हो तो गर्भपातके बाद दो वर्ष तक गाय गरम नहीं होती।

प्रसवकाल या उसके बाद भी छूत प्रायः फैलती है। ऐसी हालतमें उनके गर्भोदक (लिकर एमनी) तथा अन्य कलामय स्रावोंके साथ यह जीवाणु भी बाहर निकलते हैं। यह होने पर आसपासका चारा, पानी सब दूषित हो जाते हैं। नर को भी छूत लग सकती है और वह समागमके समय छूत लगा सकता है। ऐसा समझा जाता है कि, यदि स्रावके ऊपर गाय लेटी हो तो चमड़ेके द्वारा भी छूत लग सकती है।

देहमें घुसनेके बाद जीवाणु लसीका-ग्रन्थियोंमें डेरा डालते हैं। भ्रूणके ततु और जननीके पुरैनकी ओर उनका विशेष आकर्षण है। गर्भिणी गायके देहमें जीवाणुके घुसनेसे इसीलिये गडबड़ी पैदा हो जाती है। उसके कारण गर्भपात, भ्रूणकी निर्बलता या समयसे पहले प्रसव हो जाता है।

जीवाणु थनके ततुओंमें भी डेरा डाल सकते हैं। इसलिये दूसरी बार गर्भधारण करने पर वह यहींसे भ्रूणको ग्रस सकते हैं और तब वाहरी छूत लगे विना भी गर्भ गिर सकता है।

गर्भपात होने पर प्रायः पुरैन नहीं गिरती। यदि वह भीतर रह जाती है तब सड़ाने और पीव पैदा करनेवाले जीवाणु एक दूसरी छूत पैदा करते हैं। इनके कारण जरायुमे प्रदाह होता है इससे कभी कभी रक्तविकार हो जाता है। यह कह देना अच्छा होगा कि, चाहे जिस कारण गर्भपात हुआ हो यदि पुरैन (जेर) न गिरे तो उसकी खोज खवर लेनी चाहिये। गाय प्राय पुरैन खा लेती है। हर हालतमें यही हुआ नहीं मानना चाहिये। आभ्यन्तरिक परीक्षा करनी ही चाहिये। सहज प्रसवके समय परिचारक वहाँ रहे और पुरैन निकलनेके वारेमे सावधान रहे। पर गर्भपात तो अचानक होता है। रातमें हुये गर्भपातका पता सवेरे चलता है। पुरैन न मिली तो यही मान लिया जाता है कि, गाय खा गयी। प्राय भीतरी जाँच नहीं की जाती। जिस गायको पुरैन नहीं गिरती वह दुवलाने लगती है, उसकी भूख मिट जाती हैं। जरायुमें वाहरी पदार्थ रहनेके कारण कई तरहके उपद्रव होते हैं। रक्त दूषित हो सकता है जिससे गाय मर सकती है। गर्भपात होने पर यदि पुरैन नहीं मिले तो ठहरना मूर्खता होगी। भीतरी जाँच करनी चाहिये और यदि वह भीतर हो तो उसे वाहर करनेका उपाय होना चाहिये।

लक्षण : गायमें इस रोगका सबसे वडा लक्षण गर्भपात है। गर्भपात चाहे जब हो सकता है पर प्रायः ६ ठे से ८ वें महीनेमें होता है। कभी यह देरसे होता है और कभी इतनी जल्दी कि, वाहर निकला भ्रूण दिखाता भी नहीं।

जब भ्रूणकला ग्रसित हो और तब भी वच्चा ठीक समय पर पैदा हो जाय तो रोग पुरैनमें हुए परिवर्तनोसे अथवा वाहर निकले पदार्थोंकी अणुवीक्षण-परीक्षासे पहचाना जाता है। ऐसी हालतमें पुरैन साधारणत॰ वाहर नहीं निकलती।

शुरु महीनोंके गर्भपातके वछरू मरे मिलते हैं। वादके गर्भपातमें वह जीते निकल सकते हैं। पर वह प्राय॰ दो तीन दिनमे नवजातके रक्तदोपसे मर जाते हैं। (१८०१)। ग्रसित गायके प्रसवका जीवित वच्चा कभी कभी जीता रह सकता है।

रोगका दौरा : यदि गर्भपात सकुशल हो जाय या परीक्षासे गायमें जीवाणु पाये जायँ फिर भी स्वाभाविक प्रसव हो तो गाय साधारण तौर पर चर्गी हो जाती है और फिर गाभिन होती है। दुवारा गाभिन होने पर उसे स्वाभाविक प्रसव या

गर्भपात हो सकता है। यह क्रम तीसरी या चौथी वारतक चल सकता है। पर वह ऐसे भी बच्चे पैदा कर सकती है जो जीते रहें।

यदि पुरैन रह जाय या तुरत और आसानीसे नहीं निकलती है तो भले ही वह ब्रुसेलोसिसके कारण न हो पर इससे पशु बाँझ हो जाता है। कभी कभी ऋतुकी गड़बड़ी हो जाती है।

जब किसी ठट्ठमे पहली बार छूत लगती है तब गर्भपात लम्बे अरसेके बाद होता है। इसके बाद जल्दी जल्दी होने लगता है। पहले कुछ ही पशु ग्रसित होते हैं और जब इनका गर्भपात होता है तब ठट्ठमें तेजीसे छूत फैलने लगती है।

जिस ठट्ठमे बाहरसे खरीद कर पशुओंको कमी पूरी नहीं की जाती यहरोग धीरे धीरे मिट जाता है। क्योंकि, एक या अनेक गर्भपातके बाद पशुओंको क्षमता हो जाती है। तब ये आगे होनेवाले आक्रमणोंका प्रतिरोध करते हैं। पर अनियंत्रित ठट्ठमें नयी आयी कलोरको छूत लग सकती है और वह रोग बनाये रखती है। अपनी संतानसे ही ठट्ठकी पूर्ति करनेपर भी समय समय पर गर्भपात हो सकता है। क्योंकि, जबतक क्षमता प्राप्त नहीं होती कलोरोंका गर्भ गिरता है। स्वाभाविक रीतिसे रोगके उन्मूलनकी रीति यह है कि, कुछ समय तक ठट्ठमें नयी गाय और बछिया नहीं मिलायी जायें। जब ठट्ठ रोगरहित हो जाय नयी गाय और बछियाँ उसमें शामिल की जा सकती हैं।

निदान : रोगका निदान "सश्लेष परीक्षा" (एग्लटिनेशन टेस्ट ; agglutination test) से किया जाता है। पशुका रक्त लेकर, सश्लेष या एग्लटिनेशन परीक्षासे ब्रुसेलकी जाँच की जाती है। यदि इस जीवाणुका जरायुमें डेरा हो तो उसकी वृद्धि नहीं रोकी जा सकती और इसी कारण भ्रूणकी मृत्यु भी नहीं रोकी जाती।

यदि छूत लगनेपर भी पूरे महीनेमें किसी गायने पहली बार प्रसव किया या गर्भ गिराया तो पहला ध्यान पुरैन पर देना चाहिये। क्योंकि ऐसी अवस्थामें पुरैन प्रायः नहीं निकलती। भीतर रही पुरैन तुरत निकाल देनी चाहिये और जरायुको गरम तथा जीवाणुशून्य पानीमें नोनके ०'९ सैकडा घोलसे धोना चाहिये। जब तक साफ पानी नहीं निकले धोते रहना चाहिये। यह उपचार नित्य और फिर पीछे २ या ३ दिन पर तब तक करना चाहिये जब तक कि, दूषित पदार्थका निकलना रुक न जाय। इसमें प्रायः दो सप्ताह लगते हैं। गर्भपातके

बाद छुतहे पदार्थसे जरायु जबतक मुक्त न हो जाय तबतक गायको फलने न देना चाहिये। इसलिये गरभ होने पर भी उसे कम से कम दो महीने तक फलने नहीं देना चाहिये।

यदि जरायुमें पूदाह हो तो उसका उपचार करना चाहिये। उसमें पुंजीभूत सड़े पदार्थ निकाल कर नलीसे बार बार धोना चाहिये।

निरोध : शुद्ध ठट्ठमें छूत रोकनेके लिये उसमें बराबर अपनी संतान ही दाखिल करनी चाहिये। यदि यह संभव न हो तो नये खरीदे पशु को अलग रख खरीदनेके कमसे कम ३ सप्ताह बाद उनकी मल्लेप-परीक्षा करनी चाहिये।

यदि किसी शुद्ध ठट्ठमें अचानक गर्भपात हो जाय या पुरैन नहीं गिरे तो जब तक कोई और कारण सिद्ध न हो उसे छुतहा गर्भपात समझना चाहिये। उस पशुको पृथक् कर गोशाला और जमीनको पूरी तरह छूतरहित करना चाहिये। भ्रूण और कलाओंको परीक्षाके बाद जला देना चाहिये।

यह रोग देहमें प्रतिपिंड बनाता है। इसलिये छूतके अन्य रोगोंकी तरह क्षमता पैदा करनेके लिये टीका लगाया जा सकता है। इसकी जाँच व्यापक मात्रामें की गयी है। पर अब इस रोगके टीकेके विरुद्ध कहा जाता है। इसके फलप्रद होनेमें तो संदेह है ही। पर एक बार शुरु करनेसे इसे हर ६ महीने पर लगाना होता है। इसकी सलाह नहीं दी जाती है।

ग्रसित ठट्ठमें छूत फैलना रोकनेके लिये स्वास्थ्यकर उपाय ही एक मात्र सफल उपाय है। गोशाला पूरी तरह छूत रहित कर दी जाय। ग्रसित गायके प्रसवके लिये कम खर्चकी अल्प-कालिक छावनी अलग बना दी जाय। प्रसवकाल और उसके कुछ सप्ताह बाद तक गाय छुतही रहती है। इस निराली (पृथक्) छावनीमें प्रसव होना चाहिये। जिस गायमें गर्भपात या असमय प्रसवके लक्षण दिखायी पड़ें उसे यहाँ हटा देना चाहिये। प्रसव या गर्भपातके बाद गायकी पूरी सफाई हो और उसका छूतनाश किया जाय। जरायुसे निकला सभी दूषित पदार्थ गाड़ अथवा जला दिया जाय। फर्श पर हलकी फूस बिछा कर जला देनी चाहिये। छावनी जला दी जा सकती है।

प्रसवके बाद देखना चाहिये कि, पुरैन निकल आयी या भीतर है। यदि भीतर ही हो तो जैसा बताया जा चुका है करो। जब तक जरा भी स्राव होता रहे गायको

इसी छावनीमें रखो। जब वह पूरी तरह ठीक हो जाय तब ठट्ठमें वापस लायी जा सकती है।

हर हालतमें योनिको अनुत्तेजक घोल जैसे कि नीमकी पत्तीके पानीसे धोओ।

अन्य गायोंके प्रसवके लिये एक अलग छावनी होनी चाहिये। जहाँ सब पशु रहते हैं उसी गोहालमें प्रसव नहीं होना चाहिये। ब्रूसेल जीवाणुकी जाँचके लिये सभव हो तो हर वर्ष ठट्ठकी परीक्षा होनी चाहिये। परीक्षा अणुवीक्षण यन्त्रके बिना भी हो सकती है। ग्रसित और अग्रसित गायोंको अलग कर देना यदि सभव हो तो बुद्धिमानी होगी। उसी गोहालको दो भागोंमें बाँटा जा सकता है। इस तरह अग्रसित पशुओंके पक्षकी बलवृद्धि होगी और ग्रसितपक्ष निर्मूल हो जायगा। शर्त यही है कि, केवल परीक्षित सतान ही रखी जाय। परीक्षाके लिये १३६२ पैरा देखो।

१३६६. Tick Fever : लाल पेशाव।

पर्याय :— टिक फीभर, बोभाइन पिरोप्लाज्मोसिस, रेड वाटर, ब्लैक वाटर। हिन्दी—जर्द बुखार, लाल पेशाव। बंगाली—रक्तमूत्र। गुजराती—मूतर-मा-लोही।

लाल पेशाव गरम देशोंका रोग है। यह रक्तमें एक तरह की छूत (पीरोप्लाज्मा बेबेसिया बिगेमिना-piroplasma Babasia Bigemina) लगनेसे होता है जो एक तरहकी किलनीके (बूफिलस boophilus) के काटनेसे उसमें पहुँचती है।

इस परोपजीवीके कारण रक्तमें बहुत विकार होता है जिससे बुखार आ जाता है। पेशावका रग लाल हो जाता है। यद्यपि इस ज्वरमें सदा लाल रगकी पेशाव नहीं होती फिर भी इस रंगके ही कारण इसका यह नाम पड़ा है।

यह रोग भारतमें सर्वत्र है।

अणुवीक्षण यन्त्रके नीचे रक्तके यह परोपजीवी नासपातीकी तरह गोल होते हैं जिनका साइटोप्लाज्म (cytoplasm) किसी भी 'नीले रगसे नीला हो जाता है। नासपातीकी आकृतिके परोपजीवी प्रायः जोड़ेमें देखे जाते हैं। दोनोंके नुकीले भाग आमने सामने रहते हैं।

प्रयोगके लिये छुतहे रक्तका टीका लगाकर रोग पैदा किया जा सकता है। आराम होनेके बाद एक वर्ष तक वह पशु इसका वाहक रहता है। पीरोप्लाजम रक्तमें रहता है पर रोगके कारण जो क्षमता हो गयी है इसके कारण वह बढ नहीं सकता।

इस किलनीका जीवनचक्र : वूफिल्स किलनीका अडा घासमें सेया जाता है और फूटता है। ६ पैरवाला अर्भक (ढोले) घाससे निकल ढोरकी देह पर आता और उसका खून चूसता है। अपनी विकासकी यह अवस्था वह ढोरके शरीर पर पूरी करता है। कई दिनके बाद अर्भक भूरे से श्वेत रगका हो जाता है और ५ से १२ दिनमें अपना चोला फिर बदलता है। इसके ८ दिन बाद वह ८ पैरवाला तरुण अवस्थामें आता है। ५ से १२ दिनमें अपनी खाल छोड कर यह प्रौढ बन जाता है।

नर अडाकार भूरे रगकी किलनी बनता है जो प्रायः $\frac{1}{10}$ इच लम्बी होती है। माताका गर्भधारण करनेके बाद आकार बहुत बड़ा हो जाता है। गर्भधारण करनेके चार दिन बाद यह भरपेट खून पीकर पशुशरीरसे धरती पर टपक पड़ती है जहां वह २,००० से ४,००० तक अडे देती है। वायुमडलके तापमानके अनुसार अर्भक अवस्थासे अडा देने तक प्राय• ३ सप्ताह लगते हैं। यदि मादा किलनीने पीरोप्लाज्माकी छूतवाला रक्त पिया हो तो अर्भकमें पीरोप्लाज्मा हो जाता है। और इस तरह विकसित किलनी छुतही किलनी होती है। यह जब किसी पशु को काटती है तब उसके रक्तमें पीरोप्लाज्मा डाल देती है। इसलिये यह रोग वहीं होता है जहां छुतहे ढोर हों और किलनी भी मौजूद हो। झाड़ीदार और नम स्थानमें ही छूत हुआ करती है। छुतहे स्थानके ढोर १० या १२ वर्ष तक या जन्म भर अपनी देहमें पीरोप्लाजम वहन करते हैं। इसलिये बिना छूतवाले स्थानोंमें यदि छुतहे पशु न हों और किलनी हों तो छुतहे स्थानके पशु विपदके कारण हो सकते हैं।

ग्रहणशीलता : तरुण बछड़े बहुत ग्रहणशील होते हैं। इसलिये यदि किसी ठट्ठमें छूत और किलनी दोनों हो तो जन्मके बाद बछड़ेको छूत लग जाती है। इसका मुख्य लक्षण यह है कि, छूत लगनेके बाद बछड़ेको हल्का बुखार हो जाता है। हर हालतमें बुखार नहीं भी हो सकता है। बछड़े मरते नहीं हैं। छूत लगनेके बाद उन्हें क्षमता हो जाती है पर प्रायः यह छूतके वाहक हो जाते हैं।

लक्षण : पीरोप्लाज्म और वाहक क्षमता-प्राप्त पशुकी, माता या खुरपका जैसी बीमारीके बाद, देह टूट जा सकती है। तब इस पशुको यह रोग हो जाता है। रक्तके जीवाणु बढने लगते हैं और उग्ररूपमें रोग प्रगट होता है।

रोग उग्र या जीर्ण रूपमें हो सकता है। उग्र रोगका लक्षण १०६ से १०७ डिग्री फा० का तेज बुखार है। प्रारम्भिक अवस्थामें कब्ज होता है। इसके बाद अतिसार या पेचिश और मूतका लाल रंग। मूत रंगीन होता है। वह खूनीसे लेकर काले रंग तकका हो सकता है। उस गायको रक्ताल्पता हो जाती है और पांडु रोग दिखाई दे सकता है। अतिसारमें आँव और खूनके थक्के हो सकते हैं। दूध घट जाता है। कभी कभी दूधका रंग पीला हो जाता है। साधारण तौर पर गाभिन गायका गर्भ गिर जाता है।

बादकी अवस्थामें पिछले पैर कमजोर हो जाते हैं और पशु लगडा कर घसीट घसीट कर काँपता चलता है। पेशियाँ फड़कती हैं। दोनों बगलें पिचक जाती हैं। चमडा सूखा और रुखड़ा हो जाता है। आँख बहने लगती है। श्लैष्मिक कला पहले सूखी और रुखडी हो जाती है फिर पीली। नाडी तेज हो जाती है, थोड़ी मेहनतसे १२० से १६० की चाल हो जाती है।

रक्त असाधारण तौर पर चमकीले लाल रंगका अधिक पनीला हो जाता है। थक्का बनने पर रक्तरसमें लाली देखी जाती है। रक्त गणना करने पर रक्त-कणिकायें घट कर प्रति सी० सी० १५ लाख हो जाती हैं और इनके बीच बीच परोपजीवी हो जाते हैं जिनकी संख्या रोगकी गंभीरताके हिसाबसे होती है।

प्रतिकूल परिस्थितिमें रोगी इतना शिथिल हो जाता है कि, वह खड़ा नहीं रह सकता और बराबर बैठा रहता है। साँस लेना कठिन हो जाता है। पशु कष्टसे कराहता है। आँसू और लार बहती रहती है। पेशियोंकी फड़कन बराबर बढ़ती जाती है। तापमान तेजीसे घटकर ९८ डिग्री फा० हो जाता है और पशु मर जाता है। हल्के आक्रमणके लक्षण इतने कडे नहीं होते। तापमान अचानक नहीं घटता, क्रमशः घटता है। भूख और बल धीरे धीरे बढ़ते हैं। रक्त-कणिकायें भी बढती हैं। चङ्गा होनेमें महीनों लगते हैं।

कभी कभी उग्र आक्रमणके बाद जीर्णरूप हो जाता है या कभी कभी सुस्थ पशुमें अज्ञातरूपसे ऐसा हो जा सकता है। तापमान प्रायः १०४ डिग्री हो जाता है और साधारण तौर पर १०५ से १०६ डिग्री फा० के भीतर रहता है। रक्तकी कमी और

दुबलापन धीरे धीरे होता है। मूतका रग नहीं बदलना और न उसमें हेमोग्लोबिन होता है। रोगका दौरा कई सप्ताहका होता है। चङ्गा होनेमें कुछ सप्ताह और अधिक या महीनों लग सकते हैं। जरासा तापमान वढने से रोग दुहरा जा सकता है।

उग्रव्याधिमें मृत्यु प्रायः हो जाती है। गरमीके महीनोंमे मृत्युसख्या सवसे जादे होती है। जीर्ण व्याधिमें यदि उपद्रव न हो तो शायद ही मृत्यु होती है।

छोटे बच्चोंपर हुए आक्रमण ध्यान खींचे विना गुजर जा सकते हैं। ९ महीनेसे कम उमरके बच्चोंका रोग सिर्फ कुछ दिनका होता है। १ से २ वर्षकी उम्रके पशुओंकी मृत्युसख्या २५ सैकड़ा हो सकती है। एक आक्रमणसे आराम हो जानेके बाद ढोर प्राय· क्षमता प्राप्त कर लेते हैं।

निदान : मूतमें हेमोग्लोविन (लाल रग), तापमान वढना और पाडुता सही निदानमें सहायक होती हैं। यदि मूत लाल न हो, केवल तापमान वढे, पर ठट्टके अन्य पशुओंमें इसके लक्षण हों तो इसे लाल पेशाव ही मानना चाहिये। किलनीकी खोज करनेसे निदानमें सहायता मिलती है। अणुवीक्षण परीक्षासे रक्तमें परोपजीवी पाया जाय तो शुद्ध निदान हो सकता है।

गलघोंटू और गिल्टी दोनोंके अनेक लक्षण लाल पेशावके समान हैं। पर उन रोगोंमें व्याधि तेजीसे वढती है और रक्तकी कमी नहीं होती। मूत लाल नहीं होता। सूजन रहती है।

शवपरीक्षामें अणुवीक्षण यन्त्रके विना भी गिल्टीका काला खून 'लाल-पेशाव'के लाल रक्तका भेद वतावेगा।

चिकित्सा : चिकित्सा सम्भव है और यदि जल्दी ही शुरु कर दी जाय तो आराम हो जानेकी आशा बहुत रहती है। पर आराम होने का यह मतलब नहीं कि, रक्तके परोपजीवी नष्ट हो गये। पशुमें यह वने रह सकते हैं और प्राय रहते भी हैं। ट्राइपेन ब्लू, बेंजीडाइन वर्ग (Benzedine series) का नीला रग है। यह इसकी विशेष औपधि है। उस ब्लूके घोलकी सूई शिरामें दी जाती है। तापमान क्षणिक वढता है परन्तु रोग कुछ घटोंमें कावूमें आ जाता है। पेशाव साफ हो जाती है और परोपजीवी या तो गायव हो जाते हैं अथवा उनकी सख्या घट जाती है।

देहकी तौलके प्रति २०० रत्तल पर १½ से ३ ग्रेन ट्राइपेन ब्लूकी शिरामें सूई लगाने से अच्छा फल मिला है। सूई सावधानीसे लगानी चाहिये। क्योंकि, यदि त्वचामें ब्लू चला जाय तो पीब पैदा होती है और वह सूख (मर) भी जा सकती है। यदि कोई सुधार न हो तो इसे ६ या २४ घंटे पर फिर लगाना चाहिये। ट्राइपन ब्लू १ से ५ सैकड़े शक्तिके नॉर्मल सेलाइनमें घुल जाता है। सूई लगानेसे तन्तुका रङ्ग भूरा नीला हो जाता है। यदि जरूरत हो तो सूई दुबारा लगाई जा सकती है। ब्लू से हाथ रङ्ग सकता है। थोड़ेसे कैलशियम क्लोराइड और हाइड्रो-सल्फाइटसे दाग मिट जाता है। अब तो ट्राइपाफ्लेविन काममें आता है। यह ट्राइपेन

क ख
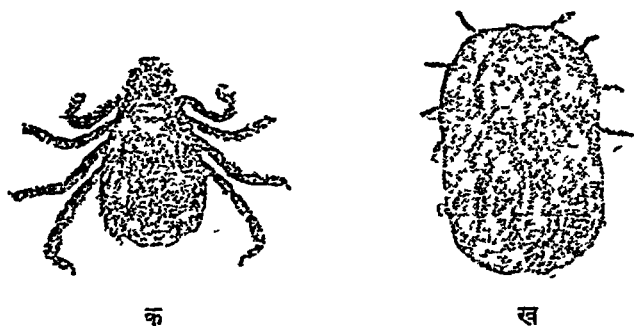
चित्र १६४. बूफिलस एनुलेटस।
क—नर ; ख—मादा।

ब्लूसे भी अच्छा परिणामकारी है। ट्राइपाफ्लेविनकी मात्रा १५ ग्रेन सयानोंके लिये है और तरुणोंके लिये ५० सी० सी० नॉरमल सैलाइनमें ७ ग्रेन शिरामें देनी चाहिये।

ट्राइपाफ्लेविन पर प्रकाशका असर होता है। जिस पशुको यह दिया गया हो उसे धूपमें नहीं निकालना चाहिये और तीव्र प्रकाशसे उसे कई दिनों तक बचाना चाहिये।

ट्राइपाफ्लेविन या ट्राइपेन ब्लूके साथ अतिसार और रक्ताल्पताकी चिकित्सा लक्षणोंके अनुसार होती रहनी चाहिये।

जब हेमोग्लोबिनके क्षयसे पशु बहुत कमजोर हो जाय और उसे रक्ताल्पता हो तो शिरामें नॉरमल सैलाइनकी सूई देनी चाहिये। कब्जियतमें मैगसल्फ या सोडासल्फका

जुलाव देना चाहिये और अतिसारमें अफ़ीम। रक्ताल्पतावाले पशुको मटके साथ नित्य १ से २ ड्राम आयरन सल्फेट (हीराकस) देना चाहिये।

क्षमता : सहज छूतके इलाकेमें क्षमताकरणकी कोई जरूरत नहीं। क्योंकि, बछरुओंको बहुत बचपनमें रोग लग जाता है। इस तरह उनमें क्षमता आ जाती है। बारहमासी रोगके इलाकेसे ग्रसित पशु जब स्वच्छ इलाकोंमें आते हैं तब कठिनाई होती है। यहाँ ये दूसरोंको छूत लगाते हैं जिसका परिणाम भीषण होता है। इसी तरह यदि स्वच्छ भागके पशु बारहमासी भागमें जाते हैं तो वह रोगके शिकार बनते हैं और मर जाते हैं। इसका इलाज यही है कि, बछरुओंको ही क्षमता प्रदान करनेका प्रयत्न होना चाहिये। इसके लिये ग्रसित या वाहक पशुके कुछ सी० सी० (डिफाइब्रिनेटेड-फाइब्रिनरहित) रक्तकी सूई लगा दी जाय। यदि ग्रसित प्रदेशमें सयाने बछरु लाना हो तो ऊपरकी विधिसे उनको सूई लगा क्षमता प्रदान कर देनी चाहिये। यदि प्रतिक्रिया सीमासे बाहर होने लगे तो ट्राइपाफ्लेविन या ट्राइपेन ब्लूकी सूईसे उसे काबूमें लाना चाहिये।

१३६७. Surra : सड़ा।

पर्याय :—सड़ा, ट्राइपेनोसोमिएसिस। हिंदी—सड़ा, तिनसाला, जहरबाद।

खास तरहके मियादी और पारीके बुखारका नाम सड़ा है। ट्राइपेनोसोम इभान्सी नामक परोपजीवीके कारण रक्तकी छूतसे यह होता है। घातक रक्ताल्पता और छीजन इसका लक्षण है।

यह रोग मुख्यत' घोड़े और ऊँटका है। कभी कभी कुत्ते पर भी आक्रमण हो जाता है। गाय भैंसको भी छूत लगती है। यद्यपि इनमें रोगके लक्षण हल्के ही होते हैं पर ये मुख्यरूपसे वाहनका काम करते हैं। गाय भैंस पर जोरका आक्रमण होने पर आसानीसे उनको आराम किया जा सकता है। पर घोड़े और ऊँटका रोग प्रायः घातक होता है।

यह मौसमी रोग है। इसकी छूत दो तरहकी मक्खियां (टेबेनस और स्टोमोक्सिस) फैलाती हैं। ये ग्रसित पशुको काटती हैं। अपनी सूँडमें उसका ग्रसित रक्त ले जाती हैं और जब दूसरे सुस्थ पशुको काटती हैं तब उसमें उसे डाल देती हैं। इसके अन्य वाहन भी हैं। यह रोग बरसातमें खूब होता है। वस

मौसममें नम जमीनमें ये मक्खियाँ बहुत अडा देती हैं। ग्रसित प्रदेशोंमें सडाके इलाके होते हैं और मौसम भी होते हैं। यह परोपजीवी ट्राइपेनोसोम वंशका है। कई ट्राइपेनोसोम हैं जो कई रोग पैदा करते हैं।

सड़ा : ट्राइपेनोसोम इभान्सीके कारण होता है।

नगाना : सभी पशुओंको खासकर घोड़े और ऊँटको ग्रसता है। ट्सेट्सी (Tsetse) मक्खियाँ ट्राइपेनोसोम ब्रूसी (Brucei) को फैलाती हैं जिससे यह रोग पैदा होता है।

पित्तका रोग (गायका) : आफ्रिकामें ट्राइपनसोम थिलेरी (trypanosome theileri) के कारण होता है।

चित्र १९५. टैबेनस बोभिनस।

निद्रारोग (आदमीका) : ट्राइपनसोम गैमबिनस (trypanosome gambiense) के कारण होता है।

ट्राइपनसोम इभान्सी सडा-रक्तका बड़ा परोपजीवी है। यह गतिमान है। यदि रक्त लेनेके बाद तुरत परीक्षा की जाय तो इसको पकड़ सकते हैं। यह फाडता चीरता चलता है। आकारमें यह रक्त-कणिकाओंसे ३,४ गुणा बडा होता है। यह रक्त-कणिकाओंको सीधे तौर पर न तो नष्ट कर सकता है और न सोख सकता है। पर कणिकाओंका पदार्थ ऑसमोसिस (परिस्रवण और संमिश्रण) की क्रियासे इसके भीतर चला जाता है जिससे इसका पोषण होता है। इस तरह रक्त कमजोर हो जाता है जिससे रक्ताल्पता और छीजन होती है। वह रक्त जीवन-पोषणके लायक नहीं रहता। इसकी वंशवृद्धि विभाजन क्रियासे होती है। इसलिये जहाँ इसे वृद्धिका बेरोक मौका मिलता है वहाँ यह बहुत बुराई करता है।

लक्षण पशुको ज्वर हो जाता है। सुस्ती रहती है। बाल खड़े हो जाते हैं और आँख बहती है। कुछ दिनोंके बाद इन परोपजीवियोंकी वृद्धि कम जाती है तब रोगी कुछ सुधरता है। यह कुछ दिनों या सप्ताहके बाद फिर होता है। इसके बाद आक्रमण पर आक्रमण होते हैं। पशु दुबला हो जाता है। छीजन और गांथ होती है। अंतमें पशु मर जाता है। घोड़े और ऊँटको छूत लगने पर ये लक्षण होते हैं। गाय भैंसकी बीमारी बहुत कम भयकर होती है। ज्वर नहीं रहने पर रक्तप्रवाहसे परोपजीवी गायब हो जाते हैं और ज्वर होने पर फिर आ जाते हैं। मालूम होता है कि, ढोरमें एकसम अवस्था होती है। इस समय ये परोपजीवी की वृद्धि नहीं कर सकते। भारतमें गाय भैंसें छुतहे रक्तका भंडार हैं। खास मौसमोंमें मक्खियाँ दूसरे पशुओंको छूत लगानेमें यह रक्त काममें लाती हैं।

समय समय पर भारतमें भी यह रोग तीव्रतासे ढोरमें फूट पड़ता है। ऐसी हालतमें मृत्युसख्या ५० से ९० सैकडा हो जाती है। रोग तेजी से फैलता है और कई बार बुखार लगने पर रोगी मर जाता है। लक्षण प्रकाश होनेका समय ४ से ८ दिन है।

बुखारके समय रक्तकी अणुवीक्षण परीक्षासे रोगका निश्चित निदान हो सकता है। गाय भैंसका रोग सरलतासे रोका और आराम किया जा सकता है।

चिकित्सा इसमें एमेटिक टारटारकी सूई शिरामें लगायी जाती है। प्रति १०० रत्तल शरीर तौलके लिये इसके ३ सैकडा घोलकी ५ सी० सी० इसकी मात्रा है। यदि बीमारी दुहरा जाय तो दूसरी मात्रा देनी चाहिये। इसके साथ नित्य दो बार आरसेनियस एसिड स्वल्पारम्भ करके १५ ग्रेन तक खिलानेसे ज्यादे लाभ होता है। घोड़े और ऊँटमें टारटार ज्यादे लाभका नहीं है। जरमनीका बना नागनोल (Naganol) या बेयर २०५ (Bayer 205) ऐसी हालतमें लाभप्रद हैं।

निरोध : ठट्ठके कई पशुओंको यदि पारीका बुखार और दुबलापन हो तो सर्रा के आक्रमणकी आशका करनी चाहिये। ग्रसित पशुओंको कहीं दूर हटा देना चाहिये। जिससे कि, उन्हे काटनेवाली मक्खियाँ आकर सुस्थ पशुओंको छूत न लगावें। सभव हो तो सदिग्ध पशुओंके रक्तकी अणुवीक्षण परीक्षा की जाय। यदि रोगका सदेह सिद्ध हो जाय तो टारटार चिकित्सा शुरु कर दी जाय। छूतके संदेह मात्रपर रक्तपरीक्षा किये बिना भी टारटार दिया जा सकता है।

१३९८. Tetanus : धनुष्टंकार।

पर्याय :—टिटेनस, लोकर्जा। बंगाली—धनुष्टकार।

यह छूतवाला उग्र रोग है। क्षतोंकी राह छूत लगती है जिसकी नाड़ी केन्द्रोंपर प्रतिक्रिया होती है। इस कारण पेशियाँ खिचती हैं और आक्षेप (spasms) होता है। पशुशरीरमें अवायुजीवी धनुष्टकारी जीवाणु (बैसिलस टिटानी : क्लौस्ट्रिडियम टिटानी) के घुसनेसे यह रोग होता है। यह एक से दूसरे को फैलनेवाला सक्रामक रोग नहीं है। यह इक्का दुक्का हुआ करता है।

धनुष्टकारी जीवाणुके बीज (स्पोर्स) होते हैं। यह स्वयं और इनके बीज दुनियामें तमाम व्याप्त हैं। धूल, धरती, पानी, खाद, नाली, फर्श और सुस्थ पशुके महास्रोतमें भी ये पाये जाते हैं। जब यह क्षतमें पहुँचते हैं तो धनुष्टकार पैदा करते हैं। ये क्षतमें ही डेरा डालते हैं जहाँ वह एक विष तैयार करते हैं जिससे यह रोग होता है। विषका खिंचाव नाड़ी-पदार्थोंकी तरफ है और वह अपना कार्य नाड़ीसंस्थानके द्वारा ही करता है। क्षतसे विष स्थानीय नाड़ीमें जाता है तब उसकी प्रतिक्रिया केन्द्रीय नाडी-संस्थानमें होती है। कठिन रोगोंमें विष रक्तमें होकर मस्तिष्कमें जा सकता है और नाड़ीके छोरोंसे सुषुम्नामें। सूखी हालतमें रेणु (स्पोर्स) वर्षों जीता रह सकता है। सड़नेवाली चीजोंमें हफ्तों रह सकता है। उबालनेसे यह मर जाता है।

छूतग्रस्त पशुओंका रक्त और तंतु छुतहे नहीं होते। छूतग्रस्त क्षतके पदार्थ छुतहे होते हैं।

छूतवाले जीवाणु धरतीमें होते हैं। खोंच, क्षत, कील चुभनेसे हुआ क्षत या ततुओंके नष्ट होनेसे हुआ क्षत छूत लगनेके लिये बहुत अनुकूल है। पैरके क्षत जिनका संसर्ग मिट्टी या गोबरसे हो सकता है उनमें छूत लगनेकी संभावना जादे होती है। बछड़ या शिशुओंकी नारमें छूत बहुत लग सकती है। मुँहकी कलाके क्षतसे छूत लग सकती है जो नहीं भी देखा जा सकता है। जीवाणुसे दूषित कड़ी चीजोंके खानेसे हुए क्षतसे प्रायः ढोरको छूत लग जाती है। पुरैन नहीं गिरनेसे भी धनुष्टकार हो सकता है।

लक्षण प्रकट होनेका काल भिन्न भिन्न है। तरुण पशुओंमें यह इतना कम कि २४ घंटा भी हो सकता है। पर गायमें अधिकांश २ से १५ दिन।

लक्षण : रोगकी प्रारम्भिक अवस्थामें भी पेशियां कड़ी हो जाती हैं। इसका लक्षण धीमी चाल, रुक रुक कर चबाना, और धीरे से निगलना है। चोट आसानीसे नहीं लचते। अकडन सारी देहमें तेजीसे फैलती और खास लक्षण प्रगट होते हैं। सिर अजीव तरहसे तन जाता है और पैर छितरा जाते हैं। पशु कठिनतासे चल सकता है। मुड़ना कठिन होता है। देह अकड़ जाती है। कान खड़े हो जाते हैं। आंखें स्थिर हो जाती और पुतलियां फैल जाती हैं। नथुने फैल जाते हैं। पेशियोंमें चमक (खिचाव) होता है। जबड़े जकड़ जाते हैं। गलकी पेशियो के खिंचावके कारण थूक नहीं निगला जा सकता। इससे लार मुँहसे लटकती और टपकती रहती है। पेट सिकुड़ जाता है जिससे पाखाना पेशाव
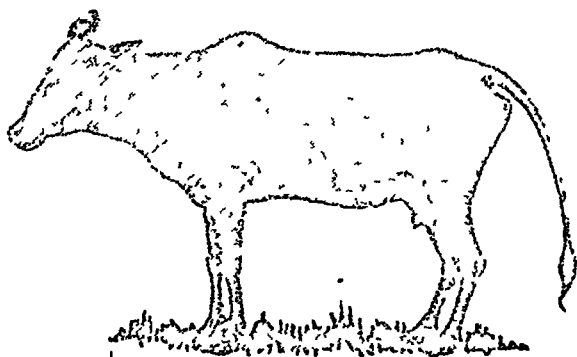
चित्र १६६. धनुष्टकार।
गायकी पेशियोंकी साधारण अकड़न।

रुक जाती है। पूँछ अकड़ जाती है और हिल नहीं सकती। वह एक ओर खिँच जाती और कुछ उठ जाती है।

पेशियां लकड़ीकी तरह कड़ी हो जाती हैं और इतनी उभड़ आती हैं कि साफ मालूम होती हैं। जरासे भी स्पर्शसे बहुत उत्तेजना होती है और चमक (आक्षेप) उठती है। जरासी रोशनी या आवाज और हिलनेकी कोशिशसे ऐसी चमक होती है कि पशु लकड़ीके कुन्देकी तरह धड़ामसे गिर पड़ता है। इससे उसे चोट लग सकती है। आक्षेपकी चमक बीचबीचमें रुक कर फिर होती है। चमकके साथ बहुत पसीना चलता है। साँस लेना कठिन होता है और पूरी तरह नहीं ले सकता।

इससे नीलिया (साइनोसिस) हो जाती है। तापमान जरासा चढता है। पर बराबरकी चमक या ऐंठन उसे तेज कर देती है। मृत्युके पहले चमक बराबर लगातार होती रहती है और ताप १०५ से १०७ डिग्री फा० तक चढ सकता है। स्ट्रिकनीनके जहरमें ऐसे ही लक्षण होते हैं। जलातंक, गर्दनतोड (मेनिनजाइटिस) और गर्दनकी वातव्याधिमें कुछ इसी तरहकी अकड़न होती है। गायोंको प्रायः प्रसवके बाद विशेषकरके पुरेन नहीं गिरनेपर धनुष्टकार होता है।

दौर : छूत लगनेके बाद तेजीसे मानलो ६ दिनमें रोग प्रगट हो तो क्या होगा यह कहना अधिकाशमें ठीक नहीं होता। साधारण तौर पर रोगी मर जाता है। जब रोग प्रकट होनेमें अधिक समय लगता है तब रोग मन्दगतिसे बढता है। तब कुछ उम्मीद होती है। यदि रोगी दूसरे सप्ताह भर जीता रह गया और कोई उपद्रव भी नहीं हुआ तो चगा होनेकी उम्मीद की जा सकती है।

गायका यह रोग घोड़ेसे कम तीव्र होता है। गायकी मृत्युसंख्या ७० सैकडा है पर घोडेकी ७५ से ८५ सैकडा तक।

चिकित्सा : ऍंटी-टिटेनस सिरम सच पूछो तो पशुओंको लाभ नहीं पहुॅचाता। बहुत जादे मात्रा देनी होती है जिसका खर्च बहुत जादे होता है। फिर भी बढी हुई बीमारीमें कोई संतोषप्रद फल नहीं होता। यदि रोगने केन्द्रिय नाडी-सस्थान पर एक बार कब्जा किया तो सिरम विष दूर नहीं कर सकता। वह केवल आगेका फैलना रोक सकता है। सिरम की ५० से १०० सी० सी० या अधिक की सूई शिरामें लगानेसे प्रारम्भिक अवस्थामें सिरम कुछ उपकार कर सकता है।

केवल शामक (पैलिएटिभ) चिकित्सा ही विहित है। खिलाने या औषधि पिलानेके लिये जहाँतक सभव हो पशुको कम से कम दिक किया जाय। उसे शान्त पडा रहने दिया जाय। जबतक वह निगल सकता है उसे मंड या दूध आदि दिया जाय। ताकत बनाये रखनी है। पीनेके लिये पासमें ठढा पानी रख देना चाहिये। पानी या खानेकी नाद सिरकी ऊँचाई के बराबर रखनी चाहिये।

यदि कोई क्षत मिले तो कोथघ्न उपचारके साथ उसकी पट्टी की जाय। एनिमाके द्वारा पेट साफ करनेकी कोशिश करो। कारबोलिक एसिडका इलाज कुछ फायदेका बताया जाता है।

कारबोलिक एसिड	...	१ ड्राम।
गरम पानी	...	२½ आउन्स, ५ सैकड़ा घोल बनाओ।

ठंडा होने पर अतस्त्वक्-सूई गरदन या कंधेमें प्रति दूसरे घंटे, पहले ३२ घंटा तक लगाते रहो। इसके बाद जरा देरसे। २४ घंटेमें ३६ ग्राम तक सूई लगायी जा सकती है। मालूम होता इस रोगमें कारबोलिक एसिडके लिये विशेष सहनशीलता हो जाती है। कारबोलिक एसिड और शिरामें लुगल सोल्यूसनकी सूई फेर बदल कर लगायी जा सकती है।

गुदामार्गसे नित्य १ से २ आउन्स क्लोरल हाइड्रेट दिया जा सकता है। ३ से ४½ ग्रेन मौरफीन अतस्त्वक्में दी जा सकती है। सुषुम्नामें नोभोकेनके १ सैकड़ा घोलकी ५० सी० सी० लगानेसे सुधार और आराम होते पाया गया है।

मैगनीशियम सल्फेटकी अतस्त्वक्-सूई बतायी जाती है। मैग० सल्फ० के ३० सैकड़ा घोलकी ५० सी० सी० या ५० सी० सी० पानीमें ½ आउन्स मैग० सल्फकी सूईसे अच्छे फलकी रिपोर्ट मैसन देते हैं।

१०० सी० सी० कैलशियम क्लोराइडकी शिराकी सूई बार बार देनेके बाद साल-भरसनकी सूई शिरामें लगानेसे आराम होना सम्भव है। यह रिपोर्ट है। सोडियम बाईकारबोनेटके ८ सैकडा घोलकी ५०० से १५०० सी० सी० की सूई शिरामें लगानेसे २० में से १७ घोड़ोंके आराम होनेकी रिपोर्ट है।

१३९९. Rabies : कुकुर-विष।

कुकुर-विष उग्र संक्रामक और बहुत जल्दी छुतहा रोग है। इसमें मानसिक और नाड़ीकी गडबडी होती है। नाड़ियाँ उत्तेजित हो जाती हैं इस कारण पक्षाघात होता है।

यह रोग खासकर दाँत काटनेसे पशुसे पशु और आदमीको होता है। जो पशु अपने दाँतोंसे आक्रमणात्मक हथियारका काम लेते हैं और जिन दूसरोंको काटते हैं वे इसके शिकार हैं।

इसके जीवाणु पराणुवीक्षणीय (ultra-microscopic) हैं। छूत शुरूमें एक स्थान पर लगती है। उसमेंसे विष पैदा होता है जो केन्द्रीय नाड़ी-संस्थानको ग्रसता है। छूतग्रस्त होनेके बाद लाला-ग्रन्थियोंमें रोगाणु हो जाते हैं। उसमेंसे वह थूकमें आते हैं।

कुतियासे कुत्तेमें लडनेकी प्रवृत्ति अधिक होती है। इसलिये कुतियोंसे अधिक कुत्ते इसके रोगी होते हैं। उनमें यह ७ : १ होता है। हरेक दश (काटना) परिणामकारी नहीं होता। दशनके वाद लगभग २० सैकड़ा छूतग्रस्त होते हैं। गीला रखने पर थूकमें रोगाणु ११ दिन तक जीता है। पानीमें वह २० से ३० दिन सक्रिय रहता है। मस्तिष्क-पदार्थमें दो सप्ताह या अधिक भी जी सकता है। ताप इसे मार डालता है।

दाहक कोथघ्न रोगाणुको आसानीसे नष्ट कर देता है। खनिज अम्ल, चूनेका पानी, रसकपूर (कोरोसिभ सब्लिमेट) खास तौर पर उपयोगी हैं। कहा जाना है कि, चूनेका पानी रोगाणुको ३ मिनटमें मार देता है। पाँच सैकड़ा हाइड्रोक्लोरिक एसिड या सैलिसिलिक एसिड और १० सैकडा तूतियेका घोल रोगाणुको ५ मिनटमें मार देना है।

रोगके प्रच्छन्नकालमें वहुत भिन्नता रहती है। प्रच्छन्नावस्था के वाद जितनी जल्दी लक्षण प्रगट हों प्राणका संकट उतना ही जादे है। कुत्तोंमें यह काल १५ से ६० दिनका होता है। पर यह ६ महीनेके वाद भी विकसित हो सकता है। 'आदमी और पशुमें रोग प्रकट होनेका यह काल १४ से ५० दिनका है। कुत्तोंमें यह काल असाधारण तौर पर ५ से ६ महीना या २५ महीना तक भी लम्बा हो सकता है।

यदि दाँत काफी नहीं चुभे, केवल चमड़ा ही चिर जाय तो रक्त निकलनेसे रोगाणु वह जा सकते हैं। इस तरह पशु छूतसे वच सकता है। इसी तरह कपड़ेसे ढके अंगपर या बालसे भरे पशुको काटनेसे कुछ परिणाम नहीं भी हो सकता है। थूक कपड़े पर ही रह सकता है। इसलिये काटनेसे छूत नहीं लगेगी। गहरे और विदीर्ण क्षतसे तंतुओंपर रोगाणुके जमनेका जादा मौका रहता है। शाखाओंकी अपेक्षा मुँह और सिरका दंशन अधिक हानिकर होता है। मूषक और शशकसे कुत्ते बिल्लियोंमें रोगाणु आ सकते हैं यदि ये शशक-मूषकवर्गको काटें। जलातंकसे चंगा हो जानेवाले पशु स्थायी क्षमता भोगते हैं। सयानोंकी अपेक्षा तरुण पशुओंमें यह रोग तेजीसे वढ़ना है। काटे हुए लगभग ७० सैकडा पशुओंमें यह रोग १५ से ४५ दिनके अन्दर प्रकट होता है। लगभग १० सैकड़ामें ४६ से ६० दिनके अन्दर। वाकीमें अबेर सबेर यह प्रकट या विकसित होता है।

कुत्तेमें लक्षण : यह भीषण या "मूक जलातंक" के रूपमें प्रगट होता है।

कुत्ता भीषण होनेके पहले अतिस्नेही हो जाता है, अपने मालिकका हाथ और मुंह चाटता है। इसके बाद उसमें उत्तेजना और उदासीनता या अवसाद प्रगट होता है। वह दुखी और चंचल हो जाता है, अँधेरेमें दीनतासे पड़ा रहता है। बुलाने पर अनिच्छासे आता है। कभी कभी कुत्ता व्याकुल हो जाता है। अपना विश्रामस्थल बहुधा बदलता या आकुल हो घूमता है। और फिर अकारण भूंकता और हवामें मुँहसे काटता है। अकारण चौंक उठना और मक्खियाँ हबकता सा मालूम होता है।

उत्तेजना बढ जाती है। काटनेकी प्रवृत्ति होती है। जरासी बाहरी उत्तेजना से डर या चौंक उठता है। कुछ कुत्ते काटी जगह चाटते, काटते, कुदेरते या रगड़ते हैं। कभी कभी यह इतना जादे होता है कि, अपना मास नोचकर हड्डी निकाल देते हैं।

खाना छोड़ देते हैं और अभक्ष्य वस्तुओंके लिये जैसे कि, चमड़ा, कपड़ा अपना गू तक खानेकी असाधारण भूख हो जाती है। निगलना कठिन हो जाता है। गलकी पेशियोंका आशिक पक्षाघात पानी पीना कठिन कर देता है। कुत्ता बहुधा पानी चाहता है। मुश्किलसे थोड़ा पानी पी पाता है। इस अवस्थामें लार चलने लगती है। पेशाब करनेकी असफल चेष्टा बहुत करता है। अतिसार शुरू हो सकता है। कामोत्तेजना अत्यधिक बढ जाती है और रोगी अपनी कामेन्द्रियोंको सूंघता और चाटता है। आंखे चमक उठती हैं और दृष्टि चिन्तातुर हो जाती है।

दूसरी अवस्था कहीं अधिक उत्पाती होती है। यह ½ से ३ दिनमें शुरू हो सकती है। भ्रम बढ जाता है। कुत्ता जमीन चाटता, कुछ मिले उसे काटकर फाड़ डालता और निगल जाता है। बन्द कर देना पसन्द नहीं करता। वह छूटकर घूमनेकी कोशिश करता है। यदि छूट जाय तो अकारण ही दूसरे कुत्तोंको काट लेगा। लड़ाईमें छूतग्रस्त कुत्ता नहीं गुर्राता और न गुर्रा सकता है। वह खासकर सिरपर काटनेकी कोशिश करता है। भेड़ और गाय पर आक्रमण करता है पर कम। मनुष्योंपर साधारणतः आक्रमण नहीं करता। पागल कुत्तोंको जबतक उकसाया या डराया न जाय वह आदमी से बचते हैं। काटनेके दौरेके बाद कुत्ता क्षतोंसे भरा लौटकर आ सकता है और घरमें छिपा रहता है।

बाँधने पर वह गुस्सेके मारे बहुत उछलता कूदता है। यदि वहां कोई लोहे आदि की बड़ी चीज हुई तो उसे इतने जोरसे काटता है कि दांत टूट सकते हैं।

पागल कौन चीज क्या और कैसी है नहीं समझता। वह दहकते अङ्गारेपर झपटकर उसे काट सकता है या लाल जलते हुए लोहेको काट सकता है। क्रोधके वाद सुस्ती आती है। पशु थक जाता है, खडा होता तथा गिर गिर पड़ता है। वह इधर काटने लगता है। आक्षेपके चिन्ह प्रगट होते हैं।

पक्षाघात होता है। कठकी पेशियोंमें लकवा मारने (पक्षाघात) के कारण भूकनेका स्वर कठोर हो जाता है। वह खास तरहसे रोने लगता है जो पागल कुत्तेका खास लक्षण है। निगलना कठिन हो जाता है। पानी घोटना बहुत कठिन हो जाता है। क्योंकि, मुँहकी पेशियोंकी प्रतिसंक्रमित उत्तेजना पीनेकी चेष्टा या पानी देखकर ही होने लगती है। यही जलातङ्क है। लार वढ जाती है।

साधारण तौर पर ३-४ दिनके वाद तीसरी अवस्था शुरु होती है। पक्षाघात अधिकाधिक स्पष्ट और स्थायी हो जाता है। मुँह खुला रहता है, जीभ सूखी और बदरङ्ग हो जाती है और बाहर निकली रहती है। मुँहसे फेन निकलता है। साधारण तौर पर पिछला भाग पक्षाघातके कारण वेकाम हो जाता है। यह छीजनकी अंतिम अवस्था है। इसके वाद रोगी मर जाता है।

ढोरमें भी यही लक्षण वहुत कुछ होते हैं। दोनों पशुओंकी देहकी गढ़तमें जो भेद है उसके अनुसार कुछ कुछ भेद होते हैं। पागल गायमें बेचैनी हो सकती है। उत्तेजना और उद्धतता भी हो सकती है। वे एक जगह सिर उठाये खडी रह सकती हैं। ऊपरी ओठ खिचा रह सकता है। वह अपने खुर और सींगसे धरती कोड़ सकती हैं। आवेश इतना अधिक होता है कि, इसमें उनके सींग टूट सकते हैं। वे गरदन तानकर चारों तरफ देखतीं और दूसरे पशुओं, खासकर कुत्तोंपर टूटना चाहती हैं। आवेगका दौरा कुछ लम्बे समय तक रहता है। इसके बाद लंबेसे लम्बे समय तक सुस्ती रहती है। काटी जगह को वे चाटती, काटती या रगडती हैं। उत्तेजना इतनी तीव्र होती है कि, मांस भी नोंच सकती हैं। भूखका अभाव, रौंथ रुकना, कब्ज और अतिसार, पेशीसमूहका आक्षेप ये कुछ विशेष लक्षण हैं। कामोत्तेजना भी होती है। थकावट वढ जाती है और रोगी पशु ३ से ६ दिनमें मर जाता है।

इस रोगके "मूक" रूपमें उत्तेजना नहीं होती। न तो काटनेकी शक्ति ही होती है और न प्रवृत्ति ही। आसपास निरीक्षण करनेकी असाधारण इच्छा होती है। निगलनेकी कठिनाई, कब्ज, और पिछले भागकी कमजोरी होती है। मुँहसे

स्नार टपकती है। पानी नहीं घोंटा जा सकता। घोंटनेके प्रयासमें वह नाकसे छलक आता है। पहले सप्ताहके अंतमें मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा : काटनेसे हुए क्षतको अच्छी तरह साफकर धोना चाहिये और जितना बह सके उतना खून बहने देना चाहिये। खूनके साथ रोगाणु धुल जाते हैं। इसलिये अधिक रक्त-स्रावसे रक्षा होती है। धोनेके तुरत बाद तन्तुओंमें बैठे रोगाणुको अधिक मात्रामें नीबूके रससे मारनेका प्रयत्न करो। इसमें पट्टी भिगाकर क्षतके ऊपर धरो। थोड़ी देरके बाद तेज नाइट्रिक, कारबोलिक या हाइड्रोक्लोरिक जो भी तेजाब मिले उससे क्षतको जलाओ। नीबूके रसका उपचार किसी हालतमें छोड़ा न जाय।

मनुष्य या पशुके लिये इसके बादका उपाय ऐसे निकटतम अस्पतालोंमें भेज देना है जहाँ इस रोगकी "एन्टि रेबिक" सूई लगती है। छूतग्रस्त पशुकी सूखी सुषुम्नाके अवद्रव की सूई लगानेकी विधि पासचरने चलायी थी। यह रोधक क्षमता पैदा करती थी, निवारक नहीं। क्षमता ३ वर्ष ठहरती है।

कसौली (भारत) के पासचर इंस्टिट्यूटके पहले डाइरेक्टर सर डेविड सेम्पीने निवारक चिकित्सा चलायी। इस रोगके स्थिर रोगाणु (fixed virus) की छूतसे मरे खरगोशके मस्तिष्कसे अवद्रव तैयार किया जाता है। रोगाणुको कई बार खरगोशमें डालने निकालनेसे वह समरूप हो जाता है और तब वह स्थिर रोगाणु कहलाता है। नमकके साधारण घोलमें मरे खरगोशके मस्तिष्कके अवद्रवमें कारबोलिक एसिड मिलाया जाता है जिससे कि, ०·५ सैकड़ा कारबोलिक एसिडयुक्त १ सैकड़ा मस्तिष्क अवद्रव हो जाय। रोगाणु कारबोलिक एसिडसे मर जाता है। प्रति दिन ५ सी० सी० की एक सूई १४ दिन इस चिकित्सामें दी जाती है। आजकल ४ ही सूईवाली भैक्सीन भी तैयार की गयी है। ढोरको १४ दिन १०, १० सी० सी० अतस्त्वक्में सूई दी जाती है। भारतमें, कलकत्ता, बंबई, कुन्नूर, शिलांग और कसौलीमें पासचर इंस्टिट्यूट हैं। इनके अतिरिक्त अनेक जिलोंके सदर अस्पतालोंको चिकित्साके लिये इन संस्थाओंसे भैक्सीन भेजी जाती है। सबसे निकटके केन्द्रमें काटे पशुकी चिकित्सा करानी चाहिये।

१४००. White Scour : सफेद दस्त।

पर्याय .— ह्वाइट स्कावर, सेप्टिसेमिया नेओनेटोरम, सेप्टिक एफेक्सनस् ऑफ दि न्यू वोर्न, नेभिल इल, जयेन्ट इल।

नवजात वछरू जीवाणुओंके सहज शिकार हैं। वह कोथग्रस्त हो जाते हैं जिसके कारण एकसे अधिक व्याधिकारी जीवाणु हो सकते हैं। विभिन्न लक्षण पैदा करनेवाले सही सही जीवाणु या जीवाणुसंघका अवतक पता नहीं चला है।

सफेद दस्त : नवजात वछरुओंको होनेवाला जीवाणुजनित सक्रामक रोग यह है। साधारण तौर पर यह जन्मके तीन सप्ताहके भीतर होता है। कठिन अतिसार, सुस्ती और दुवलापन इसके लक्षण हैं। रोग तेजीसे वढ़ता है—लक्षण प्रगट होनेके ३ से १० दिनके भीतर साधारणतः वछरू मर जाते हैं।

कारण : कुछ अधिकारी ऐसा मानते हैं कि, यह रोग कुछ प्रकारके जीवाणु (वैक्टीरियम कोली) के कारण होता है। जीवाणु मुँह की राह वछरूमें जाते हैं। दूसरे मानते हैं कि, यह सयाने पशुओंमें रक्तदोष पैदा करनेवाले जीवाणु (पैस्टियूरेला) के कारण होता है और यह नार (नाभि) की राह घुसता है। यह देखा जाता है कि, गर्भपातवाली गायके वछरू यदि अकोथीय अवस्थामें रखे जायँ तव भी सफेद दस्त हो जाता है। इसलिये यह रोग ई० कोली, पैस्च्यूरेला और ब्रूसेला एवोर्टाके कारण होता है, ऐसा मानते हैं। सच पूछो तो इनमें से कोई या सभी मिल कर यह रोग पैदा करते हैं।

यदि किसी वछरूका सहज रक्षकतंत्र किसी कारण नष्ट हो जाता है तव आंतमें रहनेवाले अनेक जीवाणुओंको आँतोंकी दीवाल पर चोट करनेका मौका मिलता है और वे विकारजनक वन जाते हैं। वे ऐसे विकार पैदा करते हैं जिनसे कठिन अतिसार हो जाता है।

ऐसी जीवाणुजनित चोटोंका कारण साधारणतः अस्वास्थ्यकर अवस्थामें वत्स-पालन है। यद्यपि यह जानी हुई वात है कि, छूत जन्मसे ही हो सकती है। सुस्थ जननीके वच्चोंके छूतग्रस्त होने और दूसरोंमें छूत फैलाने का कारण केवल गर्भपात ही नहीं है। पक्की स्वास्थ्यकर व्यवस्थासे वच्चोंके जीवाणुजनित ऐसे रोग वहुत कुछ रुक सकते हैं इसमें सन्देह नहीं।

अंधेरे, गन्दे और जिसमें हवा ठीक तरह नहीं आ सकती ऐसे वत्सालय काममें नहीं लाये जायँ। प्रायः ऐसा होता है कि, वछरू अपने थान पर वहुत

ढेर तक गोवर पर ही खड़े रहते हैं। ऐसा नहीं होने पावे। गन्दे और गोवरमिले थन पीनेसे भी वच्चोंको जीवाणुजन्य रोग हो सकते हैं। कम जगहमें वहुत जाढे वछरुओंका रखना भी छूतका एक कारण हो सकता है। एक वाड़ेमें थोड़े वछरु रखनेसे ही सफाई रह सकती है। मकुन्ता मत होने दो और हरेक वछरुको स्वय अपना आहार लेने दो। जहां जन्मते ही जननीसे छुड़ा कर वच्चोंको दूध या दुद्धी पर कृत्रिम ढग से पालते हैं वहां गन्दे वरतन और दूपित दूधके कारण छूत लगना सहज है।

पेउसी (colostrum) से वछरुओंको जीवाणु निरोधक शक्ति मिलती है। जिन वछरुओंको पहले सप्ताहमें पूरी पेउसी न मिली हो उनमें छूत की ग्रहणशीलता आसानीसे आ जाती है। इसलिये इसका ध्यान रखना चाहिये कि उन्हे यथेष्ट पेउसी मिल जाय। यदि जननी के मर जाने या रोगके कारण वच्चोंको पेउसी नहीं मिल सके तो उन्हें छूतसे वचाना एक समस्या होती है। उसी समय व्यायी गायोंकी पेउसी मिल सके तो देना चाहिये। इससे उनकी रक्षा होती है। पेउसीके अभावसे प्रारंभिक सुरक्षाकी कमी पूरी करना वहुत कठिन है। इसलिये दुर्भाग्यवश जो वछरु मांकी पेउसीसे वञ्चित रहे हैं स्वास्थ्यजनक नियमसे उनके पालन और भोजन पर अधिक ध्यान देना चाहिये।

लक्षण : जन्मके कुछ घटे वाद ही अतिसार शुरु हो सकता है। ऐसी हालतमें यह समझा जाता है कि, या तो गर्भपातवाले जीवाणु कोखमें पहुँच गये हैं अथवा प्रसवके समय वच्चेके मुँहसे जननीके मलका ससर्ग हो गया है। इसीसे ये जीवाणु वच्चेमें उसके मुँहकी राह गये होंगे। कारण चाहे जो हो जन्मते ही छूत लगने पर २४ से ४८ घटेके भीतर वहुत जल्दी मौत हो जाती है। इस हालतमें अतिसार उग्र होता है। मल वहुत और हरे या पीले रगका होता है। यह वछरुकी पूँछ और जांघोसे लिस जाता है। मलमें निकले पदार्थोंके कारण छाले भी निकल सकते हैं। कभी कभी दस्त वदवूदार और फेनदार भी हो सकता है। इसमें वछरुको वहुत श्रम हो सकता है। वह कष्टसे कराह भी सकता है। वह दूध नहीं पीता। आंखें धंस जाती हैं और उनमें दुख झलकता है। पेट सट जाता है। कमर टेढी हो जाती है। चमड़ा कड़ा हो जाता है। उसकी लचक मिट जाती है। ताप पहले चढ़ता है पर जब थकावट और कमजोरी वढती है वह

साधारणसे भी नीचे उतर जाता है। बछरू धरती पर पसरकर मर जाता है। कभी मरनेके पहले आक्षेप भी हो सकते हैं।

चिकित्सा : यह ऐसा रोग नहीं जिसकी चिकित्सा हो सके। इससे बचना चाहिये। जहाँ एक बार जीवाणुके पजेमें पशु आया और कुछ गभीर लक्षण प्रगट हुए, तब कुछ किया नही जा सकना।

अवतक कहे उपायके अतिरिक्त जन्मसे ही धूप और साफ हवा मिलनेका प्रवन्ध करना चाहिये। यह देखा गया है कि, जिस ठट्ठमें बछरू अपनी माँके साथ धूपका उपभोग कर सकते हैं वहाँ यह रोग नहींके वरावर होता है। पर जहाँ बछरू माँसे अलग कर दिये जाते हैं और कटोरेसे दूध पीते हैं या जहाँ वत्सालय अँधेरे और गन्दे हैं, वहाँ यह रोग वहुत होता है।

छूतग्रस्त बछरूको अलग कर देना चाहिये नहीं तो अन्य बछरू भी छूतग्रस्त हो जाते हैं और आफत आ जाती है। एकके बीमार पड़नेपर कई दिन तक अन्य नव-जात बछरुओंका तापमान लेना चाहिये। जिन्हें बुखार मालूम पड़े उन्हें हटा देना चाहिये।

पेट साफ करनेके लिये १ से २ ड्राम प्रति मात्रा रेंडीके तेलका अवद्रव देना ठीक होता है।

आँतोंकी अम्लता रोकने और श्लैष्मिक कला पर आवरण करनेके लिये कारवोनेट भी फायदेके हो सकते हैं।

सोडा वाइकारवोनेट	...	१ ड्राम।
विसमथ कारवोनेट	...	१ ड्राम।
हेक्सामिन	...	१ ड्राम।

मंडमें मिलाकर नित्य ३,४ मात्रा देनी चाहिये। यह याद रखनेकी वात है कि, दवायें जादे उपयोगी नहीं हैं। रोगका निरोध होना चाहिये। माँको पूरी मात्रामें भिटामिन और बछरूको यथेष्ट पेउसी देना इस रोगके निरोधके उपाय हैं। स्कॉटलैन्डमें जनवरीसे अप्रैल तक, इस समय ब्यानेवाली गायोंको प्रसवके (एक) महीनेमें, गाजर और हरा चारा रोज दिया जाता है। नवजात दो सप्ताह तक अपनी जननीकी पेउसी पाते हैं। इसके अतिरिक्त खूब सघनीकृत भिटामिन "ए" से वनी चीजोंकी कुछ बूँदें ९ दिनों तक पेउसीके साथ दी जाती हैं।

१४०१. Navel Ill : नवजातका रक्तदोष ।

पर्याय :—नेभेल इल, सेप्टिसिमिया ऑफ दि न्यू बोर्न, जयेन्ट इल, पोलीअर्थ्राइटिस ।

यह नवजातका रोग है । इसमें नाभि और कई जोड़ों पर फोड़े निकल आते हैं । नाभिके घावसे जीवाणुके घुसनेसे यह होता है । सफेद दस्त की तरह इस रोगके भी अनेक जीवाणु हैं । इनमेंसे कुछ स्ट्रैप्टोकोक्सी, स्टाफिलोकोक्सी, पासिस्थ्यूरेला, कोलन बैसीली और नेक्रोसिस बैसिलस हैं ।

जन्मके तुरत बाद नार काटनेका घाव सूखने और भरनेमें देर लगती है । यदि सावधानी नहीं रक्खी जाय तो छूत लगनेका डर रहता है । जीवाणुसे बचावके लिये नित्य इस पर टिंकचर आयडिन लगानेके लिये कहा जाता है । यदि धनुष्टकारवाला जीवाणु प्रवेश करता है तो धनुष्टकार होनेसे बछरू मर जाता है । ऊपर कहे जीवाणुओंमेंसे कोई जब प्रवेश करता है तब सड़न होती है और क्षतकी राह जीवाणु देहमें घुसता है जिससे देहमें और भी फोड़े निकलते हैं, खासकर सन्धियोंपर ।

लक्षण : ६ महीने तक यह रोग कभी हो सकता है । पर अधिकांशमें प्रसवके ५,६ दिनके भीतर ही लक्षण प्रगट होते हैं । नवजात बछरू सुस्त रहता है और उसे जननी भी नहीं रुचती । ताप स्वाभाविक की अपेक्षा २ से ४ डिग्री फा० तक बढ़ जाता है । थन नहीं पीता और जल्दी जल्दी सांस लेता है । नाभि गीली और खूनसे लाल मालूम होती है । उसमेंसे पानी चलता है अथवा फोड़े निकलनेके कारण नाभि सूखी, गरम और सूजी भी मालूम हो सकती है । एक या दो दिनमें जोड़ोंमें सूजन दिखाई पड़ सकती है । ये सूजन फोड़े हो जाते हैं जो बादमें फूटते हैं और उनमेंसे पानी, खून और पीब निकलती है । बछरूकी दशा खराब हो जाती और कमजोर होकर वह मर जाता है । कुछ चंगे भी हो जाते हैं । पर वह शायद ही सुस्थ और गठीले पशु बनते हैं । ५० से ६० सैकड़ा मृत्यु होती है ।

सफेद दस्तकी तरह इस रोगका निरोध करनेके लिये जीवाणुकी छूतसे सावधान रहना चाहिये । नारको कसकर बांधना और उसपर टिंकचर आयडिन लगाना चाहिये । मातायें प्राय इसे चाटकर अलग कर देती हैं । जब जब वह अलग हो जाय तब तब फिर बांधना चाहिये । पहली बार तेज टिंकचर आयडिन लगाना

चाहिये। उसके वाद हल्का टिंकचर आयडिन नाभि और उसके आसपास चमड़े पर रोज लगाना चाहिये। फूटे फोड़ेकी पीव होशियारीसे पोंछकर उसे छूत रहित करके पट्टी वाँधनी चाहिये।

वहुयोजी स्ट्रैप्टोकोक्सी-नाशक सिरमका टीका यदि जन्मके २४ से ४८ घंटेके भीतर लगाया जाय तो ग्रहणशील ठठ्ठके वछड़के हितमें यह निरोधक उपाय होगा।

१४०२. Calf Diphtheria : वत्स-रोहिणी।

पर्याय :—काफ डिप्थीरिया, वैसीलरी नेक्रोसिस।

नेक्रोसिस वैसिलसके कारण गलकी श्लैष्मिक कला सूखनेका नाम वत्सरोहिणी है। इससे निमोनियां और साधारण कोथ होता है और मृत्यु हो जाती है।

यह रोग छोटे और वड़े दोनों तरहके वछरुओंको होता है। इसकी छूत फैल सकती है। यह एक तरहके जीवाणुके (नेक्रो वैसीलस या वैसीलस नेक्रोफोरस) कारण होता है। यह जीवाणु क्षीण और पतले होते हैं। यह एक लंवी श्रृखलामें रहते हैं। इन्हे कारवोल-फुकसिनसे रजित किया जा सकता है। निर्वात प्रणालीसे इनकी कृष्टि हो सकती है। ये प्रकृतिमें सर्वत्र फैले हैं और मलमें भी हैं। इसलिये गोशालाके कचड़ेमें या गोड़थारमें भी हैं। इससे वह ग्रहणशील पशुको ग्रसते हैं।

छूत लगे चारे, पानी, खाने पीनेसे छूत लगती है। ग्रसित पशुके थूकके साथ पीनेके पानीमें मृत तन्तु जा सकते हैं। यदि पानीकी नाद सवके लिये एक है तो अन्य वछरू भी ग्रस्त हो सकते हैं। यह रोग साधारण तौर पर तीन दिनके दूधपीते वचोंको ग्रसता है।

लक्षण : लक्षण प्रकाशका काल ५ दिन है। इसके वाद ग्रसित वछरू थकासा मालूम होता है। भूख घट जाती है। ताप १०४–१०५ डिग्री फा० तक चढ जाता है। इसके वाद जल्दी ही एक या दोनों गालोंमें दर्दके साथ सूजन होती है। उँगली डालकर जाँचनेसे उस जगह कुछ रुखड़ी चीज का जमा होना मालूम होता है। मुँह खोलने पर तालु और जीभ पर पीली या भूरी परत दिखाई पड़ती है। जीभमें सूजन भी रहती है। नाकसे पीला स्राव निकलता है। गलदेशमें भी सूजन रहती है। पीना कठिन हो जाता है। वछरू दुवलाने लगता है। खाँसी शुरू हो सकती है जिससे कंठ और फेफड़ेका ग्रस्त होना सूचित होता है। आँतके ग्रसित

ने पर अतिसार हो सकता है। साधारण तौर पर रोगी ४–५ दिनमें मर जाता है। पर कई सप्ताह तक भी लटपटा सकता है।

निदान : जीभ और गालपरकी मोटी परतें और नाकका स्राव निदानकारी है।

चिकित्सा : मुँहमें जमी चीजें और खुट साफ कर ल्यूगोलका सोल्यूसन लगाना चाहिये। पोटाश क्लोरेट और परमैंगनेटके घोलसे धोना भी लाभदायक है। सैलीसिलिक एसिड और पानीका मिला हुआ लेप मुँहमें लगाया जा सकता है। सैलीसिलिक एसिड और पोटाश क्लोरेट १ से २ ड्रामकी मात्रामें खिलाया भी जा सकता है। ग्लिसरीन मिलाकर पपीनेके दूधका १ से ३ सैंकड़ा वारवार गलेमें बहुधा लगाया जा सकता है। इससे जीवाणु और कफ साफ हो जाते हैं। ग्रसित पशु अलग हटा दिया जाय कि छूत फैलने न पावे।

१५०३. Coccidiosis : खूनी दस्त।

पर्याय :—कोक्सीडिओसिस, रेड डिसेन्ट्री ऑफ कैटल।

आँव और खूनवाला अतिसार यह है। कोक्सीडिया जीवाणुके कारण यह होता है।

भारतमें हरेक ढोरकी आँतमें यह सूक्ष्म परोपजीवी जीवाणु होता है। अणुवीक्षण यन्त्रसे आँवमें यह देखा जा सकता है। यह गोल और अन्डाकार होता है। रक्तकणिकाओंसे यह ४ या ५ गुना बड़ा होता है। विभिन्न पशुओंको विभिन्न कुलके कोक्सीडिया ग्रसित करते हैं। ढोरको ग्रसनेवाले "ईमेरिया जुरनाई" (Eimeria Zurnii) हैं। कोक्सीडियाका जीवन जटिल होता है। यह आँतकी झिल्ली (कला) पर आक्रमण करते और यौनिक तथा अयौनिक जीवन (योनि) पार करते हैं। छूत फैलानेके लिये गर्भिणी जीवाणु पशु देहके बाहर आ जाती और गीली धरतीमें बँटकर रेणु और रेणुज हो जाते हैं। यह डिम्ब है। पशु चारेके साथ इसे खा जाते हैं और तब पशु-देहके भीतर चक्र शुरू होता है। वहाँ इनकी निस्सीम वृद्धि होती है।

भारतके ढोर जन्मके वाद तुरत इस परोपजीवीसे ग्रस्त होते हैं। वह जन्मभर छून पाले रहते हैं। जब छूत सबमें रहती है तब इसे छूनका रोग माननेका कोई मतलब नहीं। पर यह हानिप्रद है इसलिये सावधान रहना होता है। शक्तिकी क्षीणता या अन्य रोगोंके कारण आँतकी गडवडी होने पर कोक्सीडियाको खूब बढने और आँतकी झिल्ली विक्षत करनेका मौका मिलता है। यह रोग २ वर्षसे कम उमरके तरुण पशुओंमें होता है पर प्रायः बडी उमरके पशुओंमें भी पाया जाता है।

लक्षण : रोगका आरम्भ अतिसारसे होता है। और दूसरा कोई लक्षण पहले नहीं होता। कई दिन साधारण अतिसार रहनेके वाद मल पनीला, गहरा हरा, और वहुत दुर्गन्धित हो जाता है। मल अपने आप निकल आता है। कभी कभी कूँखना होता है। मलपर खूनके छोटे छोटे थक्के होते हैं। पनीले दस्तमें वहुतसी लसीली चीजें (slime) मिली रहती हैं। अणुवीक्षणसे देखनेपर इस लसीली चीजमें कोक्सीडिया पाया जाता है। पशु सुस्त हो जाता है। भूखकी कमी और छीजन होती है। रौंथ अनियमित होती है। कभी अतिसारके पहले वहुत खूनके थक्के निकलते हैं।

प्रायः दस दिनमें या तो पशु आराम हो जाता है अथवा रोग विगड़ने लगता है और मृत्यु हो सकती है। रोगका रूप अनुग्र या जीर्ण हो जा सकता है। रोगमुक्त होनेके वाद कमजोरी दूर होनेमें लम्वा समय लगता है।

भारतमें इस रोगका स्वयं वहुत महत्व नहीं है। पर माता जैसे कई रोगसे पीडित पशुकी मृत्युका यह सहायक कारण होता है। कुछ तेज जुलाव पेटमें जलन पैदा करते हैं, जिससे कोक्सीडिया सक्रिय हो जाता है। माताके आक्रमणके समय यह सक्रियता अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है। माताकी वीमारीमें कोक्सीडियाकी वशवृद्धि रोकनेकी पेटकी शक्ति घट जाती है। तव वह झिल्लियोंसे चिपटते और उन्हे नष्ट करते हैं। मातासे पशु आराम हो रहा है और माता का अतिसार वन्द हो चुका इसके वाद भी खूनका दस्त फिरसे होता और इससे पशुको मरते देखा गया है।

चिकित्सा : कोक्सीडियाको मारनेवाली कोई खास दवाका पता नहीं है। इसकी चिकित्सामें कषाय और छूतनाशक के रूपमें शामक दिया जाता है। कषाय, आवरणके कोपकी रक्षा कर सकते हैं। कषाय छूतनाश भी करते हैं और वड़ी आँतमे जाकर रेणुजो (sporozoites) को भी मार सकते हैं।

बिसमथ सबनाइट्रेट .. १½ आउन्स

२५० ग्रेन लकड़ीके कोयले (औषधीय) के साथ मिलाकर रोज जीभ पर छिड़को।

कथ (खैर)　　२ से ३ गोटी नित्य पानीके साथ।

थाइमल (अजवायनका सत्त) . . १५ ग्रेन नित्य।

कुछ दिनोंतक केवल ताजा और गरम दूध ही बछड़को पिलानेसे कोवसीडिया जल्दी दूर हो जाता है।

अध्याय ४०

परोपजीवी कृमिजन्य रोग

१४०४. पेटकी कृमियोंके रोग (Helminthiasis)

ढोरके पेट, यकृत, आँत आदिमें कई प्रकारके कृमि कीट होते हैं, जिनसे प्रतिवर्ष अपार हानि होती है। ये रोग साधारण तौर पर एकाएक मारी नहीं फैलाते। हानि बारहों महीने होती रहती है। यह रोग छिपी मार करता है। यद्यपि इसके कारण अचानक अनेक पशु नहीं मरते पर इससे हुई कमजोरीके कारण अन्य उपकारणोंसे अनेक प्राणहानि होती है। वृद्धि या विकाशमें बाधा, छीजन और रक्ताल्पता इसके मुख्य लक्षण हैं। तरुण पशु भीषण-रूपसे ग्रसित होते हैं। पर सयानोंके तनु कृमियोंकी दुष्टता एक हद तक काबूमें रखते हैं।

पशु कच्चे आहार खाते हैं। इसलिये ये रोग उनमें मनुष्योंसे जादे होते हैं। भोजन पकानेमें कृमियोंके अंडे नष्ट हो जाते हैं। पर जो पशु चराये जाते हैं या सूखा चारा पाते हैं उनकी देहमें कृमियोंके अंडे या अर्भक चले जाते हैं। दूषित जल पीनेसे भी ढोरके पेटमें अंडे चले जाते हैं। उनमेंसे कुछ जैसे कि, अंकुशा (हुक वर्म) त्वचामें धँस अपनी पसन्दके अवयवमें रहती और उत्पात मचाती है।

कृमियाँ श्लैष्मिक कलामें घुस वहाँ जलन पैदा करती हैं। अंकुशवाली कृमियाँ प्रायः तन्तुओंमें गहरे धँसती है। वह आँतोंकी दीवालमें छेद कर उदरावरण-प्रदाह

(peritonitis) पैदा कर सकती हैं। उनमें बड़ी कृमियाँ एकत्रित होकर गोल गांठे बन जा सकती हैं जिससे अन्त्रावरोध होता है। कभी कभी वह पित्तकी नलीमें पहुँच उसे बन्द कर देती हैं जिससे पेटमें दर्द और कभी मृत्यु भी हो जाती है।

पशुके अन्त्रमें शरीर-पोषणके निमित्त तैयार किया हुआ पोषक पदार्थ वे चूस लेती हैं। इससे पशुको दुष्पोषण, रक्ताल्पता और दुबलापन होता है। वे पशु-शरीरमें विष छोडते हैं जिससे सारी देहमें विष व्याप्त होता और कठिन रक्ताल्पता भी होती है। अनेक कृमियोंके कारण झिल्लियोंमें खरोंटें हो जाती हैं जिससे जीवाणुकी छूत लगनेका रास्ता साफ होता है।

परोपजीवी कृमियोंका जीवनचरित्र जटिल होता है। उनके जीवनका कुछ भाग पशुदेहके भीतर बीतता है। सयानी कृमि प्रायः पशुदेहके भीतर रहते समय ही अंडा देती है। अडे मलके साथ बाहर निकल आते हैं। यदि वह फेफड़ेमें हुए तो कफके साथ निकलते हैं। इस तरह अडे धरती पर आ जाते हैं। नमी, गर्मी और छायाकी अनुकूल अवस्थामें उनके अडे पुष्ट होकर फूटते हैं और उनसे निकले भ्रूण, अर्भककी दो या अधिक अवस्थाएँ धरती पर ही बिताते हैं। इसके बाद वह घासकी पत्तियोंपर चढ़ अपनेको दृढ आवरणसे ढक लेते हैं। इस अवस्थामें वह बहुत कुछ मौसम आदिके बाहरी आघातसे बच जाते हैं। अडेसे निकलनेके लगभग १० दिनके बाद इस अवस्थामें वह वर्षभर या अधिक भी रह सकते हैं जब तक कि, कोई पशु चरता हुआ उन्हें भी निगल जाय। इसके बाद उनमें नयी जीवनी क्रिया शुरू होकर उनका नया रूप होता है।

कुछ कृमियोंको घोंघा या मछली आदि अन्य जतुओंमे दो या अधिक अवस्थाएँ तय करनी होती हैं। तब वह पशुके शरीरमे जाने योग्य होती हैं। जैसे कि, यकृत-कृमि (liver fluke) के भ्रूण कुछ जातिके घोंघेमें चले जाते हैं और उनमेंसे बेंगचूर या बेंगची (tadpole) जैसी आकृतिमें निकल पानोमें तैरते हैं। उन्हें जब कोई घासकी पत्ती मिलती तब उनमें चिपक जाते हैं और पूँछें झड़ जाती हैं। तब कोई चरता पशु उन्हें घासके साथ पेटमें पहुँचा देता है अथवा सूखी घास काटकर जब पशुको खिलायी जाती है तब वह उसके साथ पशुके पेटमें जाते हैं। यहाँ क्रमसे उनकी कई अवस्थायें होती हैं। इसके बाद प्रजनन शक्ति-सम्पन्न सयाने जीव बन जाते हैं।

अकुशा जैसे कुछ कृमियोंके अडे मलके साथ बाहर निकल आते है। धरती पर आनेके बाद अनुकूल परिस्थितिमे वह पुष्ट होकर फूटते हैं और उनमे से अर्भक निकल कर पशुके पैरपर रेंगकर चढ़ते और चमडेमे घुस जाते हैं। वहांसे देहके विभिन्न भागोंमे घूमते हुये अपनी पसन्दके अगमे पहुँचते हैं। अकुशा ग्रहणी पसन्द करती है। पशुकी अकुशा इस मामलेमे मनुष्यके इस परोपजीवीके जैसी है। वह चमडेमें होकर इसी तरह आँतमे पहुंचती है। विभिन्न परोपजीवियोंका जीवन-चक्र पूरा करनेका विभिन्न रास्ता है। इनमेसे कुछका वर्णन आगे किया जायगा।

पशुपालक इन परोपजीवियोंके जीवन-चक्र और कार्यप्रणालीके बारेमें जानें। जिससे कि जहांतक हो सके वह इनकी छूतसे अपने पशुओंको बचानेका उपाय कर सकें। साधारण तौर पर सयाने पशुओंकी देहमें इन परोपजीवियोंकी छूत रहती है पर दलित अवस्थामे। उनके गोबरके साथ उनके अडे बाहर होते है। गोचरमें ये अडे भरे रहते हैं। ऊँची और सूखी जमीन पर कड़ी धूपमे वह जल्दी नष्ट हो जा सकते हैं। पर भीगी धरतीमे गरम मौसममें वह पुष्ट होकर फूट पड़ते हैं।

जितनी कृमियाँ देहमे प्रवेश कर सकी हैं उसीके अनुसार उत्पात होता है। यदि पेटमे उनकी बड़ी सख्या पहुँच जाय तो उससे बडी नुकसानी होती है। कुछके पास हानि पहुँचानेके साधन पहले से ही होते है। खासकर बडी और अकुश वाली कृमियोंके पास। छोटी जैसी कि, अकुशा यदि बडी सख्यामें हो तो नित्य बहुत खूनकी हानि करती और उसी मात्रामें विष पैदा करती है।

स्वच्छ पानी पिलाना, जिस जलाशयमे पशु पानी पीते हो उनके घोंघे आदि साफ कर देना, जिस गोचर या चारेमे जाडे छूत मानी जाती हो उससे बचना ये रोगोंसे बचने या कम करनेके कुछ उपाय हैं।

ऐसे कृमिघ्न या विष पाये गये है। पर ये दवायें तो विष है इसलिये इनका उपयोग सावधानीसे करना चाहिये। जो वस्तु परोपजीवीको मार सकती है वह मेजवान पशुके ततुकी क्षति कर सकती या उसको विषाक्त कर सकती है। कृमियोंसे छुटकारा पानेका कोई सुगम उपाय नहीं है। सबसे अच्छा उपाय सावधान रहना और इनकी वृद्धि और रहन सहन की मोटी मोटी बातें जानकर जहांतक हो सके जोखिमसे बचना है।

हर वर्गके परोपजीवियोंको मारनेके लिये जो साधारण कृमिघ्न पाये गये हैं वह ये हैं :—तूतिया, कमला या कबीला, तमाकूकी बुकनी। ये सहज प्राप्य और

बहुत सस्ती चीजें हैं। यहाँ यह कहना जरूरी है कि, छूत लगने पर दवा करनेकी अपेक्षा कृमियोंसे बचने पर जादे जोर देना अच्छा है।

इंडियन काउन्सिल ऑफ एग्रिकल्चरल रिसर्चके आदेशसे पंजाब भेटेरिनरी कॉलेजमें कुछ कृमियोंपर भिन्न भिन्न दवाओंके असरकी जाँच की गयी। इसका परिणाम श्रीकरमचन्दने लिखा है। (इंडियन जर्नल ऑफ भेटेरिनरी साइन्स एन्ड एनिमल हस्बैन्डरी, सितम्बर १९३९, पृ० २८७)

पंजाबमें नहरोंके बढ़नेसे परोपजीवीजनित रोग काफी जादे होने लगे हैं। बच्चे कम पैदा होने लगे, दूध घट गया, और रोग प्रतिरोध-शक्ति दिन दिन घटी है। कृमिग्रस्त पशु सुस्थ पशुकी तरह कठिन परिश्रम नहीं कर सके।

२४ बछरू और २४ भेड़ोंको तारकृमि (वायर वर्म या हेमोंकस कोन्टरकस) और गाँठकृमि (नोडुलर वर्म या इसोफैगोस्टोमम) के अर्भकोंसे छूत लगायी गयी। इनपर प्रयोग करनेके लिये औषधियाँ चुनी गयीं। यह पाया गया कि, छूत लगानेके प्रायः २० दिन बाद खास कर भेड़ोंके मलमें निकले अंडोंकी संख्या बहुत बढ़ गयी। भेड़का जबड़ा जकड़ गया और कमर टेढ़ी हो गयी। कुछ पशुओंकी आँखे खराब होने लगीं और दो महीनेमें अन्धापन होने लगा। इन कृमियोंके कारण कुछ बछरू और अधिकांश भेड़ें मर गयीं। इस तरह यह कहा जा सकता है कि, इसमें असाधारण कुछ नहीं है। गाँठ-कृमि छोटी और गोल कृमि है। खून चूसनेकी इसकी सामर्थ्य बढी चढी है। यदि ये आँतोंमें बड़ी संख्यामें रहें तो पशु बहुत दिन नहीं जी सकता। वह रक्ताल्पतासे मर जाता है।

इन छूतग्रस्त पशुओंपर नीचे लिखी औषधियोंकी क्रिया देखनेका प्रयोग हुआ था :—

(क) **एक औषधि :** १. बूटी फ्रोन्डोसाकी बुकनी, २. तूतिया, ३. कबीला, ४. खरबूजेका बीज, ५. अकंटक थूहर (spineless cactus), ६. तारपीनका तेल, ७. भरनोनियाँ एन्थलमिटिका।

(ख) **मिश्र औषधि :** १ बूटीके साथ कबीला, २. बूटीके साथ एम्बेलिया, ३. कबीलाके साथ तूतिया, ४. सोडियम आर्सेनाइटके साथ तूतिया, ५ फेरस सल्फेटके साथ मुसब्बर, ६. पोटाशियम एन्टीमोनी टारटरेटके साथ फेरस सल्फेट।

इन सबमें कबीलाके साथ तूतियाका योग सबसे बढ़िया सिद्ध हुआ। तूतिया कृमिघ्न तो है ही और पश्चात-आशय (चतुर्थ पाकस्थली) में सीधा चला जा सकता है और अपने साथ कबीलाको भी ले जा सकता है। इसलिये इन दोनों औषधियोंके योग

दुष्ट परोपजीवियोंपर सीधा वार करते हैं। यदि ये पहले और बहुत से पदार्थोंके साथ प्रथम पाकस्थली या पेटमें गये होते तो इनका लाभ कम हो जाता। कबीला कृमिघ्न तो है ही विरेचक भी है। इसलिये मरी और मूर्छित कृमियोंके साथ तूतियासे मरीको भी निकाल देती है। दोनों ही सस्ती हैं। प्रयोगसे सिद्ध हुआ है कि यह योग ९० सैकडा लाभप्रद है।

लेखमें बछरू और भेड़ोंको दी गयी मात्राकी चर्चा नहीं है। पर साधारण मात्रायें नीचे लिखी हैं :—

१. तूतिया—पशुके आकारके अनुसार १ सैकडा घोल ३ से १० आउन्स प्रति मात्रा।

२. कबीला—५०० रत्तल तौलके पशुको मटके साथ ½ आउन्स।

चिकित्सा करनेका सर्वोत्तम उपाय पशुको ३६ घंटेका उपवास कराना है। तब जुलाब (विरेचक) के रूपमें एक मात्रा मुसब्बर पहले दो। इसके बाद कृमिघ्न दो और फिर एक मात्रा विरेचन दो। कबीला देने पर यह विरेचन देना अनावश्यक है।

तमाकूके पत्तेकी बुकनीका १ सैकड़ा अर्क ३ से १० आउन्सकी मात्रामें ढोरके लिये सस्ती और भरोसेकी कृमिघ्न दवा है।

दूसरी दवायें जैसे कारबन टेट्राक्लोराइड या चेनापोडियमके तेल का असर जहरीला होता है। इसलिये यह काममें नहीं लाया जाय। मुसब्बरके बदले हर्रे बड़ी अच्छी चीज है। यह मुसब्बरकी तरह मरोड़े भी नहीं लाती। विरेचनके लिये हर्रेकी बुकनी एक बार आठ आउन्स दी जा सकती है। हर्रे स्वय भी कृमिघ्न है। हर्रे, तूतिया, कबीला और तमाकू की सहायतासे लगभग सभी तरहकी कृमियां पेटसे भगायी जा सकती हैं। पशुके आकार और हालतके अनुसार बुद्धिपूर्वक मात्रा स्थिर करनी चाहिये।

१४०७. ढोरोंको आक्रमण करनेवाली कृमियाँ

ढोर और अन्य पशु तथा मनुष्योंमें होनेवाली कृमियाँ तीन वर्गोंमें बँटी जाती हैं :

(१) पट्टिका या टुकड़ोंवाली या फीता-कृमि (टेप वर्मस् या सेस्टोड्स्)।
(२) चिपटा या यकृत-कृमि (फ्लैट वर्मस्, लिभर फ्ल्यूक्स या ट्रेमाटोड्स)।
(३) केंचुवा (राउन्ड वर्मस् या नेमाटोड्स), इनमेंसे कुछ जादे प्रसिद्ध हैं।

१४०६. पट्टिका या फीता-कृमि (Tape Worms)

सयानी पट्टिका मामूली तौर पर केवल आंतोंमें ही पायी जाती है। इसकी रचना एक सिर और वहुतसे जुड़े टुकड़ोंकी एक सांकलसी होती है। सिरमें एक या दो चुसनियां होती हैं। इन्हींके द्वारा यह चिपकती हैं। किसीमें चुसनीके अलावा अंकुशभी होते हैं। इस कृमिके शरीरमें वास्तवमें दो भाग होते हैं।
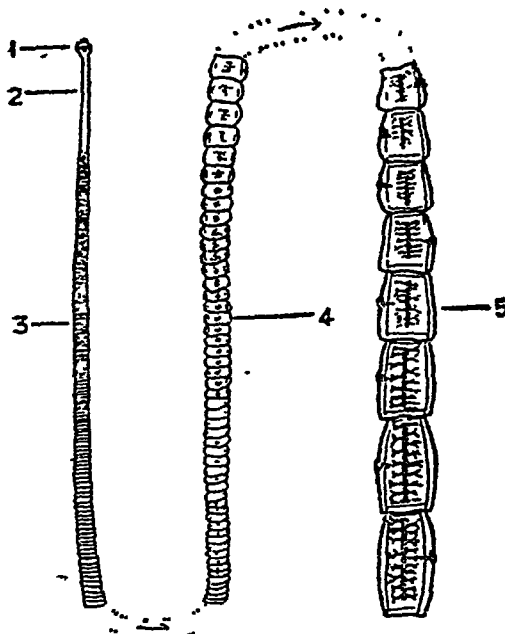
चित्र १६७.
पट्टिका या फीता कृमि।
1—सिर, 2—वर्धन भाग, 3—अप्रौढ टुकड़े, 4—प्रौढ टुकड़े, 5—डिम्बीय टुकड़े।

(क) चुसनी सहित सिर और किसी किसी को अंकुश, तथा (ख) पिछला या वर्धनशील भाग। इसमें नये टुकड़ोंकी कलियां वरावर निकलती रहती हैं।

हरेक टुकड़ेमें नर और मादाकी पूरी जननेन्द्रियां और गर्भाशय होता है। सिरके पास, पर वर्धनशील भागके ठीक ऊपर के टुकड़ोंमें ये इन्द्रियां विकसित

नहीं रहतीं इसलिये उन्हें 'अप्रौढ' टुकड़े कहते हैं। इनके नीचे कृमिके पिछले भागके आधेमें 'प्रौढ़' टुकड़े होते हैं इसके बाद डिम्बीय भाग होता है, जिसमें अंडे रहते हैं। पर अप्रौढ़, प्रौढ और डिम्बीय भागकी कोई स्पष्ट सीमा नहीं है। वृद्धि की अवस्थामें एक वर्ग दूसरेमें निमग्न होता रहता है। इन कृमियोंको सिर और जननेन्द्रियाँ होती हैं पर आँतें नहीं होतीं।

पशु शरीरके बाहर केवल सिरोभाग ही होता है। यह अर्भक अवस्थामें एक झिल्लीदार थैलीके भीतर धरती या घास पर पड़ा रहता है। पशु इसे खा लेता है। आँतोंमें घुसने पर झिल्लीदार थैली गल जाती है, और वह सिर आँतकी दीवालमें चिपक जाता है और पोषकद्रव्य चूसना शुरू करता है। यह बढ़ने लगता है और इसमेंसे टुकड़ोंकी कलियाँ फूटने लगती हैं। लंबाई सिरसे शुरू होती है इसलिये जो पहला टुकडा था वह दूसरा फिर तीसरा और तब अंतिम बन जाता है। डिम्बीय भागमें जननेन्द्रियाँ जब अपना काम कर चुकती हैं तब वे निष्प्राण हो जाती हैं और तब वह भाग पेशियोंकी दीवालमात्र रह जाता है जिसमें जरायुकी थैलीके भीतर अंडे भरे रहते हैं। इस अवस्थामें टुकडा फटता है। जिससे आँतोंमें अंडे फैल जाते हैं। तब कृमिशरीरसे टुकड़ा झड़ जाता है अंडे और टुकड़े मलके साथ बाहर आ जाते हैं। कभी कभी ऐसा होता है कि, एक नहीं दस बीस टुकड़े एक साथ बाहर निकलते हैं।

साधारण तौर पर अंडोंमें कोषोंकी एक गोली होती है। बहुतसी जातियोंकी पट्टियों या फीता-कृमियोंके अंडे निगले जानेके लिये तैयार रहते हैं। ढोर, भेड़ या अन्य पशु चरते समय इन अंडोंको निगल जाते हैं। आँतोंमें जाकर भ्रूण अंडोंसे निकलते हैं। भ्रूण आँतकी श्लैष्मिक कलामें छेदकर किसी लसीका या रक्त वाहिनीमें पहुँचता है। तब वह शरीरखातमें ले जाया जाता है, वहां उनके अंकुश झड जाते हैं और उसका रूप बदल जाता है। इसे थैली (सीस्ट) अवस्था कहते हैं। इस अवस्थामें वह पेशियोंमें रहता है। जिस मासमें यह थैली हो, उसे जब कोई कुत्ता या सूअर खा जाता है तब जिस थैलीमें अर्भक अवस्थाका सिर भाग होता है उसमें से अर्भक निकलता है। यह श्लैष्मिक कलामें छेद कर घुस जाता है। तब इससे सयाना परोपजीवी तैयार होता है।

पर पट्टियों या फीताकृमियोंकी प्रजोत्पत्ति हर हालतमें इसी तरह नहीं होती। मनुष्य और कुत्तेको होनेवाली पट्टी ठीक ऊपर वर्णित की तरह है। आदमी या

चित्र १९८. पट्टिकाका जीवनचक्र।

मनुष्यमें सयानी कृमि।

मनुष्यके मलमें अंडे।

गायने उन अन्डोंको खाया।

वह अंडे गायके मांसमें थैलीके रूपमें हो जाते हैं।

थैलीकृमिपूर्ण गायका मास काफी सिम्काये विना खानेसे आदमीके पेटमें उससे सयानी पट्टिका वन जाती है।

(साउथवेल और कृशनरके अनुसार)

कुत्तेकी आँतसे निकले अडे घासके साथ गाय खा जाती है। अडोंसे थैली बन जाती है और गायकी मृत्युतक उसकी पेशियोंमें रहती है। मृत्युके बाद थैली सहित मास जब कुत्ता खाता है तब उसमेंसे अर्भक या ढोले निकलते हैं जो पट्टिका बन जाते हैं। जिस पशुके मासमें थैली हो उसे काटकर पूरी तरह सिम्झाये बिना यदि आदमी खाय तो थैली जीवित अवस्थामें आदमीकी देहमें पहुँच जाती है जो बादमें उसकी आँतमें पट्टिका बन जाती है।

पर यह अभी ठीक नहीं मालूम हुआ है कि, ढोरको छूत कैसे लगती है। ऊपरके चित्रमें थैलीभरा मास खानेसे आदमी, कुत्ता या अन्य मासभोजी पशुओंको छूत कैसे लगती है दिखाया गया है। गाय या भेड़ थैली भरा मास खायगी यह सभव नहीं। ढोर और भेड़को कई तरहकी पट्टियाँ जैसे चूलिका (मोनिजिया) की छूत लगती है।

ऐसा समझा जाता है कि, पशुओंके मलसे निकले अडे आँतमें पहुँच जाते हैं, वहाँ उनसे सीधे सयानी पट्टिका बन जाती है अथवा ढोरके शरीरमें पहले उनकी थैली बनती है और यह थैली अर्भक में परिणत हो जाती है।

१४०७. पट्टिका या फीता-कृमि

(क) चूसिका (moniegia)

चूसिका एनोप्लोसेफालिडी (anoplocephalidae) वशकी है। इस पट्टिकाके सिरमें केवल चुसनियाँ होती हैं अकुश नहीं होता। टुकड़े लबेसे ज्यादे

चित्र १६९.
चूसिकाका सिर।
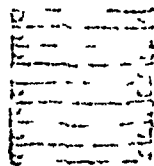
चित्र १७०.
चूसिका : प्रौढ टुकड़ा।

चौडे होते हैं। साधारण तौर पर प्रत्येक टुकडेमें दोनों जननेन्द्रियोंका जोड़ा होता है।

सभी चूसिका पट्टिका बडी और मांसल होती हैं। वह बहुधा कई गज लंबी और लगभग तीन चौथाई इंच चौडी होती हैं।

चूसिका पट्टिकाका जीवन ७० दिनसे वर्ष भर समझा जाता है।

पशुओंकी पट्टिका उतनी भयकर नहीं है इसलिये उनका महत्व अधिक नहीं है।

१४०८. चिपटी या यकृत-कृमि (Flat Worms)

ये कृमियां साधारण तौर पर पत्राकार या दडाकर होती हैं। सयानीके एकही शरीरमें दोनों लिंग होते हैं। ये उभयलिंगी हैं। इन्हें आंत होती है पर गुदा नहीं। सयानी कृमियोंको चुसनियां होती हैं। इन्हींके सहारे वह किसीके शरीरसे चिपकती हैं। इनमेंसे कुछके अर्भकोंका पूर्ण विकास घोंघेमें होता है। रीढवाले पशुमें रह प्रौढ़ होनेके पहले कुछके अर्भक अन्य जीवोंमें विकासकी कुछ अवस्था विताते हैं। अन्डे प्रायः टोपीदार होते हैं। ये प्रायः भूरे, पीले होते हैं। पुष्ट होने पर इनमेंसे अर्भक निकल पानीमें आ जाते हैं। किसी किसीके जैसे कि, पित्तिया (फैस्सिओला) के अन्डेमें फलाया हुआ अविभाजित डिम्ब होता है। तैरनेवाला अर्भक अनुकूल परिस्थिति होने पर पीछे विकसित होता है।

१४०९. चिपटी या यकृत-कृमि
(क) पित्तिया (Fasciola Hepatica)

दुनियांभरके ढोर और दूसरे शाकभुकोंकी पित्तनलीमें सयानी पित्तिया कृमि रहती हैं। इनके कारण यकृत सड़ता है। यह कठिन रोग है, इससे बहुत हानि होती है।

कृमियां चिपटी और भूरी होती हैं। १$\frac{1}{2}$ इंच लंबी और लगभग $\frac{1}{2}$ इंच चौडी होती हैं। ये कृमियां पित्तनलीमें रह अंडे देती हैं जो आंतोंमें चले आते और मलके साथ बाहर निकलते हैं। पानीमें अनुकूल स्थितिमें एक या दो महीनेमें इनसे अर्भक निकलते हैं। ये बहुत दिनोंतक तन्द्रा अवस्थामें रह सकते हैं। पानपत्ती (miracidium-अर्भक) कुछ देर तैरती और फिर किसी घोंघेमें घुस जाती

है, उसीमें कई अवस्थामें पार कर निकल आती है और थैली बन घासकी पत्तीसे चिपकती है। जब शाकभुकके पेटमें पहुँचती है तब थैलीका आवरण पच जाता है और अर्भक निकल कर आंत और आंतकी उदर-कलाके खातसे होकर सीधे यकृतमें पहुँचता है। यह पित्तनलिकामें लगभग ९ महीने रहता है।

पित्तनलीमें इसके रहनेके कारण वह फैल जाती हैं और विकृत होती हैं और अनमें नलीमें फाइब्रोसिस होता है। पित्तका प्रवाह रोक कर यह कामला या पाडु रोग पैदा करता है। तरुण पशुओंकी उदरकला पार करते समय यह उदर्यांप्रदाह (पेरिटोनाइटिस) रोग पैदा कर सकता है।

चित्र १७१. पित्तिया।

चित्र १७२. पित्तियाके अन्डे।

चित्र १७३. घोंघा।

ग्रसित पशुके लक्षण बढ़ती कमजोरी, दुबलापन और तज्जनित कब्जियत है। अणुवीक्षण परीक्षामें अंडे मिलें तो निदान पक्का हो जाता है।

पित्तियाके और प्रकार भी हैं। पर उनका जीवन-क्रम और छूत फैलानेका ढंग साधारण तौर पर समान है। इनकी छूत यों रोकी जा सकती है :—

(१) नहर, पोखर आदि जलाशयोंमें मलका नहीं जाने देना,

(२) पानीमें तूतिया डालकर या अन्य उपायोंसे घोंघे मार डालना। पानीके ऊपर तूतियाके घोलकी फुहार छोड़ना जिससे कि २० रत्तल तूतिया १ एकड़में छा जाय, यह भी एक उपाय है। पर इसे काममें लाना असंभव है।

चित्र १७४. पित्तियाका जीवनचक्र।

भेड़की पित्तिया।

मलमें निकला अन्डा।

अन्डेसे निकली पानपत्ती (अर्भक)।

घोंघेमें पानपत्ती रेणु-थैली वनती है।

रेणु-थैली घोघेमें अनेक सलाइयाँ (rediae) पैदा करती है।

पुत्री सलाई अनेक छुतही तुरइयाँ (cercariae) घोघेमें पैदा करती हैं।

तुरई घोंघेसे निकल घासकी पत्तीमें थैली वन चिपकती है और उसीके साथ ढोरके पेटमें जाती है।

(साउथवेल और क्र्शनरके अनुसार)

छूत लगनेके वाद यदि पशु एक वर्ष जीता रहे तो पित्तियाकी सहज मृत्यु हो जाती है। शिरामें एन्टीमनी टारटरेटकी सूई लगानेसे कुछ पित्तियोंमें फायदा होता है। इसे वार वार देना होता है।

१४१०. चिपटी या यकृत-कृमि

(ख) नकपितिया : (Schistosoma)

नैसल ग्रेनुलोमा या नैसल स्किस्टोसोमोसिस ।

यह रोग नकपितियाके कारण होता है जो चिपटी वर्गका परोपजीवी है। इसके स्त्री पुरुष अलग अलग होते हैं। स्त्री साधारण तौर पर पुरुष शरीरके किसी दरार (groove) में रहती है। अडे पानीमें पुष्ट होते हैं। और घोंघेसे पार होने पर ये दँताली पूछके साथ अर्भक या ढोरके विकासकी चरम अवस्था पर पहुँच जाते हैं।

अर्भक घोंघेसे निकल पानीमें तैरते रहते हैं। ऐसा पानी पीनेसे छूत लगती है। पशुके जिस अंगका चमड़ा पानीके ससर्गमें आता है उसमें ये चिपक जाते हैं। यहाँ आकर उनकी पूँछ झड़ जाती है और वह भीतर रक्तस्रोतमें घुस जाते हैं। यहाँसे वे प्रतिहारिणी महा-शिरामें जाते हैं और विकसित होकर सयाने परोपजीवी हो जाते हैं। यह समझा जाता है कि, ये परोपजीवी बहुत हानि नहीं करते। हानि उनके अडे करते हैं। अडे रक्तस्रोतमें घूमते रहते हैं और अपने तेज काँटेसे छेदकर बाहर निकल जाते हैं। इससे जलन और घाव होते हैं।

ढोरकी नाकमें नकपितियाके अडे नाककी झिल्लीकी शिराओंमें रहते हैं। वहाँ उनके कारण दानेदार व्रण निकलते हैं। नाकसे रेंट चलती है और नाक बन्द हो जाती है।

पुरः कपालस्थित खात और नाकमें अर्बुदाकार बड़े बड़े पिंड हो जाते हैं। वह इतने बड़े हो सकते हैं कि, साँस रुके। वह गलेकी ओर अगल बगल भी पसरते हैं जिससे आँखके कोये फूल जाते हैं।

चिकित्सा : टारटर एमेटिक या सोडियम एन्टिमनी टारटरेटके घोलकी शिरामें सूई इसकी चिकित्सा है। पिछली दवा कम विषैली है।

शिरामें ३ सैकड़ा घोलकी सूई एक बारमें २५ से ४० सैकड़ा दी जाती है। सप्ताहमें ५ से १० सूई या सप्ताहमें दो देनी होती हैं।

चित्र १७५. नकपितियाका जीवनचक्र।

ढोरकी नकपितिया।

मलमें अन्डे।

अन्डेसे निकल पानपत्ती पानीमें जाती है।

पानपत्ती घोंघेमें रेणु-थैली बनती है।

पुत्री रेणु-थैली घोंघेमें तुरइयां बनाती है।
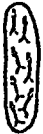
तुरइयां घोंघेसे निकल पानीमें चली जाती हैं।

तुरइयां ढोरके चमड़ेमें ढुक जाती और वहां प्रत्येक सयानी कृमि बनती हैं।

(साउथवेल और कृशनरके अनुसार)

१४११. केंचुवा कृमि (Round Worms)

(क) लताकार कृमि (Ascarides)

लताकार : यह कृमि मनुष्यों और विशेषकर बालकोंमें होनेवाली केंचुवाकी तरह है। यह ज्यादातर तरुण पशुओंमें होती है। दो से तीन महीनेकी उमरवाले बछरुओंको ज्यादे होती है। केंचुवा अपेक्षाकृत बड़ी, चिकनी, लम्बी कृमि है। इसका सिर छोटा और ओठ चिकने या दांतदार होते हैं। अंडेमें डिम्ब होता है। डिम्ब विभाजित होकर कुछ सप्ताहमें अर्भक बन जाता है। अर्भकयुक्त अंडा मलके साथ निकलता है। गायके गोबरमें निकले अंडेसे दूषित थन पीनेसे बछरूको छूत लग सकती है।

लताकार केंचुवाके कारण दुबलापन, अतिसार और कब्ज होता है। सब अंडे मिलकर गोलीसे बन जा सकते हैं। इससे आबद्धता पैदा हो सकती है। मलकी अणुवीक्षण परीक्षासे इसके विचित्र अंडोंका पता चलता है।

इस कृमिके लिये हर्रका विरेचन अच्छा है। तूनिया और कबीला देना भी लाभदायक है। एमेटिक टारटर भी फायदा करता है।

टारटर एमेटिक .. ६० ग्रेन।
पानी ... ४ आउन्स।

घोलो। हर ३ या ४ घंटे पर बछरूको दो ड्राम दूधके साथ दो। जबतक सब केंचुवे निकल न जायँ देते रहो। इसके बाद हर्रका जुलाब दो।
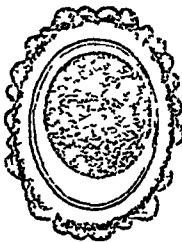
चित्र १७६. लताकार कृमि।

चित्र १७७. लताकार कृमिका अन्डा।

१४१२. केंचुवा कृमि

(ख) छोटे केंचुवे (Strongyles or Small Round Worms)

छोटे केंचुवे वहुत छोटी सूई की तरह होते हैं। कभी कभी ये इतने छोटे होते हैं कि, मुश्किलसे देखे जाते हैं और कभी कभी बड़े। कभी कभी आंतमें
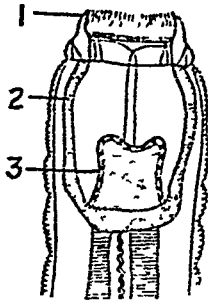
चित्र १७८. छोटे केंचुवे।

1—पत्र मकुट,
2—गालकी मिल्ली.
3—दांत।

इसके कारण वड़ी जलन होती है। इनके कारण अनपच, छीजन, अतिसार और रक्ताल्पता भी होती है। तरुण पशुओंको यह कृमि वहुत होती है, जिससे वे थोडे दिनमें ही प्रायः मर भी जाते हैं। भेड वकरीकी अपेक्षा ढोर इसके कम ग्रहणशील हैं।

१४१३. छोटे केंचुवे

(क) अंकुशा (Ancylostomes or Hook-worms)

यह मनुष्योंको होनेवाली अंकुशा की तरह है। यह लगभग तीन चौथाई इञ्च लंबी होती है। यह ग्रहणीमें अंकुशके सहारे चिपकती और रक्त चूसकर
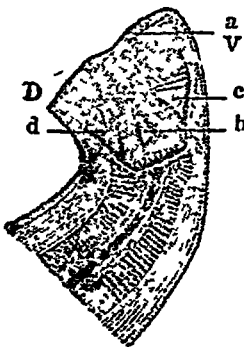
चित्र १७९. अंकुशाका मुँह (वर्धित)।

D—पीठ, V—पेट,
a—मुँहका किनारा,
b—पीठकी ओरका नुकीला दांत,
c और d—वगलके दांतके जोडे।

रक्ताल्पता पैदा करती है। ये अंडे वहाँ छोड़ती है जो मलके साथ बाहर आते हैं। अणुवीक्षण यन्त्रमें देखनेमें अंडे विशेष तरहके मालूम होते हैं। जिसमें अंडे हों ऐसा

चित्र १८०. अकुशाका अन्डा।

चारा पानी खाने पीनेसे छूत लगती है। कुछका कहना है कि, चमड़ेकी राह अर्भक छूत लगाता है। इनके कारण पाचनकी गड़बड़ी और रक्ताल्पता होती है।
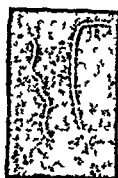
चित्र १८१.
अकुशाका वास्तविक आकार।
दाहिना—मादा ; बायाँ—नर।

ये अर्भक या अंडे ऐङ्क्लोस्टोमके नामसे प्रसिद्ध हैं। और इनकी खास कृमिका नाम बुनोस्टोमम है।

१४१४. छोटे केंचुवे

(ख) गाँठ कृमि (Œsophagostomes or Nodular Worms)

ये भी छोटे केंचुवे वर्गकी हैं। ये १ इंचके लगभग लम्बी और आँतमें रहती हैं। ये एक जगह बहुत जमा होकर हानि पहुँचाती हैं। यह तन्तुओंमें स्वयं चेष्टित जलन पैदा करती हैं। इनके कारण रासायनिक कृमि-अर्बुद (गाँठे) बनते हैं। इनके कारण श्लैष्मिक झिल्लीका प्रदाह होता है। कभी कभी ये आँतकी दीवाल छेदकर निकल जाते हैं जिससे उदर्याप्रदाह होता है। उचित कृमिघ्न खोजनेके पंजाबी प्रयोगमें बछरुओंको कृत्रिम उपायसे छूत लगाकर

गांठक्रमिसे युक्त किया गया था। , अन्डेकी पहचान हो सकती है। इस तरह रोगका निदान होता है। (१४०४)
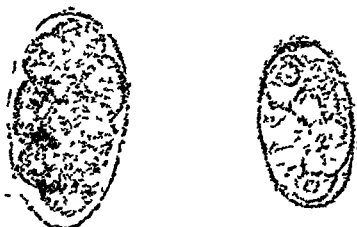
चित्र १८२. गांठ कृमिके अन्डे।

१४१५. छोटे केंचुवे

(ग) फुसफुसा कृमि (Lung Worm)

यह भी छोटे केंचुवे के वंशकी कृमि है जो ऊपरी स्वास-मार्गपर आक्रमण करती है जिससे वछरुओंको काश या ब्रोंको-निमोनियांके लक्षण प्रगट होते हैं। यह सब लम्बी, पतली और चिकनी सूता-कृमि हैं। साधारण तौर पर यह अन्डज है। इनकी माता इनसे आक्रान्त पशुकी देहमें भ्रूणयुक्त अन्डे देती है। खांसीके कफके साथ यह उस पशुके शरीरसे बाहर होती हैं। कफ प्रायः निगल लिया जाता है। इस तरह ये आंतोंमें पहुँच जाती हैं। मलके साथ बाहर निकलनेपर इनमें परिवर्तन होता है और यह एक खोलीमें वन्द हो जाती हैं। तब मुँहकी राह पशु-शरीरमें प्रवेश करती और प्रौढ होती हैं।

चित्र १८३. फुसफुसा कृमि और उसका अन्डा।

दलदलवाले और विशेपकर बाढमें डूबनेवाले गोचर इनसे सकुल रहते हैं। गोशालाका इनसे सकुलित होना भी सम्भव है। अपने विकासके लिये इनके कुछ प्रकार किसी मध्यवर्ती मेजवान जैसे कि, धरतीके केंचुवेमें घुस जाते हैं। तब केंचुवायुक्त चारेके साथ वे पशुके पेटमें पहुँचते हैं।

लक्षणका प्रारम्भ खांसीसे होता है। जो धीरे धीरे बहुत

होने लगती है। खांसनेमें पीडा होती और जीभ निकल पड़ती है, जिसपर कफमें कृमियां देखी जा सकती हैं। रोग धीरे धीरे बढ़ता है और अन्तमें दुबलापन और अतिसार होता है।

अधिक उमरके पशु प्रतिरोधी होते हैं। साधारण कृमिघ्नोंसे चिकित्सा की जाती है। उनके साथ किसी अन्य तेलमें मिलाकर तारपीनका तेल दिया जाता है।

तारपीनका तेल }
मूंगफलीका तेल } सम भाग

लस्साके साथ अवलेह बनाओ। बछड़को यह तेल-मिश्रण एक बारमें आध आउन्स दो।
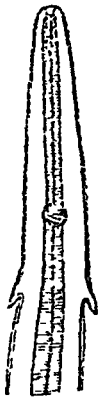
चित्र १८४.
तारकृमिका सिर।

१४१६ छोटे केंचुवे

(ब) तार-कृमि

(Contortus Hæmonchus or Wire Worm)

यह छोटे केंचुवे तारकृमि कहे जाते हैं। यह कृमि खून चूसनेवाली है। यह अचानक बहुत हो सकती है जिससे बछड़ मर सकता है। पैरा १४०५ में कहे पजाबीप्रयोगमें बछड़ और भेड़ोंमें यह कृमि भी डाली गयी थी।

अध्याय ४१

मुँहके रोग

१४१७. मुँहआना (निनावाँ) : मुखविवर प्रदाह (Stomatitis)

मुँह कई कारणोंसे आता है। जैसे कि, बहुत रुखड़ा चारा या सूँगवाले बीज चबानेसे। इस रोगमें जीभ और श्लैष्मिक कलामें क्षत होता है। कभी कभी चारे और सूँगवाले बीजके टुकड़े जीभमें या उसके तलेकी झिल्लीमें चुभ कर टूट जाते हैं। उससे जलन होती है। इससे हुए क्षतमें जीवाणु जाकर **कठजिभिया** (काष्ठ-जिह्वा) जैसे रोग पैदा कर सकते हैं। (१३६४)

छूतकी कई बीमारियाँ हैं जिनके कारण जीवाणु महास्रोतमें तो हनिकारक नहीं हैं पर क्षतमें जाकर उत्पात मचाते हैं। जीभ और मुँहकी झिल्लीके क्षतसे इनके उत्पातका अवसर रहता है।

क्षत और छाले गरम मड या अन्य गरम खाना खाने या गरम पानीके साथ दवा देने अथवा दवामें जलानेवाला कोई रासायनिक पदार्थ हो तो उससे हो जाते हैं। कुछ पौधोंके विषसे भी मुँहमें प्रदाह हो सकता है। यदि चारेके साथ रोएँदार इल्ली (भूआ पिल्ल) खा लिया जाय तो उससे भी मुँहमें प्रदाह हो जाता है। क्योंकि, उनके रोएँ छिदनेसे और उनकी देहके रासायनिक पदार्थसे जलन पैदा होती है।

मुँहके प्रदाह, कई बुखार, पेटके रोग और खुरपका तथा माता जैसे छूतवाले रोगोंके सूचक हो सकते हैं।

लक्षण : मुँह आने पर सूखा और हरा चारा खिलानेमें कठिनाई हो सकती है। मुँहमें लाल चकत्ते हो जाते हैं और एक मोटी श्लैष्मिक पर्त छा जाती है। मुँहकी झिल्ली सूज सकती है। जीभ सूज सकती है और उसपर दाँतके दाग दिखायी पड सकते हैं। क्षत और प्रदाहके कारण छोटे छोटे व्रण हो जा सकते हैं।

थूक वहुत निकलता है जो वहुधा सड़ जाता है और उसमें वदबू आती है।

मुँहका छाला : यह मुँहकी ऊपरी श्लैष्मिक कलाका प्रदाह है। इसमें छाले निकल आते हैं जिनमें साफ द्रव भरा रहता है।

मसूरसे लेकर मटरके बराबर छाले कठिन तालूपर और ओठोंके भीतर निकलते हैं। कई दिनमें ये फूट जाते हैं जिनके क्षत जल्दी ही भर जाते हैं। कभी कभी तालू और झिल्ली पर दाने निकल आते हैं छाले नहीं निकलते। इस तरहके रोगका नाम मुखगह्वर-प्रदाह (स्यूटोएफ्थॉस स्टोमैटाइटिस-Pseudoaphthous stomatitis) है।

चिकित्सा : इन रोगों (व्यूकल कैटार और स्टोमैटाइटिस) का कारण खोज उन्हें हटाना होता है। आहार हल्का, सुपच, भिटामिनयुक्त होना चाहिये, जैसे कि हरा रसीला चारा, दलिया, मड या लपसी।

कोई विजातीय पिंड हो तो छोटे चिमटेसे निकाल देना चाहिये। और यदि बेढंगे दाँतोंके कारण प्रदाह होता हो तो दाँतकी रेतीसे उसे ठीक कर देना चाहिये। यदि दाँत दोषपूर्ण हों तो उन्हें उखाड देना चाहिये।

मुँह किसी क्षोथघ्नसे वरावर धोया जाय :

(१)	नमक	...	१ आउन्स
	पानी	...	४ रत्तल।
(२)	थाइमल	...	१० ग्रेन
	बोरेक्स या सोहागा	...	१ ड्राम
	पानी	.	१ रत्तल।

यदि धोना कठिन हो तो यह घोल फाहेसे अच्छी तरह लगाओ।

जीर्ण प्रदाहमें क्षतोंपर सिलभर नाइट्रेटका, एक सैकड़ा घोल लगाना फायदा करता है।

१४१८. दूधपीतो (स्तनन्ध्यो) का मुँह आना

यह दूधपीते बछड़े और मेमनोंका रोग है। यह छूतका रोग है। श्लैष्मिक कला पर क्षतके चकत्ते होते हैं। इस पर पहले उजले रंगकी पर्त छा जाती है। इसके वाद भूरी या पिलोहीं। इन्हें साफ कर देने पर व्रण दिखायी देने लगते हैं।

लक्षण : प्रारम्भमें लार चलती और सूजन होती है और श्लैष्मिक कलापर लाली छा जाती है। इसके बाद ओठ, जीभके नीचे, जीभकी नोक और पार्श्व पर पर्दा जम जाता है। ओठोंकी कोरपर छोटे छाले निकलते हैं जो तुरत सूख जाते हैं और उनपर पपड़ी जम जाती है। थन पीनेकी रुचि नहीं रहती, भूख घट जाती और फिर दुबलापन होता है।

बलिष्ठ सुस्थ बछरूका कष्ट एक सप्ताहके बाद शमन हो जाता है। पर कमजोर बछरूके क्षत बढते रहते हैं जिनपर नये पर्दे जमते हैं और इसके बाद बड़े व्रण दिखाई देते हैं। इस अवस्थासे कई तरह की छूत लगनी शुरू होती है जिससे बछरू बहुत बड़ी सख्यामें मरते हैं।

सुस्थ दूधपीते या स्तनन्धय अलग कर दिये जांय और वत्सालय छूतरहित किया जाय।

चिकित्सा : निनावें की तरह मुँह बराबर कोथघ्नोंसे धोया जाय। इसके अलावे व्रणोंपर :—

सुहागेका लावा ... १ ड्राम
मधु ... ... जितना मिलानेसे पतला लेप बन सके।

यह लेप या पेन्ट दिनमें तीन बार लगाया जाय। लेप लगानेके पहले हलके टिंकचर आयडिनका फाहा लगाना अच्छा होगा।

१४१९. लाला-स्राव : थूक आना (Salivation)
(Ptylism = अतिशय लाला-स्राव)

जब मुँह या गलेमें प्रदाह होता है तो मुँहमें थूक आता है। कई औषधियाँ जसे आयडिन, पोरा और पिलोकारपिन (pilocarpin) के उपयोगसे अधिक थूक आ सकना है। थूक फेनकी तरह बहता है अथवा लारकी तरह चूता है।

चिकित्सा मूल कारणका पता लगाकर चिकित्सा करो।

१४२०. गलसुआ : कर्णमूल-प्रदाह (Mumps or Parotitis)

गलसुआ मनुष्यकी तरह ढोरमें मुख्य छूतके रूपमें नहीं होता। साधारण तौरपर कर्णमूलिक (पैरोटिक) ग्रन्थिके क्षतके कारण होता है। कठनिभियाके कारण

गौणरूपमें यह हो सकता है। पर ऐसा भी देखा गया है कि, वालकोंको गलसुआ होने पर साथ ही साथ ढोरमें यह मारीकी तरह फैलता है।

लक्षण : निचले जबड़ेके पास कर्णमूलिक ग्रन्थिकी जगह पर सूजन होती है। सूजनमें पीडा होती है और सावधानीसे चबाना होता है। कभी कभी सूजन पक जाती है। रोगका दौरा हल्का होता है। पकने पर भी फोटा फूटने और पीव वहनेसे रोग शान्त हो जाता है और घाव जल्दी भर जाता है।

चिकित्सा : १ या २ सैंकडा कारवोलिक एसिडके घोलसे शीतोपचार (ठंडीपट्टी-cold compress) करना चाहिये। लेप के लिये आयडिनका मलहम भी उपयोगी है। फोड़ा निकलने पर सेंकना और चीर-फाड भी बताया गया है। जीर्ण रोगमें आयडिनकी सूई शिरामें लगानी चाहिये। पोटाशियम आयोडाइड खिलाना चाहिये।

१४२१. अन्नवह या अन्नप्रणालीका अवरोध (Obstruction of the Œsophagus)

इस रोगमें आहारके घने पिंडसे अन्नवह या महास्रोतका प्राय. अवरोध हो जाता है। कभी कभी विजातीय पिंडोसे भी हो जाता है। कभी कभी रोमन्थाशयमें रोमन्थके लिये उगली आहार-सामग्री अन्नप्रणालीमें अटक सकती है।

लक्षण : निगलने और डकार लेनेका बराबर प्रयत्न रहता है। निगलनेके प्रयासमें पशु अपनी गरदन अगल बगल घुमाता, तानता और झुकाता है। वह अपना मुँह खोल जीभ बाहर निकालता और बहुतसी लार टपकाता है। प्राय वह खाता पीता नहीं। पर पीनेकी कुछ कोशिश करनेपर उगल देता है।

प्रायः ऐसा होता है कि, अटकाव अन्नवहके सुदूर छोर पर होता है। उसे आगे ठेलनेके लिये पशु और खाता है। इस तरह अन्नवह नालीकी पूरी लंबाईमें भोजन पदार्थ भर जाता है। आंशिक अवरोध होने पर थोड़ी मात्रामें ही भोजन पानी धीरे धीरे खाया पीया जा सकता है और वह पूराका पूरा भीतर चला जा सकता है। उगलाता नहीं है।

जब कोई विजातीय पिंड अटकता है तब अटकनेकी जगह पर हुई सूजनसे पहचाना जा सकता है।

अवरोधके बाद पेटमें बनी हवा जब बाहर नहीं निकलती तब पेट फूलता है

(१४२३) पेट फूलने पर अवरोध हटानेके लिये पशु और खाना निगलनेकी कोशिश करे तो अधूरा अवरोध पूरा हो जाता है।

दौरा : यदि किसी वाहरी पिंडके कारण अवरोध है तो वारवार डकारनेसे वह वाहर निकल सकता है अथवा निगलनेसे पेटमें पहुँच सकना है। तव पशुको हल्का लगता है। यदि वह चीज छोटी और चिकनी हुई तो उसके वाहर निकलने या निगले जानेकी पूरी सभावना रहती है पर बहुत वडी होने या कसकर अटकनेके कारण वह न तो वाहर होती या आगे सरकती है और पूरा अवरोध है तो पेट फूलनेसे पशु मर जाता है। क्योंकि इस हालतमें महाप्राचीरा या मध्य प्राचीरा हृदय और फेफड़ोंको दवाती है जिससे दम घुटने लगती है या रक्त सचार वन्द होना है। कुछ घटोंमें मृत्यु हो जाती है। कभी कभी क्लोम नलिका या श्वासनलिका इतनी दवती है कि दम घुटता है।

यदि अवरोध होनेके कई घंटे वाद मृत्यु इतनी जल्दी नहीं हुई तो अन्न प्रणाली सडना शुरू होती है जिससे पीव और छेद हो जाते हैं और अंतमें मृत्यु।

आहारका कौर जव अटकता है तव कुछ देरके वाद वह थूकसे मुलायम हो जा सकना है। और तव उपाय किये विना अपने आप ऊपर या नीचे सरक जा सकता है। पर यदि वह कड़ा या सूखा हुआ हो तो थूक सोखनेमें समय लगेगा। इससे प्रणाली फैल सकती या छेद हो जा सकते हैं। इसका परिणाम घातक होगा। छोटी नुकीली चीजें आसपासके नरम भागोंमें छेदकर उनमे घुस सकती हैं और वादमें कष्ट नहीं भी दे सकनी हैं।

चिकित्सा : यदि गलेके पासही अवरोध हुआ तो वह हाथ डालकर निकाला जा सकता है। पशुका मुँह खोलकर जीभ वाहर खींचकर पकड़ो। हो सके तो लम्बे हत्थेवाली दांतदार चिमटे या गोल वस्तु पकड़नेके लिये छल्लेदार गहुआ काममें लाओ। कोई मोड़ा हुआ तार अटकी चीजके उस ओर तक पैठाकर खींचनेसे भी उसे वाहर निकाल सकते हैं। निकालनेके लिये, वस्तु और स्थितिके अनुकूल उपाय करना होता है। जिस तरह रस्सीके फदेसे वोतलसे काग निकालते हैं उस तरह भी किया जा सकता है। उस स्थानको तेल या अच्छा हो, लस्सेसे चिकनाया जा सकता है।

अन्तिम उपायके तौर पर वमन करानेके लिये सूई भी दी जा सकती है। इस कामके लिये अटकावकी जगहके पास स्ट्रिकनीनकी सूई दी जा सकती है। इससे

प्रबल पेशी-सकोचके साथ वमन भी हो सकती है जिसके कारण अटकी चीज बाहर हो जाय।

यदि पेट फूलना शुरु हो जाय तो, अन्य उपाय अजमानेके लिये समय मिले इसलिये, रोमन्थाशयमें ब्रीहिमुख यन्त्र (trocar) से छेदा जा सकता है। इसकी प्रक्रिया पेट फूलना या वायुरोध प्रकरणमें आगे बतायी गयी है (१४२३)। यह भी हो सकता है कि, पेटमें रुकी हवा निकालनेके उद्योगमें अवरोध भी हट जाय।

अध्याय ४२

पेट और आँतोंके रोग

१४२२. वमन : कै (Emesis)

मुँह और नाकसे पेटकी चीजोंके निकलनेका नाम वमन है। यह वमनके प्रतिसक्रमकेन्द्रकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष उत्तेजनाके कारण होती है।

पशुओंको आहारकी वस्तु, दाहक औषधियों या वामककी क्रियाओं, पेटकी कृमियों या आमाशयव्रणके कारण पेटकी जलन से वमन होती है।

कुत्ते बिल्लियाँ गरदन तान कर जरा झुका, बड़ी सुगमतासे कै कर लेती हैं, पर ढोर को कठिन प्रयास करना पडता है। वमनके पहले कुछ अग्रसूचक लक्षण जैसे कि, मतली, बेचैनी, लाली निगलना, डकार आदि होते हैं। पशु लेटना और बेचैनीसे खडा होता है। कांपना और लम्बी सांस लेना या कराहता है। फिर प्रयत्न करके रोमन्थाशयकी द्रव या कुचली वस्तु मुँहसे निकालता है। इसके लिये उदरकी पेशियोंका सकोच होता है।

चिकित्सा : बहुधा कै द्वारा रोमन्थाशयके अवाञ्छनीय पदार्थोंसे मुक्ति मिलती है। इसलिये इसे होने देना और इसमें मदत करना चाहिये। जब बहुत जादे वमन हो और उसके रोकनेकी जरुरत हो तो नीचे लिखी दवा काममें लायी जा सकती है :—

(१) कपूर १½ ड्राम मडके साथ।

(२) क्लोरल हाइड्रेट १ आउन्स मडके साथ।

१४२३. पेट फूलना : वायुरोध (Tympanites)

वायु वढनेके कारण रोमन्थाशय और जालाशयके फूलनेसे दारुण रूपसे पेट फूलता है।

कारण : वहुधा सहज संधानीय (fermentable) हरा चारा, विशेषकर फलीदार, खानेसे यह होता है। चारेके पौधे ओस या मेहसे भीगे रहें तो हानिकारक हो सकते हैं। इसलिये सवेरेके समय चरनेसे यह रोग वहुत हुआ करता है। भीगे फलीदार चारे या रसीली घास चरनेके वाद पानी पीनेसे भी यह होता है। मुर्झाये या गरमाये हरे चारेसे भी पेट फूल सकना है। कुछ ऐसे पशु हैं जिन्हें यह आसानीसे हो जाता है। सहज संधानीय चारा वहुत खाने या अन्य कारण से अन्नवहके अवरोधसे भी वायुरोध हो जाता है।

वहुधा दाल, भात या रोटी खिलानेसे भी यह हो जाया करता है। ये चीजें ढोरको थोड़ी मात्रामें फायदेके साथ खिलायी जा सकती हैं। पर यदि चारेके साथ मिलाये विना ये चीजें खिलायी जाती हैं तो स्टार्चवाले भोजन या दालसे वायुरोध होता है। भोजके वाद वचा खाना पशुओंको खिलानेसे भयंकर घटनायें हो जाती हैं। प्रायः ऐसा होता है कि, कोई भूखा पशु वनी रसोई यदि पा लेता है तो ठूँस ठूँस कर खाता है जिसका नतीजा घातक होता है। पशुपालक सावधान रहें कि, ऐसी घटनायें न हों।

वायु या गैस तेजीसे वनती है इसलिये रोमन्थाशय और जालाशय फैल जाते हैं और रोमन्थाशयके अवरोधकी तरह लक्षण प्रगट होते हैं।

जव वायु या गैस भर जाती है तव फूलना शुरू होता है। वायु जितनी जादे होगी दवाव उतना ही जादे होगा। रोमन्थाशयकी प्राचीर इतनी कड़ी हो सकती है कि, दवाव कठिन होता है।

लक्षण : पशु निश्चल खडा रहता है, कमर टेढ़ी कर लेता है और सिर घुमाकर पेटकी ओर देखता है। वाम-पार्श्व पिछली रीढके समतल हो जाता या उससे भी ऊँचा उठ सकता है। डकार और कै हो सकती है।

साँसका कष्ट, नीलिया, नाड़ी क्षीण, और कान तथा शाखायें शीतल हो जाती हैं। पशु चिंतित मालूम होता है। यदि दवावसे छुटकारा नहीं किया गया तो वह गिर पड़ता और आक्षेप होकर मर जाता है।

पशु गोचरमें है उसी समय या लौटने पर तुरत वायुरोध हो सकता है। वह मरा पाया जा सकता है। फूलना जब तेजीसे बढ़ता है तब उधर ध्यान जानेके कुछ मिनट बाद ही वह मर सकता है। जब वायु धीरे धीरे बढ़ती है तब डकार या कै से उसे आराम मिल सकता है। उसके बाद वह चंगा हो जाता है।

चिकित्सा : रोग बहुत उग्ररूपमें हो और जब पशुको तनाव और पीड़ा बहुत हो, साँस लेना कठिन हो तो इसका इलाज तुरत करना चाहिये और रोमन्थाशयमें छेद कर हवा निकाल पशुका प्राण बचाना चाहिये।

रोमन्थाशयका छेदन : बाएँ पार्श्वमें शेपान्त्रकके बाहरी कोणसे अन्तिम पसली तक एक रेखा खींचो। इस लकीर पर बीचमें एक जगह चुनो जो पसलीसे दो इंच दूर हो। दहनी कुहनीकी ओर त्रीहिमुखसे छेदो। इसके बाद उसे निकाल लो। नली (Canula) उसीमें रहने दो। वायु और कुछ खायी वस्तु उसमेंसे निकलेगी। नलीको इसी तरह घंटे भरके लगभग रहने दो। उसे बाँध रक्खो कि, निकल न जाय।

जहाँ त्रीहिमुख नली न मिले वहाँ तेज छुरीसे इतना बड़ा छेद करो कि, उसमें बांसकी नली समा सके। इस नलीका बाहरी व्यास आध इंच या इसीके लगभग हो। बाहरी छोर पर एक खाँचा बनाकर उसमें सुतली बाँध देहमें इस तरह बांधो कि, वह निकल न सके। काममें लानेके पहले सुतली और बाँसकी नली आयडिनके घोलमें डुबा लो। कोथकी ओरसे सावधान रहो। यदि कोई कोयन्न पासमें न हो तो जो उपाय हो सके करो। छुरी आगमें झुलसा लो तब भोंको। क्रिया बड़ी सरल है। नली निकालनेके बाद घाव अपने आप पुर जाता है। यदि घाव बड़ा हुआ जैसे कि, एक इंचसे जादे तो चमड़ेको सीकर उसपर पट्टी बाँधो।

मामूली रोगमें पशुको टलुही हालतमें रक्खो। अगले पैर पिछलेसे ऊँची जगह पर रहें। पिछले पैरोंके लिये एक या डेढ़ फूट धरती कोड़ दी जाय और अगले पैर ऊपर रहें। इतनेसे काम चल जाता है। इस आसनमें अन्नवहके मुँहसे हवा निकल जानेका जादे मौका रहता है। पशुको इसी हालतमें रख कर पेट और बगलमें जोरसे मालिश करो। दोनों तरफसे दो आदमी यह करें। बछड़े जैसे छोटे पशु

इस आसन पर अधिक सरलतासे रखे जा सकते हैं। ऊपर और नीचेकी ओर पाँचसे दस मिनट तक मालिश की जाय। थोडी देर ठहरकर दुवारा मालिश हो। गाभिन गायकी दाहिनी तरफ मालिश न हो। पुआलके जूनेसे जोरसे रगड़ा जाय। यहाँ मालिशका अर्थ गूँथना (आँटेकी तरह), भोंकना और दवाना है। इस क्रियाके साथ डकार और कै करानेकी कोशिश करनी चाहिये। आदमीके मुँह और गलेमें पख तथा उँगली डालकर जैसे कै करायी जाती है उसी तरह किसी मुलायम फुनगीसे तालू या गलेमें गुदगुदाना चाहिये।

मुँहसे दवा पिलानेका कोई अर्थ नहीं।

पेट पचकने पर कुछ दिनोंतक परहेजी चारा देना चाहिये।

आकस्मिक घटना पर उपयोगके लिये पशुपालक त्रीहिमुख नली (trocar canulas) रखें तो अच्छा हो।

१४२४. पेटमें विजातीय पिंड

कुछ गायें जो कुछ मिले वह खा लिया करती हैं, इस कारण रोमन्थाशय और जालाशयमें विजातीय पिंड पहुँच जाते हैं। इनमें से कुछ पिंड रोमन्थाशयमें टिक जाते हैं। यदि इनमें नौक नहीं हुई तो कष्ट नहीं देते। छुरीके फलक जैसी भारी और धारदार चीजें श्लैष्मिक कलामें चुभती है जिससे घाव हो जाता है। वह भर सकता है और उस चीजको वहाँ चुभाये रख सकता है। अन्य चीजें जालाशयमें पहुँच उत्पात मचा सकती हैं। सूई जैसी कुछ चीजें महाप्राचीरा, हृदय या फेफड़ोंमें चुभ घातक क्षत कर सकती हैं। इसके वाद निमोनियाँ, हृदय या कपाटिकाकी गड़बड़ी मचा सकती है जिससे मृत्यु हो सकती है।

कोई हल्की वस्तु आमाशयमें पहुँच उसके प्रवेश या वहिर्द्वारका अवरोध कर सकती है। कुछ वछल्ओंकी चाटनेकी आदत होती है। गाय भी ऐसा करती है। टूटे केश पेटमें छोटी गोलीके रूपमें पहुँच जमा होते और गोला वनने लगते हैं।

ये विजातीय पिंड एक या कई पेटोंके कार्यमे बाधा दे सकते हैं जिससे अपच और अवरोध भी हो सकता है। रोमन्थाशयमें वाल जमकर सग्रहणी (अग्निमान्द्य) हो सकती है। नुकीली चीजें चक्कर काटती चमडा होकर पार हो सकती हैं जिससे वहाँ पर सूजन और पीव हो जाती है अथवा वह कहीं हिफाजतके साथ टिक जातीं और नुकसान नहीं करतीं। पर यदि वह उत्पात मचाना शुरू करें तो उनका

इलाज कठिन है। तब चीरफाड़ करना जरूरी हो जाता है। कोई खास दामी पशु न हुआ तो बड़े चीर फाड़का सवाल भी नहीं उठता।

इस बातकी कोशिश होनी चाहिये कि, ऐसी चीजोंके पास ढोर पहुँच नहीं सकें। बाल चाटना रोकना चाहिये।

१४२५. आमाशय और आँतोंका प्रदाह
(Gastric & Intestinal Catarrh)

पूर्वाशय या चौथे पेटमें सूजन आहारकी भूलसे हुआ करती है। अनुपयुक्त या बहुत गरम आहार भी आमशयकी सूजन कर सकता है।

लक्षण : भूख घट जाती है। कभी कभी पशुमें तरह तरहकी चीजें जैसे गोड़यार या घृणित अथवा अपचनीय वस्तु चाटनेकी रुचि हो जाती है। इन विचित्रतामें कमीवेशी हो सकती है। पशु बहुत कमजोर दिखायी पड़ता है और कमरको कमानकी तरह करके खड़ा होता है जैसे कि दर्द हो। रौंथ कम और अनियमित होती है। कभी कभी डकारके साथ दुर्गन्ध हवा निकलती है। बायां पार्श्व कड़ा हो जाता है। पूर्वाशय (abomasum) भागमें नरमपन हो सकता है। साधारण तौर पर कुछ कब्ज रहता है।

चिकित्सा : आहार-चिकित्सा होनी चाहिये। पहले दो दिन तक खानेको कुछ नहीं देना, केवल पानी पिलाना चाहिये। इसके बाद ताजा, हरा, उपयुक्त चारा जरासे नोन और खलीके साथ थोड़ा थोड़ा देना चाहिये।

लम्बी बीमारीमें मैग० सल्फ० की एक मात्रा देकर पेट साफ कर देना चाहिये। सयाने पशुको एक रत्तल दो मात्राओंमें देना चाहिये। खट्टे फल जैसे कि इमली और नीबूसे, साधारणतः सुधार होता है।

आंतकी सोथसे अन्तमें अतिसार होता है जिसमें दुर्गन्ध मल निकलता है। ऐसी हालतमें रेंडीके तेलके अवलेहका (१ से २ रत्तल तेल दो मात्राओंमें) विरेचन बताया जाता है। नित्य ½ ड्राम अजवाइनके सत्तसे इलाज करना अच्छा होता है।

विरेचनके बाद ८ आउन्स कोयलेकी बुकनी पानीके साथ देनेसे आराम होती है। इसी कामके लिये केओलिन भी दी जा सकती है। लम्बी बीमारीमें

विरेचनके बीच बीच पेटकी वस्ति (lavage) वतायी गयी है। गुदामें गुनगुना पानी चढ़ाना भी लाभदायक है।

जब वस्ति, रेंडीके तेलके विरेचन, अजवाइनके सत्तसे छूतनाश और कोयले या केओलिनसे सफाई के वाद भी वीमारी लंबी होती रहे तो कषाय या सकोचक देना जरूरी हो सकना है। जैसे कि, खलीकी वुकनीके साथ १ ड्राम अफीमकी एक मात्रा कत्था या अर्जुनकी छालकी वुकनी विसमथ कारवोनेट के साथ और अलसीके लस्से जैसे स्निग्धकारक उपशामक (demulcents) पदार्थके साथ दिया जा सकता है।

वछड़को चूनेका पानी लाभप्रद हो सकता है। (१४०३)

१४२६. आँतका शूल (Intestinal colic)

यह रोग उग्र अंत्रशोथ या प्रदाहसे संवधित है। शूल अचानक होता है और कभी कभी कठिन भी। इसके वाद अतिसार होने लगता है तव पशु आराम हो जाता है। शूलमें आँतोंका सकोच होता है। पेट सेंकनेसे आराम मिलता है। गरम पानीमें पट्टी भिगाकर पेट पर रक्खी जा सकती है। गरम पानी से वोरोंको भिगा कर रोगी पशुके वदनको चारों ओर से ढककर गरम पैंक (warm pack) देना चाहिये। उस समय गरम पैंकके ऊपर से गरम सूखा कम्वल ओढा देना चाहिये। यह पैंक हर दस मिनट पर वदला जाय। कठिन दर्दमें २½ से ४ ग्रेन की मात्रामें मौर्फिनकी सूई अन्तस्त्वक् में दी जाय। कभी कभी १ आउन्स तारपीनके तेलमें वरावर भाग स्निग्ध या अनुत्तेजक वनस्पति तेल मिलाकर देना और उसके वाद मैग० सल्फ० (१ रत्तल) जैसा सरल विरेचन देना अच्छा होता है।

१४२७. आँतका जीर्ण प्रदाह (Chronic Intestinal Catarrh)

जीर्ण प्रदाहका लक्षण सुस्ती और क्रमिक दुवलापन है। कब्जके वाद अतिसारका क्रम रहता है जिसमें मलमें आँव, पीव और कभी रक्त मिला रहता है।

आँतके उग्र प्रदाह में जो चिकित्सा होती है वह वतायी गयी है। जैसे कि, विरेचन, कषाय और स्निग्धकारक ओषधि। इन रोगोंमें उत्पातका कारण कभी कभी आँतोंकी कृमिका होना है। कृमियाँ साफ करनी होती हैं। इसके लिये अध्याय ४० में कृमिरोग देखिये।

अध्याय ४३

यकृतके रोग

१४२८. कामला : पांडु (Jaundice : Icterus)

कामला कई एसे रोगोंका लक्षण है जिनमें पित्तका रङ्ग रक्तमें और कुछ तन्तुओंमें जमा होता तथा कुछ पेशावमें निकल जाता है।

देहकी श्लैष्मिक कलायें कामलामें पीली हो जाती हैं। आंख, नाक, मुँह सभी पीले हो जाते हैं। विना रङ्गवाली त्वचामें भी पीला रङ्ग हो जाता है।

यकृत पित्त वनाता है और पित्त-प्रणालीके द्वारा आंतोंमें डालता है। यह स्रोत किसी चीज से अवरुद्ध हो जाता है तव वना पित्त सीधे रक्तमें आता और उत्पात मचाता है। या यह यकृतकी क्रियाकी गड़वड़ीसे हो सकता है। ऐसी हालतमें यकृत-कोषोंमें वने पित्तको पित्तप्रणालीमें जानेकी राह नहीं मिलती। पित्ताश्मरीके कारण यकृतसे आंतमें पित्त जाना रुक जाता है अथवा प्रणालीकी श्लैष्मिक कलाके अस्तरकी सूजनसे भी रुकता है। पित्तिया-कृमि भी अवरोध कर सकती है। पित्त प्रणालीमें केंचुवा-कृमि भी राह रोक सकती है। प्रणालीके मुह पर थैली या अर्बुद (cysts or tumours) भी प्रवाह रोक सकते हैं। आंतमें सूखे मलके टुकड़ेसे भी स्रोतमें वाधा हो सकती है। सौत्रिक वृद्धि (सिरोसिस-cirrhosis) सौत्रिक सूखन (नेक्रोसिस-necrosis) और अनेक दूसरी विकृतियों के कारण यकृत ठीक ठीक क्रिया नहीं भी कर सकती है। पाचनकी गडवड़ी और लाल पेशाव (पिरोप्लास्मोसिस) जैसे रोगोंका असर यकृत पर पड़ सकता है और उसके कारण पित्त पित्तप्रणालीमें वहनेके वदले ग्रन्थियों द्वारा आचूषित हो सकता है।

कामला दारुण अथवा जीर्ण दोनों ही हो सकता है। दारुण अवस्थामें झिल्लियाँ अचानक विवर्ण हो जाती हैं। ताप चढ जाता है। पशु सुस्त हो जाता है। कमजोरी स्पष्ट मालूम होती हैं। मुँहसे वदवू निकलती है। ऐसी दशामें तुरत कुछ करनेकी जरुरत है। नहीं तो मृत्यु हो सकती है।

जीर्ण अवस्थामें कामला धीरे धीरे वढता है।' झिल्लियोंपर पीलापन हो जाता है। सवसे पहले आँखका कोया पीला होता है। जीभकी नोक खासकर जीभकी पीठ पीली या चंपई रङ्गकी हो जाती है और जरा दवानेसे खास तौर पर दिखायी पडती है। मलका साधारण रङ्ग पित्तके कारण होता है और इसके अभावमें वह मटमैला या पकके समान हो जाता है। इसमें पाचनकी भीषण गडवड़ी होती है। पित्त केवल पाचनमें ही सहकारी नहीं है आँतोंमें सडांद रोकनेमें विपनाशक भी है। पित्तके अभावमें विप पैदा होते हैं। इस कारण आलस, चलने फिरनेकी अनिच्छा, चमक (आक्षेप), उत्तेजना और साँसकष्ट होते हैं। वहुधा कव्ज भी होती है।

जीर्ण अवस्था होनेसे पेट पर सूजन होती है। रोगी मृतप्राय हो जाता है। विषका प्रभाव नाड़ी संस्थान पर पहुँचता है, इसके वाद मृत्यु होती है।

चिकित्सा : कारणका पता लगाकर हो सके तो दूर किया जाय। यदि परोपजीवियों के कारण हो तो उन्हें कृमिघ्नों और विरेचनसे मार भगाना चाहिये। यदि अर्वुदोंके कारण गड़वडी है तो चीर फाड कराना चाहिये लेकिन रोगीकी यह अवस्था निराशाजनक है। आँतोंकी अवरोधक चीजें तुरत हटायी जा सकती हैं। यदि यकृतके कोषोंकी क्रियामें दोप हो तो उसे सचेष्ट करनेवाली औषधियाँ जैसे केलोमेल, सोडियम सल्फेट या मैग० सल्फ० देनी चाहिये। आहार विचारके साथ दिया जाय। प्रौटीन और स्नेह-पदार्थके कारण यकृतको अधिक श्रम करना होता है। इसलिये जिस आहारमें ये जादे हों नहीं दिया जाय। मुसव्वर पित्तनिस्सारक है। यह दिया जा सकता है। सयाने पशुओंके लिये ८ आउन्स या अधिक मात्रामें नित्य मैग० सल्फ० देना वहुत भरोसेका हो सकता है। या पहले एक दिनमें ४ ग्रेन की मात्रामें कैलोमेल ६ से ८ वार देनेके वाद दूसरे दिन मैग० सल्फ एकवार देना भी भरोसेका हो सकता है।

१४२६. पित्ताश्मरी : पथरी (Gall Stones)

पित्ताश्मरीका जैसा लक्षण है वैसा मिलना कठिन है। ढोरकी पित्तप्रणालीमें कुछ टुकड़े जमा हो जाते हैं। पित्तप्रणालीके शोथके कारण प्रायः पित्ताश्मरी वनती है। यह आँतसे पित्तनलीमें जीवाणुकी छूत वढने, या पित्तिया जैसे परोपजीवी या

पित्तनालीमें विजातीय पिंडके कारण होता है। छूतके रोग साधारण तौर पर पित्तप्रणाली को छूतग्रस्त कर देते हैं।

अश्मरी अधिकतर पित्तनलीकी अपेक्षा पित्तकोषमें होती है।

लक्षण : पित्तकोषमें पित्ताश्मरियां कोई असुविधा या पाचनकी गड़बड़ी किये विना बड़ी संख्यामें हो सकती हैं। जब कोई अश्मरी उत्तर पित्तनलिकाका मुँह बन्द कर देती है जिससे चमक (आक्षेप) के साथ पेशियोंका संकोच होता है तो केवल उसी समय मन्द (मृदु) से लेकर दारुण प्रकारका शूल (colic-कॉलिक) होता है। नलिकाके बन्द होनेसे इसके अतिरिक्त, कामला भी हो सकती है। यकृत कभी कभी बड़ी और चेतनाशील (आशुक्षुब्ध) हो जाती है।

चिकित्सा : पित्त-नलीकी पेशीको फैलाना होता है। इसके लिये नारकोटिक अर्थात् निद्राकारी दवा देनी चाहिये। सयाने पशुमें मॉर्फिन २½ से ४ ग्रेन की सूई अन्तस्त्वक् में दी जा सकती है।

रेंड़ीके तेल जैसे सरल विरेचनसे अश्मरी निकलनेमें मदद करनी चाहिये। रोग जब होता है तब लगातार मैग० सल्फ० देना चाहिये।

अध्याय ४४

उदर्यकलाके रोग

१४३०. जलोदर (Ascites)

देहके एक या अधिक भागोंमें पानी जमा हो जाता है। जब चमड़ेके नीचे पानी जमा होता है तब शोथ (इडीमा-oedema) कहा जाता है। जब तमाम फैला रहता है तब इसे सार्वदैहिक शोथ (एनेसेर्का-anasarca) कहते हैं। जब पेटमें पानी जमता है तब इसका नाम जलोदर (एसाइटिस-ascites) होता है।

जलोदर एक या कई रोगग्रस्त स्थितियोंका सूचक है। जलोदरमें पेटमें पानी अधिक जमा होता है जो यकृत, गुरदाके या। फ़ुफ़्फ़ुस, हृदय, और

साँसकी क्रियामें गड़वड़ी पैदा करता है। पानी जमा होनेका कारण हृदयका ठीकसे काम नहीं करना भी हो सकता है या कदाचित् स्थानविशेपमें रक्तके स्वभाविक प्रवाहमें रुकावट होनेसे भी पानी जमा हो जाया करता है। यदि पशुको जोरसे कृमियाँ हों या उसे खूनीदस्त या क्षयकी वीमारी हो तो जलोदर हो सकता है।

जलोदर धीरे धीरे वढ़ता है। जैसे जैसे पानी जमा होता है इसके लिये स्थान वनानेके लिये पेटकी दीवाल फैलती है। पेट धीरे धीरे जाढे से जाढे थलथल हो जाता है। गाय ऐसी देख पड सकती है मानो गाभिन हो। पर दवानेसे सूजनके घटने फैलनेसे असलियत मालूम हो जाती है। एक तरफ जोरसे थपथपानेसे उसकी लहर दूसरी तरफ दौड़ जाती है। इकट्ठा पानी जव महाप्राचीराको दवाता है तव साँस लेनेमें कठिनाई होती है। पशुकी दशा विगड़ने लगती है। मेरुदण्ड निकल आता है।

ताड़नसे मन्दताका पता चलता है। खड़े और वैठे पशुकी मन्दताका परिसर अलग अलग होता है। रह रहकर स्पर्शन करनेसे छपाकेकी आवाज सुनाई पड सकती है।

जलोदरमें गड़वडीके कारण पता लगाना चिकित्सामें सहायक होता है। यदि वह यकृतके काम नहीं करनेसे है तो साथ साथ कामला भी होगी और स्पर्श तथा ताडनसे यकृत वढ़ा हुआ मालूम होगा। यदि वह हृदयके रोगोंके कारण है तो हृदयमें खड़ खड ध्वनि सुनायी पड़ेगी। मूत्रकृच्छ्रता होगी, और ऐसी हालतमें नीलिया हो सकती है।

चिकित्सा : व्रीहिमुखसे छेद-नली डालकर पानी निकालनेसे तरुण पशुओंमें अवस्था शीघ्र सुधर सकती है। इतना पानी निकाला जाय कि, फूलन पचक कर चाहे समतल पर हो जाय। एकवार वहुत पानी नहीं निकालना चाहिये। व्रीहि-मुख-नली डालनेके पहले कोथघ्न उपाय कर लेना चाहिये।

लेटे पशुपर यह शल्य-प्रयोग हो सकता है। नली निकालनेके वाद पशुको पलट देना चाहिये जिससे कि उसका पेट सटके। चमडेमें एक या दो टाँका भर देना चाहिये कि पानी निकलना वन्द हो जाय। इसके वाद दाव कर पट्टी वाँधनी चाहिये। छूतरहित व्रीहिमुख और नली लगानेके पहले उस जगह चमड़ेको मूडकर टिंकचर आयडिन लगाना अच्छा होता है।

कम कड़ी वीमारीमें खानेमें नमक नहीं देने और सूखा चारा देनेसे सुधार होता

है। पुनर्नवा (सूखी १ आउन्स या २½ रत्तल हरी) मूत्रल (मूत्रवर्धक) है। देनी चाहिये। मैग० सल्फ० नियमसे बारबार देना चाहिये। मल ढीला रक्खा जाय। कैलशियम क्लोराइड २ से ४ ड्राम मात्रामें लाभकारी पाया गया है।

जब ज्यादे पानी जमा हो जाय तो एक या दो सप्ताह पर कई बार छेदन कर पानी निकाल देना जरूरी है। हर बार कुल पानीका एक हिस्सा ही निकाला जाय।

१४३१. उदर्या-प्रदाह (Peritonitis)

उदर्याकला उदर और वस्ति-खातको भीतरसे ढकती है। इसके प्रदाहका नाम उदर्याप्रदाह है। प्रदाह दारुण या जीर्ण हो सकता है। आंतमें जानेवाले किसी न किसी जीवाणुकी छूतसे यह साधारण तौर पर होता है। आंतको भेदकर यह उदर्यामें पहुँच प्रदाह करते हैं। पास्च्यूरेला, स्ट्रेप्टोकोक्सी, स्टैफिलोकोक्सी, कोली बैसिली, क्षय जैसे पूयोत्पादक जीवाणु इसके जिम्मेदार हो सकते हैं।

ढोरकी सींग या सूअरके दांतकी पेटमें लगे घावसे भी उदर्याप्रदाह हो सकता है। पेटमें गये विजातीय पिंडसे भी यह कला फट सकती है। जरायुसे निकले कोथीय पदार्थ भी उत्पात मचा सकते हैं। आमाशय, आंत और मूत्राशयके क्षतसे भी उदर्याप्रदाह हो सकता है। उदरका कोई अवयव जैसे यकृत, प्लीहा, पौरुषग्रन्थि या वृषण जीवाणुग्रस्त हो जाय और उसमें पीब पड़ जाय तो भी उदर्याप्रदाह हो जाता है। इसलिये बधिया करनेमें कोई भूल हो जाने पर पीब हो जाय तो भी यह रोग हो सकता है। गलघोंटू जैसे सार्वदैहिक क्षत पैदा करनेवाले रोगोंके कारण भी उदर्याप्रदाह होता है।

उदर्याके पास पडोसके अवयवमें मृदु प्रदाह बार बार होने पर उनका लगाव उससे होता है जिससे लगावकी जगहपर जीर्ण उदर्या-प्रदाह हो सकता है। ठंढ लगने, निर्बलता, पेटपर जोरकी चोट भी उदर्याप्रदाहके उपकारण हो सकते हैं।

लक्षण : उग्र उदर्याप्रदाहमें पेड़ूका दर्द सबसे बड़ा लक्षण है। उदर्यामें विषनाशक और जीवाणुनाशक शक्ति बहुत है। इतनेपर भी यदि उदर्या नष्ट होती है तो बहुत क्षति करती है। पशुके कराहने, रँभाने, दांतपीसने, आगे तरफ देखने और पूछ डुलाने से उसके कष्टका पता चलता है। पशु करवटना पसंद नहीं करता कमानकी तरह कमर करके खड़ा रहता है। सिर और गरदन झुकी रहती है।

वडे पशुकी गुदाकी परीक्षा करनेसे उदर्याकलाकी दशाका पता चल सकता है। यदि वह फट गयी है तो आहारके कण मिल सकते हैं।

आँखोंसे आँसू और कीच वहती है और नाकसे रेंट और पानी।

छिद्रकारी उदर्याप्रदाह : इसमें पशु अचानक पेटके वल लेट जाता है। शाखायें ठंढी रहती हैं, नाडी इतनी मन्द होती है कि, मालूम भी नहीं होती। पसीना खूव चलता है और पेट चढ जाता है। ताप चढ़ता है।

जीर्ण उदर्याप्रदाह : इसमें समय समय पर वुखार होता है, पाचनकी गड़वड़ी और अतिसार होता है। भारवाही वैलको जरासा वुखार होता है और धोखे धोखेमें यह हो जाता है। पेटका आयतन वहुत वड़ा हो जाता है। पशुकी दशा विगड़ जाती है और पेट मुलायम मालूम होता है। यह दशा सप्ताहों या महीनों रह सकती है। रोग और उभड़ने पर ताप उतर जाता है और रोगी कुछ दिनोंमें मर जाता है।

उग्र उदर्याप्रदाह : यह इतनी जल्दी होता है कि, रोगी उसी दिन मर सकता है। खासकर जव प्रसूतीय छूतमें कोथीय विष प्रगट होने पर यह होता है। पर साधारणतः लक्षण धीरे धीरे विकसित होते और ४ से १४ दिनमें घातक अंत होता है।

उग्र उदर्या प्रदाह भयकर रोग है। विशेपकर आमाशय या आंतमें छिद्र हो जाने पर। जीर्ण रोग या उस स्थानपर कुछ सटनेसे, खासकर वाहरी चोट या घावसे, जव यह रोग होता हैं तव उसके अच्छे हो जानेकी वात कही जा सकती है।

वाहरी चोट या घावसे उदर्याप्रदाह रोकनेके लिये चोटकी कोथघ्न चिकित्सा करनी चाहिये। पर भीतरी पूयके रोग लगभग निराशाजनक हैं। समय पर चीरफाड किये विना प्राण नहीं वचाया जा सकता।

उदर्याकी आचूषक शक्ति घटानेके लिये कपूरकी (तेलमें १ आउन्स) अंतर-उदर्या (intra-peritonial) सूई लगाओ। दर्द घटानेके लिये शीतोपचार (ठंढी पट्टी) उपयोगी पाया गया है। अंत्रकी गति रोकनेके लिये सयानी गायको १ ड्रामकी मात्रामें अफीम फायदा करती है।

यदि कव्ज हो तो रेंड़ीका तेल दो। यदि पानी जमा हो गया हो तो कोथघ्न करके छेदन किया जा सकता है। जीर्ण उदर्याप्रदाहमें तेजीसे रगड़ने, शीतोपचार

करने और १ से २ ड्रामकी मात्राओंमें पोटाश आयोडाइड रोज खिलानेसे शान्तिमें मदद मिलती है।

अध्याय ४६

नाकके रोग

१४३२. सर्दी : जुखाम (Nasal Catarrh : Coryza)

दारुण रूपमें सर्दी ठंड लगने या ठंड और नम मौसम के असरसे और एकाएक आबहवा के परिवर्तनसे साधारण तौर पर होती है। कभी कभी धूल और धुआं नाकमें जानेसे भी होती है।

साधारण तौर पर उग्र सर्दीसे जीर्ण सर्दी नहीं होती। कंठ, गले या क्लोमके प्रदाह अथवा फेफड़ेके क्षय रोग या फुसफुसा कृमिके उपद्रवोंके कारण नाकके पड़ोसी अवयवोंके भ्रमित होने पर जीर्ण सर्दी होती है।

उग्र सर्दीमें लसीला पानी नाकसे बहता है। यह पीछे बहुत हो जाता है। अंतमें यह गाढ़ा होकर बहना बन्द हो जाता है। श्लैष्मिक झिल्ली सूजती और लाल हो जाती है। पलकोंका लाल होना और उनकी श्लैष्मिक कलाकी सूजन इसके साधारण उपद्रव हैं। जीर्ण सर्दीमें स्राव होता और रुकता है और फिर अचानक होता है, तब स्रावका परिमाण अधिक होता है, विशेषकर सिर झुकानेसे।

श्लैष्मिक कला सूज जाती है। घाव या व्रण हो सकते हैं। अधिक दिनोंकी जीर्ण सर्दीका पासके अवयवोंमें फैलनेका झुकाव होता है। कभी कभी रोगकी हल्की छूतके रूपमें सर्दी होती है। तब भूख घट जाती है। आलस्य और ताप बढ़ता है। रोगी दो तीन दिनमें आराम हो जाता है।

चिकित्सा : उग्र और जीर्ण सर्दीमें न्याय और छूतसे पोंछते नाक ... । इसके लिये पानीमें फिटकिरी, बोरिक एसिड या हाइड्रोजन ... ...

करो। प्रति रत्तल घोलमें ५ ग्रेन अजवाइन सत्त मिलानेसे जादे लाभ होता है। मूँगफलीके तेलमे एक सैकड़ा अजवाइन सत्त मिलाकर फुहारा करनेसे, खासकर जीर्ण रोगमें, लाभ होता है।

१४३३. पीनस : नाकड़ा (Croupous Rhinitis)

नाककी श्लैष्मिक कलाके गहरे प्रदाहको **पीनस या नाकड़ा** कहते हैं। इसमे अनेक उपकलायें बनती हैं। इसका कारण अधिकांशमें जीवाणुकी छूत है। माता और कठिन प्रदाह-ज्वरके बाद यह उपद्रवके रूपमें होता है।

लक्षण : उग्र सर्दीके लक्षणोंके समान ही इसके भी लक्षण हैं पर अधिक कठिन। इसमें सूजी श्लैष्मिक झिल्ली पर उपकलाकी भूरी या पीली और मोटी तह पड जाती है। रेंट गाढी, पीली और चिपकनी होती है जिसमें उपकलाके अग रहते हैं।

चिकित्सा : चिकित्सा सर्दीकी तरह ही है। १ या २ सैकड़ा सोडा बाईकार्ब के घोल से धोनेसे उपकलायें गल जाती हैं।

अध्याय ४६

कंठ, क्लोम और फेफड़ेके रोग

१४३४. कंठप्रदाह

(Laryngeal Catarrh : Laryngitis : Angina)

ठंड लगने या धूलसे प्रायः कंठप्रदाह होता है। लगातार बहुत दिनोंकी खाँसीसे भी यह हो सकता है। कठमें क्षत होनेसे भी यह हो सकता है। सर्दी, गलप्रदाह, और काश या निमोनियाँ किसी ओरसे भी प्रदाह बढने पर यह अनुवर्ती रूपमें या इन रोगोंके स्रावकी जलनसे भी हो सकता है। जिन पशुओंकी प्रतिरोध-शक्ति कम है उनमें इसकी ग्रहणशीलता अधिक है।

उग्र आक्रमणमें झिल्लीकी तह और स्वर-तन्त्रिकाएं (vocal cords) बहुत ग्रसित होती हैं। सूजती और लाल हो जाती हैं। कफ जमा होता है और कभी कभी स्वरयन्त्र पर छोटी छोटी लाल चित्तियां हो जाती हैं। वहां ऊपरी घाव हो सकता है। जीर्ण रोगमें झिल्ली सूज जाती है और उस पर दाने निकल आते हैं।

लक्षण : सूखी और हल्की खांसी बराबर होती है। यह पीछे गीली और जादे लम्बी हो जाती है। थोड़ी भी जलन या उत्तेजना होनेसे खांसीका दौरा होने लगता है। बहुधा नाक बहती और लसीका-ग्रन्थियां भी सूज जाती हैं। कंठपरका भार बचानेके प्रयासमें प्रायः खांसी होती है। सूजन या शोथ होनेपर सांसमें कठिनाई होती है। ताप थोड़ा चढ़ता है। यदि किसी अन्य छुतहे रोगके साथ यह हो तो ताप जादे भी हो सकता है। जीर्ण रोगके लक्षण भी ये ही हैं, केवल कष्ट कम होता है। कभी कभी सांसमें घड़घड़ानेकी आवाज होती है।

चिकित्सा : पशुको आराम, हल्का आहार देना चाहिये। धूल-गर्दसे साफ हवामें और हो सके तो खुलेमें रखना चाहिये। अगर खांसी जादे हो तो सूँघनी (inhalations) देनेसे लाभ होता है। अजवाइन सत्त का घोल (एक रत्तलमें ५ ग्रेन) फुहारे से कंठमें देना चाहिये। सर्दीकी तरह ही कोमल तथा अन्य प्रकारसे धोना चाहिये। जीर्ण कंठप्रदाहमें एक सैकड़ा सिलभर नाइट्रेटका घोल कंठमें लगानेसे तकलीफ मिटती है। तेलमें २ सैकड़ा अजवाइन सत्त मिलाकर लगाना चाहिये।

खांसीवाले (croupous) कंठ-प्रदाहमें, कंठ, क्लोम और गले पर सौत्रिक उपकलामय तह जमा हो जाती है। लक्षण कंठप्रदाहकी तरह ही है। पर उसके साथ अधिकतर सांस-कष्ट सीटी या घरघराहट की आवाजें होती हैं। ४-५ दिनके बाद खांसते खांसते सौत्रिक तह बाहर निकल जाती है और तब हालत सुधर जाती है। चिकित्सा कंठप्रदाहकी तरह है। यदि खराब उपकलायें सरलतासे बाहर नहीं निकलें तो नीचे लिखे वामक देकर निकाली जावें। जैसे २ आउन्स पानीमें २ से ७ ग्रेन तूतिया या २ से ४ ग्रेन टारटर एमेटिकका घोल। गरम सेंक या बफारेसे भी आराम मिलता है।

१४३५ काश (Bronchitis : Bronchial Catarrh)

क्लोम-नलीमें विभिन्न गहराई तक गया हुआ प्रदाह यह है। उग्र रोगमें यह बड़ी क्लोम नलिकाओंमें ही होता है। पर जीर्ण रोगमें साधारण तौर पर छोटी नलिकाओंमें ही अधिक प्रदाह होता है। पूरे क्लोम-वृक्षमें भी यह हो सकता है।

उग्र प्रदाह नाकमें शुरू होकर कंठ और गलमें होकर क्लोम-शाखाओंमें जा सकता है जिससे काश होता है। ठढसे, धूल या अन्य जलन पैदा करनेवाली चीजोंके सुड़कनेसे सीधे भी काश हो सकता है। या शीतला, खुरपका या साघातिक सर्दीके बुखार जैसे छुतहे रोगोंके कारण भी हो सकता है। बहुत दिनोंकी साँसकी लगातार गड़बड़ी या फेफड़ेमें रक्तसंवहनकी गड़बड़ीकी वजहसे साधारण तौर पर काश होता है। फेफडेमें फुसफुसा-कृमि होनेके कारण भी यह होता है। जीर्ण निमोनियाँ या हृदय अथवा फेफडेकी जीर्ण बीमारीसे भी जीर्ण काश हो जाता है।

बहुत छोटे या बूढे कमजोर पशु खास तौर पर ग्रहणशील हैं।

बडी क्लोम-शाखाओंके उग्र प्रदाहमें जल्दी जल्दी सूखी कष्टकारी खांसी होती है। स्रावकी वृद्धिके साथ यह ढीली हो जाती है। पीछे स्राव गाढा और कड़ा होता है तब तेज घरघराहट सुनाई पड़ती है। जब स्राव तरल या पतला हो जाता है तब ध्वनि मन्द हो जाती है। जब बड़ी नलियाँ ग्रसित होती हैं तब ध्वनियाँ मोटी और मन्द होती हैं, पर जब छोटी नलियाँ ग्रसित होती हैं तब वह गभीर और तार (तेज) होती हैं। ग्रसित भाग गहरेमें हुआ तो मन्द स्वर निकलते हैं। कभी कभी तार स्वर पशुके पास खडे होनेसे ही विना श्रवण-परीक्षाके सुनाई पडते हैं। अनेक रोगियोंकी नाक बहती है। रोगके प्रारभमें ताप १०४ डिग्री फा० चढ़ जाता है, पर उग्र रोगमें दूसरे या तीसरे दिन उतर जाता है। जीर्ण रोगमें पहले बड़ी नलिकायें ग्रसित होती हैं तब छोटी। बहुधा साँसका कष्ट होता है जो बढ जाता है।

प्रारभिक प्रदाह हल्का रोग है। पर जब छोटी नलिकायें ग्रसित होती हैं तब ताप चढता है और दारुण साँसकष्ट होता है। यह असाध्य लक्षण है।

चिकित्सा : कंठ-प्रदाहकी तरह ही होती है। पशुको आराम मिलना चाहिये। वह अच्छी तरह हवादार घरमें रखा जाय। चारा सरलतासे पचनेवाला और धूलसे मुक्त हो। पानी पूरा दिया जाय। पेट साफ रखा जाय।

कड़ा और गाढा स्राव नरम करनेकी कोशिश हो। इसके लिये स्निग्धग्राहक लस्सा, कफ-निस्सारक और आक्षेप-निवारक दवायें दी जायँ।

वासक दारुण और जीर्ण दोनों काशके लिये बहुत अच्छा है। पत्तेकी बुकनीमें गुड़ मिलाकर अवलेह जीभके नीचे या दाँत पर रक्खा जाय।

वासककी सूखी पत्तीकी बुकनी २ आउन्स प्रति मात्रा दिनमें तीन चार दी जाय। अमोनियम क्लोराइड २ से ४ ड्राम प्रति मात्रा और पोटाश आयोडाइड १ से २ ड्राम कड़े स्राव और कफको ढीला करनेके लिये दिये जायँ।

जैसे कि कठप्रदाहमें बताया गया है अधिक स्राव और खाँसीके कारण कठिन साँसकष्ट होनेपर वामक देना उपयोगी है।

कोथघ्न सुड़कनेसे भी आराम मिलता है। जब कठिन साँसकष्ट न हो तो हर हालतमें छाती पर गरम सेंक या भफारा दो। गुड़ मिलाकर १ ड्राम कर्पूरका अवलेह स्फूर्तिके लिये खानेको दो।

१४३६. ढोरके छूतका काश
(Infectious Bronchitis : Cattle Influenza)

ढोरको इन्फ्लुएञ्जा आदमी या अधिकतर घोड़ेके इन्फ्लुएञ्जाके बाद हो सकता है। बहुधा स्ट्रेप्टोकोक्सी या पास्च्युरेला या पूयोत्पादक जीवाणु इस गौण छूतके कारण हैं। कोई कोई इन गौण जीवाणुओंको इस रोगका मुख्य कारण मानते हैं। दूषित चारा और पानी खाने पीने और नाककी चूअनसे भी स्वाभाविक छूत लगती है।

२ से १० दिनकी प्रच्छन्न अवस्थाके बाद यह रोग प्रगट होता है। ताप १०४ से १०६ डिग्री फा० चढता है। भूख कम लगती और दूध घट जाता है। नाकसे पहले पानी फिर रेंट बहती है। आँखें भी ग्रस्त होती हैं। पलकोंमें शोथ और सूजन हो सकती हैं। लार बहती, सिर तना रहना, साँसमें कठिनाई और कष्टकी खाँसी होती है। कागकी तरह फेफड़ेकी घरघराहट (rales and ronchii) सुनी जाती है। नाडीकी गति प्रति मिनट ७० से ८० और १०० भी हो जाती है। पशु निर्बल हो जाता है। कभी कभी अतिसार होता है। साधारण रोग ८ से १४ दिनमें आराम हो जाता है पर कठिनमें ३ से ४ हफ्ते लग जाते हैं और इसके बाद भी खाँसी बनी रहती है।

, **चिकित्सा :** काशकी तरह हो। कठिन रोग में मौर्फिनकी सूई ½ ग्रेनसे २ ग्रेन तक दी जाय। दवासे बढ़कर सुश्रुषाका महत्व है। उबालकर शोधे (स्टेरिलाइज्ड) दूधकी अ तस्त्वक्-सूई ४० से ६० सी० सी० देनेसे अच्छा लाभ होता है। दूध १० से १५ मिनट उबालकर कपड़ेसे छान लेना चाहिये। पशुको गरम और आराम से हवादार जगहमें रखना चाहिये। कब्ज होनेपर सरल विरेचनसे पेट साफ करना चाहिये।

१४३७. निमोनियाँ (Pneumonia)

फेफड़ेके प्रदाहका नाम निमोनियाँ है। फेफड़ेके इस रोगके कई रूप और नाम हैं। केवल कुछ यहाँ दिये जाते हैं।

क्रूपस या लोवर निमोनियाँ : इस रोगमें फेफड़े नकुल हो (भर) जाते हैं और रक्त-वाहिनियोंमें बहुत तनाव होता है। अल्पकालिक संकुलताके बाद फेफड़े यकृत-ततुके टुकड़ेसे लाल हो जाते हैं। वह फेफड़े जैसे नहीं रहते। इस अवस्थामें फेफड़ेके वायुकोषोंमें रक्तरस भर जाता है जिससे ग्रसित भागमें वायुके द्वारा रक्तशोधनका कार्य नहीं हो पाता। सबसे छोटी क्लोम-कान्डिकाओंमें भी यह द्रव भर जाता है। इस स्रावका रूप ठोस फाइब्रीन (तन्तुमय पदार्थ) की तरह होता है और इसीसे इसका नाम 'क्रूपस' पड़ा है। २ दिनके बाद फेफड़ेके रुँधे भागका रूप बदलता है। वह लालसे भूरा हो जाता है। घनीभूत पदार्थ कुछ नरम होता है पर ग्रसित भाग यकृतसा ही बना रहता है। इस अवस्थामें श्वेत रक्तकणिकायें प्रवेश कर रुँधे फेफड़ेकी सफाई का प्रयास करती हैं। इसके कुछ बाद "निर्गलन" (रिजोल्यूशन) शुरू होता है। जमा हुआ स्राव धीरे धीरे तरल और आचूषित होता है। जैसे जैसे आचूषण होता है फेफड़ेके तंतु अपना नियत कार्य शुरू करते हैं। अर्थात् निवृत्ति (आराम) अवस्था आती है। बिगड़े रोगमें तरल हुआ पदार्थ आचूषित होनेके बदले पूय हो जाता है जिससे फोड़ा या गैंगरीन हो सकता है।

क्रूपस निमोनियासे फेफड़ेमें चकत्ते हो सकते हैं जो एक या दोनों फेफड़ोंको पूरा ढक सकते हैं। जब फेफड़ा ठोस हो जाता है तब काम नहीं करता। इसलिये ग्रसित भाग जितना ही जादे हो कष्ट और भयंकरता उतनी ही जादे होती है।

जब रोग फैलता है तब कोई विशेष जीवाणु इसका कारण हो सकता है। पर जो जीवाणु साधारण तौर पर निश्चेष्ट रहते हैं उन्हे कमजोरी, ठंड लगने या किसी दूसरी छूतसे बड़ा मौका हाथ लगता है।

आरम्भमें केवल ताप चढ़ता है। धीरे धीरे साँस लेनेमें अधिकाधिक कठिनाई होती है और श्वासकृच्छ्र हो जा सकता है। साँस झटकेसे ली जाती है। गरदन तन जाती है और नथुने फूल उठते हैं। छातीकी बगल उठती मालूम हो सकती है। खाँसी होती है, पर ध्यान खींचने लायक नहीं, और न उसमे काशकी तरह कष्ट होता है। नाक कुछ बहती है। जब फेफड़ेमें गैंगरीन होती है तब नाकसे लाल रंगका स्राव होता है। गैंगरीन बढ़नेपर स्रावसे सड़ाँदकी बदबू आती है। निमोनियाँमें ढोर ग्रसित भागके बल लेटना चाहता है क्योंकि दबावसे आराम मिलता है। आदमीकी निमोनियाँमें एक संकट-काल आता है जो बहुत स्पष्ट है। पर ढोरमें कोई प्रबल या स्पष्ट परिवर्तन नहीं होता। साध्य रोगोंमे ५ वें से ८ वें दिनके भीतर सुधारके परिवर्तन होते हैं। साँसमें सुधार होता है। भूख लौटती है और चेहरेपर साधारण सुधार मालूम होता है। नाकका स्राव बढ़ता और पतला होता है। नाड़ी अच्छी हो जाती है। यह ७ से १० दिनतक बढ़िया होती रहती है। बुरी हालतमें स्राव दुर्गन्धयुक्त होता है, भूखमें कोई सुधार नहीं और तापमान साधारण या उससे नीचे उतर आता है।

रोग शुरू होने पर ३ या ४ दिनके बाद ताडन-स्वर मन्द या अस्पष्ट होने लगता है। बादके दो तीन दिनमें पूरी तरह मन्द हो जाता है। स्वरका परिवर्तन कुहनीके पीछेसे उरःपंजर के बीच या ऊपरी तीसरी पर्शुका तक मालूम किया जा सकता है। मन्दता ३ से ५ दिनतक बदलती नहीं। इसके बाद मन्दता मिटती और दुन्दुभीस्वर होता है, जो बदलकर साधारण या स्वाभाविक हो जाता है। रोगकी अवस्थाके अनुसार साँसमें भी परिवर्तन होते हैं। पहले फेफड़ेमें पटपट आवाजें (crepitations) होती हैं इसके बाद शीघ्र श्लेष्मनाला से काशकी तरह साँस चलती है। याकृतिक अवस्थाके समय ये मिट जाती हैं पर निर्गलनके साथ फिर शुरू होती है।

निदान : अचानक तेज बुखार जो कई दिन बना रहता है फिर धीरे धीरे उतरता है। श्रवण और ताडनके शब्दोंमें परिवर्तन, नाकके स्राव और गाढ़ा है।

सप्ताहमें रोगका आराम हो जाना ये इस रोगके लक्षण हैं। इसका और ब्रोंको-निमोनियाँका भेद जाना जा सकता है। उसमें क्लोमशाखाका प्रदाह रहता और रोग धीरे धीरे बढ़ता है। ढोरोंके सक्रामक प्लूरो-निमोनियाँ और इसमें भेद मानना चाहिये। वह कई सप्ताह ठहरता है।

चिकित्सा : रोगीको आराम दो और जहाँतक हो अच्छी स्वास्थ्यप्रद दशामें रक्खो। रात दिन स्वच्छंद हवा मिलती रहे पर वर्षा और ठडसे हिफाजत हो। रगड़कर मालिश करनेसे फायदा होता है। चारा थोड़ा दिया जाय। कुछ हरी घास और कदवाले पौधे। स्पष्ट लक्षणवाले रोगमें दवाकी जरूरत नहीं। यदि बुखार खूब तेज हो तो ठढे पानीसे स्पंज करना, ठढे पानीका फुहार देना या गुदामें ठडापानी चढाना होता है कि बुखार उतरे। निमोनियाँकी गैंगरीनमें एक बारमें ५० सी० सी० २ सैकड़ा कारबोलिक घोल फुहारे (atomiser) की सहायतासे सुड़कने से लाभ होता है। ध्यान रहे कि. निमोनियाँके रोगी को दवा 'जोरसे न पिलायी' जाय।

आदमीकी निमोनियाँमें सल्फापाइरीडिन अर्थात् एम० बी० ६९३ आश्चर्य दिखा रही है। समझा जाता है कि, पशुओंमें भी यह ऐसी ही गुणकारी होगी। जहाँ हो सके यह दी जाय। इसकी सूई भी दी जा सकती है और यही जादे अच्छा है। प्रतिउत्तेजक की मालिश करनी चाहिये।

१४३८. ब्रोंको-निमोनियाँ (Broncho-pneumonia)

ब्रोंको-निमोनियाँ क्रूपस निमोनियाँसे कई बातोंमें भिन्न है। इस रोगमें प्रदाह सारे फेफड़ोंमें फैला रहता है। क्रूपसका असर एक या अधिक बड़े खडोंमें सीमित होता है पर इसमें कुछ छोटे खड इधर कुछ उधर आक्रान्त होते हैं। पहले ग्रसित चकत्ते देखनेमें नीलापन लिये लाल होते हैं जिनका झुकाव पीला होनेकी ओर होता है। इसमें क्रूपसकी तरह फाइब्रीनका जमाव नहीं होता। आराम होनेकी हालतमें मेद या चर्बी की विकृति, तरलीकरण और आचूषणके द्वारा फेफड़ेके कोषोंमेंका घना जमाव खतम हो जाता है। प्रतिकूल अवस्थामें इनमें विकृत परिवर्तन और फोड़े हो सकते हैं। अथवा ग्रसित भाग एक तरहके केसीन या छेना पदार्थसे लगभग ठोस बन जाता है। जिस मनुष्यकी ऐसी अवस्था बीती हो उसके फेफड़ेमें पहलेसे वर्तमान क्षयकी छूतके स्थान पर क्षय (यक्ष्मा) शुरू हो

सकता है। ढोरकी भी यह हालत हो सकती है। कासके बाद बहुधा ब्रोंको-निमोनियाँ हो जाता है। भले ही पहले कास नगण्य रहा हो। अन्य अवस्थाओंमें ब्रोंको-निमोनियाँके साथ कास होता है। जब यह होता है तब प्रदाह क्लोमकी उपशाखाओंमें वायुकोषों की ओर बढ़ता है। या फेफड़ेमें की क्लोमशाखाएँ, प्रदाह-जनित पदार्थोंसे रुद्ध हो सकती हैं। जिससे फेफड़ेका वह भाग कास नहीं कर पाता और तब प्रदाह वहाँ पहुँचता है। क्षय या इन्फ्लुएआसे हुई फेफड़ेकी गड़बड़ीमें ब्रोंको-निमोनियाँके कारण और उपद्रव हो सकते हैं।

विभिन्न जीवाणुओंकी छूत, जलनवाली वस्तुओंका साँसमें जाना या किसी चुभनेवाली चीजसे फेफड़ेमें प्रत्यक्ष क्षत होनेसे ब्रोंको-निमोनियाँ हो सकता है। ठंड, सर्द हवा, या निर्बलता भी कारण हो सकती है। बात यह है कि जब फेफड़ेकी प्रतिरोध-शक्ति क्षीण हो जाती है तब उसमें सदा रहनेवाले अपनी घातमें चौकस जीवाणुओंके कारण यह रोग हो सकता है।

लक्षण : इसका आरम्भ कासके लक्षणोंसे होता है और बहुत बार तो कासके लक्षणकी अतिशयता ही सचमुच होती है। तापमान १०३ से १०५ डिग्री फा० चढ़ जाता है। कठिन रोगमें यह और ऊँचा जा सकता है। साँसके साथ प्रायः हल्की गीली खाँसी होती है। साँसकी कठिनाई शुरु होती है। नाकसे गाढ़ी रेंट निकलती है। ऐसा मालूम होता है कि, पशु बहुत बीमार है। पर क्रूपस निमोनियाँमें जैसी तकलीफ होती है वैसी नहीं मालूम होती।

भूख नहीं रहती। दूध घट या रुक जाता है। रोंथ रुक जाती है। रोगी गरदन तानकर शायद मुँहसे साँस भरता खड़ा रहता है। खाँसी बहुत होती और कष्टदायक भी, और निर्गलन-अवस्थामें या उसके पहले आक्षेपके साथ हो सकती है जिससे पशु क्लान्त हो जाता है। निर्गलन-अवस्थामें नाकसे प्रचुर स्राव होता है, अतमें थक्के निकल सकते हैं। यह जमा हुआ रक्त-रस है जिसने क्लोम-नलियोंको रूँध रक्खा था। इन थक्कोंकी आकृति नलीमें जमनेके कारण साँचेमें ढली जैसी होती है। निर्गलन से ये ढीले पड़ते हैं और छोटे छोटे टुकड़ेकी तरह बाहर निकलते हैं।

रोग साधारण तौर पर दो तीन सप्ताहमें निवृत्त हो जाता है। पर यह अनिश्चित लम्बे समय तक लगा रह सकता है और बहुत जीर्ण इन्टरस्टिशल (interstitial) निमोनियाँ हो जा सकता है।

चिकित्सा : चिकित्सा क्रूपस निमोनियांकी तरह है। अच्छी शुश्रुषा और पूरी हवा जरूरी है। पर उसे वर्षा और ठंढसे वचाया जाय। गुड़में मोदक या अवलेह वनाकर दवा दी जा सकती है कि पशु उसे लेमनजूसकी तरह चूसे। पिलानेकी कोशिश न हो। क्योंकि, वलात पिलानेसे तरल पदार्थ क्लोम होकर दूसरी ओर चला जाता है। लक्षण जैसे ही प्रगट हों उनसे छुटकारा पानेकी कोशिश हो। कंठ और फेफड़ेके प्रदाहके उपशमनके लिये दवाका भाफ (inhalations) देना और छातीकी मालिश लाभदायक है। थोड़ी थोड़ी देर पर थोडा थोडा चारा दो। रोग निवृत्तिके वाद कमजोरी दूर करनेके लिये अधिक दिनों तक विश्राम चाहिये। कमाऊ वैलों से वहुत धीरे ही काम लेना चाहिये। नहीं तो रोग लौटनेका खतरा रहता है।

कभी कभी निमोनियाँ तेजीसे वढ़ता और कुछ ही दिनोंमें फेफड़ेके वहुत वडे भागको ढक लेता है। और कभी कभी यह गतिसे वढता और २ या ३ सप्ताहसे जादा ठहर सकता है।

काश और ब्रोंको-निमोनियांका भेद समझनेमें कठिनाई होती है। ब्रोंको-निमोनियाँ की सूचना ऊँचे तापमानसे मिलती है। इसमें स्वाभाविक रूपसे साँस नहीं चलती। पर ब्रोंको निमोनियांमें मन्दता फेफड़ेके भिन्न भिन्न भागोंमें सीमावद्ध रहती है।

एम० वी० ६९३ देनेसे फायदा होना चाहिये।

१८३८ क्रोनिक फाइव्रस इंटरस्टिशल निमोनियाँ (Pulmonary Cirrhosis)

इस रोगमें फुसफुसके तंतु ही केवल ग्रसित होते हैं। क्लोमशाखाओं और रक्त वाहनियोंकी दीवालके चारों तरफ मूलकण युक्त सौत्रिक ततु वढने लगते हैं। ये इतना वढते हैं कि वायुकोप वन्द और विनष्ट हो जायँ। फेफड़ा पहले वढना और फिर सिकुड्ने लगता है। इसकी वनावट घनी और ठोस हो जाती है। पर अग्रसित भाग हवासे असाधारण फूल उठते हैं अर्थात् जिन अग्रसित भागोंमें स्वभावतः हवा नहीं होती, हवा और गैससे फूल उठते हैं। क्लोमशाखाएँ फैल जातीं। उरस्याकला मोटी हो जाती है। जव ह्रास और वढ़ना है तव फुसफुस-पदार्थ टूट जाता है और उसमें खात वनते हैं। पशुओं के फेफड़ेमें ये परिवर्तन

अधिकतर परोपजीवी अर्भकों या एकीनोकोकस जीवाणुकी थैली (echinococcus cysts) के कारण होते हैं।

लक्षण : आरम्भमें दम घुटनेकी सी तकलीफ होती है। कठिन या देर तक काम करनेमें असमर्थता होती है।

हल्की और पीडा भरी खाँसी होती है। प्रायः वह भूलसे दमा मान ली जाती है। जीर्ण काशका उपद्रव हो सकता है। इस दशामें खांसी वहुत और सूखी होती है। यदि पशुको विश्राम मिले तो ताप नहीं चढता। प्रायः इस रोगके रोगी पशु विश्राम के अभाव या क्लान्तिसे मर जाते हैं।

चिकित्सा . जो कुछ हो सकता है सुश्रुषा और विश्राम से। औषधि कुछ नहीं है। परोपजीवियोंके मारनेकी कोशिश करनी चाहिये। यदि थैली (cysts-सीस्ट) के कारण रोग है तो उसका (थैलीका) वढना चिकित्सासे नहीं रुक सकता। सल्फा पाइरीडीन या एम० वी० ६९३ भीतरी कोथ निवारण के लिये दो।

१४४०. पार्श्वशूल (Pleurisy)

उरस्याकला या फेफड़ेको आवृत करनेवाली रसयुक्त झिल्ली और उरः स्थानके भीतरी अस्तरके प्रदाह का नाम पार्श्वशूल या प्लूरिसी है। कभी कभी क्षयके कारण पार्श्वशूल होता है और कभी इसका उल्टा भी। अर्थात् इसके कारण फुफ्फुसका क्षय होता है।

पहले झिल्लीका प्रदाह होता है जो वढकर फेफड़ेके तन्तु और छातीकी दीवालमें पहुँचता है। दूसरी अवस्थामें उरस्याके ऊपर फाइब्रीन निकलती है। यह पतली और सरलतासे साफ हो जानेवाली झिल्ली हो सकती है या काफी मोटी और चिमड़ी। साधारण अवस्थामें उरस्याकी दोनों परतोंके बीच एक चिकनी चीज रहती है जिससे उनमें घर्षण कम होता है। ये दोनों परतें जगह जगह मध्यवर्ती फाइब्रीन के द्वारा सट जाती हैं। फाइब्रीन की तह उरस्या की दोनो परतों के बीच फली रहती है। इन वृद्धियोंके कारण सांसके समय फेफड़ेके कासमें वाधा होती है।

कुछ दिनों तक फाइब्रीन जमा होनेके वाद दूसरी घटना यह होती है कि दरस्याके दरीमें एक द्रव भरता है। यह द्रव प्राय. गँदला, चिकोहा फाइब्रीनयुक्त होता है। जिसमें कभी कभी ठोस फाइब्रीनके कतरें भी होते हैं। जो पहले महाप्राचीराकी तरह पृथक करनेवाली दीवालकी तह थी धान पानीकी थैली वन

जाती है। सयाने पशुमें यह पानी कई गैलन हो सकता है। उर और उदर दरीमें दूसरे अवयवोंको वाधा दिये विना इतना पानी रहनेकी जगह नहीं है। उरस्याका थैला फूलकर अन्य अवयवोंको उनकी जगहसे ठेलता है। फेफड़े और हृदय दब जाते हैं और यकृतभी इसी तरह ठिलता है।

अनुकूल रोगोंमें यही समय स्वाभाविक अवस्था लौटानेकी चेष्टाका होता है। द्रव धीरे धीरे आचूषित होता और संलग्नता छूट जाती है जिससे उरस्या फिर अपनी साधारण कामवाली अवस्थामें आ जाती है और रोग शेष हो जाता है।

यदि आचूपण जल्दी न हो और द्रव उरस्यामें वहुत दिन रह जाय जिससे फेफड़ों पर वहुत दिनोंतक लगातार चाप वना रहे तो पानी निकल जानेके वाद भी फेफड़े फिर फैल नहीं सकते।

इसका असर यह होता है कि, फेफड़ेका ग्रसित भाग सदाके लिये वेकाम हो जाता है। फेफड़ेके दबे या सिकुड़े रहनेसे छातीकी दीवाल दवकर विकृत और टेढ़ी हो जाती है। इसलिये साँस लेनेके समय ग्रसित भाग फूलता पटकता नहीं है।

उरस्या कलाकी थैलीमें अनाचूषित द्रव रह जाय तो उसमें पीव हो जाती है और वह गैससे फूल जा सकती है। इस तरह गैस या वायु जो वहाँ पैदा होती है वह थैलीके द्रव पर दवाव डालती है। अधिक दवावसे वह थैली फट सकती है। पर पशुओंमें वह वहुत कम होता है।

एक तरहके पार्श्वशूलमें पानी नहीं जमता। इसे सूखा पार्श्वशूल कहते हैं।

कारण : उरस्याकलामें जो जीवाणु घुस जाते हैं उनके कारण पार्श्वशूल होता है। ये छातीकी दीवालसे, क्षतोंसे, या पड़ोसके अवयवोंके प्रदाहसे या रक्तवहोंसे भी इस जगह आ सकते हैं।

उदरमें विजातीय पिंडोंके (१४२४) वारेमें कहा जा चुका है कि, ये पासके अवयवोंमें क्षत कर सकते हैं। नुकीली चीजें रोमन्थाशयमें छेदकर उरस्याकलामें क्षत कर सकती हैं। इससे भी पार्श्वशूल हो सकता है। कभी क्षय (यक्ष्मा) के कारण भी पार्श्वशूल होता है। ऐसी दशामें ढोरमें इसका सूखा रूपही होता है। इन्फ्लुएंजा या कठजिभियासे उरस्या जीवाणुग्रस्त हो सकती है जिससे पार्श्वशूल हो जाता है। बाहर से भोंके गये क्षतसे भी यह हो सकता है।

लक्षण उग्र पार्श्वशूलमें प्रायः तीव्र वेदना होती है। पशु सुस्त और वेचैन हो जाता है। ताप चढ़ता है और रोगकी तीव्रताके अनुसार १०३ से १०७

डिग्री फा० हो सकता है। साँसका तरीका बदल जाता है। उरकी दीवाल कम फूलती है। पार्श्व और उदरकी पेशियोंको साँसकी क्रियाके लिये श्रम करना होता है। फेफड़े पूरी तरह फैल नहीं सकते इसलिये साँस थोड़ी और तेज चलती है। पेटसे साँस लेना पार्श्वशूलका लक्षण कहा जा सकता है। छाती दबानेसे दर्द होता है जिससे पशु चीख सकता है। करवट फेरनेसे भी दर्द हो सकता है। क्योंकि मुड़नेसे दबाव पड़ता है। हल्की सूखी खाँसी हो सकती है। पानी जमा होनेसे खाँसी चली जाती है पर साँसकी कठिनाई बढ़ती है।

प्रायः ताड़नसे पानीकी सतह जानी जा सकती है। यदि उर-फलकसे कशेरु-कटक तक खिंची लकीर पर द्रव एक तिहाईसे ऊंचा उठे तो यह खतरनाक है।

पार्श्वशूलको सदा कठिन रोग मानना चाहिये। उग्र पीड़ाकी अवस्थामें पशु दो दिनके भीतर मर सकता है। तीनसे चार सप्ताहमें निवृत्ति हो सकती है। जब रोग अनुकूल होने लगता है तब साँसमें सुधार होता, बुरे लक्षण धीरे धीरे खतम होते हैं और पशु खाना चाहता है।

जीर्ण पार्श्वशूल सूखा भी हो सकता है, चाहे इसमें पानी भी जमा हो सकता है। उग्र आक्रमणके बाद जीर्ण अवस्था आ सकती है अथवा रोग धीरे धीरे बढ़ उग्र रूप ले सकता है। सूखे जीर्ण प्रकारका निदान कठिन है। साँसकी कठिनाई या जरा श्रमसे थकान कुछ आभास देते हैं। खड़े होने, लेटने और झपाटेसे मुड़नेमें कठिनाई होती है। यदि जीर्ण प्रकारमें जल जमा हो तो लक्षण उग्रकी तरह होते हैं, केवल पीड़ा उतनी उग्र नहीं होती।

चिकित्सा : छातीके दर्दमें प्रतिउत्तेजककी मालिशसे आराम मिलता है। ऐंटीफ्लोजिस्टीन जैसी दवाओंका प्रलेप लाभदायक होता है। इन दवाओंमें ग्लिसरीन और गीली चीनी मिट्टी या शुद्ध गीली मिट्टीके साथ कुछ गंधतेल भी रहते हैं। प्रारंभिक अवस्थामें जब उरस्यामें घर्षण होता है तो ठंढे पानीका उपचार लाभ कर सकता है। बादकी अवस्थामें सेंकना उपयोगी है। जमे द्रवका आचूषण बढ़ाने और सुगम करनेके लिये कपूर-तेल मालिश करना लाभकारी है। यदि पानी नरम हो और खाँसी कष्टकारी हो तो अफीम या धतूरा जैसी शामक औषधि दी जाय। अफीमकी मौर्फिनके रूपमें $\frac{1}{2}$ से २ ग्रेनकी मात्रामें अन्तस्त्वक् सूई भी दी जा सकती है।

थियोसेंनामाइन या एम० वी० ६९३ जैसी दवायें दी जायँ। दस्तावर दवा देना जरूरी है जिससे पाखाना साफ होता रहे।

अध्याय ४७

हृदयके रोग

हृदय कड़ा श्रम करनेवाला अवयव है। भ्रूणमें जव यह वनता है उस समयसे लेकर मरण तक काम करता रहता है। यह विश्राम जानता ही नहीं। इसका विश्राम मृत्यु है। रक्तसंचारके जितना वड़ा काम इसे रुके विना रात दिन करना होता है। उस हिसावसे हृदयके रोग थोड़े ही हैं। रोग जितने थोड़े हैं, उनका पता लगाना और चिकित्सा करना उतना ही कठिन है। यह ठीक है कि, रोगके वढने पर मामूली पशुपालक भी कह सकता है कि पशुके हृदयमें कुछ गडवड़ी है। पर हृदय-रोगकी गभीरताका निर्णय करना अनेक दिनोंके अनुभवके व्यावहारिक ज्ञानसे हो सकता है। हृदय-रोगकी चिकित्सा सदा विशेष और कठिन विषय रही है।

कुछ साधारण हृदय-रोगोंके वारेमें नीचे लिखा जाता है।

हृदय एक थैलीमें रहता है जिसे हृत्कोष (पेरीकार्डियम) कहते हैं। हृदयके मांसल ढांचेको हृत्पिंड (मायोकार्डियम) और उसके भीतरी अस्तरको हृदयाभ्यतर कला (एन्डोकार्डियम) कहा जाता है। इन तीनों भागोंमें प्रदाह हो सकता है, जिसे हृत्कोष-प्रदाह, हृत्पिंड-प्रदाह और हृदयाभ्यतर-प्रदाह, ग्रसित भागोंके अनुसार, कहा जाता है। हृदयकी कपाटिकाओंके रोग भी हो सकते हैं। हृदयके दोनों भागोंमें चार कपाटिकायें हैं। इनके रोगोंको कपाटिका रोग (भेलभ्युलर डिजीज) कहते हैं। वह सकुचित हो सकते हैं चाहे अयोग्य।

पूरे हृदयमें 'अतिवृद्धि' (हाइपरट्रोफी) हो सकती है। इस रोगमें हृदयकी दीवाल मोटी अथवा फैली हो सकती है। फैली दीवालमें खात वड़ा हो जाता है। हृदयके मांसलतन्तु विकृत हो सकते हैं जिससे हृदयका कार्य मन्द हो जाता है। इसे "हृदयकी विकृति" कहते हैं।

ऊपरकी रचना सबन्धी विकृति हुए बिना भी हृदय ठीक तरहसे काम नहीं कर सकता जिससे "क्रियागत रोग" हो जाते हैं।

प्रायः जीवित अवस्थामें हृदयमें कोई गडबडी नहीं मालूम होती पर शवपरीक्षासे एक या अनेक दोषोंका पता चलता है। इसका कारण यह है कि, हृदय की क्षतिपूर्तिकी अद्भुत सामर्थ्य है। यदि हृदयके एक भागमें निर्बलता या दोष है तो उसकी पूर्तिके लिये वह अधिक श्रमसे कार्य करता है। तब हृदय "क्षतिपूर-हृदय" कहा जाता है। क्षतिपूर्ति होनेपर रोगी हृदयका कामभी साधारणवत् होता है। पर किसी तरह यह नहीं हो पाता तो रोगका प्रभाव दिखायी पड़ता है।

हृदयके इस क्षतिपूरक कार्यसे अतिवृद्धि या विकलांगता होती है। हृदयका रक्तसंचारी सस्थान साधारण तौर पर जितना कार्य करने देता है यदि पशुसे उससे जादे कार्य लिया जाय तो लादे गये कार्यको पूरा करनेके लिये हृदयका आकार फैल या बढ जाता है अर्थात् अतिवर्द्धित हो जाता है और बड़े हृत्पिंडसे, एक व्यक्तिके लिये जितना करना साधारणतः असभव था, सभव हो जाता है। इसी तरह मनुष्यको 'कसरती हृदय' होता है। कसरती लोग असाधारण शारीरिक कलाबाजी क्रिया करते हैं। इस अतिरिक्त कार्यको पूरा करनेके लिये हृदयका आकार बड़ा हो जाता है और वह अतिवर्द्धित या विकलाग हो जाता है। जिन पशुओंसे अतिरिक्त कठिन श्रम लिया जाता है उन्हें यही होता है। पर इसका बुरा फल भोगना ही होता है। उमर बढने और पेशियोंकी शक्ति घटनेपर पशु वह काम नहीं कर सकता जो कृत्रिम सामर्थ्यसे करता था। पशु फिर कम काम करने लगे तो उसके वर्द्धित हृदयके बढे आकारका कुछ प्रयोजन नहीं रहता। इसलिये उस पर चर्बी छा जाती है जिससे वह साधारण हृदयसे भी बुरा हो जाता है। क्योंकि, उसे निष्क्रिय रखनेसे क्षीजन या विकृति हो जाती है।

ज्वरवाले सभी रोगोंकी, विशेषकर जिनमें जीवाणुका आक्रमण होता है, प्रतिक्रिया हृदयपर होती है। इन्फ्लुएँजा, निमोनियाँ, प्लूरिसी, क्षय, कोथीय ज्वर सभी हृदय पर अतिरिक्त श्रमभार लादते हैं। छातीमेंके, हृदय छोड, अन्य अवयवोंके विकारका भी उसपर असर होता है। निकटवर्ती होनेके कारण उदरविकार भी हृदय या हृत्कोषको ग्रस सकते हैं। आसपासमे अर्बुद होनेसे उनके चापसे भी हृद्विकार हो सकते हैं। चाप सीधे हृदय या धमनियों और लसीका-ग्रन्थियोंपर हो सकता है।

हृदयके रोगोंका पता साधारण श्रमसे भी दम फूलने और धडकनमें अनियमिततासे चलता है। हृदयकी क्रियाके दोषसे हृदयके आश्रित अंग और पेटका भी शोथ होता है। कई वार जीभका गँदलापन आँख और मसूडे परकी झिल्लियोंमें रक्त-संकुलता भी होती है। ये कुछ साधारण लक्षण हैं।

१४४१. हृत्कोपप्रदाह (Pericarditis)

हृत्कोषके प्रदाहका नाम हृत्कोपप्रदाह है। ढोरको यह किसी क्षतके कारण हो जाता है। पर हृदयदेशके रोग हृत्कोपमें फैल उसका प्रदाह कर सकते हैं। पार्श्वशूल, निमोनियाँ, क्षय, कोथीय ज्वर सभीके कारण हृत्कोपमें प्रदाह हो सकता है। ढोरमें जालाशयको छेदकर वाहर निकले हुए विजातीय पिंडसे क्षतभी सफल कारण है। क्योंकि जालाशय हृदयके सबसे पास है। ढोरमें एक विकृत इच्छा चाहे जो खानेकी होती है। इनका विचार 'पेटमें विजातीय पिंड' के कारण उदर-विकारमें हो चुका है। पशुकी खायी सूई, पिन आदि जालाशयको छेद हृदयमें क्षत कर सकती है जिससे यह रोग हो जाता है।

हृत्कोष एक दूसरेसे सटी दो परतोंका बना थैला है जिसमें हृदय रहता है। उग्र हृत्कोप प्रदाहमें इसकी दोनों सतह पर फाइब्रीनकी परत जम जाती है। यदि हृदयमें सूई जैसी चीज चुभ जाती है तो उसकी थैली रक्तरसीय पदार्थसे भर जाती है। यह वहुत कुछ सडनेवाला पदार्थ है। यह हो सकता है कि, हृदयमें प्रवेश करनेवाला विजातीय पिंड उसकी पेशियोंसे पूरी तरह घिर जाता या वह पिंड टूटे जिससे हृत्कोपमें क्षत हो जाय।

लक्षण : क्षतकृत हृत्कोषप्रदाह १ से ६ सप्ताह रहता है। जालाशय पर दवानेसे नरम मालूम होता है। छिछली साँस चलती है जिसमें दर्द होता है। धडकन वढ जाती है। हृत्कोपका घर्षण स्वर सुनाई पड़ता है जो अधिक द्रव जमा होनेपर मिट जा सकता है। पीड़ायुक्त क्षीण खाँसी पायी जा सकती है।

छूत जनित क्षतरहित हृत्कोषप्रदाहका आमतौरसे घातक अंत होता है। क्षतकृत रोग कई तरहका होता है। कभी कभी लक्षण दव जा सकते हैं और कभी आधी दवी हालतमें वने रहते हैं।

चिकित्सा : आहार नियमन करके साधारण स्वास्थ्य वनाये रखना चाहिये। हरा चारा या सूखी घास और चोकर दिये जायँ। ग्रसित भागपर पाट या रुई

ठढे पानीमें भिगाकर शीतोपचार किया जाय। आरम्भिक अवस्थामें सैलीसिलेट देनेसे लाभ हो सकता है। प्रति दिन दो या तीन वार सोडियम सैलीसिलेट ४ ड्रामकी मात्रामें दिया जाय।

आचूषण वढानेके लिये हर्रकी ८ आउन्स सूखी वुकनी दो वार, मुसव्वर १½ आउन्स या मैग० सल्फ० १ रत्तल की मात्रामे विरेचक के लिये दिये जायँ।

१४४२. हृत्पिंडप्रदाह (Myocarditis)

गलघोंटू जैसे रोगोंके कारण पेशियोंका प्रदाह और विकृतिको हृत्पिंडप्रदाह कहते हैं। साघातिक खुरपकामें यह हो सकता है। इसमें हृदय-दौर्बल्यके लक्षण होते हैं। नाडी क्षीण और चंचल हो जाती है। नीलिया हो सकती है। ये सभी लक्षण प्रतिगामी हो सकते हैं। कठिन रोगमें नाड़ी सौत्रिक या अति क्षीण हो जाती है और रुक रुक कर चलती है। हृदयके पक्षाघातसे मृत्यु हो सकती है। प्रारंभिक छूतके ऊपर रोग का दौरा निर्भर करता है। यह साधारण तौर पर घातक है।

चिकित्सा साधारण सुश्रुषा-पद्धतिसे करनी चाहिये। चलना फिरना एक दम मना है। आहार पोषक हो। अर्जुनके उपयोगसे हृदयकी पेशियोंको वल देना चाहिये। सकट टालनेके लिये ½ ग्रेन स्ट्रिकनीनकी अनस्त्वक् सूई दो।

१४४३. कपाटिका-रोग (Valvular disease)

हृदयके अधिकतर रोग इस वर्गके हैं। कपाटिकाएँ रक्त निकलने या भरनेमें अवरोधक हो सकती हैं। या कपाटिकाओंमें ही छिद्र हो सकते हैं। इन दोनों कारणोंसे हृदयकी कार्यकारिता घट जाती है। पर काम पूरा करनेके लिये प्रभावित भागका आकार वढ जाता है। वह इसलिये कि, एक तरफ अवरोध या छिद्रसे जो हानि होती है वह वढ़ी हुई थैलीके अतिरिक्त आयतन और शक्तिसे पूरी हो जाय। जवतक साधारण परिमाणमें सचार होता रहता है और भिन्न भिन्न अवयवोंके कार्यमें कोई वाधा नहीं होती तो कपाटिका-दोषकी पूर्ति होती रहती है। पर किसी किसी कपाटिका-रोगमें कोई अग ठीक तरह काम नहीं कर सकते, स्वाभाविक प्रमाणसे काम करनेकी तो वात ही क्या, विश्रामकी दशामें भी उनकी कार्यकारितामें वाधा

पहुँचती है। ऐसी हालतमें हृदयके किसी भागकी अति वृद्धि होते हुए भी कपाटिकाके दोष या त्रुटिकी अपूर्ति प्रकट होती है।

जब जरूरतसे कम रक्तका सचार मस्तिष्कमें होता है तब उनींदापन होता है। वाम हृदयकी अलिन्द-निलय कपाटिकाकी असमर्थताके (द्विपत्र कपाटिकाकी असमर्थता) कारण वाम अलिन्दमें रक्त फिर लौट आता है जो फेफड़ेसे आते रक्त-प्रवाहको रोकता है इस कारण फेफड़ेमें निष्क्रिय रक्त सकुलता होती है।

भिन्न भिन्न दोषोंका निदान केवल सतर्क परीक्षणसे हो सकता है। इसके लिये निपुणता आवश्यक है। हृदयकी विभिन्न ध्वनियाँ अपनी रामकहानी अनुभवी कानोंमें कहती हैं। तब दोषोंका पता चल सकता है। यह कठिन कार्य है। किसी निपुणसे इसकी व्यावहारिक शिक्षा लेनी होती है।

यदि किसी कारण हृदयमें गड़बड़ी हो तो पशुको विश्राम देना बुद्धिमानी है। यदि रोग साध्य हुआ तो विश्रामसे छूट जा सकता है। क्षतिपूरक अवस्था लानेके लिये कभी कभी हृदयकी पुष्टई लाभप्रद होती है।

१४४४. हृदयके क्रियागत रोग

(१) हृत्कंप : धड़कन : हौलदिल (Palpitation)

हृत्कपमें हृदय जल्दी जल्दी जोरसे धडकता है। इसका कारण कोई नाड़ी-दोष (nervous errors) हो सकता है। धड़कन कुछ सेकेन्ड, मिनट, घंटा या दिन-तक होकर शान्त हो जाती है। आक्रमणकालमें हृदयकी धड़कन बढ जाती है और कभी कभी कुछ गज दूरसे भी सुनी जा सकती है। नाड़ी निर्बल रहती है और मन्याशिरा फैल जाती और फड़कती है। पशु बहुत चिन्तित सा मालूम होता है। काँपता है। पसीना होता है। आक्रमण शमन होने पर सभी लक्षण मिट जाते हैं।

यदि नाड़ीकी उत्तेजना कुछ देर बनी रहे तो मौर्फिन या अफीम जैसी उपशामक दवा कठिन रोगमें दी जाय। कम कठिन रोगोंमें क्लोरल हाइड्रेट या पोटाश ब्रोमाइड दिया जा सकता है।

१४४५. (२) हृद्मन्दता (Brady Cardia)

इसमें हृदय बहुत मन्दगतिसे कार्य करता है। इसके कारण पशुको कोई कष्ट नहीं होता। कभी कभी किसी कड़ी बीमारीमें हृदयकी क्रियामें बाधा होती है।

और तब उस बीमारीके बाद यह अवस्था होती है जिससे ऐसी हालतोंमें साधारण दशा कुछ देरके बाद पलटती है, यद्यपि हृदयमंदताके समय पशु बहुत सुस्त और उनीदां हो सकता है।

१४४६. हृदयकी धड़कनकी अनियमितता

यह पशुओंको बहुत होती है। पाचनके विकार या प्राणदा नाडी पर प्रतिक्रियाकारी विषके आचूषणसे अल्पकालिक अनियमितता हो सकती है। हृदयकी पेशियोंके रोग (हृत्पिंड-प्रदाह इत्यादि) भी इसके कारण हो सकते हैं।

रोगोंके कारण हुई अनियमितता आरंभिक रोगके मिटते ही गायब हो जाती है। पशुके स्वास्थ्य और सामर्थ्यमें बाधा दिये बिना यह अस्थायी या स्थायी रूपमें बनी रह सकती है। पर यदि हृदय कठिनरूपसे अभिभूत हुआ तो अवस्था गंभीर हो सकती है। अतिरिक्त विकासीय या विस्तारी अनियममें जल्दी जल्दी दो या कई धड़कनें होती हैं जिनके बाद देर तक कुछ नहीं होतीं। शरीरश्रमसे यह अनियम बढ जाता है। अर्जुन जैसी हार्दिक पुष्टई से यह कमसे कम तत्कालके लिये मिट जाती है।

जिन पशुओंको यह हो उनसे सावधानीसे काम लिया जाय।

१४४७. हृदय दौर्बल्य (Cardiac asthenia)

इस रोगमें हृदयपेशियोंकी शक्ति घट जाती है। जब असाधारण श्रमसे यह दशा होती है तब उसे "सापेक्ष हृदय दौर्बल्य" कहते हैं और जब जीवनकी साधारण दशामें होता है तब उसे "निरपेक्ष हृदय दौर्बल्य" कहते हैं। निरपेक्ष हृदय दौर्बल्य पशु विश्राम करता हो तब भी या हल्के श्रमसे हो सकता है।

जब बहुत कमजोर या मोटे पशुसे या लंबे विश्रामके बाद किसी पशुसे तेज दौड़ने या बोझ खींचनेका अनभ्यस्त श्रम लिया जाता है तब उग्र हृदय दौर्बल्य हो सकता है। तब शिरायें अलिन्दमें अधिक रक्त ठेलती हैं पर देहकी पेशियोंके प्रबल संकोचसे धमनीका प्रतिरोध बढ जाता है। इससे हृदयकी दुर्बलता होती है। क्योंकि, धमनीके बढे प्रतिरोधके कारण हृदय उसमें सब रक्त ठेलनेमें समर्थ नहीं भी हो सकता है।

छुतहे रोग, हृदयकी पेशियोंके रोग या विषके प्रभावसे निरपेक्ष-हृदय-दौर्बल्य होता है।

लंबी मेहनतसे हफ्तों या महीनोंमें धीरे धीरे जीर्ण हृदय-दौर्बल्य होता है। यह साधारण तौर पर कपाटिका (१४४३) हृत्पिड (१४४२) और हृदयके रोग या हृदयकी ही पेशियोंका रक्त लौटानेवाली हार्दिकी शिराओंके ग्रस्त होनेसे होता है।

अतिरिक्त श्रमसे सुस्थ हृदय भी अयोग्य हो जा सकता है। क्योंकि, हृदयको धमनीके प्रवल प्रतिरोधके विरुद्ध शिराओंका अतिरिक्त रक्त शुद्ध-कर बाहर भेजना होता है। जब प्रतिरोध और भी बढ जाता है तब हृदयके बाहर भेजे जानेवाले रक्तका परिमाण कम होने लगता है। अतमें धमनीके प्रतिरोधके चाप और हृदयकी पेशियोंके चापका सतुलन हो जाता है। तब हृदयसे रक्त एकदम बाहर नहीं निकलता और हृदय भरा रहता है। सभी निरपेक्ष हृदय-दौर्बल्यमें पूरे विश्राममें भी यह कुछ कुछ होता है। आये रक्तसे बाहर निकाले जानेवाले रक्तका परिमाण कम रहता है। अर्थात् अचलस्थिति (stasis) पैदा होती है।

हृदयके जीर्ण रोगोंमें उक्त स्थितिमे शोथ और जलोदर हो जाता है जो सारी देहमें फैल सकता है। त्रुटिपूर्ण रक्तसचारसे सिरमें चक्कर और मूर्छा हो सकती हैं। फौप्फुसी रक्तश्रोत (pulmonary circulation) में बाधा (stasis) होने पर सांसकी गड़बड़ी और कफमें रक्त निकलता है। इसका प्रभाव सभी अगोंपर हर तरह होता है। आमाशयकी क्रियामें बाधा पहुँच सकती है। यकृत, अग्न्याशय और वृक्कोंपर भी प्रभाव पड़ सकता है। कभी यकृत् बढ़ जाता है, फेफड़ेमें शोथ होता है और मूत्रस्राव कम हो जाता है अर्थात् मूत्र कम बनता है।

धड़कन बढ जाती है और हृत्कप होने लगता है और हृदय साधारणतः फैल जाता है।

चिकित्सा : हर प्रकारके हृदय-दौर्बल्यमें पूरे विश्रामके साथ पुष्टिकर आहार और सुन्दर सुश्रुषा जरूरी है। यदि पाचनकी कोई गड़बडी है तो लक्षणके अनुसार चिकित्सा हो। कब्ज होने पर रेंड़ीका तेल और मैग० सल्फ० दो, कि मल नरम रहे।

अनेक वार अर्जुनके छालका चूर्ण दिनमें तीन चार वार दो दो आउन्स देनेसे पेशी-संकोचमें स्फूर्ति, कफमे कमी, और रक्तसचार बढता है। खिलानेपर

दवाका प्रभाव देरमें होता है। चटपट प्रभावके लिये अतस्त्वक् मे या शिरामें दवाकी सूई देनी चाहिये। स्ट्रोफेनथीन देनेमें कठिनाई है, क्योंकि उसकी अधिक मात्रा पड़ जानेका डर सदा रहता है जिससे मृत्यु हो सकती है। यह जोखिम नहीं उठाना चाहिये। डिजीटेलीनमें भी यही दोप है। डिजीटेलिस खिलाना भी नहीं चाहिये। क्योंकि, रोमन्थाशयमें इसके ग्लूकोसाइड तत्व सधान प्रक्रियाके समय नष्ट हो जा सकते हैं। अर्जुनका क्या होता है इसका अभीतक पता नहीं चला है। इससे कोई नुकसान नहीं होता और विशेपकर मनुष्योंमें यह बहुत प्रभावकारी सिद्ध हुआ है। इसलिये इसका प्रयोग होना चाहिये।

पेशी-दौर्वल्यजनित हृदय-दौर्वल्यमें १ से २ ड्रामकी मात्रामें कर्पूर, तेलमें घोलकर उसकी सूई अन्तस्त्वक्में दो।

अध्याय ४८

वृक्कके रोग

१४९८ वृक्क-प्रदाह (Nephritis : Bright's Disease)

यह वृक्कका विप या छूतका रोग है। इसमें पूरा वृक्क या केवल उसकी उत्सिकायें (glomerules) और नलिकायें (tubules) ही ग्रसित हो सकती हैं। प्रदाह चकत्तोंमे हो सकता है या पूरेहीमें। यद्यपि बाहरी चोटसे प्रदाह कमही होता है, फिरभी यदि पशु कुचल जाय या सींगकी चोट खा जाय तो यह हो सकता है। पारद या तारपीन जैसे उत्तापकों की विप-क्रियाके कारण यह हो सकता है। पर सबसे प्रवल कारण माता और गलघोंटू जैसे भयकर रोग होते हैं।

ठढ, ठढी हवा अथवा लू लगनेसे वृक्ककी सजीवता घट जाती है। इसलिये वह जीवाणुओंका शिकार आसानीसे हो जाता है जिससे प्रदाह होता है। फँफूदा लगा या विगड़ा चारा प्राय• वृक्कोंमें खराबी लाता है। इन्फ्लूएंजा और सक्रामक निमोनियाँ कभी कभी उत्पात मचाते हैं।

लक्षण : पेशावमें अल्बुमीन (अंडलाल) होती है जो इसकी साधारण परीक्षा विधिसे देखी जा सकती है। पेशाव घट जाती है। अणुवीक्षणसे देखने पर तलछटमें वहिकःलाके कोप (epithelial cells), खराव निःक्षेप (casts) और श्वेत रक्तकण दिखाई पड सकते हैं। इसके साथ कभी कभी वृक्कमें नरमी भी रहती है। पशु कमानकी तरह कमर झुका खडा रहता है और वेमनसे चलता है। प्रायः वुखार भी होता है। पेशाव लाल हो जाती है।

कठिन रोगोंमें कई दिनों तक पेशाव नहीं भी हो सकती है। पशुको कभी कभी वहुत पसीना निकलता है।

चिकित्सा : गरम जगहमें विश्राम दिया जाय। श्रम नहीं लिया जाय। नाइट्रोजनरहित आहार जैसे मंड, चोकरकी सानी आदि दी जाय। दिनमें कईवार प्रति मात्रा आधा आउन्स सोडा वाइकार्व पानीके साथ दिया जा सकता है। दो रत्तल हरी या चार आउन्स सूखी **पुनर्नवा** नित्य दी जाय। यह मूत्रल है।

हल्का दस्तावर दिया जाय जिससे पाखाना होता रहे। कमरमें दर्द हो तो उसपर गरम कंवल डाल दो। कंवल गरम पानीमें भिगा निचोड़ो और इसे कमरपर लपेट दो और इसके ऊपर सूखा कंवल डालकर ढके रहो। इस उपचारको उष्णार्द्र लपेट (हॉट वेट पैक) कहते हैं।

कठिन रोगोंमें जव पेशाव वनती ही नहीं तो उसका अंत घातक होता है। उचित सुश्रुषासे हल्के रोग आराम हो जाते हैं।

उग्र व्याधि अधिक दिन टिके तो प्रायः जीर्ण हो जाती है। पशुको खिलाने और उससे काम लेनेमें सावधानी रखनेसे वह कुछ दिनों तक उपयोगी वना रह सकता है। पर वुरी तरह विगड़ा वृक्क सुधर नहीं सकता। लक्षणोंके अनुसार केवल उपशामक ही दिये जायँ। प्रोटीड आहार वर्जित हो। पर रोग तेजीसे वढ़ सकता है और चार पाँच दिनमें मृत्यु हो सकती है।

१४४९. वृक्कमें जीवाणुकी छूत : उत्सिका प्रदाह (Pyelonephritis)

जीवाणुजन्य उत्सिका-प्रदाह ढोरके भयकर रोगोंमें एक है। यह मुख्यरूपसे प्रसवके वाद गायोंको होता है। पुंगव (वैल) और वछरू वहुत कम ग्रस्त होते हैं।

प्रसवके बाद जीवाणुकी छून योनिकी राह घुसती है। कभी गर्भयुक्त जरायुके चापसे पेशाव रुकनेके कारण पशुमे जीवाणुकी छूतकी तैयारी हो जाती है।

जीवाणु वस्तिकाके कलापुटकोंमें प्रदाह पैदा करता है। तब प्रदाह आसपासके ततुओंमें फैलता है। धीरे धीरे मूत्र-तत्रका निचला भाग ग्रस्त हो जाता है। कभी प्रदाहकी ऊर्ध्वगामी गति होती है और वह नीचेसे ही वृक्कको ग्रसता है।

वृक्कका कलापुटक मोटा हो जाता है। वृक्कतनु रक्तरससे ओतप्रोत हो जाते हैं। पूय बनती है और गवीनी या मूत्र मोटा हो जाता है।

साधारण तौर पर मुतास या पेशाव करनेकी इच्छा बढ जाती है। पेशावमें जोर लगाना होता है जिसमें दर्द होता है। वृक्कदेशमें नरमी होती है। गाढा दूषित सपूय स्राव होता है जो भग और पूँछके नीचे लिश जाता है। भगमें प्रदाहयुक्त ललाई और सूजन हो सकती है। बाहरी घाव हो सकता है। साधारण तौर पर पेशाव गॅदली होती है जिसमें अलबुमीन या सफेदी बहुत रहती है। रोग बढनेसे यूरेमिया होती है अर्थात् पेशाव रुक जानेके कारण रक्त विषाक्त हो जाता है जिससे पशु क्लान्त हो मर जाता है। यूरेमियाको वृक्क-सन्यास या मूत्रावरोध जनित रक्त की विषमय अवस्था कहते हैं।

कोई विशेष चिकित्सा नहीं है। शुरुमें भग और उसके भीतर कोथघ्न पानीसे धोना चाहिये। यूरोट्रोपिन १½ ड्रामकी मात्रामें दी जाय। यह रोग आराम बहुत कम होता है। एम० बी० ६९३ जीवाणुके प्रतिकारके लिये दी जाय।

अध्याय ४९

रक्तके रोग

१४५०. रक्तालपता और रक्तस्राव (Anæmia and Bleeding)

रक्तालपता एक रोगी अवस्था है। इसमे रक्तके हेमोग्लोबिन कम हो जाते हैं। साधारण रक्तालपता कई कारणोंसे होती है।

१. **स्रावीय रक्तात्पता** (Bleeding anæmia) : बहुत जल्दी बहुत परिमाणमें रक्त निकलनेसे उग्र रक्ताल्पता हो सकती है। इस तरह अधिक खून बहने, नकसीर, क्षत, बडी रक्तवहाओंका फटना, यकृतका फटना, डिम्बकोष या जरायु से या क्षयमें फेफड़ेसे रक्तस्राव हो तो उग्र स्रावीय रक्ताल्पता हो सकती है।

२. **रंजनीय रक्ताल्पता** (Haemolytic anæmia) : हेमोग्लोबिन (रक्तके लाल रंग) की हानि और रक्तद्रवमें उसके नहीं मिलने से यह होती है। यह विषैले पदार्थोंके कारण हो सकती है। कई वर्गके बोड़ा साँपोंके (Viper) डसने पर हेमोग्लोबिन नष्ट होनेसे मृत्यु हो जाती है।

३. **पोपणीय रक्ताल्पता** (Nutritional anæmia) : पूरा आहार नहीं मिलने अथवा ऐसा पदार्थ खिलानेसे, जिसमें रक्तकी रचना करनेवाले कुछ आवश्यक उपादानोंकी कमी हो, यह होता है। यह कमी प्रोटीड, कार्बोहाइड्रेट, स्नेह, की हो सकती है अथवा लोहा और तांबा जैसे तत्वोंके नमक या भिटामिनकी। यह आहारके हानिप्रद घटकोंके कारण भी हो सकती है। जमा किये चारेमें फफूंदे या विष हो जानेसे भी पोपणीय रक्ताल्पता हो सकती है।

४. **परोपजीवी रक्ताल्पता** (Parasitic anæmia) : पेट, आँत या फेफड़ेकी कृमियाँ या यकृतीक पित्तियाके कारण यह हो सकती है। रक्तके परोपजीवी जैसे पीरोप्लाज्म या ट्राइपेनोसोम, फाइलेरिया आदिके कारण भी इस वर्गकी रक्ताल्पता हो सकती है। ये कारण तरह तरह से रक्तको प्रभावित करते हैं। कृमियाँ रक्त चूस कर कमी पैदा कर सकती हैं और विषैले पदार्थ पैदा कर सकती हैं जिससे रक्तके सहज निर्माणमें वाधा होती है। परोपजीवी रक्त नष्ट कर सकते या उसका सार चूस सकते हैं।

परिणाम : बहुत रक्त बहनेसे साँस या रक्तसंचार का काम बन्द हो सकता है। काम बन्द होनेका कारण रक्तचापका मन्द पड़ना और रक्तकणकी कमीसे ऑक्सीजनका अभाव है।

जब रक्तस्राव प्रत्यक्ष रूपसे घातक न हो तो रक्तकी हानि प्रकृति पूरी करती है। तन्तुओंसे द्रव लेकर रक्तका द्रव बढ़ाया जाता है। लाल रक्तकण तेजीसे बनते हैं। और तात्कालिक आवश्यकताकी पूर्तिके लिये लाल रक्तकणमें की जो थोड़ी रंजक वस्तु (हेमोग्लोबिन) होती है वह रक्तमें डाल दी जाती है। इन सबसे प्रकृति सकटसे पार पानेका उद्योग करती है।

रजनीय रक्ताल्पतामें अनेक रक्तकण नष्ट हो जाते हैं। इसलिये उसमें भी ऐसी ही क्रिया होती है। पर रक्तकणकी पुनः प्राप्ति अधिक तीव्रगतिसे होती है। क्योंकि, रक्तके कणोंके निर्माणके लिये आवश्यक उपकरण त्वाचीय की तरह सबके सब नष्ट नहीं होते।

रक्ताल्पताका देह पर यह परिणाम होता है कि, रक्त सचारण-सस्थानकी ऑक्सीजन आचूषणकी और कारबन-डाइऑक्साइड-निष्कासनकी शक्ति घट जाती है। इन दोनोंके कारण क्षतिपूर्तिके लिये नाड़ीकी गति (pulse rate) और सांसकी लबाई बढ जाती है। इसी कारण पेशियोंके श्रमसे टूटे तन्तुओंकी सफाई रक्त पूरी तरह नहीं कर सकता। इसलिये विप-पदार्थ पेशियोंमें जमा हो जाते हैं और अस्वाभाविक थकान पैदा करते हैं।

जब किसी पशुकी अतिशय रक्त बहनेसे मृत्यु होती है तो उसके सभी अवयव विशेषकर फेफडे एक दम पीले पड जाते हैं। उनमें जरा भी रक्त नहीं रहता। हृदय और बडी धमनियाँ खाली हो जाती हैं और उनमें जहाँ तहाँ थोडा सा जमा खून ही रहता है। जीर्ण रक्ताल्पतामें अवयवोंमें पूरा खून रहता तो है पर वह पीला और पनीला होता है और बहुत कम थक्का होता है। कठिन जीर्ण रक्ताल्पतामें मुख्य अगोंको शोथ सदा होती है।

लक्षण : **उग्र रक्त-स्रावमें, रक्ताल्पता** बड़ी तेजीसे बढ़ती और खूनकी हानिके अनुपातमें दुर्बलता, चक्कर, पसीना और चालमें डगमगाहट होती हैं। श्लैष्मिक कला पीली हो जाती है। नाड़ी तेज, छोटी और कठोर हो जाती है फिर पीछे नरम हो जाती और उसका तनाव कम हो जाता है। सांसमें कठिनाई होती है और शाखायें ठडी हो जाती हैं। और उनकी पेशियोंमें आक्षेप होता है अर्थात् उनकी नसें खिचती हैं। बराबर खूनकी कमीसे पशु बेहोश हो जाता है और आक्षेपके साथ मर जाता है।

जीर्ण रक्ताल्पतामें पीलापन होता है जो खासकर पलक और आँखके कोटरमें दिखायी पडता है। सुस्ती और अनमनापन होता है और ज्यों ज्यों रोग बढता है यह भी बढता है। थोडी मेहनतसे भी नाड़ी तेज हो जाती है। भूख नहीं लगती, सांस तेज चलती है। रक्ताल्पताके बढ़नेसे पेट छाती और गले पर शोथ होता है। इसके बाद मृत्यु आती है।

रक्तकी अणुवीक्षण परीक्षा और गिनतीसे रक्ताल्पताकी अवस्था और प्रकारके बारेमें बहुत बातें मालूम हो सकती हैं।

रक्तस्रावांतर उग्र रक्ताल्पता उतनी भयकर नहीं है, यदि सतर्कता रखी जाय। यदि अधिक रक्त नहीं वहा है तो उचित सुश्रुषा और आहारसे स्वाभाविक अवस्था फिर लौट सकती है। यह माना जाता है कि, वाहरी स्रावसे यदि ५० सैंकड़ा या अधिक रक्त निकल जाय तो अवस्था घातक होती है। गायको देहकी तौल्का प्रायः $\frac{1}{13}$ रक्त होता है जो लगभग ७.७ सैंकडा है। अच्छी तरह खायी पीयी ५०० रत्तल गायमे यह लगभग ४ गैलनके वरावर होता है इससे इसका अदाज लग सकता है कि गायको मृत्यु-मुखमें ठेलनेके लिये कितना खून वहा। अतस्रावी रक्ताल्पता धीरे धीरे होती है। इसलिये उसमें ८० सैकड़ा रक्त वह जाने पर भी पशु जीता रह सकता है। यदि शोथ या लाल-रक्तकण वनानेकी अस्थिमज्जाकी शक्ति-क्षीणताने वढकर उपद्रव नहीं किये तो **जीर्ण रक्ताल्पता** साध्य है।

रक्तस्रावकी चिकित्सा : हर संभव उपायसे रक्तस्राव रोका जाय। यदि वह वाहरी है तो समय खोये विना उचित स्थान पर वधन लगाया जाय। रक्तकी थक्का वननेकी शक्ति, दूध जैसे अलवुमिनयुक्त द्रवोंकी सूई क्षत स्थानपर लगाकर, वढायी जा सकती है। थक्का वनना वढ़ानेके लिये $\frac{1}{2}$ आउन्स कैलशियम ग्लूकोनेट मुँह या गुदासे दिया जाय। फिटकिरी और तारपीन जैसी रक्तस्रावरोधक दवाएँ पिलायी जायँ।

यदि वहुत द्रव वह गया हो तो उसकी तात्कालिक पूर्ति करना आवश्यक है। इसके लिये नॉरमल सैलाइनकी अंतश्शिरा सूई दी जाय। इसमें एक पाइन्ट जलमें ९० ग्रेन नमक रहता है और इसमें ७ सैकडा (एक पाइन्टमें ६१२ ग्रेन) ववूलका गोद मिलाना चाहिये, जिससे कि, सैलाइनमें कोलायड ओसमोटिक (Colloid Osmotic) चाप हो जाय जैसा कि रक्तमें होता है। इस कामके लिये सैलाइनके साथ ववूलका लसा या लेई वनाओ और फिर उसे पानी मिलाकर धीरे धीरे पतला करो कि थक्का न रहे। फिर दुहरे कपड़ेसे छान कर उवालो और ठडा कर काममें लाओ। ५ से ७ पाइन्ट सैलाइन चढानेसे तात्कालिक आवश्यकता पूरी हो सकती है और यदि ७० सैंकडा भी रक्त वह गया हो तो जान वचायी जा सकती है। फाइव्रीन निकाला गरम खून ८० सी० सी० पशु-देहके विभिन्न भागोंमें वार वार अंतस्त्वक् सूईके द्वारा दिया जा सकता है। यह कुल ३ रत्तल तक दिया जा सकता है। हर सूई या इन्जेकशनके वाद मालिश करके द्रव फैला दिया जाय। —(हुटीरा)

रक्तस्रावके धक्केसे बचनेके बाद स्वादिष्ट पुष्टिकर भोजन, दाना, सूखी घास, मट आदि दी जानी चाहिये। दूध देना अच्छा है। खाना थोड़ी मात्रामें बार बार दिया जाय।

रक्ताल्पताकी चिकित्सा : निरेन्द्रिय लवणके रूपमें लोहा, जैसे फेरस सल्फेट २ ड्रामकी मात्रामें दिया जाय। थोड़ासा कौपर एसीटेट या लैक्टेट लाभदायक है। दहीमें ताँवा डालो। जब दहीके लैकटिक एसिटसे तांवा घुलता है तब वह नीला हो जाता है। यह दिया जा सकता है। दो ग्रेनकी मात्रामे आर्मेनियम एसिड या संखिया रक्तकण बननेमें बड़ा सहायक होता है।

अध्याय ५०

मस्तिष्कके रोग

१४५१. मस्तिष्काघात (Concussion of the brain)

गिरने, टकराने, ठोकर मारेजाने या कुचले जानेसे यदि पशुके सिरमें जोरकी चोट लगे तो भले ही खोपड़ी न फूटे पर मस्तिष्क घायल हो सकता है।

पशु तुरत बेहोश हो जाता है। और उसकी सभी पेशियां ढीली हो जाती हैं। आघातका असर कुछ देरके बाद दूर हो जा सकता है और तब पशु उठ खड़ा हो इस तरह चल फिर सकता है मानो कुछ हुआ ही नहीं। यह जरासी चोटसे हो सकता है। पर कड़ा धक्का या आघात लगने पर पशुको होश आ जाय तब भी खड़ा होनेमें असमर्थ हो सकता है और गति-नियमनकी शक्ति खो सकता है। अच्छी सुश्रुषासे कुछ समयके बाद ये दोष दूर हो सकते हैं और वह आराम हो जा सकता है। पर बहुत कठिन आघातसे होश नहीं होता और यदि हो भी जाय तो आक्षेपके दौरे आते हैं जिससे मृत्यु हो जाती है अथवा कुछ पेशियोंका स्थायी पक्षाघात हो जाता है। मस्तिष्ककी चोटका एक लक्षण वमन है। यह ऊपरकी सभी अवस्थाओंमें हो सकती है।

चिकित्सा : पूरा विश्राम दिया जाय। अतस्त्वक् सूई से कुछ स्फूर्ति-दायक दवायें दी जायँ। यदि कोई घाव हों तो उनकी मरहम-पट्टी हो और यदि हड्डी टूटी हो तो उसका उपाय हो। जहाँतक हो छेड़छाड़ न की जाय।

१४५२. मस्तिष्ककी संकुलता : मस्तिष्कका रक्ताधिक्य

(Congestion of the brain : Hyperæmia of the brain)

संकुलना सक्रिय या निष्क्रिय हो सकती है। रक्तस्रोतमें जीवाणु-क्रिया, रासायनिक क्रिया, विष, या परोपजीवियोंके द्वारा अनेक कारणोंसे सक्रिय सकुलता हो सकती है।

निष्क्रिय सकुलनाका कारण मस्तिष्कसे गिराके रक्तके वहि:प्रवाहका अवरोध हो सकता है। सिर या गर्दनमें कसी रस्सी या सिर और गर्दन की शिराओं पर किसी तरह के दबावसे यह हो सकता है।

सक्रिय सकुलतामें आँखे चमकीली हो जाती हैं और पुतली फैल जाती है। सिर ज्यादा गरम मालूम होता है। नाडी तेज हो जाती है और उसी तरह सांस भी। पशु बेचैन और क्रोधी हो जाता है। निष्क्रिय सकुलतामे थकान और नीलिया हो जाती हैं। नाड़ी हल्की और तेज हो जाती है।

निदान : भेदसूचक निदानसे सभी छुतहे रोग, और मस्तिष्कके लक्षण उभाड़नेवाली मस्तिष्ककी प्रदाही अवस्था छोड देनी चाहिये। मस्तिष्कके लक्षण पैदा करनेवाले कुछ अंत्रविकार भी छोड़ दिये जायँ।

चिकित्सा : आवश्यक हो तो शिरा-छेदन करके रक्त निकालना चाहिये जिससे सकुलता मिटे। सिर पर ठंडक और देह पर गर्मी देनी चाहिये जिससे मस्तिष्कसे रक्त बह जाय। सरल विरेचन दिये जायँ। निष्क्रिय संकुलतामें शिरापर कहाँ दबाव है यह खोज उसे हटाना चाहिये। निष्क्रिय संकुलता हृदयके दोष या दौर्बल्यसे भी हो सकती है। इसलिये हृदयमें स्फूर्ति देनेकी ओर भी ध्यान देना चाहिये। ½ ग्रेनकी मात्रामें स्ट्रिक्नीन और कपूर मिश्रित तेलकी सूई दी जाय। कपूर-तेल की मात्रा :—

कपूर	..	५ ड्राम
तेल	...	३ आउन्स

½ से १ आउन्स प्रति सूई।

१४५३. लू लगना (Sun stroke : Heat stroke)

इस रोगका सरोकार अत्यधिक ताप और कड़ी मेहनतसे है। खेतमें कमानेवाले बैलों या रेलगाड़ीके डब्बोंमे, जहाँ भीड़ और ऊँचा ताप दोनो हैं, भरे पशुओंको यह रोग हो सकता है।

लक्षण : थकान, सुस्ती, मरियल चाल और लड़खडाना इसके लक्षण होते हैं। पसीना हो सकता है। साँस तेज चलती है जिसमें श्रम होता है। तापमान बहुत ऊँचा चढता है—१०७ से ११३ डिग्री फा० या उससे भी जादे। कँपकँपी होती है इसके बाद आक्षेप और सर्वांगीन अवसन्नता और अन्तं मृत्यु।

चिकित्सा : पशुको ठढी जगहमे हटा देना चाहिये। सिर और देहपर शीतल जल छोड़ना या शीतल स्पंज करना चाहिये। सिरका शीतोपचार (कोल्ड कम्प्रेस) हो।

रौंथ समाप्त होनेके पहले बैलोंसे काम लेनेपर उन्हे इसकी ग्रहणशीलता हो जाती है। यह नहीं करना चाहिये, खासकर अधिक तापमे काम करना हो तो। दोपहरको जब गर्मी बहुत जादे हो तो विश्राम और कई बार पीनेको पानी देना चाहिये।

१४५४ गर्दन-तोड़ (Meningitis)

मस्तिष्क और सुषुम्नाकाण्डकी आवरणी कलाके प्रदाहका नाम गर्दन-तोड़ है। मस्तिष्क-पदार्थ भी प्रदाहित और ग्रसित हो सकता है। पर इन प्रदाहोंके लक्षण एक दूसरेसे इतने सम्बन्धित हैं कि, जीवाणुकी क्रियासे ग्रसित मस्तिष्कावरणी और मस्तिष्क पदार्थके प्रदाहोंके भेद और नामका विचार हम अलगअलग नहीं करेंगे। वह हमारे कामका भी नही है।

गर्दनतोड जीवाणुकी क्रिया और दूरके अगोंमें निमोनियाँ या क्षय आदिकी छूतके कारण होता है। पूयकारी जीवाणुकी छूत भी एक कारण होती है जैसे कि, क्षयरोगके जीवाणुकी। खुरकी ठोकर या सींगकी चोटसे खोपड़ी फटनेपर उसमें पूयकारी जीवाणु सीधे पहुँच कर गर्दनतोड़के कारण हो सकते हैं।

छूतवाले जीवाणुओंके उत्तापक प्रभावसे मस्तिष्ककी सकुलता हो सकती है, जिससे रक्तरस जमा होकर मस्तिष्क-पदार्थ पर दबाव डालता है। ये प्रदाह और रोगोंके

अंदरके दवाव नाड़ीकोषों (nerve cells) के साधारण काममें वाधा ढेते हैं। इससे मस्तिष्कके विकार प्रगट होते हैं।

लक्षण : पहला लक्षण वेचैनी और उत्तेजना है। पशु एकाएक चचल हो जाता है। सिर धुनता है, पूँछ डुलाता और इस वगलसे उस वगल और उस वगलसे इस वगल झुक्ते झुकते जमीन पर गिर पड़ता है। तव अचेतनता जादे होती है। आदतके मुताविक वह पुकार नहीं सुनता। थोडी देरमें ऊँघ वढ़नी है। खोपड़ीमें कभी कभी स्पर्शचेतना अधिक हो जाती। आँखकी पेशिया फड़कती हैं। गरदन अकड़ जाती है। बुखार वना रहता है। भूख मिट जाती है।

अचेतनता, आँखका चढ़ना, पुतलीका संकोच और गरदनकी अकड़न ये निदानके जवर्दस्त मुद्दे हैं। खोपडीकी नाड़ियोंमें पक्षाघात होता है। पशुमें उग्र गर्दनतोड़ आधसे दो दिन तक ठहर सकता है। इसका क्षयरोगजन्य रूप साधारण तौर पर अप्रवल होता है। पर इसमें भी मस्तिष्क-विकार एकाएक पैदा हो जा सकते हैं।

कमर पर छेदनसे मस्तिष्कसुषुम्नीय द्रव निकाल अणुवीक्षण-परीक्षा करनेसे ठीक ठीक निदानमें सहायता मिलती है।

गरदन तोड़के सभी रूप जीवनके लिये सांघातिक हैं। यदि सभी लक्षण उपस्थित हों और नहीं कमें तथा पांच दिन या जादे भी रहें तो आराम होनेकी सभावना वहुत कम रहती है।

चिकित्सा : सिर या सारी देहपर ५ से १० मिनट पानी की धार छोडना लाभप्रद है। पोटाशियम आयोडाइड २ से ३ ड्राम पुनराचूषण वढ़ाने के लिये दे सकते हैं। गरदन और जाँघ पर मालिशका तेल मलना चाहिये। मनुष्यको गरदनतोड होने पर कटि-छेदन कर अतिरिक्त द्रव वहा मस्तिष्कका चाप कम किया जाता है। पशुमें यह क्रिया इतनी सफल नहीं होती। जिसे अभ्यास हो वह इसे अजमा सकता है। एम० वी० ६९३ मनुष्यके गरदनतोड़में अनमोल सिद्ध हुई है। ढोरके गरदनतोड़में भी इसे उतना ही गुणद सिद्ध होना चाहिये। अंतस्त्वक्-सूईके लायक एम० वी० ६९३ को तर्जीह देनी चाहिये। छटपटी जादे हो तो क्लोरल हाइड्रेटकी अंतस्शिरासूई दी जाय। यह १०० सी० सी० तुरतके उवाले पानीमें १० ग्रेन रहे और गुनगुनी हालतमें सूई पड़े।

पाखाना कराते रहना चाहिये क्योंकि यह रोग होते ही वह प्रायः नहीं होता। वस्ति (एनेमा), मैग० सल्फ० या रेड़ीके तेलका व्यवहार हो। अचेत पशुको मुँहसे

कुछ नहीं दिया जाय। पशुको खुला छोड़ना चाहिये। बंधनसे उत्तेजना अधिक होती है। किसी घेरेमें छप्परके नीचे या छायामें रखना सबसे अच्छा होगा।

पशुके रोगमुक्त होनेके बाद हफ्तों उसकी सुश्रुषा सावधानीसे की जाय तब उसे काम दिया जाय। गरदनतोड़ (मेनिन्जाइटिस) छूतका रोग है। इसलिये रोगी पशुको सुस्थोंसे अलग कर देना और उसके तमाम स्राव आदि जला देना चाहिये कि, रोग फैलने न पावे।

१४५५. दुग्धज्वर : प्रसवकालीन मृदु पक्षाघात : चूर्णाल्पता (Milk Fever : Parturient Paresis : Parturient Hypocalcaemia)

गाय और बकरियोंका यह एक विचित्र रोग है। उसमे प्रसवके तुरत बाद आंशिक या पूरी अचेतता, पिछले भागका और कभी कभी और भागोंका भी अधांग (पक्षाघात) हो जाता है। यह रोग वास्तवमें ज्वर नहीं है क्योंकि, ज्वरके लक्षण नहीं होते। प्रसवकाल या उसके पहले भी यह होता है।

अधिकांशमें प्रसवके ८ घंटेके भीतर ही गाय पर इसका आक्रमण हो जाता है। कुछ ग्रहणशील गायोंको दुधार अवस्थामें किसी समय या विसुकने पर भी यह रोग हो जाता है। उत्तेजना, बेअदाज मेहनत और थकानका भी कुछ हाथ इस रोगके बुलानेमें होता है। रेलसे भेजी जानेवाली सद्य. प्रसूत गायें इसकी ग्रहणशील हो जाती हैं। सबसे जादे ग्रहणशील उमर ५ से १० वर्षके भीतर है। बछिया (कलोर) और दूसरे व्यानकी गायें कम ग्रहणशील हैं।

यह मानी और जानी बात है कि, खूब पोषक आहार पानेवाली बहुत दुधार गायें जादे ग्रहणशील हैं। खूब अच्छी खुराक पानेवाली ग्रसित गायोंके आहारमें पोषणकी कोई कमी नहीं रहती। अनुपानके अनुसार भिटामिन और खनिजवाला समतुल चारा भरपेट खानेवाली गाय इस रोगका शिकार हो जाती है।

प्रसवके बाद कमसे कम चार सप्ताह तक दुग्ध-ज्वर नहीं भी हो सकता है। देरसे होनेवाले रोग प्रायः हल्के होते हैं।

प्रसवके बाद थन पूरी तरह खाली करना इसका एक सहायक कारण मालूम होता है। ग्रहणशील गायको हर प्रसवके बाद यह रोग होनेकी सभावना रहती है।

कारण : यद्यपि स्पष्टरूपसे पूरी तरह कारणका निर्णय नहीं हो सका है फिर भी यह सिद्ध हो चुका है कि, इस समय रक्तमें कैलशियमकी कमी मुख्य कारण है। यह चूर्णाल्पता या कैलशियमकी कमी है। पर यह अभी तक निश्चित नहीं हो सका है कि प्रसवकालमें सुपोषित गायको क्यों चूर्णाल्पता हो जाती है। यह कहा गया है कि अन्य कारण भी जरूर हैं। उनमें एक परिचुल्लिका-ग्रन्थिके काममें गड़बड़ी है। यह प्रसिद्ध है कि, चूनेके प्रसादपाकका नियंत्रण करनेमें यह ग्रन्थि महत्वकी है। यद्यपि परिचुल्लिकाके कार्यमें युक्तिकृत (कृत्रिम) बाधा देनेसे प्रसव कालका मृदु पक्षाघात अर्थात् पेशीका आंशिक पक्षाघात नहीं हो सका, फिर भी इसी तरहके किसी प्रभावकी क्रिया जरूर होती है। तीनसे चार गैलन दूध बननेके लिये रक्तमें चूनेकी कमीके कारण इस रोगमें यह होता है ऐसा कहा नहीं जा सकता। यदि ऐसी बात होती तो बहुत दूध देनेवाली गायोंको हर समय यह रोग हो सकता पर ऐसा नहीं होता। न तो सभी दुधार और न ग्रहणशीलोंको दुधार समयमें यह रोग होता है।

लक्षण : पशु पहले तरह तरहका उच्छृंखल आचरण करता है। उसकी गतिविधि बराबर रंभित (रंभाती) और उत्तेजित रहती है। कभी पेशियोंकी, विशेषकर सिर और गर्दनकी पेशियोंकी फड़कन हो सकती है। थोड़ी देरमें पेशियोंकी दुर्बलता देखी जा सकती है। पिछले पैर स्थिर नहीं रहते। मृदु पक्षाघात आरम्भ होता है और गाय गिर पड़ती है। वह खड़े होनेके लिये छटपटा सकती है। पर असफल होने पर शान्त हो जाती है। थोड़ी देरके बाद वह चेतनता पूरी तरह खो देती है और इस तरह पड़ रहती है मानो गहरी नींदमें हो। बाहरी उत्तेजना का उस पर प्रभाव नहीं होता। नेत्रकी स्वच्छ मन्डलीय प्रतिसंक्रमित क्रिया और नहीं होती। कभी कभी आँखें बन्द रहती है। पुतलियाँ फैल जाती हैं। लार बहने लगती है। साँस गहरी चलती है। नाड़ी की गति तेज होकर ७०, ९०, १२० या और जादे भी हो जाती है। पहले ताप चढ़ता है पीछे ९५ डिग्री फा० के लगभग उतर आता है। यह अवस्था कुछ घंटोंमें ही हो जा सकती है। यह लगभग एक दिन तक ऐसी ही चलती है। साध्य रोग रहा तो गायको फिर चेतना लौट आती है और धीरे धीरे अपने सभी अंगोंपर नियंत्रण करना शुरू कर देती है। और खड़ी हो जाती है। निर्बलता कुछ समय तक एक दिनसे हफ्ते भर ठहर सकती है। रोगकी पुनरावृत्ति भी हो सकती है। पर बहुत कम होती है।

असाध्य रोगमें पशु साँस बन्द होनेसे अचेतावस्थामें ही मर जाते हैं। गिरनेके समय उनके सिरमें चोट लगनेसे मस्तिष्काघात हो सकता है। असावधान परिचारक दवा पिलानेकी कोशिशमें उसे साँसकी नलीमें डाल दे सकते हैं जिससे निमोनियाके कारण पशु मर सकता है।

चिकित्सा : गिरने के समय चोट बचायी जाय। गायको गोहालमें पूरी जगह देनी चाहिये, जिससे कि उसकी सँभाल की जा सके। गायको पुआलके तकियोंके सहारे लिटाना चाहिये। यदि उसे करवट लेटने दिया गया तो पेट फूलना ध्रुव है। इससे महाप्राचीरा और उरःपंजरके अवयवों पर दबाव पड़नेके कारण दम घुटनेसे प्राणका संकट हो सकता है। आज एकही सफल औषधि इसकी है जो ग्रेगकी चलायी हुई है। वह कैलशियम ग्लूकोनेट और बोरिक एसिडकी अन्तस्त्वक् सूई है। कैलशियम ग्लूकोनेट प्रति १०० रत्तल देहकी तौलके लिये १½ ड्राम दी जाती है। पाँच सौ रत्तलके पशुके लिये :

कैलशियम ग्लूकोनेट	१ आउन्स
बोरिक एसिड	१½ ड्राम
पानी ...	६ से ७ आउन्स।
	(प्रायः २०० सी० सी०)

यह मिश्रण कुछ मिनट तक उबाला जाता है कि, पूरी तरह घुलमिल जाय। कैलशियम ग्लूकोनेटकी अन्तर्शिरा सूई से जादूकी तरह फायदा होता है। पर इसका खतरा भी खास है जिससे किसी किसी हालतमें मृत्यु भी हो सकती है। इसलिये अन्तस्त्वक् मार्ग ही चुनना चाहिये। जब यात्रा आदिमें जल्दबाजीकी जरूरत हो तो कैलशियम-बोरो-ग्लूकोनेटसे वह काम हो सकता है। पर अन्तस्त्वक् सूई पर भरोसा करना निरापद है।

चूर्णाल्पताका (हाइपोकैलशीमिया) निश्चय होनेके पूर्व यह चाल थी कि, थनको हवासे फुला देते थे। थनमें चूचीकी राह साफ हवा भरी जाती थी। किसी रबरकी नलीमें एक भोथरी सूई लगायी जाती थी। इस नलीको हवाके पपसे जोड़ते थे जिसमें रूईका छन्ना (फिल्टर) लगा रहता था। इस तरह यन्त्र तैयार होता था। छन्ना धातुके डन्डेकी तरह होता है जिसमें हवाके आनेजानेके द्वार पर एक नली लगी है। डन्डा दो खडोंका होता है। इसके भीतर दो छलनी चक्तियोंके बीच

शोथिन रुई भरी रहती है। पंप, नली, और सूई सभी को उपयोगके पहले शुद्ध (स्टेरिलाइज्ड) कर लेना चाहिये। भोथरी सूई की जगह दूधकी हस-नली (साइफन ट्यूब) से काम अधिक अच्छा होता है।

इस चिकित्सामें चूचीकी राह थनमें पंपसे हवा भरते हैं। जब एक भाग पूरा तरह फैल जाता है तब दूसरे भागमें भरते हैं। इसी तरह थनके चारों भागोंमें हवा भरी जाती है। यदि किसी चूचीमें छेद न हो अथवा थनके किसी भागमें स्तनप्रदाह हो तो उस चूची या भागको छोड़ देना चाहिये। हवा भरनेके बाद गाय स्वच्छन्द छोड दी जाय। चूची बाँध कर हवाका निकलना रोकनेकी जरूरत नहीं। यह नहीं किया जाय। यदि थन पचक कर पहलेकी तरह हो जाय और गायको होश नहीं आवे तो दुबारा हवा भरी जाय।

इस विधिका आधार अभी अनुभवही मालूम होता है। इसका आविष्कार थनमें पोटाशियम आयोडाइडकी सूई की सफलतासे हुआ। इसका अद्भुत प्रभाव पडा। कुछ अनुमानों या कल्पनाओंके आधारपर यह किया गया था जिसकी चर्चामें हमें नहीं पड़ना है। इसके बाद यह देखा गया कि थनमें किसी द्रवकी सूई लगानेसे आराम हो जाता है। इसके बाद हवा भरनेकी विधि आयी जो अभी हाल तक प्रचलित थी। पर अब यह पता चला है कि, उपयुक्त कैलशियम लवण (कैलशियम साल्ट) देनेसे वही परिणाम होता है। और इसीलिये कैलशियम-बोरो-ग्लूकोनेटकी सूई अब उत्कृष्ट विधि हो गयी है। यह देखा गया कि, हवा भरनेसे रक्तका चूना या कैलशियम बढ़ता है। थनका कैलशियम लवण फिरसे रक्तमें आचूषित हो गया। प्रसवके समय पेउसीकी रचनाके लिये थनमें बहुत कैलशियम रहता है। हवा भरनेसे वह रक्तमें लौट जाता है। इसके बाद सीधे तौर पर कैलशियम देनेकी विधि चली। इसके लिये अतस्त्वक्-राहको तर्जीह दी गयी।

इन्हीं युक्तियों के आधार पर यह कहा जाता है कि, प्रसवके बाद तुरत दुहकर थन खाली नहीं किया जाय। एक बारमें थोड़ा ही जैसे कि, १ या २ रत्तल दुहा जाय। पक्षाघात-वाली गायसे धीरे धीरे थोडी पेउसी दुही जाय। बछड़ेको थोडी पेउसी और अन्य गायोंका अतिरिक्त दूध देकर पाला जाय।

किसी समय दुग्ध-ज्वर भंयकर रोग था। मृत्युसंख्या ७५ सैकड़ा या उससे जादे थी। अब मृत्यु परिमाण नगण्य है और पशुपालक यह जानते हैं कि क्या करना चाहिये। यह यूरोप और अमेरिकाके अधिक दुधार गायोंके बारेमें है।

भारतमें हम अधिक दुधार बनानेको लालायित हैं। यद्यपि आज यह रोग बहुत नहीं है, पर तौभी गायकी दूध देनेकी शक्ति बढानेके उद्योगी पशुपालक यह जान लें कि दुग्ध-ज्वर और प्रसवकालका मृदु पक्षाघात यदि गायको हो जाय तो उसे कैसे बचावें।

१४५६. धनुपी (Tetany)

धनुपी एक अवस्था है जिसमे स्थान विशेपकी पेशियोंका सकोच धनुष्टकारकी तरह कुछ पशुओंमें होता है। पेशियोंकी असमर्थताका यह एक अल्पकालिक उत्पात है जो सरलतासे बीत जाता है। कभी कभी यह बहुत कठिनभी हो जा सकता है।

विपके प्रभाव या प्रसादपाककी किसी खास गडबडीसे धनुपी होती है। मनुष्योंमें बालकोंको यह कृमिके कारण हो सकती है। पशु-जगतमे भी यही होता है। दोनों अगले पैर या दोनों पिछले पैरकी पेशियोंकी फड़कन या आक्षेपके रूपमें स्थानीय धनुपी हो सकती है जिससे पशुको विशेप आसनमें होना पडता है। कभी कभी पेशीसकोच सार्वत्रिक हो जाता है। पैर, धड़ और गर्दनकी फड़कन हो सकती है, जिससे पशु अकड़कर गिर सकता है और पैर फैलाकर लेट जाता है। गरदन अकड़ी रहती है और पेशियोंमें अैंठन होती है।

इसकी स्थिति कुछ क्षणोंकी होती या फड़कन या आक्षेपका दौरा कई दिनों तक हो सकता है। पर साधारण तौरपर अल्पकालिक आक्रमण होते हैं। एक के बाद दूसरा आक्रमण होता है और इस तरह आक्रमणोंके क्रमसे कष्ट लगातार बना रहता है। लम्बे आक्रमणकी एक कठिनाई यह है कि, इसमें बीच बीचमें साँस कुछ देरको रुक जाती है। जब यह बार बार होने लगता है तब अत घातक होता है।

चिकित्सा : विपके मूल कारणका पता लगाना चाहिये कि, पाचन-संस्थान **कृमिरोग** या प्रसादपाककी गडबडी से तो नहीं है। कारण दूर करना चाहिये। मौर्फिन या ब्रोमाइडके रूपमें कोई उप-शामक देना उपयोगी है। प्रसवके मृदु पक्षाघातमें दिया जानेवाला कैलशियम-बोरो-ग्लूकोनेट देनेसे लाभ होता है। फडकनोंके अतरकालमें अल्कलाइन कारबोनेट दिया जाय। यदि फत या न्यूरिध रोगके कारण धनुपी हो तो कैलशियम और फॉस्फोरस उपयुक्त मात्रामे देनेसे तुरत आराम होता है।

अध्याय ५१

चर्म रोग

१४५७. पित्ती (Urticaria : Nettle Rash)

चमड़े पर अचानक गोल चपटे चकत्ते निकल आते हैं। चमड़ेमें उरकुसी (केंवाछ, वड़ऊदा) लगनेकी जलनसे यह रोग हो सकता है। पेटकी गड़वड़ी एक कारण हो सकती है। किसी विशेप आहारसे भी पित्ती हो सकती है।

लक्षण : पित्ती वडी तेजीसे निकलती और फैलती है। पहले छोटी चकत्तियां निकलती हैं। रोग व्यापक हो तो भिन्न भिन्न चकत्तियाँ मिलकर उभड चकत्ते वन जाती हैं। कभी कभी उनके बीचमें दब जाता है जिससे उनकी आकृति अँगूठी की तरह हो जाती है। साधारण तौर पर खुजली (खुजाहट, कुलकुली) नहीं मचती। पर किसी रासायनिक उत्तापकके कारण हुई पित्तीमें कठिन खुजाहट हो सकती है। चकत्ते नथुने भग या गुदा जैसे मृदु भागोंमें भी हो सकते हैं। चकत्ते यदि अधिक विस्तृत भागमें हों तो वेचैनी होती है। कण्ठकी सूजन से साँसमें रुकावट और कष्ट हो सकता है।

चिकित्सा : साधारण तौर पर पित्ती कुछ घंटेसे लेकर कुछ दिन ठहरती है और जिस तेजीसे उछलती उसी तेजी से गायब भी हो जाती है। ठंढे पानीसे मलकर चमड़ेकी जलन मिटानेके सिवा और दूसरे इलाजकी कोई जरूरत नहीं। सरल विरेचन देना अच्छा होता है। क्योंकि, यदि पेटकी गड़वड़ी या किसी दूसरे मन्द विपके कारण यह हुई है तो उससे छुटकारा मिल जाता है। दुधार गायोंका दूध अचानक रुक जाता है। ऐसी दशामें थनकी मालिश हो और उसे पूरी तरह खाली कर दिया जाय।

सिरमसे पित्ती : क्षमताकारी या निर्मुक्तकारी सिरमसे कभी विष पैदा हो जाता है जिससे पित्ती उछलती है। माता, विसर्प, निमोनियाँ आदि की क्षमताकारी

सूई लगानेके बाद ऐसा होते देखा जाता है। टोरको साधारण तौर पर एसी छूत बहुत लगती है।

यह प्रायः पशुकी प्रकृतिके अनुसार होता है। किसी किसी पशुमें प्रोटीनकी सूईके लिये विशेष प्रकारकी चेतना होती है। इसका कारण अतिग्राहकता (anaphylaxis) हो सकती है। जब सिरमकी सूई लगायी जाती है तब वह प्रोटीनके लिये एक विशिष्ट प्रतिपिंड तैयार करता है। इन प्रतिपिंडोंकी रचनाके लिये निर्दिष्ट समय है। यदि उसी प्रोटीनकी दूसरी सूई दी गयी तो उसे प्रतिपिंड बड़ी तेजीसे तोड़ डालते हैं। इससे विप हो जा सकता है। मनुष्यमें यह रचना क्षमता-ह्रासक काल १२ से १४ दिनका होता है। कुछ लोगोंके मतसे सयाने ढोरमें यह कहीं ज्यादे लंबा होता है।

सिरम रोगसे पित्ती अतस्त्वक सूईके ३—४ घंटे बाद उछलती है और अतश्शिरा-सूईके कुछ ही मिनट बाद। ढोरकी सारी देह पर पित्ती उछरती है। निर्बलता, साँसमें कठिनाई, फेफड़ेका शोथ और बहुधा ज्वर होता है। प्रतिक्रिया होनेपर लगभग आठ महीनेके लिये ढोरमें उस सिरम की चेतना नहीं रहती।

मृत्यु नहींके बराबर होती है। लक्षण कुछ घंटे या दिनभर में मिट जाते हैं। अतिग्राहकता रोकी या हल्की की जा सकती है यदि चाही मात्रामें सिरमकी सूई लगानेके कुछ पहले उसकी एक सूई अल्प मात्रामें लगा दी जाय। १ सी० सी० प्रारंभिक मात्राकी सूई देनेके ५ घंटे बाद पूरी मात्रा देनेसे अनेक बार अतिग्राहकता नहीं हुई है। दूसरोंने पूरी मात्रा देनेके २४ घंटे पहले ½ सी० सी० सिरमकी सूई देकर वैसा ही अच्छा परिणाम पाया है। कुछ समयके रक्खे सिरमसे अतिग्राहकता होनेकी कम संभावना रहती है। श्रम अतिग्राहकता द्वार खोल देता है इसलिये सूई देनेके पहले या पीछे तुरत पशुसे काम नहीं लिया जाय। कोई कोई नॉरमल सैलाइनमें कैलशियम क्लोराइडकी सूई अतिग्राहकता रोकनेके लिये लगाते हैं। इसे पूरक स्थिरीकरण (कम्प्लीमेन्ट फिक्सेसन) कहा जाता है।

१८५८. छाजन : उकौथ (Eczema)

यह एक चर्मरोग है जिसमें ऊपरी तह चोइयां या पपड़ीकी तरह और फटी फटी हो जाती है। रोग प्रायः एकाएक प्रगट होता और जीर्ण हो जाता है। चमड़े पर जरासी सूजन और ललाई होती है और उस पर छाले, दाने या फुंसियां निकल

आती हैं। चमड़ेसे पानी निकलता और उसके सूखे छिलके जम जाते हैं यह छाजनकी विशेषता है। उसमें खुजलाहट होती है।

त्वचा गंदी रखनेसे छाजन (एक्जीमा-खाज) हो सकनी है। ऐसी हालतमें जिस भागको पशु स्वयं साफ नहीं कर पाता उसमें यह होती है। चमड़े पर गीलापन या गंदगी होना छाजनके लिये वहुत अनुकूल है। रगड़ या छिलनेसे भी यह हो सकती है। त्वचा पर पारा या आयडिन लगाना, टार (अलकतरा), कारवोलिक एसिड और आयडोफौर्म जैसे उत्तापकका खाना भी इस रोगकी दृष्टिसे हानिकारक हैं।

कभी कभी इस रोगका सवन्ध पेटकी गड़वडीसे होता है। वृक्कके रोगोंमें मूत्रजनित पदार्थोंके विसर्ग (त्याग) से भी यह हो सकती है। भयंकर (गजचर्म-Mange) खुजली जैसे अन्य चर्म रोगोंसे भी यह हो सकती है। जीवाणु जो त्वचापर साधारण तौरसे रहते हैं वह रोगकारी छीजन पैदा कर सकते हैं।

प्रायः त्वचाके कोषोंकी एक खास परिवर्त्तित अवस्थामें त्वचा पर छाजनका प्रदाह हो सकना है।

छाजनमें त्वचा छालेदार, रुखड़ी और भीगी हो जाती है। वहिस्त्वक् मोटी होकर फटती और चोइयाँदार पपड़ीला हो जाती है। उसके पानीमें प्रोटीन पदार्थ होते हैं। प्रोटीनकी इस तरह कमीसे दुवलापन या क्लान्तता हो सकती है।

ढोरोंमें छाजन होनेका कारण प्रायः असावधानी और मैली त्वचा होता है। खुजानेके कारण निरतरकी खरोंटसे फोडा हो सकता है। छाजन होनेके पहले वहुधा वाल झडते हैं। दशा धीरे धीरे खराव होती है।

चिकित्सा : पपड़ियाँ साफ कर दी जायँ और खुजाहट मिटानेके लिये वेदनाशून्यक दवाएँ लगाओ। सावुन और पानी नहीं लगाये जायँ। तेल लगाया जाय। सफाईके लिये ५ सैकडा कारवोलिक तेल काममें लाया जाय। पट्टी बाँधनेके लिये ५ सैकडा कारवोलिक या १ से ३ सैकडा सैलीसिलिक एसिडके मिश्रित तेलमें भिगा कर रुईका व्यवहार हो। पशुको इस तरह बाँधकर रक्खा जाय कि वह पट्टी नहीं गडवडावे।

छालेदार छाजनमें बोरिक पाउडर १० सैकड़ा जैसे सूखे कोथघ्न चूर्ण वुरके जायँ या कारवोलिक तेल ५ सैकडा, चाहे सैलीसिलिक तेल ५ सैकडा फाहेसे लगाया जाय। वुरकनेके चूर्णोंका आधार स्टार्च बनाया जाय। इसमें वोरिक एसिड या जिंक ऑक्साइड (सफेदा या यशद-भस्म) ५ सैकडा मिलाया जाय। जब बहुत जादे पानी

चले तो रुई पर चूर्णकी मोटी परत लगाकर पट्टी बाँधो। सैलीसिलिक एसिडका सूखा चूर्ण, बोरिक एसिड समभाग मिलाकर बुरकनेके काममें लाया जा सकता है।

इन औषधोंका मरहम बनाकर भी लगाया जा सकता है। इनसे खुजली भी मिटती है। कठिन रोगोंमें पिकरिक एसिडका १ सैकडा घोल पोतनेसे लाभ हो सकता है। सप्ताहमें दो बार २० सी० सी० जीवाणुमशुद्ध दूधकी अतस्त्वक-सूई देकर कितनोंने अच्छा फल पाया है। उसी पशुके रक्तमें उसे द्रवित रखनेके लिये सोडियम साइट्रेट मिलाकर ऊपरकी तरह २० सी० सी० मात्रामें सूई दी जा सकती है। मनुष्यकी छाजनमें पपीतेका दूध और सीरे (चासनी) का घोल लगाना फायदेका सिद्ध हुआ है। पपीतेका क्रिया-शीलरस जीवाणुओंको मार त्वचाको फिर सुस्थ अवस्थामें ले आता है। पपीतेका दूध १ से ५ सैकड़ा सीरा या ग्लिसरीनमें मिला कर घोल बनता है। इसे फाहेसे लगाओ। बहुत तेज घोलसे चमड़ेमें क्षत हो सकता है जिससे घाव निकल सकते हैं। इसलिये हल्के घोलसे शुरू करना चाहिये।

१४५६. त्वक्प्रदाह (Dermatitis)

इसमें त्वचामें प्रदाह होता है और पानी निकलता है। रक्तवहाओं और रसवहाओं से ओतप्रोत त्वचाके तन्तुओंमें परिवर्तन होते हैं। रक्तसकुलना होती है। अत्यधिक स्रावसे त्वचाका गीला रहना और स्रवित पदार्थका सड़ना इसका कारण हो सकता है। पैर या देहकी त्वचाका संसर्ग चूनेसे होने पर भी त्वक्प्रदाह हो सकता है। किलनी और जूंके उत्तापसे या छाजन जैसे त्वचाके प्रदाहके अन्य रोगोंके उपद्रवके कारण भी यह हो सकता है। जलने या भाप लगनेसे भी त्वक्प्रदाह हो सकता है।

त्वचा लाल, सूजी और गरम हो जाती है। दर्द होता है। अन्तमें उसपर से पपड़ी गिर जाती है और सब ठीक हो जाता है। त्वचापर स्रवित पदार्थके चापसे कभी कभी छाले भी निकल आते हैं जिससे बहिस्त्वक् अलग हो जाता है। इसके बाद से पीब बन सकती है और पपड़ी पड़ सकती है जिससे खुजली मालूम होती है और पशु उस भागको रगड़ता है।

प्रारम्भिक अवस्थामें जलसे शीतोपचार करने या ठंढी गद्दीकी पट्टी बांधनेसे लाभ होता है। १०% बोरिक मलहम उपयोगी है। यदि जलनेके कारण त्वक्प्रदाह हुआ है तो पिकरिक एसिडका संपृक्त घोल लगाना बहुत अच्छा रहता है।

इससे पीड़ा मिटती और त्वचा कोथशून्य वनी रहती है। पिकरिक एसिडमें भिगायी रुईकी मोटी तह उस भाग पर रखकर पट्टी बाँधनी चाहिये। पीव पड़ने पर उसकी छूत रोकनेके लिये आसपास कार्बोलिक एसिडके ३ सैकडा घोलकी अतस्त्वक्-सूई दी जाय। त्वचामें एक एक जगह कुछ बूँदें सूई की देतेही वहाँ छोटा चकत्ता उभर आना चाहिये। इस तरह त्वचामें कई जगह सूई देनी चाहिये।

१४६० त्वचाकी गैंगरीन

कठिन क्षत, जलना या रासायनिक उत्तापकोंके कारण त्वचा नष्ट हो या मर सकती है। त्वचाकी गैंगरीनका अर्थ उसकी मृत्यु है। शुरु से ही सावधानी रखनेसे कोथघ्नोंके द्वारा गैंगरीनका निवारण हो सकता है। पर यदि खूब गहरे तक जल गया है तो गैंगरीन प्रारम्भमें ही आ जाती है। तब सड़ाँद खूब गहरी होती है।

यदि त्वचा गहरे तक मर गयी है तो वहाँ पर वह काली और कठोर हो जाती है। इस भीषण क्षतके चारों तरफ प्रदाह होता है। इस भागमें पीव हो जाती है और तन्तु अलग हो निकल जाते हैं जिससे वहाँ घाव हो जाता है। गैंगरीन और सड़ाँद या पीव पैदा होने से सारी देहमें छूत फैल सकती है। गैंगरीनग्रस्त भागके मृत तन्तु अपने आप पक कर निकल जाते हैं।

चिकित्सा : सभी मृत पदार्थ चीरफाड़कर साफ कर दिये जायँ और घावमें कोथघ्न पट्टी की जाय। पशुकी सुश्रुषा सावधानीसे हो। यदि त्वचाका व्यापक भाग इस व्याधिमें फँसा हो तो पशुको एकही करवट नहीं लेटने दो। बीच बीचमें उसकी करवट बदलवादो। घावकी हिफाजत पट्टीसे करो। पर वह बहुत कसी न हो।

१४६१. कील : मुँहासा (Acne)

इस रोगका सरोकार मेदस्रावी ग्रन्थियोंसे है। इसमें अर्बुद निकलते हैं जिन्हें दबानेसे दर्द होता है।

इसका कारण पसीना और उसमें चिपकी धूल और गन्दगी है और जिनके सहायक स्टैफिलोकोकस जैसे पूयकारी जीवाणु हैं। यह घोड़े और कुत्तों को जादा

होता है। यह उनके साज और गलेके पट्टेके नीचे हुआ करता है। उनकी रगड़से हुई जलनके साथ पसीना और गन्दगीके कारण त्वचापर यह रोग होता है। यह ढोरको भी साधारण तौर पर उनकी पूँछके छोर पर होता है। पूँछका निम्न कशेरुकाविहीन दृढ़ताशून्य भाग लगभग बीस इंच तक बहुत ग्रस्त होता है। इसका कारण पूँछमें मल लिसना और उसके कारण पयकारी तृण है। बाल झड़ जाते हैं और त्वचामें मोटे मोटे चकत्ते हो जाते हैं। दाने निकलते और बदलकर छाले हो जाते हैं। इनके फूटने पर पानी चलता है। त्वचा पपड़ियोंसे ढक जाती है और वहाँ पीव पैदा होती है। हर पपड़ीके नीचे खास तरहकी एक सफेद कील होती है जो झड़े बालकी टूटी है। इनसे बने गढे, अनमें अकुरणसे (ग्रेनुलेसन) भर जाते हैं। अकुरणमें बहुत नन्हे लाल लाल दाने मस्सेकी तरह निकलते हैं। व्रण या घाव भी हो सकते हैं जिससे बहुत नुकसान हो सकता है। उस अगकी विरूपता भी हो सकती है। इस रोगके परिणामस्वरूप चमड़ा मर भी सकता है।

चिकित्सा : उस भागसे सभी मृत पदार्थ और पीव साफ कर दो और वहाँ टिकचर आयडिन लगाओ। आयडिनके ऊपर ५ सैकड़ा सैलीसिलिक मरहम भी लगाया जा सकता है। सोडा बाइकार्बके सपृक्त घोलसे रगड़कर धोना और साफ करना जादे अच्छा है।

१५६२. दाद (Ringworm Trichophytia)

ट्राइकोफीटन नामके एक छत्रक फगसके कारण दाद होती है। इस रोगकी विशेषता यह है कि, वह बढ़ते हुए वृत्तमें त्वचापर फैलती है। त्वचा स्रावके जल, पपड़ी और खुटसे भर जाती है। यह सक्रामक रोग है। भीगे चमड़े पर छत्रकभरी खुट या पपड़ी यदि रगड़ दी जाय तो यह हो जाती है। यह रोग आदमीसे तरुण पशुओंको, बिल्ली और घोड़ोंसे ढोरको, और ढोरसे भेड़-बकरियोंको हो जाता है। ग्रसित मनुष्यके खरहरा करने और ग्रसितपशुकी जीन झूल ओढ़ानेसे यह रोग फैलता है। धूप, साफ हवा और सूजो साफ रखना कुछ हद तक इस छत्रककी वृद्धिमें निवारक हैं। पतली त्वचावाले तरुण पशु और काले केशवाले पशु बहुत जादे ग्रहणशील हैं।

यह छत्रक बीजाणु बहिस्त्वक् पर पनपता है। त्वचामें गहरा नहीं धँसता। पर अपनी जीवन-क्रियामें यह जो विष छोड़ता है वह त्वचामें गहरे तक धँसता है जिससे हानि होती है और वहाँ दूषित स्राव होने लगता है। छत्रकके कारण लोममूल मर जाते हैं जिससे बाल झड़ते हैं। एक दूसरे प्रकारकी दादमें बाल टूट जाते हैं जिससे खूँटी रह जाती है। इस प्रकारमें छाले निकलते हैं और पपडी झड़ जाती है। इसे सूखी या पपड़ीवाली दाद कहते हैं। स्राव काफी होता है जो बालमें फँस जाता है। यह दाद बढकर ऊँची और रुखड़ा हो जाती है।

दादके वृत्तोंके बढनेकी एक सीमा है। कुछ दिनके बाद उनकी वृद्धि रुकती है। इसका कारण आसपासमें प्रतिविषका पैदा होना हो सकता है। ढोरको सूखी दाद अधिक होती है। इस उभडी हुई दाद पर सौत्रिक पपड़ी जमती है। यह पपड़ी और नयी तहें पडनेसे मोटी होती जाती है और चौथाई इञ्च तक मोटी हो सकती है। ये पपड़ियाँ पहले त्वचासे खूब चपकी रहती हैं और उनके नीचे खून बहता है। पर जब उस जगह पीब हो जाती है तब पपडी फटती है। इसे हटानेपर पीबके छेद या गड़े दिखायी देते हैं। पपड़ी हटने पर घाव भरना शुरु होता है।

साधारण तौर पर बछरुओं के चेहरे या मुखमडल पर होठोंके नजदीक दाद होती है जो रोटीके टुकड़े से हो जाते हैं। होंठ परकी दाद चूसनेमें बाधा देती है। यह भाग कोमल होता है। खुजाहटसे बहुत तकलीफ होती है जिससे आहार, पुष्टि तथा वृद्धिमें बाधा पहुँचती है।

चिकित्सा : बाल कतरके उस स्थानको साबुन और पानीसे नरम करो। नरम साबुन २ से ४ दिन तक लगा रहने दिया जा सकता है। नरम की हुई पपड़ी नोचकर यही क्रिया तब तक दुहरायी जाय जब तक नयी स्वच्छ त्वचा न निकल आवे। इसके बाद १० सैकडा सैलीसिलिक एसिडका मरहम लगाओ। साफ करने और नोचनेके बाद एक दूसरी चिकित्सा यह है कि, ५ सैकडा चूनेका पानी पोत कर उसे २·५ सैकडा सोडाके घोलसे धोओ। यदि चकत्ता छोटा है तो नित्य टिकचर आयडिन लगायी जा सकती है।

पशुओंको बाँधकर रखना चाहिये कि, वह नरम साबुन और उसके बाद लगाये मरहमको रगड़कर पोंछ न दें।

१२६३. पकनी खाज : गजचर्म : कंडु (Mange . Scabies)

यह चर्म रोग एक सूक्ष्म कीट के कारण होता है। ये कीट तीन वर्गोंके होते हैं। इनके अनुसार खाज भी तीन तरह की मानी गयी है। यह कीट ढोर तथा अन्य जानवरोंमें हो सकते है। एक खाज सारकोप्टिक (Sarcoptic) कही जाती है। यह सारकोप्टीज अर्थात् बिल बनानेवाले कीटके कारण होती है।
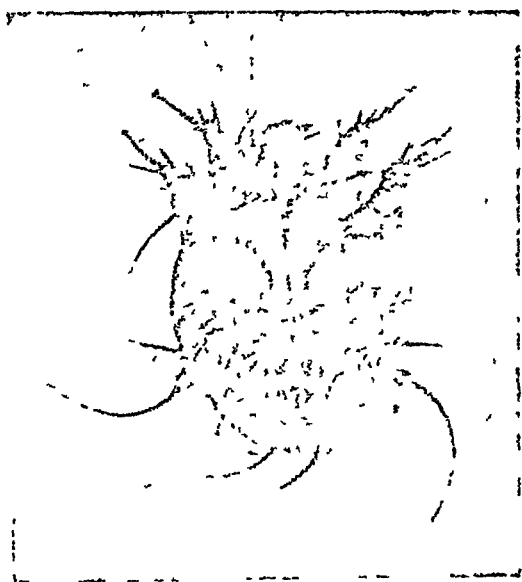
चित्र १८५. सारकोप्टीज कीट बढाया हुआ।

दूसरी सोरोप्टिक (Psoroptic) और तीसरी कोरियोप्टिक (Chorioptic)। ढोरको जादे सारकोप्टिक होती है। यह खाज तमाम देह पर होती है।

कीट बहुत सूक्ष्म कण की तरह होते हैं फिर भी नंगी आंखो भी देखे जा सकते हैं। अणुवीक्षणके सहारे इनके वर्णन और चित्रोंसे तुलना करने पर इन्हें अलग अलग पहचाना जा सकता है। पर हमें इसकी जरूरत नहीं।

ढोरको अपने प्रतिवंशके कीटसे ही, अन्य पशुओंसे छूत लिये विना भी खाज होती है। यह खूंटेपर खानेवाले पशुओंका रोग है।

इसमें भयकर खुजली होती है। यह खाज साधारण तौर पर सिरसे शुरु हो गरदन पर फैलती है। कीट गरमीमें सक्रिय होते हैं। इसलिये जब पशुसे काम लिया जाता है या उसे गरमाया जाता है तब वे वड़ी जलन पैदा करते हैं। मारकोप्टीज कीट अपना पोषण तरुण उपत्वक् (epithelial) कोषोंसे लेते हैं। इन कोषोंको वह खुदाई करते समय खा जाते हैं। ये लसीका भी खाते हैं और इनके कारण जो फुड़ियाँ निकलती हैं उनका लहू भी। सोरोप्टिक कीट वहिस्त्वक् पर पपड़ियोंमें और उनके नीचे रहते हैं। अपनी तेज चुसनीसे वे त्वचाकी गहराईमेंका रक्त और लसीका पीते हैं। कोरियोप्टिक कीट वहिस्त्वक्का कटकित स्तर खाते हैं जो इनकी विनाश लीलाके वाद धूलके स्तरसा मालूम होता है।

ये कीट वहिस्त्वक्के आच्छादकीय कोषों या चमड़ेके छिद्रोंमें एक उत्तापक पदार्थका मलत्याग करते हैं। इसीके कारण जलन और खुजली मचती है। इसके सिवा ये कीट त्वचामें सुरंग वनाते और उसमें चलते हैं जिससे उसके अंगकी तेज छेदक कूचियाँ चुभती हैं। इस कारण भी जलन और खुजली मचती है।

इनके कारण चमड़ेमें जो क्षत हो जाते हैं उनसे रस या पानी वहता है। यह छाजनके जैसा मालूम होता है। वाल झड़ने लगते हैं। क्योंकि उनकी जड़ें खायी रहती हैं। इसी वजह लोममूलके पास उपत्वक् कँटीला हो जाता है। त्वचा मोटी हो जाती है और उसमें तहें पड़ जाती हैं। यह सारकोप्टिक खाजकी अन्य विशेषता है। कोरियोप्टिक कीट सतह पर ही रहते हैं इसलिये ये त्वचा की कम हानि करते हैं। इसमें खुजली होती है पर पानी नहीं वहता। त्वचा सूखी और धूल भरी रहती है। कोरियोप्टीज कीट सन्धियोंकी तह आदि अपने रहनेके लिये पसन्द करते हैं क्योंकि, यहाँ उनको वचाव मिल जाता है।

पशुके जोरसे खुजाने, हवकने, रगड़ने या खरोंटनेसे त्वचामें क्षत हो जाते हैं। यदि व्यापक रूपसे यह रोग हुआ तो दुवलापन वढ़ने लगता है। जिससे शरीरमें विकृति होती और अतमें पशु मर जाता है।

त्वचाके अधिक स्नेह भागोंको ये कीट छोड़ देते हैं।

ढोरमें सारकोप्टिक खाजकी पपड़ी तिहाई इंचसे जादे मोटी होती है। पपड़ीमें वहिस्त्वक्की चोइयाँ (छिलके), सूखा लहू, वाल, कीट और उनके अंडे होते हैं।

इसलिये इसकी तहें बन जाती हैं। गरदनकी त्वचापर इंच दो इंच मोटी तहें जमती हैं। यह गरदन झुकाने या फैलानेसे मुलायम होकर मिटती नहीं।

चिकित्सा: त्वचाको सावधानीके साथ साबुन और पानीसे साफ करो। कीटघ्न द्रवों या मालिशोंको लगाकर ३ दिन तक रक्खो। जब रोग व्यापक हो तो एक एक दिन एक एक चकत्तेका उपचार किया जाय। सब देह पर दवा लग जाने तक यह दवा लगी रहे। तमाकूके दस सैकडा काढ़ेमें किरासन और साबुन मिलाकर बनाया अवद्रव इस रोगके उपयुक्त सर्वोत्तम कीटघ्न है। कारबोलिक एसिड या क्रेसोल भी ५% शक्तिमें साबुनके साथ अवद्रव बनाकर व्यवहार किया जा सकता है। क्रूड तेलके ५% का अवद्रव भी कामका हो सकता है पर इससे विष लगनेका डर रहता है।

१४६४. किलनी (Ticks)

किलनियाँ, खाजकीटसे कहीं बड़ी होती हैं। ये भी उसी वर्गकी हैं। इनके दो वर्ग हैं। एक कठिन दूसरा कोमल। भूखी रहने पर ये चिपटी रहती हैं पर खून चूसने पर गोल हो जाती हैं। मादा लहू चूसकर अपने मूल आकारसे कई गुना बड़ी हो जाती है।

किलनियाँ ढोरके शरीर पर चलकर जाती हैं और वहाँ सगम करती हैं। फूलनेके बाद मादा टपक पड़ती है। वह गोहालके फर्श, दरार, दीवाल या घासमें अंडे देती है। ३ से ६ सप्ताहमें पुष्ट होकर इनमेंसे पिलौंहे रंगके षट्पद शर्मक निकलते हैं। जबतक इन्हें कोई उपयुक्त आश्रयदाता (होस्ट) नहीं मिलता अण्डेमें बचा सामान ये खाते हैं।

सयाने होनेके लगभग इनमें विचित्रता होती है। कुछ तो उसी आश्रयदाता पर इस अवस्थामें आते हैं जैसे कि बुफिलस किलनी जिससे "लालपेशाब" होता है। इनकी जीवनी "लालपेशाब" में वर्णित है। अन्य प्रकारके यह कीट दो होस्टवाले हैं। इनके अर्भक पहले आश्रयदाता पर चोला बदलकर तरुण अवस्था पाते हैं फिर टपक कर चोला बदल सयाने होते और नये आश्रयदाता पर जाते हैं। इसी प्रकार तीन होस्ट या आश्रयदातावाले कीट भी हैं।

किलनी रोग पैदा करनेके अलावे बड़ी क्षति भी करती है। होस्टकी खोजमें कुछ किलनियाँ घासकी पत्तियों या झाड़ी आदिकी पत्तियों पर चिपक रहती हैं। इनसे

से निकलनेवाले पशुसे चिपकनेके लिये अपनी अगली टांगें तैयार रखती हैं और उनके चमड़ेमें चिपट जाती हैं और अपनी चुसनी उसमें ,गहरी घुसेड अपनेको जकड़वन्द कर लेती है। इसलिये इनके चुभे अंगोंको तोड़े विना इनका छुड़ाना या झाड़ना असभव है। जव ये भरपेट लहू चूस लेती हैं तव छेदको वड़ा या फैला कर अपनी चुसनी निकाल लेती है। ऐसी किलनियाँ हैं जो ½ सी० सी० खुन चूस सकती हैं। कोई कम भी चूसती हैं। इस परिमाणमें हजारों चूसनेवाली किलनियाँ पशुका काफी खून चुखा सकती हैं। उनके थूकके विषमें शायद लाल रक्तकण तोड़नेका भी असर है। पशुपर अधिक किलनियाँ हो तो वाढ़ (वृद्धि) का रुकना, दूधका घटना और दुवलाना स्वाभाविक ही है। किलनीके वढ़नेसे कभी कभी पक्षाघातके लक्षण दिखायी पड्ते हैं। वेहद वढ़नेसे पशु लड़खडा कर गिर सकता है और उसे पक्षाघात हो सकता है। सांसकी पेशियोंमें पक्षाघात होनेसे मृत्यु हो सकती है।

त्वचा खुरदरी और ऊवड़ खावड़ हो जाती है। नाभी, गरदन, जाँघें, चूचियाँ ऐसे भाग हैं जिन्हें किलनी रक्त चूसनेके लिये सवसे जादा पसन्द करती है। जव नोच ली जाती है तव उसके दंष्ट्र या दंशनोष्ठ टूटकर त्वचामें रह जाते हैं जिनके कारण फुंसियाँ और व्रण या घाव तक हो सकते हैं।

चिकित्सा : दंष्ट्र या दंशनोष्ठ चुभाये सिरके एक भागको तोड़े विना किलनी छुडाना असभव है। खरहरेसे भी अधिक लाभ नहीं होता। उससे अच्छा उपाय कीटघ्नोंका उपयोग है। अरवमें सयाने ढोरको चारेके साथ ६ आउन्स नमक देते हैं और वछड़ोंको उसका आधा। तीसरे दिनसे किलनियाँ गिरने लगती हैं और पाँचवें दिन पशु इनसे पूरी तरह मुक्त हो जाता है। पता नहीं भारतमें यह उपाय आजमाया गया है या नहीं।

किरासन-तमाकूका वना एक परोपजीवीघ्न वताया जा चुका है। इसका फुहारा करना पशुकी देह पर ही किलनी मारनेका एक निश्चित उपाय है। (१२४८)

इससे भी कठिन काम गोहाल (गोष्ठ) को इनसे मुक्त करना है। आगसे जमीन की सतह को जलाकर उसे कोड़दो और फिर जलाओ। इससे कच्चे फर्समें सुधार हो सकता है। जो गोचर इनसे भरे हों उनको एक सालके लिये छोड़ दिया जाय और उसकी धरतीको जोत इनसे छुटकारा पाया जाय।

१४६५. जूँ (Lice)

जूँ खून चूसनेवाली परोपजीवी है। मादा नाशपातीकी आकृतिके अंडे देती और उन्हें बालसे चिपका लेती है। १० से १५ दिनमें ये पुष्ट होते हैं और उनसे तरुण जूँ निकलती हैं जो तीन अवस्थाएँ बिताकर सयानी या बड़ी होती हैं। सयानी होते ही ये सगम करती है और मादाएँ १ दिनके बाद अंडे देना शुरु करती हैं। ये एक मास से अधिक कालतक बिना आहारके रह सकती हैं। काटने वाली जूँ चूसनेवालीके समान ही होती है। ये परोपजीवी मुख्यरूपसे सिर गरदन और पैरों पर मिलती हैं।

जूँके कारण बड़ी खुजली होती है। खुजलीके कारण पशु घबड़ा जाता है। उस जगह पर हवकने या रगड़नेकी बराबर कोशिश करता है। जिस जगह ये चमड़े पर पड़ गयी हैं वहाँ देखनेसे ये तुरत पहचानी जा सकती हैं।

किरासन और तारपीन लगाकर जूँ मारी जा सकती हैं। अंडे नहीं मरते। इसलिये १० दिन बाद इनकी दूसरी फसल मारनेके लिये प्रक्रिया दुहरानी होती है। इनसे पूरी तरह छुटकारा पानेके लिये तीसरी बार लगानेकी जरुरत हो सकती है।

१४६६. कुकुर-मक्खी (Warble flies : Blow flies)

कुकुर-मक्खी ढोरकी भयकर उत्पीडक है। इनके कारण आर्थिक हानि बहुत होती है। क्योंकि, इनके मारे ढोरकी जीवनी शक्तिका ह्रास, उनके दूधकी घटती, बाढ़में बाधा और चमड़ेमें बड़े बड़े छेदोंके कारण खराबी हो जाती है। कुकुर मक्खी उत्तरी भारतमें अधिक खराबी करती है। बलूचिस्तानमें ९० सैकड़ा बकरोंके चमड़े इसके किये छेदके कारण खराब हो जाते हैं। उत्तर-पश्चिम सीमाप्रांत और पजाब तथा अन्य सूखे भागोंमें यह बहुत उत्पात मचाती है।

यह मक्खी आधा इंचसे कुछ बड़ी होती है। मौसममें यह ढोरका पीछा करती या उनपर रेंग कर चढ़ जाती है। और उनपर अंडे देना शुरु करती है। इनकी जिन्दगी बहुत छोटी है। पर इन्हीं कुछ दिनोंमें यह असंख्य अंडे ढोर पर देती और भीषण उत्पातका कारण बनती है। मक्खी बालकी जड़में बहुत जल्दी जल्दी अंडे देती है। कई मिनटमें वह कई हजार अंडे दे सकती है। अंडे बहुत छोटे लगभग १ इंचके बीसवें भागके बराबर होते हैं। अर्भक ३ से ६ दिनमें अंडेसे निकल

वालोंमें रेंगने लगते हैं और चमडेमें घुस जाते हैं। इस समय वह अडोसे भी छोटे लगभग $\frac{1}{50}$ इंच लम्बे होते हैं। चमड़ेमें वह प्रायः दो महीने रहते हैं। तब वह आश्रयदाता पशुके भीतरी अवयवों और पेशियोंमें होकर उसकी पीठपर चमड़ेके नीचे आ जाते हैं। यहाँ आकर अर्भक चमड़ेमें नीचेसे छेद कर उस छिद्रमें अपनेको अपने पिछले श्वास रन्ध्रोंके द्वारा चिपका लेता है। इस अवस्थामें उसे अपने जीवनके

चित्र १८६.
कुकुर मक्खी।
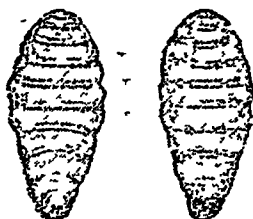
चित्र १८७.
कुकुर मक्खीके अर्भक।

चित्र १८८. बैलकी पीठ और कटि प्रदेशमें कुकुर मक्खी।

लिये हवाकी जरूरत होती है। हवा उस आश्रयदाताके चमड़ेके छिद्रोंसे अर्भकमें जाती है। भ्रमण कालमें अर्भककी लम्बाई लगभग आध इंच हो जाती है। चमड़ेमें छेद करनेके बाद वह चोला बदलने लगता है। दूसरी या अंतिम बार चोला बदलनेके बाद उसकी लम्बाई प्राय· तीन चौथाई इंचसे एक इंच तक हो जाती है।

यह अवस्था प्राप्तकर अर्भक उस आश्रयदाता पशुको छोड़ देता है। आश्रयदाताके साथ बुराई वह पूरी कर चुका है। इसके बाद वह धरती पर पत्तोंके नीचे कुप्पा अवस्था (पर निकलनेके पूर्वकी कोपस्थ अवस्था) में प्रवेश करता है। प्राय एक महीनेके बाद इसमेंसे नयी मक्खी निकलती है। मादा मक्खी ढोरकी देहपर समागमके बाद अंडे देना शुरु करती है।

जब अर्भक चमड़ेके नीचेसे छेद करके बाहर आने लगते हैं तब उनके बड़े आकारके कारण चमड़े पर सुपारी जैसे उभाड़ हो आते हैं। यहाँ वे पीवमें रहते हैं। छेदके कारण चमडा बर्बाद हो जाता है। बड़े व्यासके अर्भकके बाहर निकलनेमें यह छेद और बडा हो जाता है।

कुकुर-मक्खी जब पशुकी देह पर अंडे देती है तब उसे आनेवाले खतरेका पता किसी तरह चल जाता है। ऐसा माना जाता है कि, अंडे देनेके समय पशु उत्तेजित होता, सिर हिलाता और अपने पिछले पैरोंसे पेट पर मारता है। पशु पानीमें घुस सकता है या झाडियोंमें जाकर कुछ देर लेटा रहता है कि, मक्खियोंसे बचा रहे।

अर्भकके कारण हुई सूजन, पृष्ठ, कटि और त्रिक-देशमें देखी जा सकती है। शुरुमें वह जरासी सूजन होती है। फिर धीरे धीरे बड़ी गाँठ हो जाती है। इसी अवस्थामें अर्भक चमड़ेमेंसे बाहर निकलनेकी तैयारी करता है। छेद होता है। पहले सूजता है पर तुरत ही तिहाई इंच बडा हो जाता है। पीव निकल कर चारों तरफ बालमें चिपक जाती है। अर्भकके निकलने पर सूजन पचक जाती है और फिर एकदम गायब हो जाती है। चमड़ेमें एक घावका दाग रह जाता है जिससे छेद ढक जाता है। कभी कभी चमड़ेमें अर्भक अपने आप मर जाता है अथवा पशुपालक छेदमें ही दाब कर उसे मार डालते हैं। इस मृत अर्भकके विषके आचूषणसे पशुमें एनेफाइलेक्सिसकी अति चेतनता पैदा हो जाती है। नया आक्रमण होनेपर इस विषकी प्रतिक्रिया शरीर पर सार्वत्रिक होती है और एनेफाइलेक्सिसके भयकर लक्षण प्रगट होते हैं।

निवारण : कुकुर-मक्खी चमड़ेमेंसे निकले अर्भकसे पैदा होती है। इसलिये यदि अर्भक पशुके शरीरपर ही मार डाले जायँ तो आगे मक्खियाँ नहीं पैदा होंगी। इसलिये पशुपालकोंके सम्मिलित उद्योगसे कोई स्थान या अंचल मक्खियोंसे शुन्य किया जा सकता है। कई देशोंने पशुपालकोंपर कानूनसे यह [illegible]

दी है कि, अर्भकको मार डालें। डेनमार्कमें पहले ३० सैंकड़ा चमड़ा कुकुर-मक्खीसे वर्बाद हो जाता था। अब केवल ३ सैंकड़ा होता है। और सम्भव है कि कुछ दिनके बाद बिलकुल नहीं होगा।

चमड़े पर अर्भकोंको मार डालनेके कई उपाय हैं। प्रौढ अर्भक छेद दाब कर निकाल लिया जा सकता है अथवा किसी अंकुसीसे निकाला जा सकता है। छेदको दाबकर भी उसे मार सकते हैं और तब किसी अंकुसीसे छेदकर सरलतासे कुछ द्रव निकाल देना चाहिये।

कीटघ्न दवाओंसे पशुकी देहपर अर्भक मारना सबसे अच्छा उपाय है।

स्वीजरलैन्डमें पीठ भिगाकर उसपर नमक मला जाता है। अथवा नमकके गाढे घोलसे उस जगह अच्छी तरह भिगा देते हैं। कहा जाता है कि, इस उपायसे ८० सैंकड़ा अर्भक मर जाते हैं। क्रियोलीन (creolin) का १० सैंकड़ा घोल लाभकारी है। डेरीस पाउडर (Derris powder) जिसमें ५ सैंकड़ा रोटेनन (rotenone) हो, ९ गुना ठंढे पानीमें २४ घंटे रखा जाता है और बीच बीचमें इस मिश्रणको हिला दिया जाता है। फिर इसे छानकर एक्सट्रैक्ट या अर्क अलग कर लेते हैं और उसमें कुछ नरम साबुन मिलाते हैं। यह घोल हाथसे मला जाता है। फिर दूसरे दिन भी मला जाता है। इस इलाजसे सौ सैंकड़ा अर्भक मर जाते हैं। पर सबसे उपयुक्त इलाज या चिकित्सा किलनीमें बताया गया तमाकूका अर्क है। ग्रेट ब्रिटेनमें यह काममें आता है।

चूना	...	१ रत्तल।
पानी	...	९ रत्तल।
तमाकूकी बुकनी	...	४ रत्तल।

२४ घंटे तक रक्खो और बीच बीचमें हिला दिया करो और फिर छान लो। यह घोल ताजा लगाना होता है। ऐसी रिपोर्ट है कि, डेनमार्कमें रासायनिक चिकित्सा व्यर्थ हुई है। वहां लोग अँकुसीसे अर्भक निकालनेपर ज्यादा भरोसा करते है।

१४६७. कुब्बका घाव (Hump sores)

ढोरको कुब्ब पर प्रायः बुरा घाव हो जाता है। ये घाव साधारण तौरपर कौओंके चोंच मारनेसे होते हैं। एक बार घाव हो जाने पर उसपर स्रावकी

चीजोंसे पपड़ियाँ या चोट्यां बनती हैं। इसलिये बहुत जलन होती है। चोटें बढती हैं इससे घाव वृत्तमें (गोलाकारमें) फैलता है। कभी कभी कटोरीदार घाव होता है जिसके किनारे खड़े होते हैं और मध्य भाग कोमल होता है। जीवनी शक्तिके ह्रास से जख्मी चोटके घावका यह रूप हो जाता है।

इन घावोंका भरना बहुत कठिन है। यह बना ही रहता है। क्योंकि एक तो इसकी उपयुक्त चिकित्साका अभाव है और दूसरे कौओंका चोंच मारना जारी रहता है। जलनेसे त्राण पानेके लिये पशु यह होने देते हैं। कभी कभी चोंच इतने जोर से मारी जाती है कि, मासका बडासा टुकड़ा नुच जाता है जिससे खून बहता है। पशु इसमें बाधा नहीं देता।

चिकित्सा : एक दो दिन इमलीका लेप लगाकर पपड़ियाँ साफ कर दो। इस लेपसे जगह नरम हो जाती है। पपड़ियाँ रगड़ धो साफ करो कि घाव स्वच्छ हो जाय। इस पर नीचे लिखा मरहम लगाओ:—

तमाकूकी बुकनी	...	१ भाग।
मुर्दासखकी बुकनी	..	१ भाग।

नारियल तेल या भेसलिन मिला मरहम बनाओ।

यह मरहम एक दिन तक लगा रहने दो। जरूरत हो तो घाव को फिर इमलीसे साफ कर मरहम लगाओ। यह चिकित्सा हफ्तों या महीनों चलती है। चोंच मारने या सींगकी खोंचसे घाव भरनेमें बाधा होती है। इसे रोकना चाहिये। सींगोंमें एक मजबूत छड़ी बांधनेसे वह उन्हें देह तक नहीं पहुँचने देती।

सभी दवाओंमें ऊपरवाली सबसे अच्छी है। घाव भरने पर एक दाग रह जाता है जो थोड़े दिनके बाद बालसे ढक जाता है जिससे कुरूपता मिट जाती है।

अध्याय ६२

अपोषण-रोग

अपोषण (Deficiency) के कारण कई रोग होते हैं। अपोषणके दो वर्ग हैं: (१) भिटामिन, (२) खनिज।

जिस ढोरको खूँटे पर खिलाया जाता है और बारहो महीना सूखा चारा दिया जाता है उसे भिटामिन "ए" की कमी बहुत होती है। ऐसी हालतमें गाय फोड़े-फुंसी, स्वास्थ्य-क्षीणता, निर्बलता और दुबलेपनसे पीड़ित होती है। ऋतुकाल देरसे होता है। गाभिन होनेपर मरे बच्चे होते हैं या होते ही मर जाते हैं। अथवा गाय बाँझ हो जाती है। भिटामिन "ए" की कमीसे विभिन्न छुतहे रोगोंके लिये द्वार खुल जाता है और परोपजीवी भी ऐसी क्षीण देहमें अड्डा जमाते हैं।

भिटामिन "ए" की कमीसे चमड़ेकी प्रतिरोध-शक्ति क्षीण हो जाती है और वह काम पूरी तरह नहीं करती। त्वचा, पलक और कला (श्लैष्मिक) ग्रस्त रहते हैं। कनीनिका-प्रदाह (कैरेटोमैलेसिया), आँखसे पूयस्राव और अन्धता होती हैं।

पोषणके विषयमें इन सबका वर्णन हो चुका है। प्रसंगानुसार उसे देखना चाहिये।

खनिजकी कमीसे भी कई रोग होते हैं। फक्क रोग कैलशियम या फॉस्फोरस या दोनों की कमीसे होता है। फक्कमें अस्थियाँ क्षीण और टेढ़ी मेढी हो जाती हैं।

१४६६८. फक्क: सुखंडी (Rickets)

फक्क १ वर्षसे कम उमरके छोटे पशुओंका रोग है। इस रोगमें उन्हें कमजोरी रहती है और लम्बी हड्डियोंके छोर बढ़ जाते हैं।

इसका कारण यह है कि, अस्थिनिर्मातृ-कोष रक्तस्रोतसे वलिष्ठ और दृढ अस्थि निर्माणके उपयुक्त पदार्थ नहीं पाते हैं। अब यह माना जाता है कि भिटामिन "डी" तथा कैलशियम और फॉस्फोरसके अभावसे यह रोग होता है।

कैलशियम और फॉस्फोरसके अभावके कारण या उनके अनुपयुक्त मात्रा या अनुपातमें रहनेके कारण तद्विषयक तन्तुओंमें अपूर्ण सौवीकरण (केलसिफीकेशन) होता है। साथ ही बनी अस्थियोंमें निस्सौवीकरण (डीकैलसिफीकेशन) भी होता है। फक्र उसी समय होता है जब पशुकी वृद्धि तीव्रगति से होती है और जब आहारसे उस वृद्धिके लिये जरूरी खनिजोंकी पूर्त्ति नहीं होती।

फक्रका एक साधारण कारण मिट्टीके क्षार और फॉस्फोरिक एसिडके असतुलनके कारण कैलशियम या फॉस्फोरसकी सापेक्ष कमी है। मिट्टीकी क्षारीयता ई० ए० (E A) चिह्नसे बतायी जाती है।

$$\text{ई० ए०} = (\text{कैलशियम} + \text{मैगनीशियम}) - \text{फॉस्फोरस}$$
$$E. A. = (CaO + MgO) - P_2O_5$$

ढोरमें मूल्य धनात्मक होना चाहिये। वह इतना कि, बहुत तरुण पशुमें + (धन) २५ मिलीग्राम हो। अन्न और बीजोंमें ऋणात्मक ई० ए० मूल्य होता है। जब आहारमें विभिन्न सेन्द्रिय अम्ल अतिरिक्त हो जाते हैं तब न्यूनतम कैलशियम और फॉस्फोरस खिलानेसे फक्र हो सकता है। आहार सामग्रीमें ऑक्सैलिक अम्लकी अतिरिक्तता जैसे कि, सलगमके पत्ते बहुत ज्यादे खिलानेसे या लैकटिक अथवा टारटारिक एसिडकी अधिकतावाले आहार खिलानेसे फक्र हो सकता है।

फक्रमें यद्यपि कंकालकी सभी अस्थियाँ ग्रस्त होती हैं पर सबसे ज्यादे वह होती हैं जो उस समय सबसे तीव्रगतिसे विकसित हो रही थीं।

फक्रके वास्तविक लक्षण प्रगट होनेके पहले अक्सर पेटकी गड़बड़ी होती है। किसी किसी पशुको फक्रके प्रारम्भमें भस्मक रोग (राक्षसी भूख) हो जाता है। कभी कभी रोगके प्रारम्भमें चलने फिरनेमें गड़बड़ी होती है। विकृति होनेके पहले हड्डियोंमें दर्द होता है। पिछले पैरोंमें अकड़न और आंशिक पक्षाघात होता है। जैसे जैसे रोग बढ़नेसे हड्डियाँ टेढ़ी होती हैं चालमें फर्क या लंगड़ापन दिखाई पड़ती है। लम्बी हड्डियोंके छोरोंके बड़े होनेके कारण जोड़ सूज जाते और कड़े हो जाते

हैं। कन्धेके भारसे पसलियाँ भीतरकी ओर मुड जाती हैं। पैरों और हँसुली (कन्धेकी हड्डी) में पेशी-दौर्बल्य होता है। रीढ़ अगल वगल या ऊपर नीचे किसी तरफ तिरछी हो सकती है। हन्वस्थि कोमल हो सकती है जिससे चवानेकी कठिनाई हो सकती है।

रोगकी कई महीनेतक साधारण तौर पर जीर्ण गति होती है। कभी कभी जल्दी ही आराम भी हो जाता है। पर साधारण तौर पर यदि उचित चिकित्सा न हुई या कमियाँ दूर नहीं की गयीं तो विकृति क्षीणवृद्धिके अतिरिक्त अन्य उपद्रवभी हो सकते हैं और मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा : यदि रोग अधिक नहीं वढा है तो यह वशमें किया जा सकता है और रोगनिवृत्तिभी हो सकती है। पर इसके लिये आवश्यक परिमाणमें खनिज लवण देना चाहिये और धूप तपवाकर भिटामिन "डी" भी। हरा चारा सर्वोत्तम है। जिस गोचरमें आवश्यक खनिज न हों वहाँ हरे चारेमें फलियाँ भी शामिल करनी चाहिये। पर हरे चारेके साथ कैलशियम और फॉस्फोरस प्रत्यक्ष खिलाना जरूरी है। कैलशियम, कारवोनेट या खड़ियाके रूपमें दिया जा सकता है। पर कैलशियम और फॉस्फोरस भफाये हड्डीके चूरेके रूपमें नित्य ४ से ८ आउन्स खिलाना जादे अच्छा है।

जिस स्थान या मौसममें बछरू फक्कसे जादा पीड़ित होते है वहाँ या उस समय उन्हें चारेके साथ नित्य भफाई हड्डीका चूर्ण खिलानेमें तत्पर रहनेसे फक्क पूरी तरह रोका जा सकता है।

२४६६. मृद्वस्थि : अस्थिकी भंगुरता या कुड़कीलापन (Osteomalacia)

तरुणोंके लिये फक्क जो है वही सयानोंके लिये मृद्वस्थि है। यह रोग गाभिन और दुधार गायोंको जादे होता है। इसका कारण सयाने पशुओंमें फॉस्फोरस-कैलशियमके प्रसादपाककी त्रुटि है। अन्य तन्तुओंकी तरह अस्थि भी निरन्तर परिवर्त्तित होती रहती है। अस्थिके इस रोगमें परिवर्त्तित नये अस्थितन्तु सौधीकरणके विना रहते हैं और पहलेकी अस्थियोंके रक्तमें पुनराचूषण अत्यधिक होता है। इनकी स्थानपूर्ति असौधित (सूधा, या चूना विहीन) तन्तुओंसे होती है। इस तरह जो पहले साधारण अवस्थामें दृढ़ अस्थि थी, इस रोगके कारण निर्वल और भगुर हो जाती है।

इस रोगमें अस्थियां मुड़ती नहीं टूट जाती हैं। मुड़ना फक्का नियम है। कारण साफ है। सयानोंके रक्तमें उचित अनुपातमें जब कैलशियम-फॉस्फोरस नहीं होता, पहले की बनी दृढ अस्थिसे ये पदार्थ आचूषित होकर रक्तमें मिल जाते हैं। इस तरह अस्थि निर्बल हो जाती है पर जो भाग सौचित (चून युक्त) रहता है वह दृढ होता है इसलिये वह मुड़ता नहीं। इसलिये देहके भार अथवा पेशियोंके चापसे हड्डी टूट जाती है।

रोगकी विकसित अवस्थामें खोखला चोंगाकार अस्थियोंके विवर फैल जाते हैं, खोली पतली स्पजसी, कोमल और भगुर हो जाती है। इसी तरह छोटी और चपटी अस्थियां भी भगुर या चटसे टूट जाने वाली हो जाती हैं। फिर भी कुछ स्थानकी अस्थियां मुड भी जाती हैं।

अस्थि भंगुरताके साथ आनुसंगिक उपद्रवके रूपमें रक्ताल्पता, शोथ, ग्रसित अस्थिसे सलग्न पेशियोंकी क्षीणता हो सकती है।

लक्षण : भस्मक या राक्षसीभूख मुख्य लक्षण है। पशुके सामने जो भी कड़ी चीज आती है उसे वह हबकना, चाटना है। कैलशियमयुक्त वस्तु उसे अधिक आकृष्ट करती है जैसे हड्डी, मिट्टी, गारा, ईंट। किसी अवस्थामें मल मूत्र जैसी दुर्गन्ध वस्तुओंको निगलनेकी उसकी विकृत इच्छा हो जाती है। किसी किसी गायमें पुरैन खा जानेकी रुचि वास्तवमें भस्मक सूचित कर सकती है। इससे उसके चारेमें चूनेकी कमी सूचित होती है। लाश भी खायी जा सकती है। रोग बहुत बढने पर गायें एक दूसरेको हबकती पायी गयीं हैं। पशु अपनी कमर और पीठ कमानसी करके खडा रहता है और अनमाना होकर खड़ा होता या चलता है। पशु दुःखमें डूबा रहता है। पांवके जोड़ोंमें प्रदाह और सूजन हो सकती है।

खड़े होने या लेटनेकी कोशिशमें हड्डी टूट सकती है। पसलियां, श्रोणि और पैरोंकी लम्बी हड्डियां अधिक ग्रस्त होती हैं।

चिकित्सा : चिकित्सा फक्की तरह। पोषक चारांके अतिरिक्त हड्डीका चूर्ण और हल्की मेहनत तथा धूपकी आवश्यकता है।

अध्याय ५३

स्वभावज रोग

(Constitutional Diseases)

१४७०. पक्षाघात (Paralysis : Paresis)

नाड़ीतंत्रके दोष्से एक या अनेक अवयवों पर पेशियोंके नियन्त्रणका अभाव पक्षाघात है। यदि नियन्त्रणकी कमी आंशिक हो तो उसे आगिक पक्षाघात कहते हैं। जैसे दुग्धज्वरका प्रसवजन्य आशिक पक्षाघात। यदि देहके एकही पार्श्वमें रोग हो और उस तरफ पेशियोका नियन्त्रण खतम हो जाय तो उसे **अर्धांग** (hemiplegia) कहते हैं। पर जब दोनो तरफके पक्षाघातसे पूरी देह फॅस जाय तो उसे **पूर्णांग** (diplegia) और जब देहके नीचे भागमें पक्षाघात हो तो उसे **ऊरुस्तम्भ** या **निम्नांग** (paraplegia) कह सकते हैं। यह अतिम ही सबसे व्यापक रूप है।

यदि पीठ आदि टूटनेसे सुषुम्ना टूट जाय तो उस आघातसे नीचे अर्थात् पीछेके भागपर नियन्त्रण नहीं रहता। पक्षाघातसे मूत्राशय और गुदाकी सकोचनी पेशियां ग्रस्त हो सकती हैं। ऐसी दशामें मल या मूत्र सदा टपकता रहता है।

पक्षाघात मनुष्योंके लिये जैसा कठिन रोग है पशुओंके लिये भी है, विशेषकर बड़े पशुओंके लिये। यदि महत्वके अंग वशमें न रहें या एक तरफके अग बेकाम हो जायॅ या दोनों तरफ ऐसा हो जाय तो मनुष्य अपनी छोटीसे छोटी जरूरतके लिये दूसरोंका मुहताज हो जाता है। चाहे वह खाय, करवट ले, पाखाना पेशाब करे, हर हालतमें दूसरेकी सहायता लेनी होती है। बडे पशुओंके भारीपनके कारण उनकी उचित सुश्रुषा करना असंभव हो जाता है। जब तक वह जीता है कष्ट भोगता है। यदि अच्छा भी होता है तो सभी नस-नाड़ियोंको ठीक तरह काम करनेमें महीनों या

वर्षो लगते हैं। तव भी रोग-निवृत्ति एक समस्याही है। इसलिये दयाकी दृष्टिसे उसे विना कष्ट मारा जा सकता है।

चिकित्सा : मालिश, लेप और विजली, हल्के और एकांगी आक्रमण पर अजमायी जा सकती है। नाड़ी-संस्थानको स्फूर्ति देनेके लिये २० ग्रेनकी मात्रामें कुचिलाका चूर्ण दिया जा सकता है। थियामिन अर्थात् भिटामिन बी$_1$ (Thiamin or Vitamin B_1) की ३ मिलीग्रामकी गोलियाँ मिलती हैं। दैनिक ३० से ५० गोलियाँ तीन चार दिनोंतक दी जा सकती हैं। पशुको अन्य आहार देना और दस्त कराते रहना चाहिये। पक्षाघातकी चिकित्सामें शुश्रुषा सबसे बड़ी चीज है।

१४७१. सन्धि-वात : गठिया (Articular Rheumatism)

यह छूतका रोग है जिसमें सन्धियों पर रसप्रदाह होता है। उग्र और जीर्ण दोनों प्रकार होते हैं।

यह ढोरोंमें विशेषकर दुधार पशुओंमें बहुत व्यापक है। पूयकारी जीवाणुओंकी छूतसे यह होता है जो विष पैदा करते हैं और ये विष सन्धियोंमें प्रदाहक विकार पैदा करते हैं। जीवाणु प्रत्यक्षरूपसे भी सन्धि-प्रदाह कर सकते हैं। साधारण तौर पर यह रोग रक्तस्रोतके जरिए शरीरके दूर दूर भागोंसे सन्धियोंपर आनेवाले जीवाणु या उनके विषकी आनुसंगिक छूत है। कुछ शोधकों या गवेषकोंका मत है कि, गठिया देहके किसी दूर देशके विषस्रावसे हुई अतिग्राहकता या अतिचेतना (allergy) के कारण होती है। मनुष्यके रोगसे इस वातकी पुष्टि होती है। क्योंकि देखा जाता है कि, मनुष्यको उग्र सन्धिवात होने पर पहले उपजिह्विका-प्रदाह (tonsilitis) होता है। पशुओंमें इसी तरहके परिणाम देखे गये हैं। गलप्रदाह, गर्भाशयप्रदाह, थनैला (स्तनप्रदाह), इन सबके कारण सन्धिवात होता है।

मनुष्योंकी तरह ही यह रोग पशुओंको भी यकायक हो जाता है। एक या कई जोड़ एक साथ या एक एक करके ग्रस्त होते हैं। बुखार होता है। ताप १०५—१०६ डिग्री फा० चढ़ता है। फिर उग्र वेदना होती है और जोड़ सूजते हैं। पशु लँगड़ाने लगता है। कभी लँगड़ाना पहले ध्यान खींचता है इसके बाद ज्वर आता है। दूसरे अंग भी फँस सकते हैं। कठिन रोगके कारण उदर्याप्रदाह, पार्श्वशूल या हृत्कोषप्रदाह आदि होते हैं। इन्ही दीनरोगोंमें किसी उपद्रवके विना पशु आराम हो जाता है।

प्रसूतिजन्य सन्धिप्रदाहमें प्रसवके थोड़े समय वाद साधारण तौर पर केवल एक जोड़ ही ग्रस्त होता है। ग्रहणशील रोगियोंको क्षतके द्वारा सन्धिप्रदाह हो सकता है। जैसे उपजिह्विकाप्रदाहसे होता है। उसी तरह क्षयसे भी पशुको सन्धिप्रदाह हो सकता है। क्षयमें साधारण तौर पर केवल एक ही सन्धि ग्रस्त होती है। पशु लँगड़ा हो जाता है और ऐसा वना रह सकता है। या यदि रोग बढ़े तो पशु खड़ा होनेमें असमर्थ हो सकता है और इस तरह वर्वाद हो जाता है। यह समझा जाता है कि, जव एक सन्धि ग्रस्त होती है तव विप और जीवाणु रक्तस्रोतमें जा पहुँचते हैं और तव कई सन्धियोंको एक साथ ग्रस्त करते हैं। इसलिये यह जरूरी है कि जैसे ही रोग दिखायी पड़े चिकित्सा शुरु की जाय।

चिकित्सा: सन्धिमें १० सी० सी० पानीके साथ ३० ग्रेन सोडियम सैलीसिलेटकी दिनमें एकवार सूई दी जाय। जव तक दर्द मिटे नहीं यह रोज चलता रहे। दिनमें तीन चार वार सोडियम सैलीसिलेट १ आउन्सकी मात्रामें खिलानेसे यह जाद अच्छा है। पशुका विप दूर करनेके लिये पेट साफ कर देना चाहिये। इसके लिये १ रत्तल मैग० सल्फ० वाँट कर थोडी थोडी देरके वाद दो वार दो। रेडीके तेलका अवद्रव जिसमें १ रत्तल तेल हो इसी मतलवसे दिया जा सकता है। सैलीसिलेटकी सूई तुरत पीड़ा हरती और आराम करती है। रोग लौट सकता है। तव यही इलाज किया जाय। यह एक वार हो तो पशु वार वार वीमार पड़ सकता है। इसलिये देखभाल जरूरी है। जव जरूरत पड़े सरल विरेचन दो।

कपूर, तारपीन आदि मिश्रित तेल मलनेसे भी लाभ होता है।

अध्याय ५४

स्त्री-रोग

१४७२. थनैला : स्तनप्रदाह (Mastitis : Mammitis)

थनके प्रदाहको थनैला कहते हैं। साधारण तौर पर यह अचानक होता है। इसका कारण कोई न कोई पूयकारी जीवाणु हैं। चूचीसे निकाले पहले दूधमें

कुछ जीवाणुओंका रहना मामूली बात है। इस अवस्थामें वह रोगकारी नहीं होते। भीतरी या बाहरी परिवर्तनसे ये जीवाणु हानिकर हो जाते हैं और तन्तुओंपर चढाई कर देते हैं। थनैलाके कारण थनके तन्तुपदार्थ ग्रस्त होते हैं जिसके कारण दुधार गायोंके थनमें दूध बनना रुकता है। बिसुकी गायें भी ग्रस्त होती हैं पर कभी कदाच् उनमें भी तन्तुओंके ऐसे परिवर्तन होते हैं कि जब तक थन पूर्वावस्थामें नहीं आ जाता थनके ग्रस्त भागमें ब्यानके बाद दूध नहीं बनता।

थनैला थनके एक या सभी भागोंको एक एक कर या एक साथ ही ग्रस सकता है।

अधिक दुधार गायें जिनका थन बड़ा और चेतनाशील है सबसे जादा ग्रस्त होती हैं। यह स्वभाविक भी है। अधिक दुधार गायोंके थनके तन्तु और पेशियाँ खूब चढी रहती और चेतनाशील दशामें होती हैं। कोई असाधारण बात तन्तुओंकी समता बिगाड़ सकती है जिससे तन्तु ग्रस्त हो सकते हैं और विषमता पैदा हो सकती है।

अक्सर यह भी हो सकता है कि, अधिक दुधार गायको प्रसवके कई दिन बाद यह रोग उग्ररूपमें हो सकता है। उस समय गायकी देहसे ब्यानेकी थकान दूर नहीं हुई रहती और उसकी हालत बहुत नाजुक रहती है। छूत प्राय चूचीकी मुरुखसे घुसती है या जो कहा जा चुका है कि, चूचीकी सुरखमें जो अरोगकारी (non-pathological) जीवाणु रहते हैं वह इस विचित्र दशाके कारण रोगकारी (pathogenic) हो जा सकते हैं। छूतका एक दूसरा कारण किसी ग्रस्त गायकी छूत है। थनैलाग्रस्त थनके भागमें पीब हो जाती है। पीब जमीनपर गिरती और फैलती है। उसमें जीवाणु हैं। वह परिचारकोंके पैरकी धूलके साथ दूसरे गोहालमें पहुँच जाते हैं। रोगी गायको दुहनेवाला अपनी उँगलियोंके जीवाणु ले जा सकता है। यदि वह कोथघ्न जलसे हाथ धोये बिना दूसरी गाय दुहता है तो उसके हाथसे जीवाणु चूचीमें घुस सकते हैं। थनैलाका कारण ठंढ भी होती है। थनमें यकायक ठंढ लगनेसे वह सूज सकता है। उसके बाद थनैलाके सभी लक्षण प्रगट हो सकते हैं। गीले फर्श प्राय कारण हुआ करते हैं। ठोकर, मार या अन्य गायसे कुचल जाने पर थनमें प्रदाह होनेसे थनैला हो सकता है। टूटी नादेके नरा या कँटीली झाडी या बाड़की खोंच लगनेसे जीवाणुकी चढाई हो सकती है।

लक्षण : थनकी सूजन और दर्द, ये लक्षण पहले दिखायी पडते हैं। थन छूनेमें बहुत कडा और ठोस मालूम पड़ता है, उसमें स्पर्श-चेतना बहुत हो जाती है। अगर थनका एकही भाग ग्रस्त हो तो दूसरे भाग भी कुछ हद्तक चेतन या ग्रहणशील हो जाते हैं और दुग्धस्राव घट जाता है। रोग बढने पर थनका सिर्फ एक भाग खास तौर पर ग्रस्त रह सकता है पर पूरा थन अकड़ जाता है और किसी चूचीसे दूध नहीं निकलता। धीरे धीरे प्रदाह मिट जाता है पर एक या अधिक भागको जन्म भरके लिये दूध-निर्माणमें असमर्थ कर जाता है। ऐसे थनकी चूचियाँ अन्धी कही जाती हैं। कभी कभी एक क्षतिपूर्ति-क्रिया होती है जिससे सुस्थ भागका आकार बढ़ जाता है और दूध कुछ जादा होता है। पर एक भागके भी दूधकी कमी पूरी तरह पूरी नहीं होती। एक भागके ग्रस्त होने पर दूसरे भागोंके ग्रस्त होनेका खतरा रहता है। और उसी या बादके ब्यानमें वे भी नष्ट हो जा सकते हैं। नष्ट भागमें पीव हो जाती है। ग्रस्त भागमें कुछ पीव सदा रहती है। यह दबानेसे निकल आती है। यही सुस्थ भागके खतरेका कारण होती है। क्योंकि, इसमें छूत आसानीसे फैल सकती है। कभी कभी गायोंके थनके चारों भाग एक एक कर नष्ट हो जाते हैं। ऐसी गायें जब फल जाती हैं तब बखेडा उठ खड़ा होता है। क्योंकि, नवजात बछरूको बाहरी दूध पिला पालना होता है। इसमें सफलता बहुत कम मिलती है। क्योंकि, बछरू जन्मसे ही पेउसीसे वंचित रहता है। इसलिये जीवाणुओंके आक्रमणसे त्राण नहीं मिलता। नाभी पकने, सफेद दस्त या किसी और कारणसे उसकी मृत्यु हो जाती है। जिस गायके चारो भाग ग्रस्त हो गये हों और चारों चूचियाँ अन्धी हों उन्हे फलने नहीं देना चाहिये।

थन और दुहनेवालेके हाथकी सफाई पर ध्यान रख थनैला रोकना चाहिये। यदि अन्धी चूचीवाली गायें हों तो उन्हे अन्तमें दुहना चाहिये। उस गायकी अन्धी चूचियाँ पहले दुहकर साफ कर देनी चाहिये और तब हाथको छूत रहित करके चालू चूचियाँ दुहनी चाहिये। लकडीके बुरादेसे भरे बर्तनमें पीव दुहना चाहिये। जिससे फर्श और आसपास गन्दगी न हो। बुरादा जला दिया जाय। सभी गायोंकी चूचियाँ दुहनेके बाद पोछ देनी चाहिये। यदि चूची पर कोई खोंच दिखायी दे तो टिकचर आयडिन लगाओ।

चिकित्सा : पूरे थनको भफाओ (सेंको)। गरम तेलकी मालिश करो और तब फलालेन या कम्बलका टुकड़ा गरम पानीमें भिगा निचोड़ो और थन पर

रक्खो। एक टुकड़ा ठंडा हो तो दूसरा गरम टुकड़ा रक्खो। यह एक घण्टा तक रोज ३ या ४ वार किया जाय। अँनोडाइन (वेदना निवारक) लिनीमेन्ट की मालिश फायदा करती है। सेंक देनेके वाद अेन्टीफ्लोजिस्टीन जैसी वस्तु लगानेसे प्रदाह जल्दी शान्त हो सकता है। यह लगानेके वाद थन पर रुई लपेटो और उसके सहारे छीकापट्टी (स्लिंग) वाँधो। यह रात भर रक्खो। सवेरे देखभाल करके फिर यही करो। थनमें जो भी द्रव जमा हो निकाल दो। ऐसा करनेमें दर्द होने पर भी थन खाली करनेकी कोशिश हो। क्योंकि, उसमें जमा पदार्थ जलन पैदा करता है और प्रदाहका कारण बना रहता है। सल्फापायरीडीन या एम० बी० ६९३ का उपयोग करो। वहुयोजी स्ट्रेप्टो-भैक्सीनकी सूई लाभप्रद है।

१४७३. जरायुप्रदाह : प्रसूतिज्वर (Puerperal Fever)

जरायुमें फलाये डिम्बसे वच्चा उत्पन्न होता है। फलाये जानेके पहले भी डिम्बकोषसे स्रवित डिम्वका पोषण जरायुमें फलाये जाने तक होता है। उसीमें फलित डिम्वसे भ्रूण वनता है और पलता है। फिर जब वह इस योग्य हो जाता है कि, अलग रह सके तब वच्चेका जन्म होता है। वच्चेको जब इसके (जरायुके) आश्रयकी आवश्यकता नहीं रहती तब वह विजातीय वस्तुकी तरह बाहर कर दिया जाता है। भ्रूणके विकासके साथ साथ जरायुका भी परिवर्तन होता है। जरायुकी दीवाल काफी मोटी हो जाती है और जरायु अपने अन्दर बढ़ते हुए भ्रूण को धारण करनेके लिये फैल जाता है। प्रसवके वाद जरायु अपने स्वाभाविक आकारमें हो जाता है। स्वाभाविक आकारमें फिर होनेका नाम "प्रसवान्तर सङ्कोच" (इनभोल्यूसन) है।

प्रसवके समय जरायु सकटमें रहती है। गर्भावस्थामें जरायुका द्वार एक कोमल गोलकसे वन्द रहता है जो जीवाणुओंका प्रवेश रोकता है। प्रसवके वाद [illegible] कई गुना वड़ा हो जाता है। वह इतना वड़ा हो जाता है कि, जिसमें [illegible] नहीं हो सकती थी उससे एक वच्चा पार हो जाता है। इसलिये [illegible] कोप नहीं होने देनेका पूरा ध्यान रखना चाहिये जिससे कि, [illegible] प्रवेश न कर पावे। क्योंकि गर्भाशय या जरायुका मुँह [illegible] और अरक्षित रहता है। पुरइनके छूटनेसे इसमें [illegible] कोई वात नहीं कि प्रसवके वाद जरायुका प्रदाह हो। [illegible]

स्वास्थ्यकी अस्वाभाविक दशासे प्रसवके पहले भी यह हो सकता है। पर साधारण तौर पर जरायुप्रदाह प्रसवके वाद ही होता है।

इस समय वहुत वातें हो चुकी होंगी। मूढ़गर्भ (कष्टसाध्य प्रसव) में जरायुके खुले मुँहमें वाहरी हवा वहुत देरतक लग गई होगी। भ्रूणकी स्थिति ठीक करने, भीतरी जाँच या प्रसव करानेके लिये गन्दा या विना कोथघ्न किया हुआ हाथ भीतर डाला गया होगा। वछरूको काटकर निकालनेकी जरूरत पड़ने पर औजार भीतर डाले गये होंगे। इनमेंसे किसी कारणसे जरायुमें जीवाणु पहुँच उत्पात कर सकते हैं। जव पुरैन सहज रूपसे नहीं निकलती तो हाथ डालकर निकालना होता है। अभी भी सलग्न पुरैनके खींचनेसे जलन और प्रदाह हो सकते हैं। पुरैनका एक अंश ही जरायुकी दीवालसे संलग्न रह सकता है या असलग्न रहने पर भी विना वाहर निकले भीतरमें ही रह जा सकता है। तव यह सड़ता है जिससे जरायुमें छूत लगती है। जरायु प्रदाहके ये कुछ कारण हैं। कभी कभी स्वाभाविक प्रसव होनेके ७ से १० दिन वाद जरायु प्रदाह हो जाता है।

लक्षण : भगोष्ठ छूनेसे गुदगुदी और व्यथा होती है। भगकी कला लाल हो जाती है और सूजती है। ताप १०७ से १०८ डिग्री फा० चढता है। रौंथ नहीं होती। दूध का स्राव नहीं होता या रुक जाता है। आँखें लाल हो जाती हैं। खासकर जव प्रदाह वढ जाता है तो गाय लेटती नहीं खड़ा रहना पसन्द करती है। भगसे स्राव होता है जो धीरे धीरे गाढ़ा दुर्गन्ध हो जाता है। उदर्या ग्रस्त हो सकती है जिससे उसमें द्रव जमा हो जाता है। वेहोशी वारवार आती है और भीषण क्लान्त अवस्थामें मृत्यु हो जाती है। आरम्भिक अवस्थामें रोग साध्य रहता है पर जव सव लक्षण पूरे हो जाते हैं और विप काफी फैल जाता है तव आराम नहीं होता है।

चिकित्सा : इसका निवारण करना चाहिये। सावधानीसे सव काम किया जाय तो निरवार्य है भी। यदि भीतर हाथ डालनेकी जरूरत पड़े तो कोथघ्न रखनेका कड़ा प्रवन्ध रहे। पुरैन निकलनेमें देर हो या न निकले तो उपाय करना चाहिये। हाथ भीतर घुसेड़नेके पहले नह काट लेना और हाथको छूत रहित कर लेना चाहिये। सलग्न पुरैनका अंश मुट्ठीसे धीरे धीरे अलगाया जाय जिससे कि, जरायुकी दीवालमें खोंच न लगे। एक टुकड़ा भी भीतर रहने नहीं दिया जाय। कुछ लोग जरायु धोनेके पक्षमें नहीं हैं। क्योंकि पानीके वाहर निकालनेकी

कठिनाई है। यह पानी जब तक आत्मपित नहीं होता जरायुमें रहता है और कोथघ्न होनेके कारण उत्ताप करता है।

यदि हाथका व्यवहार हो तो इसके बाद कोथघ्न उपाय करना चाहिये और दो दिन तक एम० बी० ६९३ की १० टिकियाँ रोज देनी चाहिये। पर फिर भी यदि छूत लग जाय तो कोथघ्न घोलसे जरायु धोना चाहिये और इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि इस नलीके द्वारा सारा पानी निकाल लिया जाय। इस कामके लिये १ : २००० पोटाशियम परमैंगनेट पानीमें डाल कर व्यवहारमें लाया जाय। सब पानी निकालकर बोरिक एसिड और आयडोफॉर्म की पेसरी (जरायुकी टोपी) जरायुकी दोनो सींगोंपर चढा दी जाय। धोने बहानेकी यह क्रिया दिनमें दो बार या जरूरत हो तो कई बार की जाय। चिकित्सा लक्षणोंके अनुसार की जाय। यदि जरूरत हो तो ½ ग्रेन स्ट्रिकनीन की अतत्वक् सूई देकर हृदयको बल पहुँचाया जाय। मुँहसे दवा खिलानेसे अधिक लाभ नहीं होता है। पर रेंडीका तेल या मेग० सल्फ० मुँहमें देकर पाखाना कराते रहना चाहिये। एम० बी० ६९३ पूरे एक कोर्स तक खिलाना जारी रखना चाहिये। बहुधा जो स्ट्रिप्टोकोक्सी भैक्सीनकी सूई दी जाय।

अध्याय ५६

सरल शल्य-चिकित्सा-विधि

गायके रोगोंकी चिकित्सा करनेपर किसीके साधारण चीरफाड़ करनेकी आवश्यकता भी मालूम हो सकती है जिससे कि यह उसे सम्पन्न पूरा कर सके। बड़े चीरफाड़के लिये इस प्रकारके ज्ञानकी आवश्यकता होती है। इसलिये ऐसी हालतमें किसी चतुर पशुचिकित्सक—भेटेरिनरी सरजन—को बुलाना चाहिये अथवा जहाँ पशु अस्पताल हों वहाँ पशुको ही भेज देना चाहिये।

फोड़े, फुन्सी, कटना, चोट, दुर्घटना अफरा या अंत्रवृद्धि हो सकती है। इनकी चिकित्सा जरासे अभ्याससे कोई हानि किये विना की जा सकती है। इससे पशुको बहुत त्राण मिल सकता है और कभी कभी प्राण भी वच सकता है।

१४७४. चीरफाड़के सामान

ऐसी हालतमें सरल प्रकारकी चीरफाड उचित अकोथ उपायके साथ करनी चाहिये। ऐसी सरल शल्य-चिकित्साके लिये नीचे लिखे यत्र और सामानकी जरूरत है :—
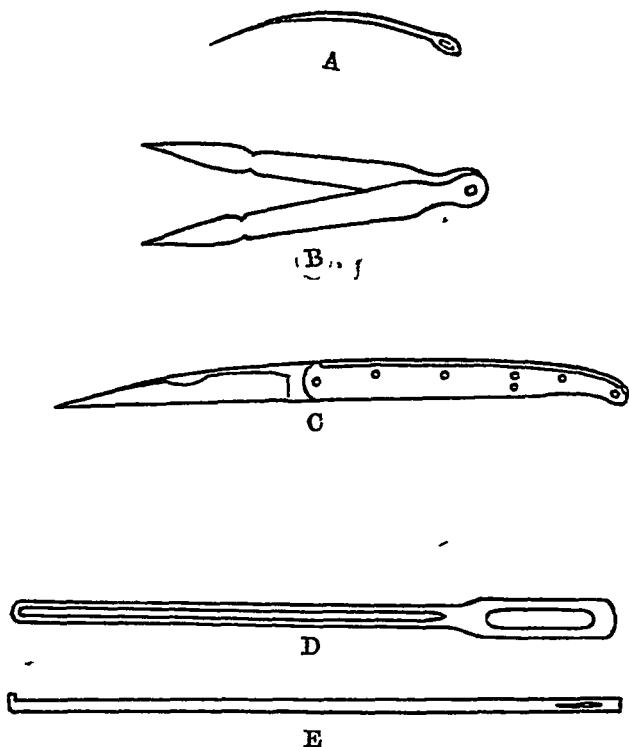
चित्र १८९. चीड फाड़ के औजार।

A. वक्र सूई ; B. चिमटी ; C. छुरी ; D. डिरेक्टर ; E. शलाका

तेज नोकवाली छुरी, चिमटी, डिरेक्टर, शलाका और कैंची, धमनी-चिमटी, सीधी और वक्र सुइयाँ, रेशमके डोरे, रबर कैथेटर, पट्टियाँ और डूश कैन।

छुरीका हत्था धातुका हो तो अच्छा। यह सरलतासे साफ हो जाता है। चिमटीके भीतर किसी वस्तुको अच्छी तरह पकडनेके लिये उभडी लकीरें होती है। शलाका (प्रोब) चाँदी या जरमन सिलभरका तार होता है जिसका छोर गोल बना रहता है। घावकी दिशा और गहराईका पता इससे लगाया जाता है। शलाकाके एक छोर पर एक खात होता है। इसके सहारेसे छुरीकी नोक पहलेसे स्थिर की हुई जगह पर पहुँचायी जाती है। चीरफाड़की कैंची साधारण कैंचीकी तरह ही होती है। यह पूरी तरह साफ की जा सकती है।

धमनी-चिमटी, धमनी पकडनेके बाद कसी जा सकती है। धमनी खींची जा सकती है, ऐंठी जा सकती है और लहू बहना रोकनेके लिये पकड़ रक्खी जा सकती है अथवा चिमटीसे पकड़ उसपर बन्धन दिया जा सकता है।

चीड फाड़की सूईकी नोक तिकोनी होती है। टाँकेकी विभिन्न स्थितिके अनुकूल यह सरल, वक्र या अर्द्धवक्र हो सकती है। बुनाईवाला साधारण रेशम व्यवहार किया जा सकता है।

भिन्न भिन्न आकारके रबर कैथेटर जरायु या अन्य विवरोंमे पानी बहानेके लिये रखना चाहिये। ये ऐसे हों कि डूश-कैन से जुड सकें।

१४७५. पकना : कोथ (Sepsis)

किसी क्षतमें या उसके आसपास कोई रोग पैदा करने वाले जीवाणु न रहे। नहीं तो क्षत कटने और चीरफाडमें बहुतसे सकट आ सकते है जिनका पता नहीं। इससे घाव भरनेमें देर हो सकती है जिसका परिणाम भयकर हो सकता है। मृत्यु भी हो सकती है। किसी समय सभी चीड़फाड़में ऐसा जोखिम था। पर एक ऐसी विधि मिल गयी है जिससे दुष्ट जीवाणुओंको क्षत, घाव और चीरफाड़से दूर रक्खा जाता है। कुछ ऐसे पदार्थ हैं जो पूयकारी जीवाणुओंको मार देते हैं। ऐसे पदार्थोंके उपयोगसे सडांद या रक्तदुष्टि (Sepsis) नहीं होता है। यह देख लेना चाहिये कि, ये पदार्थ स्वय ही एक सीमासे अधिक उत्तापक या मोटे और इसलिये हानिकर न हों। ऐसे पदार्थ कोथघ्न (antiseptics) कहे जाते हैं। कार्बो-

लिक एसिड, मरक्यूरिक क्लोराइड, पोटाश परमैंगनेट, अजवाइनका सत्त, वोरिक एसिड इन सवके घोलोंमें कोथघ्न गुण हैं। उसी तरह टिकचर आयडिनमें भी हैं।

गरमी (ताप) शक्तिशाली कोथघ्न है और उसी तरह धूप भी। उवाला हुआ साधारण पानी इनना ठडा करो कि उससे छाला न पडे। वह भी अच्छा कोथघ्न होता है। नीमकी पत्तियां सहित उवाला पानी, सहने लायक गरम, व्यवहारमें लानेसे यही काम होता है। घाव जिस तरह कोथघ्न घोलसे धोया जाता है उसी तरह चीर फाड करनेवालेके हाथ, पट्टियाँ और त्वचा भी कोथघ्न वना ली जाती हैं।

घाव धोने और पट्टी वाँधनेके "गॉज" (पट्टीके कामका जालीदार कपड़ा), वोरिक एसिडके सपृक्त घोल (पानी) में या ५ भाग पानी और १ भाग वोरिक एसिडके घोलमें तरकर काममें लाया जा सकता है। हाथ, औजार, पट्टी और त्वचाको कोथघ्न करनेके लिये यदि टिंकचर आयडिन मिल सके तो उसकी कुछ वूँदे डालनेसे काम चल जाता है। पानीमें आयडिनका जरासा रंग चढ जाय या कुछ गन्ध आ जाय इतना ही काफी है। आयडिनसे घावमें जलन होती है। वहुत जादे जगह धोनेके लिये १० भाग पानीमें १ भाग वोरिक एसिडसे काम लिया जा सकता है। औजारको जीवाणुशुद्ध करनेके लिये खौलता हुआ नीमका पानी तथा हाथ तथा त्वचा धोनेके लिये नीमका गरम पानी उपयोगी होता है।

चीरफाड करनेमें वाल मूँड देना चाहिये और उसके वाद त्वचाको जीवाणु शुद्ध करनेके लिये उसपर हल्की टिकचर आयडिन पोतनी चाहिये। सावुन पानीसे भिगाकर मूँडनेसे यह अच्छा है।

पट्टी आदिकी जीवाणु शुद्धि करना वहुत जरूरी है। इसके लिये एक जीवाणुशोधक (स्टेरिलाइजर) वनाया जा सकता है।

१५७६. जीवाणुशुद्धि और जीवाणुशोधक
(Sterilisation and Steriliser)

चपटे तलेके ढक्कनदार वहुगुने (कढाई) से यह काम हो सकता है। वहुगुना पीतल या अलमोनियमका हो। इसमें तारकी जालीकी एक टाँड (शेल्फ) लगानी होती है।

बहुगुनेके व्याससे दो इंच लवे तारके तीन टुकड़े लो। दोनों छोरपर एक एक इञ्च समकोण मोड़ो। इन तारोंको एक दूसरे पर चढ़ा, फँसा और फैलाकर रक्खो और किसी तारसे बाँध दो। इसे बहुगुने के भीतर रक्खो। तारकी जाली इसी पर रक्खी जाती है। तारकी जाली गोल काट ली जाती है अथवा किसी गोल पत्तरमें छलनीकी तरह छेद दिया जाता है। इस छलनीको उस तारकी तिपाई पर रखते हैं।
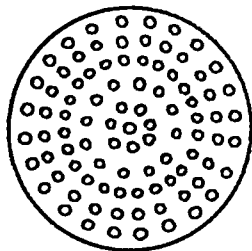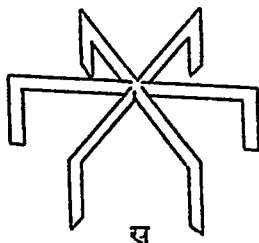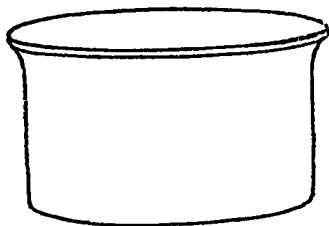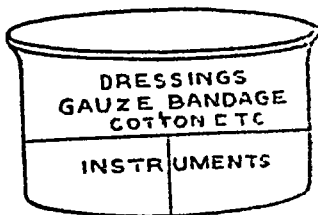
चित्र १९०. जीवाणुशोधक।

क. छलनी शेल्फ ; ख तिपाई , ग. बहुगुना . घ. जीवाणु-शोधक।

यदि तार और तार की जाली न मिले तो किसी पुरानी अल्मोनियमकी कढ़ाईसे पट्टियाँ काट लो। गोल पत्तर भी इसीसे बना लो और उसमें कांटीसे छेद कर लो। बहुगुना (पैन या कढाई), तिपाई, छलनी और ढक्कन बन इन्होंसे जीवाणुशोधक बन जाता है।

सूई और रेशमी डोरा सहित सभी औजार बहुगुनेमें रक्खो और इनमें कुछ पानी इतना डालो कि सब डूब जायँ। इन पर तिपाई और छलनी रक्खो।

छलनी पर पट्टी, रुई, गॉज, लिन्टका कपड़ा और पट्टीके अन्य सामान रक्खो। ढक्कनसे ढांक दो और बहुगुने को चूल्हे पर चढ़ा तेज आँचसे पानी खौलाओ।

समय समय पर पानी डालो कि भाफसे सब पानी उड़ न जाय और बर्तनमें कुछ पानी सदा बना रहे। आध घंटे तक खूब खौलाने और भफानेसे जीवाणुशुद्धि पूरी हो जाती है।

१४७१. पशुको वश करना (बाँधना)

बैलको वश करनेके लिये एक हाथके अँगूठे और तर्जनीसे उसका नथना पकड़ो और दूसरे हाथसे सींगकी नोक। जाँच या हल्के चीरफाड़के लिये इतनेसे काम चल जाता है।

क ख
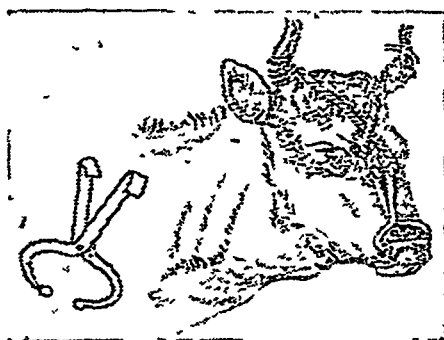
चित्र १९१. साँढको नकेल-यन्त्रसे वश करना।
क. साँढका नकेल-यन्त्र ; ख. सिरसे बँधा नकेल-यंत्र।

चित्रके अनुसार "साँढ़की नकेल" (bull holder) से काम लिया जा सकता है। और उस नकेल या होल्डरके छोरपरकी कड़ीमें रस्सी लगा सींगोंसे बाँध दिया जा सकता है। (चित्र १९१)।

गुल्फ या घुट्टीमें रस्सी बाँध परीक्षा या छोटेमोटे चीरफाड़के लिये अगला पैर जकड़ा जा सकता है।

गरदनमें रस्सी डाल उसे पिछली घुट्टी या टखने पर ले जा सकते हैं। दोनों छोर एक साथ खींचनेसे पैर उठ जाता है तब उसे दूसरे हाथसे टेक सकते हैं।

दुहते समय जैसे छाना जाता है दोनों पिछले पैर छाने जा सकते हैं।
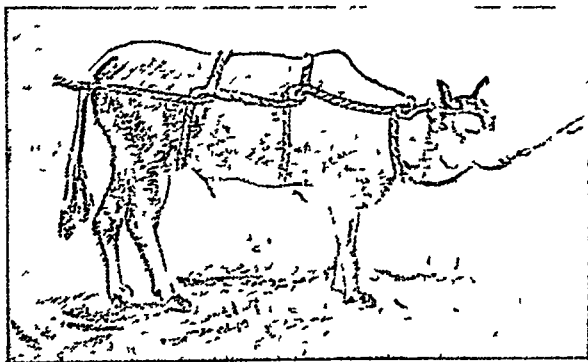
चित्र १९२ रस्सीके फंदे।
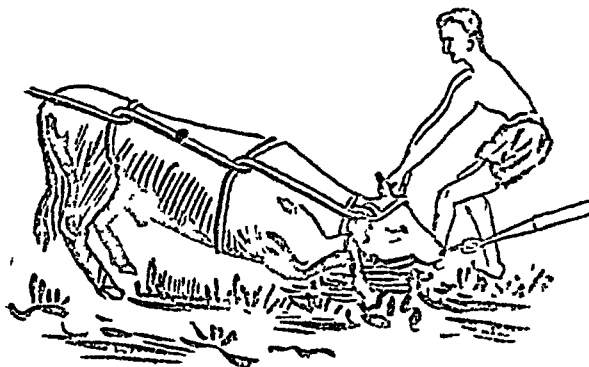
चित्र १९३. रस्सी बांधना।
बांधनेके बाद एकही आदमीके खींचने और दबानेसे गाय चुपचाप बैठ जाती है।

पटकना : नाल ठोंकनेके समय जिस तरह दो आदमी एक रस्सीके सहारे पशुको पटकते हैं उस तरह भी किया जा सकता है। ऐसे आदमी हैं जो कुछ सेकेन्डमें बडे पशुको भी पटक देते हैं। चतुराई इसमें है कि, भारी पशु पटक दिया जाय और उसे चोट भी न लगे। असावधानीसे पटकनेसे उसके पेटकी कोई हड्डी टूट सकती है। ऐसी दुर्घटनायें कभी कभी हो जाती हैं। इसलिये इससे बचनेको सावधान रहा जाय।

१. चालीस पचास फूट लम्बी रस्सी लो। उसका एक छोर सींगोंकी जडमें बाँधो। फिर कई फन्दे, एक गरदनसे नीचे, दूसरा धडके अगले भागमें और तीसरा
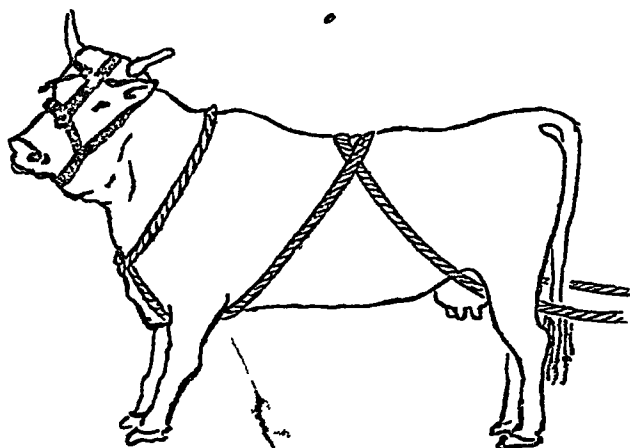
चित्र १९४. थन घायल किये विना रस्सा लगाना।

पिछले भागमें डालो (चित्र १९२)। सभी फन्दे कसो और तब फन्देके अगले छोर पर जोरसे खींचो। पशु धीरे धीरे धरतीसे जा लगेगा (चित्र १९३)। जब पशु धरती पर आ जाय तो उसके चारों पैर एक साथ बांधो। रस्सी सरक सकती है। इससे शिश्न या दुग्धग्रन्थिमें चोट आ सकती है। इस विधिमें यह जोखिम है।

२. चालीस पचास फूट लम्बी रस्सी लो। इसे बीचों बीच करके कन्धे पर रक्खो। झालरके सामने दोनों भागोंको एक दूसरे पर चढ़ाकर अगली टाँगोंके

बीचसे पार करो। फिर दोनों बगल और पीठ पर ले जाकर फिरसे एक दूसरे पर चढा जाँघोंके बीचसे पार करो। रस्सा खींचनेसे पशु बहुत धीरे धीरे आगमनें गिरता है (चित्र १९४)।

१४७८. संज्ञाशून्यता (Anæsthesia)

शून्यता एकागी या सार्वत्रिक हो सकती है। सार्वत्रिक शून्यताके लिये बैलको क्लोरोफॉर्म सुँघाना सबसे अच्छा है। पर जिस रोगमें क्लोरोफार्म सुँघाकर चीर फाड करना हो उसे भेटेरिनरी सरजनके लिये छोड़ देना चाहिये। हमारा सरोकार ऐसी व्याधियोंसे है जिसमें एकागी शून्यताकी जरूरत होती है। भग, जरायु या गुदा का निकलना, आंत उतरना या प्रसवमें बच्चेका अटकना इन सबमें गहरी शून्यताकी आवश्यकता होती है। यह सुषुम्नाके निचले छोर पर वराशिका (epidural space) में शून्यक दवा की सूई देनेसे हो सकता है। इसे एपिड्यूरल एनेस्थेशिया (epidural anæsthesia) या वराशिकाको शून्यता कहते हैं।

१४७९. एकांगी-शून्यता (Local anæsthesia)

एकागी शून्यता ठढकके द्वारा लायी जा सकती है। बर्फकी थैलीमें चूरा हुई बर्फ और नमक भर उस भाग पर रखनेसे यह हो सकती है। इससे अच्छी और गहरी शून्यता उस स्थानपर एथिल क्लोराइड की फुहारेसे हो सकती है। एथिल क्लोराइड फुहारेके चोंच लगी नलीमें बिकती है। इसका प्रभाव देर तक नहीं ठहरता। जहां कुछ मिनटमें काम पूरा करना है वहां इसका व्यवहार होता है। आगके सयोगसे एथिल क्लोराइडमें विस्फोट हो सकता है।

कोकेन एकागी शून्यकोंमें सबसे भरोसे की है। कोकेन हाइड्रोक्लोराइड १ सैकड़ा घोल बहुधा काममें अधिक लाया जाता है। इतनी शक्तिसे काफी परिणाम निकल आता है। पर ८ सैकड़ा घोल साधारण तौर पर अधिक भरोसेके लिये काममें लाया जाता है।

कोकेन हाइड्रोक्लोर	.	१३ ग्रेन
मरकरी पर्क्लोराइड	...	·०३ ग्रेन
पानी	.. .	२३ ग्राम

सूक्ष्मतम मात्रामें मरकरी परक्लोराइड मिलानेसे घोल टिकाऊ होता है। जब तब इसकी अन्तस्त्वक् सूई दी जाती है। इसका असर तन्तुओं और त्वचा दोनों पर होता है। चीरेकी रेखाके बराबर बराबर प्रायः १½ इंच पर सूई देना प्रचलित विधि है। एक भाग कारबोलिक एसिड और ४ भाग कपूरका मिश्रण त्वचापर मलनेसे सूईका चुभना मालूम नहीं होता। बैलको ३ ग्रेनसे ज्यादे कोकेन एक बारमें नहीं दी जाय। साधारण तौर पर १½ ग्रेन काफी होना चाहिये। अधिक मात्रामें कोकेन विष है। साथ ही साथ एड्रेनेलीनकी सूई लगानेसे कोकेनका विषपना या विषाक्तता घट जाती है और उसकी क्रिया जल्दी होने लगती है।

क्लोरल हाइड्रेट : तन्द्रा लानेके लिये मुँहसे क्लोरल हाइड्रेट देना बहुत उपयोगी है। यह गुदासे भी दिया जा सकता है।

क्लोरल हाइड्रेट उत्तापक है इसलिये मांड़में मिला करके पिलाना या गुदासे देना चाहिये। मुँहसे पिलानेके बाद कुछ ठोस चारा खिलानेसे इसका असर ज्यादा होता है। गाढे मांडमें १ से २ आउन्स क्लोरल हाइड्रेट मिलाकर उसे ८ से १६ आउन्स बनाओ। घोल पिलाना चाहिये या एक उदर-नली (स्टोमक ट्यूब) द्वारा पेटमें पहुँचा देना चाहिये।

इतनी मात्रासे पशु आसानीसे वशमें आ जाता है। अवयवोंके निकल आने या उतरी आंत फिर चढानेके लिये एकांगी शून्यक (local anaesthetic) के साथ क्लोरल हाइड्रेट देना चाहिये।

१४८०. वराशिकाकी शून्यता (Epidural anaesthesia)

शून्यताकी यह विधि ढोर पर व्यापक रूपसे की जाती है। इसमें सुषुम्नाकांडके छोर पर वराशिका या सुषुम्नाकी बहिर्वृतिके अंशपर एकांगी शून्यताके घोलकी सूई दी जाती है। पिछले भाग और उदर-देशको सुन्न करनेके लिये यह शून्यक विधि विशेषकर उपयोगी है। निकली हुई गुदा, भग या जरायुको बैठानेके लिये इसे काममें ला सकते हैं। स्त्रियोंकी प्रजनन-इन्द्रियकी पूरी जांच, जरायु धोने और कष्ट-साध्य प्रसवमें अटके बच्चेको ठीक करनेके लिये यह उपयोगी है। पुरुषमें इसके असरसे मुतान या लिंगपिधानसे शिश्न बाहर निकलता है। तब शिश्नकी परीक्षा और जरूरत हो तो चीरफाड़ की जा सकती है।

सूई या इनजेक्शन देनेकी जगह पूँछमें पहले और दूसरे अनुत्रिक कशेरुकाओंके बीच है। इसका स्थान स्थिर करनेके लिये पूँछ पकड़ पीठकी हड्डीकी सीधमें रखनी चाहिये। उसे ऊपर नीचे करनेसे त्रिक और अनुत्रिक अस्थियोंके सगमका पता चल जाता है। क्योंकि इसी स्थान पर गति रुक जाती है। वह स्थान पहली अनुत्रिक कटकके ठीक पीछे है। (देखो चित्र १९५-१९६)। पहले और दूसरे अनुत्रिक
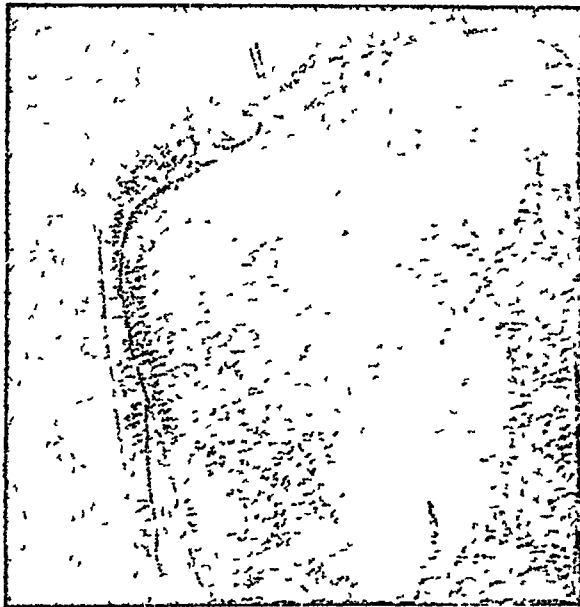
चित्र १९५. वराशिकाकी शून्यता (epidural anaesthesia)।
तीर-चिह्नित स्थान पर सूई दी जाती है।

कटकके बीच गहरापन है। गहराईके बीचकी जगह चुननी चाहिये। सूई कशेरुके समकोणमें सीधी जाय। जरा भी चल विचल होनेसे सिरिंजे गड़बड़ी होगी। सूई देनेके लिये २० सी० सी० सीरिंज (सूई देनेकी पिचकारी) चाहिये।

खड़ी या लेटी किसी स्थितिमें सूई दी जा सकती है। बड़े ढोरोंमें प्रायः १० से २० सी० सी० १ प्रतिशत जीवाणुशुद्ध नोवोकेन-घोल, देहकी तौलके अनु

६०० या १,००० रत्तलके लिये, सूईसे दिया जाता है। प्रसवके लिये लेटी स्थितिमें ३० से ५० सी० सी० वही घोल दिया जाय।

सूई देनेके पहले जगह मूँड़कर छूतरहित कर दी जाय। २३ से ३ इंच लंबी सूई कशेरुकाओंके बीचके गढ़हेमें घुसायी जाय कि, वह सुषुम्ना प्रणाली तक पहुँचे जो कि, ३/४ इंचसे १३/४ इंच नीचे रहती है। सूईकी नोक सुषुम्ना प्रणालीके भीतर
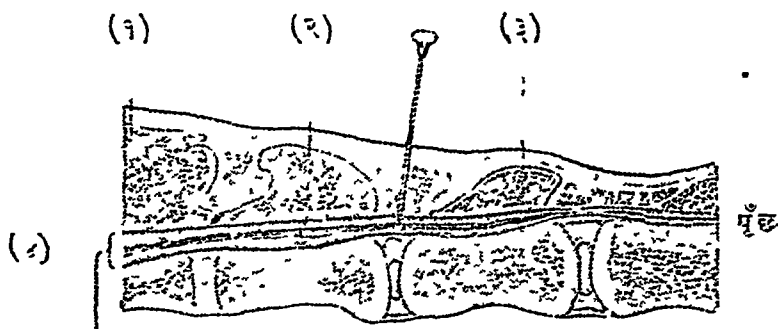
चित्र १९६. बराशिकाकी शून्यताकी सूई देनेका स्थान।
१. त्रिकास्थि-कशेरुका ; २. पहली अनुत्रिक कशेरुका , ३. दूसरी अनुत्रिक कशेरुका ; ४. सुषुम्ना-प्रणाली।

है यह जाननेके लिये थोडासा द्रव छोड़ो। यदि वह द्रव जरासा दबानेसे निकले तो समझो कि, सूई ठीक जगह पर है। पर यदि जोर लगाना पड़ा तो समझो कि, वह सुषुम्ना प्रणालीमें नहीं चुभी है। सूई खींच लो और जगह या दिशा बदलो।

दवा धीरे धीरे और ठहर ठहर कर सूईसे छोडो। मूढ़गर्भ या कष्टसाध्य प्रसवके सभी कठिन रोगियोंकी चिकित्सामें मुँहसे क्लोरल हाइड्रेट और शून्यक दवाकी सूई सुषुम्ना-प्रणालीमें देना दैनिक कार्यक्रमकी तरह अपनाओ।'

१४८९. टाँका : सूचीकर्म (Suture)

घावके इलाजमें टाँका या सीयन जरूरी क्रिया है। घाव जल्दी भरनेके लिये उसकी सतह एक कर देनी चाहिये। घाव सीनेके लिये अस्त्र चिकित्साकी सूईयाँ सौफ्ट पैराफिनमें रखनी चाहिये। वह सरल या वक्र हो सकती हैं। सीनेकी साधारण सूई और अस्त्र चिकित्साकी सूईका भेद उसकी नोकमें है। अस्त्र चिकित्सा-

की सूईकी नोक तिकोनी होती है वह त्वचाको आरपार काट देती है। साधारण सूई जब त्वचा और पेशियोंसे पार की जाती है तब अपने साथ तागा नहीं ले जा सकती। क्योंकि, त्वचा और पेशियाँ उसमें बाधक होती हैं। सर्जिकल या अस्त्रचिकित्साकी सूईसे कोई जगह छिदती नहीं, कट जाती है। यदि अस्त्रचिकित्सा की सूई न मिले और जल्दी हो तो सिलाईकी साधारण सूई चिपटी करके तेज कर ली जाय। इससे सीधी सूईका तात्कालिक काम चल जायगा। टाँकेके लिये रेशमके डोरे सबसे अच्छे हैं। प्राय सभी कामोंके लिये ०, १, ३, और ६ नम्बरके डोरे उपयुक्त हैं।

चित्र १९७ असंबद्ध टाँके।
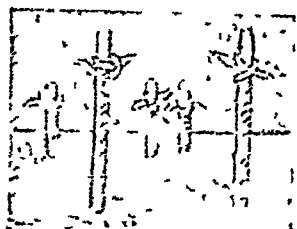
चित्र १९८ तनाव टाँके।

रेशमके धागे मजबूत और अनुत्तापक हैं। उबालकर जीवाणुशुद्ध किये जा सकते हैं। रेशम आचूषक है। इसलिये इसके साथ त्वचा परके कीटाणु इस टाँकेमें जा सकते हैं। इसमें यह एक दोष है। भीतरी टाँकेमें वह अनन्तकाल तक रह सकता है। जीवाणुशुद्ध तेल या पैराफिन टाँके लगानेके बाद उनपर मल देनेसे ऊपरी टाँकेके धागेकी आचूषण-शक्ति घट सकती है।

त्वगीय टाँका: इसमें अधिक तनाव नहीं होता। इसमें धारसे किनारेसे ½ इंच पर टाँके भरे जा सकते हैं।

असंबद्ध टाँका: टाँकेकी सबसे प्रचलित शैली असंबद्ध सीवन ही है। इसमें हरेक टाँका अलग अलग होता है। दोनों किनारे चिमटी या काटन-गद्दी या चिमटीसे कसकर पकड रक्खे जाते हैं और इनमें सूई पार की जाती है। धागा काटकर उसमें वज्रगाँठ (reef knot) लगा दी जाती है। (देखो चित्र १९७)।

तनाव-टाँका : जब दोनों किनारों पर काफी तनाव होता है जिससे टांका कट जानेका डर रहता है तब यह भरा जाता है। इसमें दुहरे टांके भरे जाते हैं। एक जोडी टांके पतले रेशमसे मांसमें गहरे पार किये जाते हैं। यह तनाव मिटा देते हैं। तब पासपासमें असंबद्ध टांके भरे आते है। (देखो चित्र १९८)।

नली-टाँका : कभी कभी दोनो किनारो पर रबरकी नली रक्खी जाती है। इसपर से फन्दे डालकर दुहरे सूत पार किये जाते हैं। इस उपायसे दबाव पूरे सतह पर फैल जाता है और सूत बहुत जल्दी त्वचाको काट नहीं सकता। नलीकी जगह छडके गोल और साफ टुकडेसे काम लिया जा सकता है। (देखो चित्र १९९)।
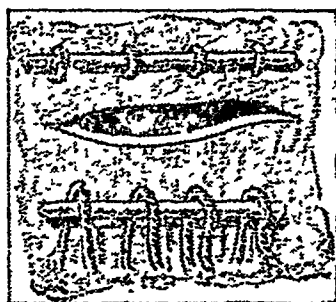
चित्र १९९. नली टांके।

यदि पके बिना घाव पुर सकता है तो टांके उपयुक्त होते हैं। यदि गहरे घावमें बत्ती भरनेकी जरूरत होती है तो टाँका उपयोगी है। नहीं तो टांके का कोई उपयोग नही है। पेट चिरने जैसा कोई बड़ा चीरफाड़ होने पर टाँका जरूर भरा जाता है।

यदि घाव भरनेमें पीव होनेकी सभावना हो तो टॅकाई करके दोनों किनारे जोड़नेसे कोई लाभ नहीं। यह घाव पूरनेकी क्रियामें मदद नहीं दे सकती। यदि धागे पर तनाव जादे हो तो यह लाभके बदले हानि अधिक करता है।

कोथीय घावमें टांके भरना भयंकर है। क्योंकि, इससे कोथीय स्राव बह नहीं पाता। धूप और हवाके सशोधन कार्यमें रुकावट हो जाती है। अवायुजीवी जीवाणुके विकासमें सहायता मिलती है। ऐसी हालतमें टांके भरनेसे उपद्रव बढ़ जाते हैं।

अध्याय ५६

चीरफाड़की जरूरतवाले रोग

१४८२. चर्म-रोग

काँटे : यह मुख्यरूपसे सिरपर निकलते हैं। पीठ, बगल, पेट और पैरोंपर भी निकल सकते हैं। यह रुखड़े या चिकने भी हो सकते हैं। कभी ये झड़कर फिर निकलते हैं और कभी स्थायी रूपसे रहते हैं। इनकी चिकित्सा त्वचा सहित इन्हें छील देना है। यह काम एकांगी शून्यताके उपचारके साथ किया जाता है। यदि त्वचा छोड़ केवल काँटा ही काटा जाय तो फिर नया निकल आता है।

मस्से : यह दुखदायी नहीं होते पर एक ही जगह गुच्छाका गुच्छा यदि निकल आवें या ऐसी जगह पर हों जहाँ चोट सहज ही लग सकती है तो इनमें प्रदाह हो जाता है। तब इनमेंसे लहू या पीब भी बह सकते हैं। यदि ये जाँघोंमें निकलें तो व्रण या घाव हो जा सकते हैं और पीड़ा दे सकते हैं। यह अर्बुदोंकी श्रेणीमें हैं। इनको निकाल देना ही इनका इलाज है। यदि यह लटकते हों तो रेशमके धागे क्रमशः कसनेसे निकल जाते हैं। छुरी की सहायतासे चमड़े पर से छील कर भी इन्हें अलग किया जा सकता है। इक्रेजर यन्त्र (ecraseur) से कस कर दबाने से ये चूर होकर या कट कर निकल जाते हैं।

१४८३. अस्थि-भंग (Fracture)

हड्डीका टूटना (अस्थिभंग) कई प्रकारका हो सकता है। यदि त्वचा न फटी हो तो यह **साधारण अस्थिभंग** (सिम्पल फ्रैक्चर) कहा जाता है। यदि चमड़ा भी कट गया हो तो उसे **मिश्र अस्थिभंग** (कम्पाउन्ड फ्रैक्चर) कहते हैं। मिश्र भगमें अस्थि और मांस दोनों बाहरी जीवाणुओंके लिये खुल

जाते हैं। इसलिये इनका उपाय करना अधिक कठिन होता है। हड्डी एक ही जगह टूट सकती है या टुकड़ा टुकड़ा। ऐसी हालतमें वह **खंड** या **विचूर्णित** (कमीन्यूटेड) कहा जाता है। टूटी हड्डीके छोर अपनी जगह पर रह सकते हैं या एक दूसरे पर चढ़ सकते हैं। इस अवस्थाको **आरोही भंग** (राइडि फ्रैक्चर) कहते हैं। टुकड़े स्थानान्तरित हो जायँ या मुड जायँ तो उपद्रव होते हैं।

अस्थि भंगका जुड़ना : प्रकृति सदा भगोंको जोडनेका काम करती है। इसके लिये नये सयोजक तन्तु निकलते और धीरे धीरे दृढ़ होकर अस्थि वन जाते हैं।

चालन : ध्यान रहे कि, परीक्षा या पशुको हटानेके समय और खरावी न होने पावे। हटानेके पहले भली भाँति रुईकी गद्दी देकर खपची वाँधो।

टलना : साधारण तौर पर टूटी हड्डियाँ टल जाती हैं। हड्डी वैठानेके लिये वह अग खपची वांध अटल कर दिया जाय। पशुको गिरा लेना चाहिये। उछले कूदे विना वह गिरा दिया जाय इसके लिये उसपर मादक दवाका प्रयोग हो। इसके वाद फैलाकर, खींचकर या सहला कर हड्डी वैठा दी जाय। यह हो जाने पर खपची लगाकर अटल पट्टी वाँधी जाय। गोदन्ती भस्म (प्लास्टर ऑफ पेरिस) की मददसे पट्टी वैठा दी जाय। रुई की गद्दी देकर पट्टी वाँधना जरूरी है जिससे कि कोमल तन्तुओं पर कोई क्षत न हों। वाँधनेके पहले पट्टी पानीमें डुवाकर उसे निचोड हवा निकाल दी जाती है। फिर उस पट्टीपर प्लास्टर ऑफ पेरिस पोत कर वाँधते हैं। यह कुछ मिनटोंमें जम जाता है। इसके साथ खपचियोंकी जरूरत नहीं। यह ध्यान रहे कि, कड़ी पट्टी सरके नहीं। यदि घुटनेके ऊपर पट्टी करनी है तो उसे किसी अटकावके सहारे वांधना चाहिये, जो पट्टीको नीचे सरकनेसे रोके।

मिश्र अस्थिभंग : अधिक खरावी होने पर पैर काटना होता है। यद्यपि बड़े पशुकी चिकित्सा कठिन काम है पर यदि तन्तु अधिक कुचले विना अलग हो गये हैं तो ठीक हो जानेकी संभावना रहती है। घावकी सभाल और हड्डी वैठाना नियमपूर्वक करो। हड्डीके छोटे ढीले टुकडोंको हटाओ और उभडे अशोंको काट दो। तव अटल पट्टी वाँधो। क्षतके सामने एक खिड़की छोड दो कि, वह देखा जा सके और उसकी दवादारू हो सके।

यदि घाव पूरी तरह छूतरहित रक्खा गया तो विना किसी उपद्रवके नष्ट तन्तु गलकर निकल जायँगे और क्षत अंकुरित होकर आराम हो जायगा।

१४८४. सन्धि-संकट

मोच (Sprains)

किसी सन्धिकी गति जब सीमासे अधिक हो जाती है तब मोच होती है। सन्धिगत तन्तु कुचले जाते हैं या फट जाते हैं। फिसलने, गिरने, पैर ओछा पड़ने या अति अधिक श्रम या तनावसे मोच हो सकती है। बन्धनियाँ या स्नायु (लिगेमेन्ट) घायल हो सकते हैं। वह अपनी सन्धियोंसे टूट सकते हैं। और उससे भी अधिक कठिन क्षत होने पर सन्धिपरकी कण्डरायें बहुत खिंच कर फट सकती हैं।

रक्तवाहिनियों से रक्त निकल आता और प्रदाहक स्रावसे तुरत सूजन हो जाती है। हल्की चोट हो तो मोच पूरी तरह आराम हो जाती है। पर बहुत कड़ी चोटमें सदाके लिये लँगड़ापन रह जाता है।

उग्र प्रदाह के लिये अक्रोधीय चिकित्सा होनी चाहिये। आहत सन्धिको सम्पूर्ण विश्राम देना चाहिये। उसे चलाना नहीं चाहिये। शीतल कषाय पदार्थ लगानेके बाद फिर गरम पानीसे सेंकना और मालिश करना चाहिये।

जब मोच आराम हो जाय तो जबतक दुर्बलता बनी रहे नियमित कसरत करानी चाहिये जिसमें कि, सन्धियाँ जकड़ न जायँ।

अस्थिभ्रंश : हड्डी टलना (Dislocation)

जब दो हड्डियोंके जोड़ अपनी जगह छोड़ हट जाते हैं तब हड्डी टलना या उतरना कहा जाता है। हड्डी उतरनेका कारण चोट भी हो सकती है। पक्षाघात जैसे किसी रोगके कारण भी हड्डी उतर सकती है, या जन्मसेही उतरी हुई हो सकती है। पिछली दो हालतोंमें कुछ नहीं किया जा सकता।

हड्डी टलनेके कारण वह जगह कुछ विकृत हो जाती है। जब कठिन प्रदाह और सूजन होती है तो अस्थि भ्रंश मालूम नहीं होता। पर छूने या [illegible] हैं। अस्थिभंग और भ्रंश साथ साथ हो सकते हैं। दोनोंका स्पष्ट निदान सावधानीसे करनेकी जरूरत है।

चिकित्सा : टली हड्डी अपने स्वाभाविक जगह पर बैठा दी जाय। दूसरा काम उसे फिर टलने नहीं देना है। यह काम छीका पट्टीसे किया जा सकता है अथवा अस्थिभंगकी तरह अटल पट्टी बाँध कर भी यह किया जा सकता है।

पट्टी खुलनेके बाद उस जोड़से हल्की कसरत करायी जाय कि, वह स्वाभाविक रूपसे काम कर सके।

१४८५. क्षत : घाव (Wound)

देहके किसी भागमें भीतर या बाहर कटने, फटने या दबनेसे उसके सिलसिलेके टूट जानेका नाम क्षत या **घाव** है। घाव हल्का हो सकता है जिसके लिये विशेष चिंताकी आवश्यकता नहीं। तेज या भोथे हथियारकी चोटसे कठिन घाव भी हो सकता है।

यदि गिरने, चोट या रगड़से त्वचाकी ऊपरी सतह ही छिल गयी हो तो उसे **रगड़ या अवदरण** (abration) कहते हैं। यदि कोई तेज हथियार चमड़ा काटता और आगे भी धँस गया हो तो उसे **कटनेका घाव** (incised wound) कहते हैं। भोथे औजारके क्षतको **चीथन** या **छिन्न-भिन्न क्षत** (lacerated wound) कहते हैं। इसमें चमड़ेके किनारे छिन्न-भिन्न होकर फटे रहते हैं। तेज मार या दबावसे हुआ क्षत कटनेकी तरह दिखायी पड सकता है। पर गौरसे देखने पर चीथा या छिन्न-भिन्न चमड़ा झलक जाता है। एक तरहकी चीथन अर्थात् भोथे और भारी अस्त्रके आघातमें भीतर अधिक चोट रहती है पर बाहरकी ओर थोडासा खून निकल सकता है। इसे **भीतरमार** (contused wound) कह सकते हैं। छुरी भोंकने या कोंचनेसे **छेदन-क्षत** (punctured wound) होता है। इसमें भीतरी रचना या गहराईमेंकी धमनियों और नाड़ियों पर भी क्षत हो सकता है। ये घाव भयानक हैं।

अस्थिभंगके बारेमें जो कुछ कहा गया है वह घावके बारेमें भी सही है। प्रकृति तुरत ही मरम्मतका काम शुरू कर देती है। यदि किसी सुस्थ व्यक्तिकी त्वचा जीवाणुशुद्ध करके काटी जाय और तब कोथका बचाव करके पट्टी बाँध दी जाय, तो कटे हुए दोनों छोर मिल जायँगे और मरम्मतका काम तुरत शुरू हो जायगा।

तब घाव बिना पीव हुए भर जायगा। यह प्राकृतिक विधि है। कटे हुए दोनों किनारेसे एक उजला स्राव होता है जिससे दोनों किनारे जुड़ जाते हैं। इस जगह नये तंतु दोनों तरफसे निकलते हैं और आपसमें गुथ जाते हैं और इस तरह मरम्मत होती है। इस अवस्थामें यदि घाव फिर अलग कर दिया जाय तो उजले स्रावमें नया खून दिखायी पड़ेगा। और यह भी दिखाई पड़ेगा कि मरम्मतका काम बहुत आगे बढ चुका है। यदि कुछ और समयके बाद उसे चीरा जाय तो जहाँ पर कटा था वहाँ केवल एक उजली लकीर दिखायी देगी। कुछ और समयके बाद यह लकीर भी गायब हो जायगी। यदि त्वचाको जीवाणुशुद्ध किये बिना केवल उसके दोनों किनारे मिला दिये जायँ तब भी घाव पीव पड़े बिना भर सकता है। इसे **"प्रथम विधिसे घाव पुरना"** (healing by first intention) कहते हैं। पर यदि पूयकारी जीवाणु उसमें पहुँच जायँ और दोनों किनारे न जुड़ें तो प्रथम विधिसे घाव भरना सम्भव नहीं। फिर भी प्रथम विधिमे घाव भर जानेका यह मतलब नहीं कि, पूयकारी जीवाणु बिलकुल हैं ही नहीं। वह वहाँ हैं। पर उनकी संख्या कम है और क्षतकण (श्वेत रक्तकण) उन्हें खा जाते हैं। शुद्ध रक्त और स्वास्थ्य भी बड़े कारण हैं। शक्ति क्षीण रहे तो दोनों छोर मिला देने और अकोथीय कर देने पर भी पीव हो सकती है।

जो घाव प्रथम विधिसे नहीं पूरते वह द्वितीय विधिसे (by second intention) पूरते माने जाते हैं। इसकी कई श्रेणियाँ हैं। घाव पूरनेमें कुछ व्रणीकरण (ulceration) हो सकता है या प्रदाह और व्रणीकरण या पीव (suppuration) हो सकती है।

यदि दोनों छोर मिलाकर कटी जगह बन्द कर दी जाय तो उसपर केवल बोरिक एसिड छिड़क पट्टी बाँधनेकी जरूरत है। या २०% बोरिक एसिडके संपृक्त घोलमें जीवाणु शुद्ध रुई भिगा निचोड़ उस पर बाँधी जा सकती है। रुई पट्टीके सहारे अपनी जगह पर टिकायी जा सकती है। यदि घावमें गन्दगी हो तो उसे धोना और खून चलना बन्द कर देना चाहिये। यदि घाव ऐसा हो या गहरा अथवा चौड़ा हो कि, वह जरा दबाव देनेसे जुड़ न सके तो टाँका भर देना चाहिये। भीतरी मांसभी टाँक दिया जाय जिससे कि, त्वचाके दोनों छोर जुड़ जायँ। यह करनेके बाद घावको बोरिक रुईमें [illegible] पट्टी कर दी जाय। पर यदि मांस या चमड़ा इतना कट गया हो कि, टाँकेसे काम न चले तो [illegible]

जगहमें वत्ती भरकर पट्टी की जाय। वत्ती वोरिक लोशन (घोल) में भिगा निचोड़, काममें लायी जाय।

ऐसी हालतमें प्रदाहके स्रावको वत्ती सोख लेगी। इसलिये वह (स्राव) भीतर भीतर सड़ नहीं पायेगा। घावमें वत्ती भरनेकी उपादेयता यही है। इसके वाद ऊपरी सतहमें जरासा घाव और आसपासका प्रदाह वचता है। पतला ललौहाँ स्राव होता है और वत्ती निकालने पर जगह चमकदार मालूम होती है। घावमें छोटे छोटे दाने भर जाते हैं। इन्हें अंकुर (granulations) कहा जाता है। ये धीरे धीरे घाव भर देते हैं। इस विधिसे घाव भर जाता है और कुछ सौत्रिक तन्तु वनते हैं जिनसे किनारे जुड़ जाते हैं। एक चिह्न वच रहता है।

पर यदि गहरा और वड़ा घाव होने और पट्टी करनेके पहले ही प्रदाह होनेके कारण घाव भरे नहीं तो उग्र प्रदाह होता है जो कुछ दूर तक फैला रहता है है तथा पीव वहुत वहती है। कोथघ्न वत्ती से पट्टी करनेके वाद भी घाव क्रमशः वदसे वदतर हो जा सकना है। पक जा सकता है। जिसके कारण कोथीय विष (सेप्टिक इनटॉक्सिकेसन) या क्षय ज्वर हो सकता है, या वह इतना नहीं भी वढे। गले हुए तन्तु अलग हो सकते हैं; पीवका परिमाण धीरे धीरे घट सकता है और घावमें लाल अकुर भर सकते हैं। यह भरनेका लक्षण है। यदि कारवोलिक घोल या आयडिन जैसे कोथघ्न, पूरी तौर पर हल्के (diluted) नहीं किये गये तो, उत्तापके कारण हो सकते हैं जिससे प्रथम विधिसे घाव नहीं भरेगा या द्वितीय विधिसे घाव भरनेमें देर लगेगी। वोरिक एसिड हल्का कोथघ्न है। यह उत्तापक विलकुल नहीं है। यदि धोने, साफ करने और पट्टी वाँधनेमें कड़ी सतर्कता रक्खी गयी तो वोरिक एसिड तुरत घाव भरती है। पर गन्दे और खुले घावमें धनुष्टकार और दूसरे साघातिक कोथोंका निवारण करनेके लिये आयडिन लगानी होती है। पट्टी करनेमें वहुत हल्का आयडिन-घोल जिसमें उसके रगकी झलक मात्र हो व्यवहार किया जाय। जहाँ वोरिक और आयडिन-घोल न मिले नीम का गरम पानी खुशीसे काममे लाया जाय।

घावकी चिकित्सामें पहली वात खून रोकना है। इसके वाद आघातका प्रभाव मिटानेके लिये एकांगी शून्यता या क्लोरल हाइड्रेटके मादक प्रभावसे काम लिया जाय।

१४८९. व्रण (Ulcer)

व्रण नया या पुराना उथला या अगभीर घाव है। इसमें तन्तुओंकी बर्बादी होती है। यह भरना नहीं चाहता है। किसी क्षतमें निरंतर उत्ताप या किसी जीवाणुके कारण उसके भरनेमें रुकावटके कारण यह हो सकता है। क्षतग्रस्त भागमें रक्तसंचारकी कमीके कारण यह हो सकता है। व्रण क्षय जैसे विशेष कारणसे भी हो सकता है। यह बहुत कुछ गोल होता है। मध्यम कोमल या कठोर, चपटा या नतोदर हो सकता है।

चिकित्सा · कारण दूर करना इसकी चिकित्सा है। वह भाग जहाँतक हो सके अचल किया जाय। यदि खोंच लगनेका डर हो तो उसे निवारण किया जाय। कोथघ्न औषधमिश्रित गरम जलसे सेंक (fomentation) देनेके बाद रुई की गद्दी हल्के दबावके साथ बाँधनेसे इसके पूरनेमें सहायता मिलती है। आयडोफॉर्मसे पट्टी करना लाभकारी है।

जब कष्टका कारण मिट जाय और अंकुरण अत्यधिक हो या अस्वास्थ्यकर हो तो उस जगह पर दाहक या कषाय लगाना चाहिये जैसे कि तूतियाका हल्का घोल। छोटे व्रणको छुरीसे चीरना उत्तम है।

बायरकी विधि (Bier's Method) यह है कि अंगके निकटवर्ती छोर पर पट्टी बाँध ग्रस्तभागकी शिराका अवरोध कर लिया जाय। इतना कसकर बाँधा जाय कि, शिराका रक्त तो वहाँ न जाय पर धमनीका रक्त आता रहे। एक मजबूत पट्टी उस अंगके चारों तरफ लपेटी जा सकती है। बन्धन इतना कड़ा न हो कि, दर्द होने लगे। वह इतना ढीला जरूर रहे कि, उसके नीचे एक उंगली घुसाई जा सके। पट्टीके दबावके कारण उसके नीचे का भाग सूज जाना चाहिये और साधारणसे जादा गरम हो जाना चाहिये। पर यदि पट्टी बहुत कस गयी तो उससे दर्द होता है। वह बेचैन हो जाता, पसीना निकलता और वह भाग ठंडा हो जाता है। यह नहीं होने देना चाहिये।

इस चापका समय नित्य ८ से ६ घंटे हो। जैसे जैसे घाव भरे समय कम करते जाना चाहिये। जिस भागमें बन्धन नहीं लगाया जा सकता वहाँ सिंगी या तुंबी (cupping) लगायी जा सकती है। यह एक बारमें ३० मिनटसे अधिक नहीं लगायी जाय।

इस विधिसे कोथीय व्रणमें उल्लेखनीय सुधार होता है। विशेष रोगके कारण हुए व्रणमें विशेष चिकित्सा हो। एक अन्य विधि यह है कि, औषध मिश्रित गरम जलके भाफ या प्रतिउत्तापनसे वहाँ रक्तसकुल करके प्रकृतिको व्रण भरनेमें सहायता दी जाय।

१४८७. स्फोटक : फोड़ा (Abscesses)

फोड़े गरम या उग्र, ठंडे या जीर्ण हो सकते हैं। ये उथले या गहरे हो सकते हैं। ये साधारण लक्षणके हो सकते हैं।

छूत शुरू होनेके ३ से ५ दिन वाद उग्र फोडे निकलते हैं। इनकी एक आच्छादनी दीवाल होती है जिसके भीतर पीव भरी रहती है। यदि पीव वहुत दिन तक रह जाती है तो उसका तरलांश आचूपित हो जाता है और उसका ठोससा अंश पनीर की तरह होकर थोड़े दिनके वाद सौधित (calcified) अर्थात् सख्त हो जाता है। दीवाल प्रदाहित तन्तुओंकी वनी होती है। यह धीरे धीरे नरम हो जाती है और तव फोडा फट जाता है। यदि खुर जैसे किसो सख्त प्रतिरोधक तन्तुके कारण पीव वह नहीं पाती तो फोड़ा कमसे कम (अल्पतम) प्रतिरोधी तन्तुकी तरफ वढ़ता है कि, उसे वह निकलनेका मौका मिले।

उथला फोड़ा प्रदाहकी सूजनके रूपमें निकलता है। सूजनका मध्य धीरे धीरे नरम हो जाता है। उँगलीसे दवानेपर वह दवता और तरंगित होता है। यदि छोड़ दिया जाय तो मध्यमें पतला हो ऊँचा हो जाता है। इसके वाद वह फूट जाता है और पीव वहती है।

फोड़ेकी चिकित्सामें उसके पकानेका उपाय किया जाता है। जव वह पक जाता है तव फोड़ेको चीरकर उसके भीतरकी चीज निकाल, दी जाती है।

फोड़ा पकानेके लिये भफाना (फोमेन्टेशन) या गरम लेप (पुल्टिस) उपयोगी है। यदि आचूषण होना सम्भव हो तो भफानेसे उसमें मदद मिलती है नहीं तो पीव हो जाती है। यदि दवानेसे दवे और तरगित मालूम हो तो समझना चाहिये कि, पीव भर गयी है।

इसके वाद फोड़ेको चीर देते हैं। चीरनेके पहले कोथघ्न उपाय कर लेना होता है। चीरा पेशीकी लम्वाईमें लगाया जाता है। पर यदि गढ़हा या

सन्धि हुई तो आड़ा (अनुप्रस्थ) यदि धमनी कट जाय तो धमनी-चिमटीसे दाब कर रक्त बहना रोकना चाहिये। श्री साइमके उत्पलपत्र यन्त्र (Syme's lancet) अर्थात् छुरिका से काम लिया जाय।

चीरनेके लिये धार ऊपर करके छुरी पकड़ो और उसकी नोक फोड़ेके उभरे और नरम भागमें घुसाओ। छुरीकी नोक फोड़ेके भीतर दूसरे छोरपर पहुँच जायगी। अब छुरी को खींचो कि चीरेके दोनों बिन्दु मिल जायँ। फाहे से
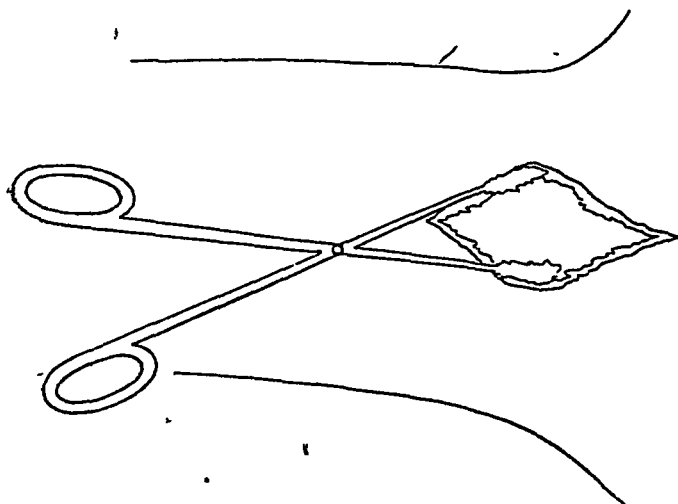
चित्र २०० चीरेको चौडा करनेके लिये रुई या बत्ती लगी पट्टी करनेवाली चिमटी।

पोंछ सारी पीव साफ करो। पट्टीसे एक टुकड़ा फाड़ गरम बोरिक-घोलमें डुबा कर निचोड़ो। इस तरह जीवाणुशुद्ध बत्ती फोड़ेके भीतर भरो। पट्टी बाँध घाव बन्द कर दो। नित्य घावकी पट्टी की जाय। जब वह भरने लगे तो बत्ती भरनेकी जरूरत नहीं।

ऐसी जगह जैसे कि, अङ्गोंके जोड़ जहाँ रक्तवहायें अनेक हों वहाँ चीरनेके पहले पीवके बारेमें निश्चय कर लो। चीरा त्वचाकी तहके बराबर लगाया जाय। चीरा गहरा नहीं होना चाहिये। क्योंकि, इससे भीतरी नसें कट सकती हैं।

पट्टी करनेवाली चिमटीकी नोकोंपर रुई लपेट चीरेमें उन्हें घुसा और हत्थेको फैलाकर चीरा चौड़ा किया जा सक्ता है।

गैंगरीन : गैंगरीन एक व्रण है। इसमें ग्रसित भाग मर जाता है। सूखी गैंगरीनमें ग्रसित भाग सफेद और पीला हो जाता है और छिटफुट बादामी रहता है। साधारण तौर पर मरनेके बाद देहका रङ्ग ढग जैसा हो जाता इसमें वैसा ही होता है। चमड़ा ठंढा हो जाता है। वह अङ्ग काटने पर रक्तहीन दिखायी पड़ता है। रक्तके विना ही वह विशुष्क और मृत हो जाता है। जल्दी ही त्वचा सिकुड़ती और काली पड़ जाती है। और व्रणीकरणसे इसका सरोकार सुस्थ तन्तुओंसे छूट जाता है। इसमेंसे सडायँध आती है। **गीली गैंगरीनमे** अङ्ग शिराके रक्तसे फूल जाता है। यह पहले प्रदाहित होता है। रक्तसंचार रुकने के ठीक पहले विचित्र तरहकी जलन मालूम होती है। धीरे धीरे अङ्ग ठंढे होने लगते और सड़ांद शुरू होती है। हेमोग्लोबिन फैल जाती है और अङ्गका रंग लाल से बादामी और अन्तमें हरा और कालापन लिये हरा होता हैं। सड़ांद की बुरी गन्ध आती है। त्वचा पच कर लिसलिसी हो जाती है और छूनेसे अलग हो जाती है। ग्रसित भागमें पूरी तरह या आंशिक रूपसे रक्तसचारणका रुकना गैंगरीनका कारण है।

ग्रसित भागको काट डालना ही इसकी चिकित्सा है। गैंगरीन फैलने न पावे इसकी सावधानी रक्खो। इस अभिप्रायके लिये घावके चारों तरफ गरम पानीसे सेंको।

१४८८. गुदा या जरायुका भ्रंस (Prolapses)

गुदाका भ्रंस साधारण हो सकता है, अथवा गुदाके साथ स्थूलान्त्र भी निकल आ सकता है। गुदाके साथ स्थूलान्त्रका भीतरी भाग उलटते हुएभी बाहर आ सकता है।

पशुके शरीर का शिथिलीकरण या श्लथीकरण ही इसकी चिकित्सा है। ऐसा उपाय करना चाहिये कि पशुके अंग ढीले और शिथिल हो जायँ और तनाव तथा चाप नहीं रहे। सुषुम्नाप्रणालीमें शून्यक दवाकी सूई देकर या हल्के आक्रमणमें क्लोरल हाइड्रेड खिलाकर और साथही एकांगी शून्यक दवा लगाकर ऐसी शिथिलता पैदा

की जा सकती है। पशुको खड़ा रखा जा सकता है या उसे लिटाकर पीछे का भाग उठा रखा जा सकता है।

साधारण भ्रंसमें उसे हाथसे धीरे धीरे दाब चढाया जा सकता है। पर यदि स्थूलान्त्र उसमें घुस उलट आया हो तो चतुरता के साथ उपाय करना होता है। श्लैष्मिक कलाको खींचने या ठेलने मात्रसे वह चिथ या फट जा सकती है। यदि स्थूलान्त्र उसकी तहमें घुस आता है तो उसे धीरे धीरे भीतर ठेलना होता है। यदि यह भ्रंस बहुत दिनका हो तो उसे चढाना और वैठाना कठिन हो सकता है। गरमी या ठढकका उपयोग करनेसे चढ़ानेमें मदद मिल सकती है। नहीं तो प्रवीण सरजनकी मदत लेनी होती है।

गायको प्रसवके बाद जरायु भ्रंस हो सकता है। यह भयंकर बात है। क्योंकि वह दर्दसे धरती पर छटपटानेमें इस कोमल अवयवको क्षत पहुँचा सकती है। पशुको क्लोरल हाइड्रेट देना चाहिये। अच्छा हो कि, सुषुम्ना प्रणाली को शून्यता की जाय। इससे उसका शरीर ढीला पड़ जायगा। तब वह जांच करने देगी। यदि जरायुके निकले भागमे गॅदगी लगी हो तो उसे एक गमलेमें रखो जिसमें रक्ततापकी गरमीवाला पानी है और उसे धोकर साफ करो। यदि कहीं कट गया है और टाँकेकी जरूरत है तो टाँका भर दो। तब एक जीवाणुशुद्ध तौलिया उसपर रख धीरे धीरे भगमे ठेलो। यह याद रखना चाहिये कि जरायु भगुर होती है इसलिये सावधानीसे उसको सभाल करो।

१४८६ अन्त्रवृद्धि : आँत उतरना (Hernia)

अन्त्रवृद्धिमें कोई भीतरी अवयव अपना स्वाभाविक स्थान छोड़ आगे को ठिल आता है। अन्त्रवृद्धि नाभिगत (umblical) या कुक्षिगत (inguinal) हो सकती हैं। अन्त्रवृद्धि जिस जगह होती है वहाँ कोमल स्थितिस्थापक सूजन होती है। गायको कभी कभी भगके एक किनारे अन्त्रवृद्धि होती है।

चिकित्सा : भ्रंसोंकी तरह आगे ठिले भागको अपनी जगह पर वैठाना होता है। इसके लिये सुषुम्नाप्रणाली की शून्यता या क्लोरल हाइड्रेटके साथ एकागी शून्यकके प्रलेप द्वारा ढीलापन लाया जाता है। जब पूरा ढीलापन हो जाय तो उस अगको धीरे धीरे और स्थिर (constant) दबावके साथ भीतर ठेलो।

अन्त्रवृद्धिमें रोगीको विरेचन दो जिससे कि, मल नरम हो जाय। इससे भी आँतको अपने स्थानपर रहनेमें मदद मिलती है। कठिन रोगमें सरजनकी सहायता लो।

अध्याय ५७

कष्टसाध्य प्रसव : मूढ़गर्भ

(Difficult Labour : Dystokia)

१४६०. मूढ़गर्भ

गोपालकोंके लिये मूढ़गर्भ बड़े महत्वका विषय है। अन्य गृह-पशुओंकी अपेक्षा गायको प्रसवके समयकी यह गड़बड़ी अधिक होती है। कहा जाता है, घोड़ियोंमें एक मूढ़-गर्भके मुकाबिले गायोंमें दो होते हैं। पर इस अस्वाभाविक प्रसवके मामलेमें घोड़ीकी अपेक्षा गायको एक सुविधा है। गायका स्वभाव शांत और कफप्रधान (वलगमी) अर्थात् सुस्त है। इसलिये वह घोड़ीकी अपेक्षा मूढगर्भको अधिक अच्छी तरह सह सकती है। प्रसवके समय घोड़ी चचल, उत्तेजित, अधीर और उद्दंड रहती है। इसलिये अस्वाभाविक प्रसवके समय वह अपनेको घायल कर ले, जरायु फड़ाले, निज या वछेड़ेको ऐसा घायल करदे कि मृत्यु हो जाय यह भी सभव है। पर गाय धीर और सहिष्णु है। इसलिये चिकित्सा या सँभाल तथा उपचार करनेमें बाधा नहीं देती। इस हेतु वहुत कठिन अवस्थामें भी कुशलताके साथ चिकित्सा और उपचार करनेमें अधिकतर सफलता मिलती है। घोड़ीके अस्वाभाविक प्रसवमें उसका वछेड़ा ४ घंटेसे जादा नहीं जीता पर इसी हालतमें गायका वछरू ६ से ८ घटे जीता रहता है।

पर अस्वाभाविक प्रसवमें हमें जो करना चाहिये वह इस धीर पशु, गायके लिये भी करनेमें हम असमर्थ हैं। शास्त्रीय उपाय, शून्यकोंके प्रयोग और हाथसे खींचने

या ठेलनेमें कुशलता और सावधानीके द्वारा बहुत कुछ किया जा सकता है। ऐसे प्रसवके मामलेमें भेटेरिनरी सरजनकी मदद शायद ही मिलती है। यदि वह बुला भी लिया जाता है तो वह देखता है कि, अनाड़ी लोगोंने दुख मिटानेके अपने प्रयासमें गाय और उसके बच्चेकी ऐसी दुर्दशा कर दी है कि, अब कोई उपाय हो नहीं सकता।

यदि धात्रीविद्या या प्रसवकलाका साधारण ज्ञान किसीको हो तो वह कुछ अति सरल औजारोंकी सहायतासे बहुत कुछ कर सकता है। वह औजार ये हैं। रस्सियाँ, अकुसी, दँतालोके तरहकी क्रच (बैसाखी) या पीछेकी ओर ठेलनेवाला यन्त्र, कलम बनानेकी छुरी आदि। इन्हें आवश्यकताके लिये तैयार रक्खा जाय कि तुरत ही साफ और जीवाणुशुद्ध किये जा सकें।

१४६१. मूढ़गर्भोका वर्गीकरण

मूढ़गर्भके ये कारण हो सकते हैं :—

(क) माताके दोष, जैसे कि सकुचित श्रोणि, जरायुकी स्थानच्युति या अन्य परिवर्तन, नारका उल्टी जगह होना आदि।

(ख) भ्रूणके दोष, जैसे कि अतिरिक्त आकार, कदाकृति, विकटाकृति, रोग और जुड़वाँ (यमल)।

(ग) अस्वाभाविक उदय। इसका वर्गीकरण है अगला (अग्रवर्त्ती), पिछला (पश्चाद्वर्त्ती) और टेढ़ा (अनुप्रस्थ)। इन तीनों तरहसे प्रसव होनेमें भ्रूणकी भिन्न भिन्न स्थिति हो सकती है जिससे उसमें कम या जादे कठिनाई होती है।

मूढ़गर्भके भिन्न भिन्न रूप क्रमसे आगे लिखे गये हैं। यह भी बताया गया है कि, इनसे उत्पन्न परिस्थितियोंमें क्या किया जाय।

१४६२. मूढ़गर्भका निदान

पशु-चिकित्सक आनेके साथ सभी प्राप्य सूचनायें जानले। वह नीचे लिखी बातोंके बारेमें विशेषकर पूछे :—

(१) पीर या वेदना कबसे शुरू हुई?

(२) क्या गर्भोदक का थैला (वाटर बैग) फट गया है और हाँ, तो कितनी देर पहले ?

(३) क्या यह पहला प्रसव है, यदि नहीं तो क्या पहले प्रसव स्वाभाविक हुए थे ?

इसके वाद वह पशुकी परीक्षा करे। वह वाँह और पहुँचा कोथघ्न घोलमें धोले और कारवोलिक एसिड मिश्रित तेल या भैसलिन, अथवा लायसल-साबुनके घोल से पहुँचेके पृष्ठभाग और वाँहको चिकनावे। इससे दोहरा फायदा होता है। चिकित्सकके हाथकी छूतसे रक्षा होती है और वह चिकनाभी हो जाता है। हो सके तो गायकी परीक्षा खड़ी करके करनी चाहिये। निश्चल रखनेके लिये उसका सिर (सींग) मजवूतीसे पकड़ो। एक पैर उठा देना चाहिये अथवा पिछले पैर छान देना चाहिये कि वह दुलत्ती न मारे। परीक्षाके पहले गुदा और वस्ति (मूत्राशय) साफ कर लेनेसे आसानी होती है।

१४६३. (क) माताके दोष : जरायुके दोषसे मूढ़गर्भ (Uterine Dystokia)

यदि भग खाली हो तो चिकित्सक देखे कि, जरायु और इसके सम्वन्धमें तो कोई गड़वड़ी नहीं है। यह भी अन्दाज लगावे कि श्रोणि का द्वार स्वाभाविक ही है अथवा सकुचित या किसी वाह्यवृद्धिसे अवरुद्ध तो नहीं हो गया है। यदि भ्रूण मार्गमें आ चुका है तो वह पता लगावे कि, वच्चेमें तो कोई विकृति नहीं है। रुके प्रसवमें वह यह पता लगावे कि जरायु टेढ़ी तो नहीं हो गयी है या जरायुभ्रंसता (uterine hernia) तो नहीं है। जरायुभ्रंसता अंतःपरीक्षाके पहले वाहरसे भी देखी जा सकती है।

जव वह देखे कि, श्रोणिकी रचना या वछड़ेकी असाधारण दीर्घता अथवा विकटाकृतिके कारण मार्ग वहुत सकीर्ण है तो सोचे कि, क्या दवा और निचोड़ कर भ्रूण निकाला जा सकता है या उसे वाहर करनेके लिये भ्रूणोच्छेदन (embryotomy) करना होगा।

यदि जरायु टेढ़ी (torsion of the uterus) हो गयी हो तो हाथको उसकी ग्रीवातक घुसा टेढ़ेपन या ऐंठन की दिशा जाननी चाहिये। एक या दूसरी तरफ गायकी करवट फेरकर यह टेढापन सही किया जा सकता है। उस समय

हाथ जरायुकी ग्रीवामें ही रक्खा जाय और करवट सहायक लोग फिरावें। यदि किसी तरफकी करवट टेढ़ापन और बढ़ाती हो तो दूसरी करवट फिरायी जाय कि टेढ़ापन सही हो जाय। इस सरल उपायसे अनेकों बार गायकी जान बच जाती है। पर यदि टेढापन ठीक नहीं हो सके तो जरायुके मुँह-बन्द थैलेमें बच्चा और माता दोनोंकी जान जाती है। जरायु टेढा होना भयकर दुर्घटना है। तो भी समय पर उचित उपाय करनेसे माता और बच्चा दोनोके प्राण बच जाते हैं।

यदि जरायु-भ्रंस है तो तह किया हुआ एक चौड़ा कपडा पेट के तले में लगाकर पीठकी ओर खींचा जाय। इससे बहुधा जरायुका मुँह और भग एक सीधमें हो जाते हैं। तब स्वाभाविक प्रसव हो जाता है।

जरायुके अन्य दोपसे भी प्रसव कष्टकारी हो जाता है। जरायुकी गरदन बहुत कड़ी हो सकती है। वह प्रसव-पीड़ाके दबावसे नहीं खुलती। ऐसी हालतमें प्रकृति अधिकतर बाधा दूर करती है। प्रसव-पीड़ा दो से तीन दिनों तक रह सकती है। अन्तमें दबावसे मुँह फैलने लगता है।

पर यदि ५ या ६ घटे लगातार जोरकी पीर (पीड़ा) हो और जरायुका मुँह न खुले तो कुछ करना जरुरी है। गायको मुँहसे क्लोरल हाइड्रेट देना चाहिये जिससे वह ढीली पड़े। १० मिनट पर गरम पानीमें डुबाया कम्बल निचोड़ कर उसकी पीठ पर ओढाना चाहिये। बेलाडोनाका (धतूरा) हरा सत्त जरायुकी ग्रीवाके पास पोतना या जरायुके मुँहके भीतर डालना चाहिये। इससे मुँह फैलता है। क्लोरल हाइड्रेट, प्रसव-पीडामें स्वाभाविक तौर पर बीच बीचमें होने वाले आकुंचनको रोके बिना, कष्ट से त्राण देता है। बेलाडोना मुँहकी फड़कन (आक्षेप) रोकता और उसे फैलाता है। यदि इससे सफलता न मिले तो कोई शून्यक लगानेसे काम निकल सकता है। यदि यह भी असफल रहे तो शङ्काकृतिमें उँगलियाँ भीतर डाली जायँ। यदि मुँह इतना बडा न हो कि, सभी उँगलियाँ जा सकें तो पहले एक उँगली घुसायी जाय इसके बाद दूसरी और इसी तरह सभी, अन्तमे हाथ ही घुसेड़ दिया जाय। इस काममें बहुत समय और धीरजकी आवश्यकता है। मुँह फैलानेके लिये यन्त्रोंसे भी सहायता ली जाती है। जरायु प्रसारक भीतर घुसेड़ा जाता है। इसमें बाहरसे पानी पपसे भरते हैं जिससे वह रबरका थैला (जरायु प्रसारक) फैलता है जो अन्तमें जरायुका मुँह फैला देता है। वस्ति-द्वारा पानी चढानेसे भी गायकी जरायुका मुख फैल सकता है।

१४६४. (ख) भ्रूणके दोषसे मूढ़गर्भ (Fœtal Dystokia)

अन्तर परीक्षासे यह पता चल सकता है कि, श्रोणि, प्रजनन-मार्ग और जरायुमें कहीं कोई गडवड़ी नहीं है। कठिनाई भ्रूणके कारण ही है। यह गडवडी भी भ्रूणके उदयमें न होकर भ्रूण वच्चे ही में हो सकती है।

वच्चेके दोषसे मूढ़गर्भ : नार भ्रूणके किसी अंगमें लिपटी हो सक्ती है जिसके कारण उसकी राहमें वाधा आ पड़ी है। इस मामलेमें अधिक सावधानीसे जाँच करने पर पता चलेगा कि, गड़वड़ी है कहां। उपायसे यह दोप भी तुरत सुधर सकता है।

योनि-मार्गसे कहीं वडा वछरु होनेसे भी कठिनाई हो सकती है। इस सकटसे मुकावला करनेके लिये राह को चिकनाना होता है। खींचने या हटानेके लिये अथवा सही करके खीचनेके लिये भ्रूण पर जोर लगाना होता है। जव सव उपाय व्यर्थ हो जाते हैं तो अन्तिम उपाय भ्रूणोच्छेद्न (embryotomy) ही करना पड़ता है।

वछरूका सिर वहुत वडा हो सकता है। वछरु विकटाकार या विकृताङ्ग हो सकता है। अर्थात् उसके अग टेढ़े मेढे, वड़े या उलटे पलटे हो सकते हैं। कोखमें एकसे अधिक वछरू हो सकते हैं। या दो वछरुओंके अंग आपसमें वुरी तरह गुथे हो सकते हैं। इन सभी मामलोंमें ऐसे कुशलता पूर्ण प्रयास किये जायँ जिससे कि, यान्त्रिक सहायता सहित या रहित प्रसव हो जाय।

प्रायः ऐसा होता है कि, छोटे आकारकी गाय वड़े सिरवाले साँड़से फल जाती है। इससे कठिनाई होती है। जन्मके समय वछरूका आकार अधिकतर माँ के आकार पर निर्भर है। पर अन्योंका मत है कि, वछरुके आकार-निर्माणमें माताका ६६ सैकड़ा हाथ है। चाहे जो हो, पर साँड़के किसी न किसी अगकी विचित्रताका प्रभाव वछरू पर पड़ना जरूरी है। यदि जनकका सिर वहुत वड़ा हुआ तो प्रसवकालमें खतरा हो सकता है। (१०४२ : खंड १)

१४६५. (ग) अस्वाभाविक उदयसे मूढ़गर्भ (Dystokia due to Abnormal Presentation)

स्वाभाविक तौर पर प्रसवके समय श्रोणि-छेद पर वच्चा अपनी जननीके शरीरके समानान्तर रहता है। उसका सिर श्रोणिकी ओर रहता है।

और दोनों अगले पैर वाहरकी ओर निकले रहते हैं। स्वाभाविक प्रसवमें धीरे आनेपर पुरैनके वाहर जव वच्चा होता है तव वह श्रोणिकी ओर ठिलता है। थोड़ी देरके वाद जरायु सिकुडने लगती है कि वच्चा वाहर निकले। तव उसके दोनों अगले पैर भगमें प्रगट होते हैं। इसके वाद थूथन निकलता है और फिर धीरे धीरे सारा प्रलवित शरीर निकल पड़ता है।

वछड़का उदय गलत रूपमें हो सकता है। ऐसे अस्वाभाविक उदय कई प्रकारके हो सकते हैं जिनके कारण कठिनाई होती है।

श्रोणिपर वछड़ आवे उस समय उसकी लवी धुरी देहकी लवी धुरीके समानान्तर हो सकती है। या आडी भी हो जा सकती है। पहली अवस्थामें उसका कोई छोर आगे हो सकता है। दूसरे शब्दोंमें उदय (१) अग्रवर्त्ती (Anterior) हो सकता है, इसमें देहका अगला छोर श्रोणि पर पहले आता है। अथवा वह (२) पश्चाद्वर्त्ती (Posterior) हो सकता है, इसमें वच्चेका पिछला छोर श्रोणिकी ओर रहता है। तीसरा उदय (३) अनुप्रस्थ (Transverse) है जो (क) पृष्ठीय या पृष्ठकटीय (Dorsal) हो सकता है जिसमें पीठकी तरफका भाग अथवा (ख) उदरीय (Ventral) जिसमें पेटकी ओरका भाग और कुछ अंग वस्तिकी ओर रहते हैं।

१४६६. (१) अग्रवर्त्ती उदय
(क) टखने अटकना।

अग्रवर्त्ती उदयमें तना हुआ सिर और अगले पैर श्रोणिद्वारकी ओर रहते हैं।

भीतरी जाँचसे यह पता चलेगा कि, अगला भाग स्वाभाविक है और अगले पैर और सिर वाहर निकल आये हैं। पर पिछले पैर जव तनते हैं तव उनके टखनोंकी जोड़ी जो इतनी वडी होती है कि, भगसे सारा वज निकल जानेपर भी अटक जाती है, वच्चे का निकलना विलकुल रोक देती है। इसलिये वच्चा स्वाभाविक ढगसे नहीं निकल पाता। यह रुकावट सांघातिक सिद्ध होती है। और केवल खींचनेसे भ्रूण श्रोणिमें और जकड़ जा सकता है। ऐसी स्थितिमें वच्चेसे हाथ धोना होता है और कभी कभी माता से भी।

पहले भ्रूणको ठेलनेकी कोशिश हो और तब हाथसे टखनोंको तिरछा किया जाय। और तब उन्हें तिरछा खींचकर श्रोणिसे पार कर सकते हैं।

अन्तिम उपाय भ्रूणोच्छेदन करना होता है।

१४९७. (१) अग्रवर्ती उदय
(ख) पिछले पैर पेटके नीचे मुड़े रहे और वैसी हालतमें प्रजनन-मार्गमें घुस आवें।

यह त्रुटिपूर्ण उदय बहुत कम होता है और जब होता है तो अत्यन्त कठिन। देह कमरपरसे झुक जाती है और पिछले पैर, सिर तथा अगले पैरके साथ श्रोणिमार्गमें आगे आ फँस जाते हैं।

पहले कुछ गड़बड़ी नहीं मालूम होती। सिर भगसे निकल आता है। इसके बाद रुक जाता है। आगे बढना जराभी सभव नहीं। जरायु बच्चेको ठेलनेके लिये जितना जोर लगाती है वह उतना ही अटकता है। खींचनेसे मामला और बिगड़ता है। क्योंकि, वस्तिमार्गमें इससे बच्चा और कसता जाता है।

हाथ घुसेड़कर पशुचिकित्सक एक या दोनों पिछले पैरोंको श्रोणिमें देख सकता है। पर इस तरह जकड़बन्द हो जानेपर हाथ पहुँचनाभी कठिन है। इस हालतमें खींचनेसे माता और बच्चा दोनों की जान से हाथ धोना पड़ेगा।

बच्चेको जरायुमें फिर ठेल देना चाहिये और तब एक एक कर पिछले पैरोंको भी पीछे हटाना चाहिये। इसके लिये रिपेलर (repeller) का उपयोग करना होता है। साधारण तौर पर बच्चा मर जाता है तब अनेक अवसरों पर भ्रूणोच्छेदन करना होता है।

१४९८. (१) अग्रवर्ती उदय
(ग) अगली टाँगका गरदनपर चढ़ना।

साधारण तौर पर अगली एक टाँग गरदन पर चढी रहती है। दोनों रह सकती हैं पर ऐसा बहुत कम होता है। इस स्थितिमें कड़ी प्रसव पीड़ामें पैरोंसे भग छिल सकती है और गुदामें भी छेद हो सकता है। उदर्या फट सकती है।

यदि भ्रूण आगे बढ़ नहीं आया है तो हाथ घुसाकर पैर पकड़ो और उसे खींचकर सही हालतमें कर दो। यदि दोनों पैर चढ़ गये हों तो टखनोंको पकड़

उनमें रस्सी बाँधो और सिरको पीछे ठेलो। साधारण तौर पर इससे भ्रूणकी स्थिति स्वाभाविक हो जाती है। तब सिरको खींचकर श्रोणिमार्गमें लाना चाहिये।
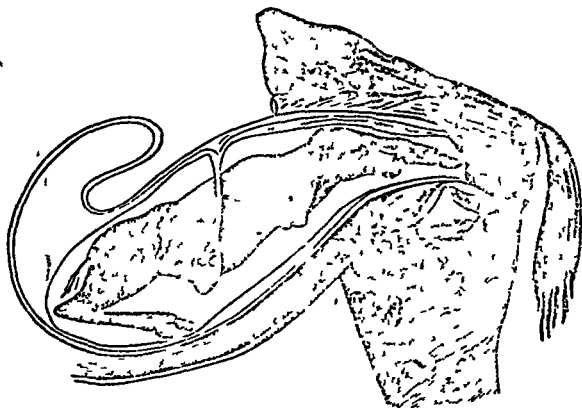
चित्र २०१. अग्रवर्ती उदय : अगली टाँगका गरदन पर चढना।

१४६६. (१) अग्रवर्ती उदय
(घ) अगले पैर पूरी तरह तने न रहें।

यह अस्वाभाविकता, गायमें बहुधा होती है। इसमें पैर साधारण ढगसे सिरके साथ आगे नहीं बढ़ते। इसमें कुहनी छातीके सामने पड़ती है। इसलिये श्रोणिद्वारकी साधारण चौड़ाईसे यह जादे हो जाती है। ये वहीं अटक जाते हैं। जब नाक और खुर एक साथ निकलें तो इसे खतरेका सिगनल मानो कि, सभी मामला चौकस नहीं है। नाक पैरसे आगे भी हो सकती है।

यदि देह कस न गयी हो तो इस उदयको सुधारके लिये बच्चेका सिर जरायुमें ठेल दो। पैरमें रस्सी बाँधकर उन्हें भी सिरके साथ जाने दो। सिरको पीछे ठेले रख उस रस्सीको खींचनेसे पैर सीधे हो जाते हैं। तब प्रसव स्वाभाविक हो जाता है।

यदि बच्चा कस गया है तो बलसे ठेलकर सुधारकी कोशिश हो। यदि बच्चा मर गया है और सिर काफी निकल आया है तो सिर काट कर देहको पीछे ठेलो तब पैर सीधा करके बाहर निकाल लो।
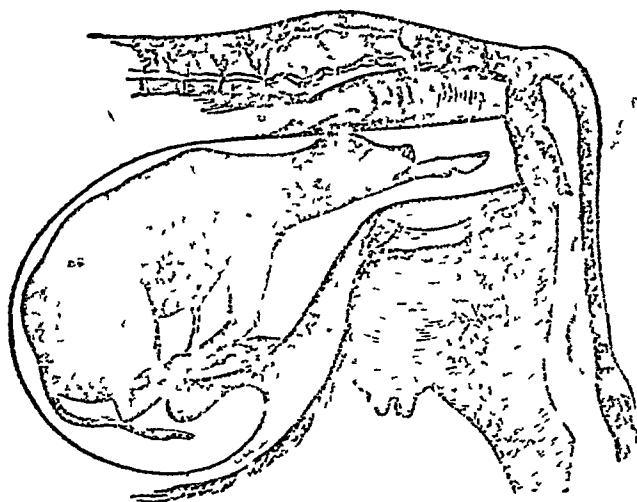
चित्र २०२. अग्रवर्ती उदय : एक अगली टाँग पूरी तरह भीतर रह गयी है।

१५००. (१) अग्रवर्ती उदय
(ङ) दोनों पैर पूरी तरह भीतर रह जायँ।

यदि सिर बाहर निकल आवे और एक या दोनों पैर साथ नहीं आवें तो स्थिति भयंकर हो जाती है। इस अवस्थामें टाँगें पूरी तरह मुड़ी रहती हैं। इससे छाती और कन्धेका व्यास इतना बड़ा हो जाता है कि बच्चेका बाहर निकल आना किसी तरह संभव नहीं। मुड़ी टाँगके लिये जो उपाय है वही किया जाय। देह पीछे ठेली जाय और टाँगोंको पकड़ रस्सी बाँध खींचा जाय। जरूरत हो तो रिपेलरसे सिरको ठेला रख दोनों टाँगें बाहर खींच ली जायँ।

यदि बच्चा जोरसे कस गया है तो भ्रूणोच्छेदन करना जरूरी है।
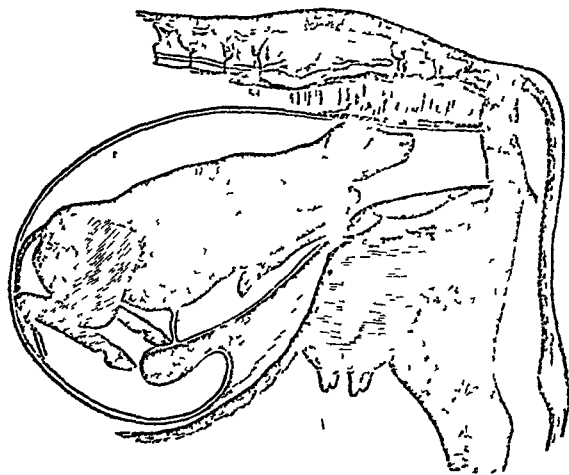
चित्र २०३. अग्रवर्ती उदय : दोनों अगले पैर घुटने पर मुड भीतर रह गये हैं।

१५०१. (१) अग्रवर्ती उदय
(च) सिरकी अस्वाभाविक स्थिति।

सिर अकेला ही अस्वाभाविक स्थिति में हो सकता है अथवा अगले पैरोंके अस्वाभाविक स्थिति भी साथ साथ हो सकती है।

सिर नीचेकी ओर घूसा रहता है। ऐसी हालतमें नाक क्लोमके पास पहुँच जाती है। इसके सुधारके लिये हाथ डालकर नाक मुट्ठीसे पकड़ो और बाहरकी ओर खींचकर स्वाभाविक स्थिति पर ले आओ। यदि थोड़ा बहुत कस गया हो तो जबड़े पर फन्दा डाल बाहर खींचो और सिरको पीछे ठेलो। इस तरह सिरका झुकाव सुधर जायगा।
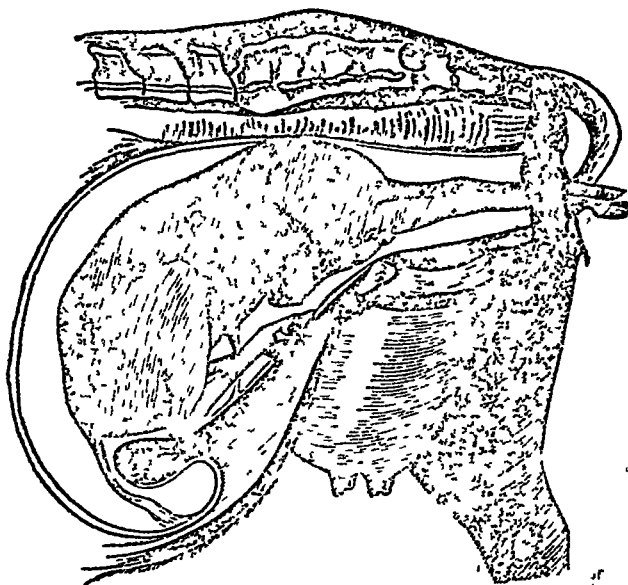
चित्र २०४. अग्रवर्ती उदय : सिरका एकदमसे नीचे झुकना।

१५०२. (१) अग्रवर्ती उदय
(छ) सिरका बगलमें घूमना।

इस तरहका टेढ़ापन साघातिक होता है। जरायुके आकुंचन और ठेलावके चापसे प्रत्येक आकुंचन पर टेढ़ापन और बढ़ता है। सिर भीतर ही रह सकता है और पैर बाहर निकल सकते हैं। ऐसी हालतमें सिरकी स्थिति ठीक करना जरूरी है। क्योंकि, मुड़ा सिर श्रोणिसे किसी प्रकार पार नहीं हो सकता। बच्चेको पीछे ठेल जबड़ेको पकड़ या फन्देमें कस खींचो और सिरको सीधा करो।
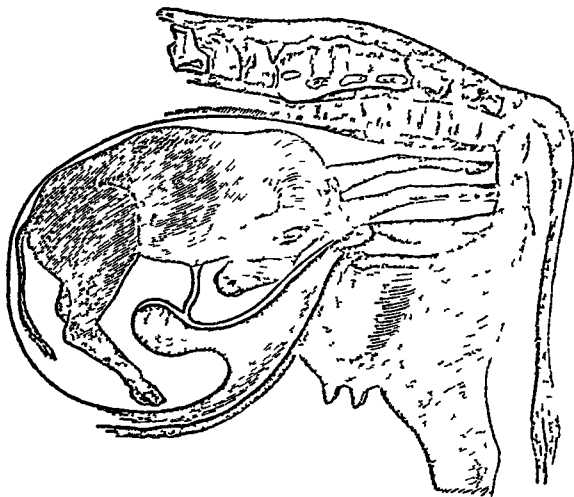
चित्र २०५.　अग्रवर्ती उदय : सिर और गर्दनका भीतर रह जाना।
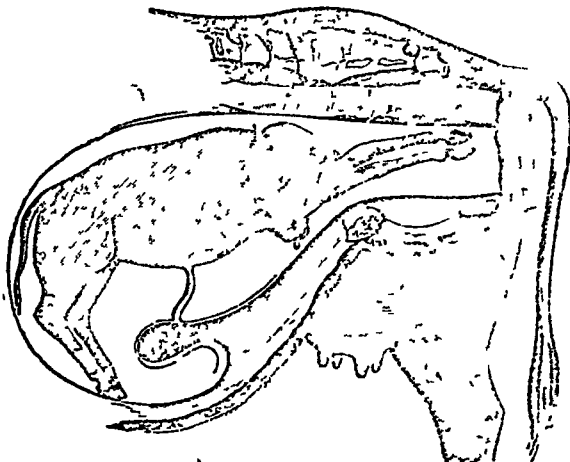
चित्र २०६.　अग्रवर्ती उदय : सिरका ऊपरकी ओर बगली घुमाव।
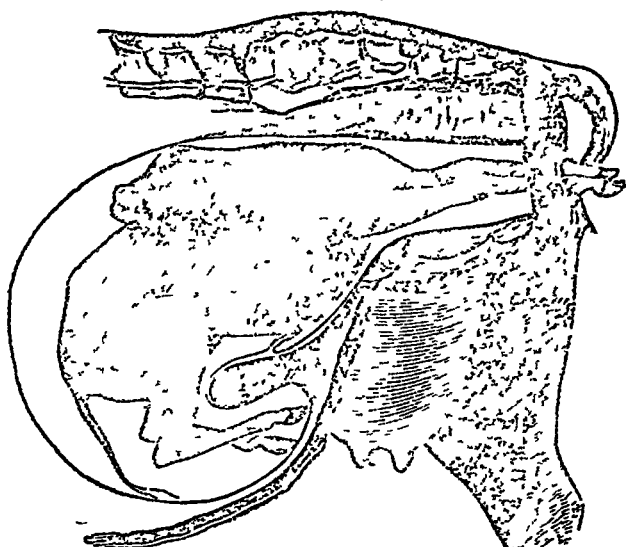
चित्र २०७. अग्रवर्ती उदय : सिरका पीछे और ऊपरकी तरफका घुमाव।

१५०३. (२) पश्चाद्वर्ती उदय

पश्चाद्वर्ती उदयमें पहले पिछला भाग श्रोणि-मार्गकी ओर आता है। यदि दोनों पिछले पैर ठीक उसी स्थितिमें हो जायँ जिसमें स्वाभाविक ढगसे अगले पैर हुआ करते हैं तो स्वाभाविक प्रसव हो सकता है। दोनों पिछले पैर रास्ता खोलनेवाले शंकुका काम करते हैं और इस तरह फैले मार्गमें पिछला धड़ आ जाता है। पर इस सरल स्थितिमें भी कई उलट फेर होते हैं। ऐसी हालत हो सकती है जिसमें बछरू श्रोणि मार्गमें केवल पश्चाद्वर्ती स्थितिमें ही नहीं ठिलता उल्टा भी हो जाता है। अर्थात् बछरूका पेट माताकी रीढ़ की ओर हो जाता है। यह कठिन स्थिति है। बछरूकी देहमें ऐसा घुमाव (वक्रता) हो जाता है जो श्रोणिमार्गके घुमाव (वक्रता) से उल्टा है। इससे कठिनाई होती है।

पश्चाद्वर्ती उदयमें वह सभी अस्वाभाविकतायें हो सकती हैं जो अग्रवर्ती उदयमें हुआ करती हैं। सिर एक या दूसरी तरफ मुड़ सकता है। पैर भी मुड सकते हैं जिससे रुकावट होती है। बछड़ेको जरायुकी ओर ठेल और खींचकर इसका सुधार किया जा सकता है।

१५०४. (२) क. पश्चाद्वर्ती पिछले घुटने और चूतड़का उदय

पश्चाद्वर्ती उदयमें श्रोणिमार्गमें बछड़ेकी स्थिति कटिपुच्छ (lumbo-sacral) हो सकती है। इस स्थितिमें पिछले पैर पूरे फैले नहीं भी हो सकते हैं। ऐसा होनेपर पिछले घुटनेका उदय कहा जाता है। अगले पैर और सिरके बदले इसमें पिछला धड़ (पुट्ठे) और मुड़ा हुआ पिछला घुटना निकलता है और मार्गमें फँस जाता
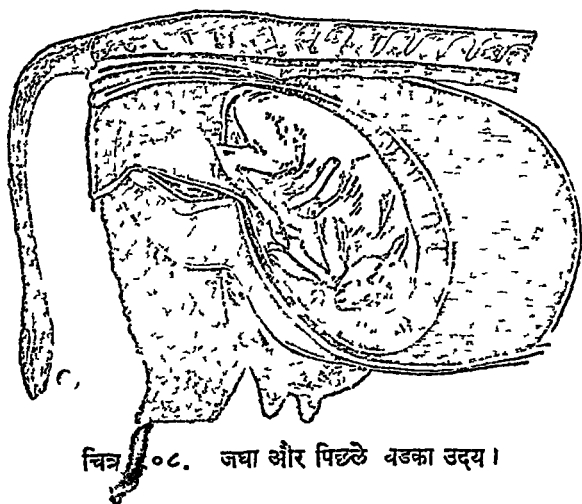
चित्र ५०८. जघा और पिछले धड़का उदय।

है। केवल खींचनेसे भग छिल और बादमें फट सकती है। यदि इसमें एकबार पिछली धड़ (पुट्ठे) फँस जाय तो उसे भीतर ठेलना भी कठिन है। माता और बच्चा दोनों मर सकते हैं। भीतर ठेलनेकी कोशिश करो और स्थिति सुधार पिछले पैरोंको सीधी हालतमें बाहर लाओ। बछड़ेको भीतर ठेल उसे रिपेलरकी मददसे उसी हालतमें रक्खो और पिछले घुटनेमें रस्सी बाँध पिछले पैरोंको बाहर खींचो।

चूतड़ आगे आनेकी स्थितिमें पिछला घुटना मुड़ा रहनेके बदले खुला रहता है। पिछले घुटनेके उदयकी अपेक्षा यह स्थिति अधिक भयंकर है। क्योंकि इसमें श्रोणिमें जाकर चूतड़ और पुट्ठे के अटकनेकी अधिक संभावना है। पिछले घुटनेके उदयमें जैसा होता है वहुत कुछ उसी ढगका उपाय करना चाहिये।

१५०५. (३) अनुप्रस्थ उदय

अनुप्रस्थ उदयमें पश्चाद्वर्ती और अग्रवर्ती उदयकी तरह वछरूकी लंबाईमें उदय नहीं होता। वह आड़ा हो जाता है।

१५०६. (३) क. अनुप्रस्थ : कटि-पृष्ठ उदय

इस उदयमें भगमें कुछ प्रगट नहीं होता यद्यपि पुरैन फट चुकी रहती है। इस स्थितिमें भ्रूणकी पीठ वस्तिद्वारकी ओर रहती है और दोनों जोडी पैर उसकी उल्टी दिशामें। भीतरी जांचमें केवल वछरूकी गोलसी पीठ मालूम पड़ती है। सिर और पैरके पास हाथ नहीं पहुँच सकता और न वह छुए जा सकते हैं।
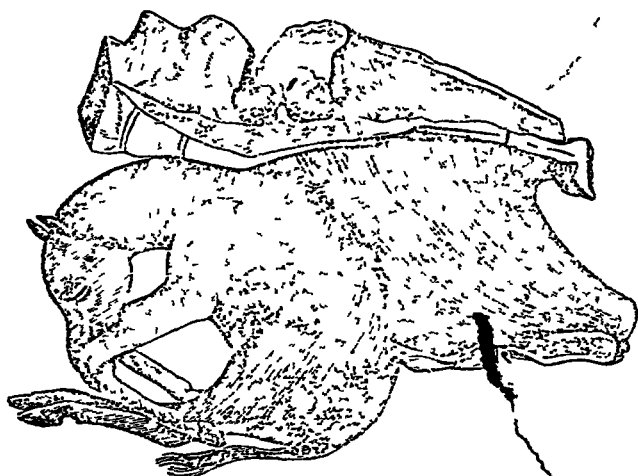
चित्र २०९. पृष्ठीय अनुप्रस्थ उदय।

ऐसे मामले वहुत कम होते हैं पर यदि तुरत ही उपाय किया जाय तो माता बच्चा दोनोंकी जान वचायी जा सकती है। इस स्थितिमें जरायुके आकुंचनका जोर

चाहे कितना ही हो भ्रूण श्रोणिमें घुस नहीं सकता। इसलिये अटक भी नहीं सकना।

भ्रूण श्रोणिमार्गके बाहर रहता है इसलिये उसे ठेलकर घुमाओ और अग्रवर्ती या पश्चाद्वर्ती जो स्थिति भी सुगम हो उसमें लाओ। मार्गको चिकना दो। पीछे अर्थात् भीनर ठेलो और साथ साथ ऐसा उपाय करो कि, चाहा भाग श्रोणिकी ओर हो जाय।

१५०७. (३) ख. अनुप्रस्थ : वक्षोदर उदय

इस स्थितिमें साधारणत. एक या सभी पैर प्रजनन-मार्गमें चले आते हैं। वह भगके बाहर निकल उसमें रुँध सकते हैं। पहले बताये उदयकी तरह इसमें भी भ्रूण श्रोणिमार्गमें नहीं रुँध सकता। अभ्यतर परीक्षामें सिर छुआ जा सकता है। परीक्षासे देहके अन्य भागोंकी स्थितिका भी पता चल सकता है जिससे क्या करना चाहिये यह निर्णय करनेमें मदद मिल सकती है।
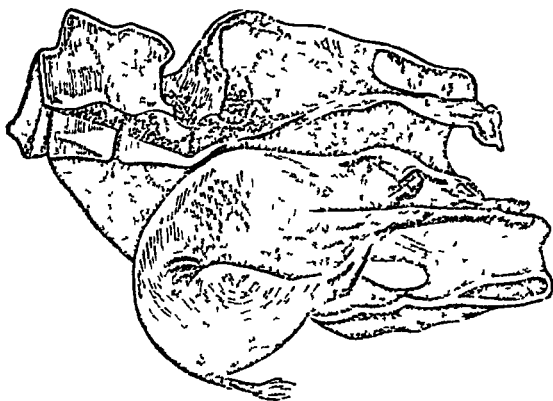
चित्र २१०. अनुप्रस्थ उदय : नाक और चारों पैर निकल रहे हैं।

अति कठिन उदयोंमें यह भी एक है। पर पूर्व वर्णितसे कम दुखदायी है। पीछे ठेल और घुमाकर और खास कर तिरछा खींचकर स्थिति बदली जा सकती है। बहुत दूर पीछे ठेलनेमें खतरा है। क्योंकि पैर जरायुकी दीवालमें लग उसे फाड़ सकते हैं।

१५०८. मूढ़गर्भ या कष्टसाध्य प्रसवमें सतर्कता और हस्तकौशल

जिस गायको बहुत देरसे पीर (प्रसव-व्यथा) हो रही हो उसे देखनेके लिये जब डाक्टर बुलाया जाता है तब बहुत सभव है कि, वह आकर यह पावे कि, माता और बच्चा दोनोंको बचा लेनेकी अवस्था बीत चुकी है। बछरू या तो मर चुका रहता है या वह इस तरह अटका रहता है कि, उसके बचानेका कोई उपाय शेष नहीं रहता। तब चिन्ताका विषय केवल माता रह जाती है। इतने पर भी अधिक कुछ करना संभव नहीं भी हो सकता है। कारण यह है कि गाँवमें जब तक भेटेरिनरी सरजन पहुँचे तब तक इतनी देर हो जाती है और लोग प्रसव करानेकी कोशिशमें इतनी गडबड़ी कर डालते हैं कि कुछ किया नहीं जा सकता। प्रत्येक गाँव या कुछ गाँवोंके बीच एक ऐसा आदमी रहना चाहिये जो प्रसव करानेके हस्त कौशलके बारेमें कुछ जानता हो। ऐसे आदमी चाहे जो करें पर उन्हे भरोसा रहता है कि, ऐसी हालातमें जो अच्छे से अच्छा हो सकता है वही वह कर रहे हैं। और बात भी यही है। वह और अधिक नहीं जानते यह उनका दोष नहीं है। जहाँ वह कुछ कर नहीं पाते वहाँ हताश पशुपालक पासके व्यापारी केन्द्र या कसबेमें जाता है। वहाँ भेटेरिनरी सरजन मिल सकते हैं। जो आदमी प्रसव-पीडाके समय गायकी सेवा करनेका प्रयासी है और इसी अभिप्रायसे इस विषयका शास्त्रीय अध्ययन करता है, वह दूरके पासशुदा शहरी सरजनसे अपने कार्यक्षेत्रके गाँव और आसपासके गाँवोंमें कहीं जादे काम कर सकता है। समयका भी मूल्य बहुत है। सहायता समय पर मिले तभी काम की हो सकती है।

गाँवमें रहनेवाला धात्रीकलाविद् समय पर नहीं भी बुलाया जा सकता है। ऐसी हालतमें तबतक जो बुराई होनेकी है हो चुकती है। बच्चा टेढ़ा हो जाय तो वह श्रोणिमें कस और फँस जाता है। हाँ, अनुप्रस्थ उदयकी बात दूसरी है। इसमें श्रोणिमें भ्रूण-शरीरका कोई भाग जा ही नहीं सकता। क्योंकि अनुप्रस्थ उदयके लिये श्रोणि-छेदसे बड़ा बरालत- सामने आता है। जब पुरैन फट जाय, जो प्रायः फट जाया करती है, और उसका पानी बाहर बह जाय तो संलग्न भाग सूखे और चिपचिपे माळूम होंगे।

१५०९. चिकनानेवाला द्रव

यदि पुरैन (गर्भोदक-थैली) फट गयी है, तो आभ्यान्तिरक परीक्षाके पहले भग और जहाँतक हाथ जा सके कोई चिकनानेवाला तरल द्रव लगा देना पहला काम होगा। सबसे उपयुक्त वस्तु अलसीका लस्सा है। अलसीका लस्सा अलसीको पानीमें उबालकर बनाया जाता है। पानी जेली या लप्सी की तरह हो जाता है जिसमें बीज उलझे रहते हैं। इसे कपड़ेसे छान लेते हैं। ठंडी होने पर यह जेली कामके लिये तैयार हो जाती है। एक रोगीके लिये ४ या ५ गैलन जेलीकी जरूरत हो सकती है। बहुत कस जानेपर भीतरमें चिकनाना संभव न भी हो। रबरकेनमें मजबूत कैथीटर लगाकर धीरे धीरे उस कैथीटरको भीतर घुमाओ और द्रव भीतर बहने दो और तब कैथीटर जरा पीछे खींच फिर घुसाओ। रबरकी नली की चाबी खुली रक्खो जिससे कि, प्रवाह जारी रहे।

लस्सा घुसानेकी इससे बढ़िया विधि यह है कि, धातुकी शोषण और प्रेरण पंप (suction and force pump) वाली पिचकारी जिसमें पानी निकलनेके लिये रबरकी नली लगी हो काममें लायी जाय। सूक्षेपनके अनुसार ५ गैलन तक लस्सा डालना जरूरी होता है। यह काम और तरहसे पूरा होना कठिन है।

अलसीका लस्सा नीचे लिखे अनुसार बनाया जाता है :—

अलसी	...	१ रत्तल।
पानी	...	१० रत्तल।

पन्द्रह मिनट उबाल छान लो।

१५१०. औजारोंकी जीवाणु-शुद्धि

इसके बाद आवश्यक औजार रस्सी, अँकुसी, कैंच, छुरी आदि पानीमें उबालकर जीवाणुशुद्ध करो।

रस्सियाँ नयी और मुलायम हों। बहुत बार पाटकी आधे इञ्च व्यासवाली नयी रस्सीसे काम चल सकता है। जहाँ बहुत जोरके खिंचावकी जरूरत हो वहाँ आधा इञ्च व्यासकी सनईकी रस्सी काममें लायी जाय। रस्सी मध्यम आँचपर झुलसा ली जाय जिससे कि उसके उखड़े तन्तु जल जायें। झुलसायी रस्सी

उबालकर जीवाणुशुद्ध कर ली जाय। सदा नयी रस्सी काममें लाना निरापद है। क्योंकि, व्यवहार की हुई रस्सी को जीवाणुशुद्ध अवस्थामें रखना कठिन है। इस कामके लिये अलग अलग नापकी रस्सियोंके कई पुलिन्दे प्रसवके औजारोंके साथ रक्खो कि, जरूरत पर काम आवें।

१५११. अभ्यन्तर परीक्षा

पूरी वाँह चिकना लेनेके वाद जननेन्द्रियमें डाल भ्रूणकी स्थिति देखो। यदि भग और श्रोणि-गुहा वच्चेके किसी अंगसे पूरी तरह कस गयी हों तो तमाम चिकनई लगाकर भीतर ठेलो। दवाव धीरे धीरे और दृढ डाला जाय। काफी जोर लगाकर भ्रूणको जरायुकी ओर ठेलो।

रिपेलर, कूनका सरल क्रच (Kuhn's crutch) हो या वैरनका (सुधरा) प्रजनन यन्त्र (obstetric machine) जिसका वर्णन १५२० पैरामें हुआ है।

यन्त्र चाहे जो हो पर वल या दवाव क्रमिक और दृढ हो। दचक और अचानक दवावसे भग या जरायुमें चोट लग सकती है। भ्रूणके भीतर ठिल जानेपर मार्ग और जरायुकी ग्रीवामें पूरी तरह चिकनई लगायी जा सकती है। यदि जरायुके भीतर सूखापन है तो उसमें अलसीका लस्सा भर देना चाहिये। तव हाथ डाल भ्रूणकी स्थिति देखो और तय करो कि क्या करना है।

यदि भ्रूण इतना कस गया है कि, वह आगे पीछे किसी तरफ नहीं खिसक सकता तो उसे काट कर निकालना ही होगा।

अभ्यन्तर परीक्षाके समय भ्रूण, जरायु और मार्गकी सापेक्ष स्थिति निश्चित करना जरूरी है। वच्चा जीता है या मर गया यह जान लेना भी उतना ही जरूरी है। यह भी पता लगा लो कि, दोष कहाँ है। मातामें है या वच्चामें। यह दोष भ्रूणके वहुत वड़े आकार या विकटाकृतिके कारण है या अशुद्ध उदयके।

परीक्षाके फलके अनुसार इस संकटका सामना करनेका उपाय करो। अस्वाभाविक उदय होने पर नीचे लिखी एक या दूसरी विधि काममें लानी होती है :—

(१) पीछे ठेलना,

(२) घुमाना,

(३) वदलना,

(४) तानना और मोड़ना,
(५) खींचना।
ये विधियाँ और उनके अभिप्रायके बारेमें आगे लिखा जायगा।

१५१२. गायका मूढ़गर्भ

जो भी विधि काममें लायी जाय वह गायकी दशाके अनुकूल हो।

परीक्षाकालमें गायको खड़ा रखना सबसे अच्छा है। इसके लिये इतना ही यथेष्ट है कि, उसे कोई परिचित परिचारक सामने पकड़ कर खड़ी रक्खे। परीक्षा और परिचालन दोनोंके लिये खड़ा आसन सबसे अच्छा है।

गायको चित्त या करवट लिटानेकी जरूरत भी पड सकती है। गायको अबाधरूपसे चुपचाप इन आसनोंमें ले आना पशुचिकित्सकको सम्भव होना चाहिये।

गायको लिटानेके लिये सबसे उत्तम उपाय १४७७ पैरामें बताये ढगसे बाँधना है।

परिचालन करने या प्रसव करानेके समय गायका पिछला भाग उठानेकी जरूरत पड़ सकती है। पिछले पैरोंके नीचे पुआल जमाकर पिछला भाग ऊँचा किया जा सकता है। चचल गायको चुपचाप खडा रखनेके लिये एक आदमी उसके नथनोंमें उँगलियाँ डाल नासा-मध्य प्राचीरको पकड़े और दो आदमी दो तरफ खड़े हो गायको दबाकर थामे रहे। एक तरफ आदमीकी जगह पटरा (तख्ता) लगाया जा सकता है।

लेटी हालतमें प्रसव कराना खड़े होनेकी हालतसे जादा कठिन है। गाय कभी कभी लेटी रहती है उठती नहीं। निर्बलता और थकानके कारण ऐसा कर सकती है। पर कुछ गायें उल्टी चडी (उल्टे स्वभावकी) होनेके कारण ही ऐसा करती हैं। कभी कभी पुचकारनेसे वह खड़ी हो जाती है। बाहरी कुत्तेको देख वह खड़ी हो जा सकती है। जब सब उपाय व्यर्थ हो जायं तो उसे जैसीकी तैसी पडी रहने दो और इस आसनके अनुसार ही उपाय करे। इसकी जरूरत मालूम हो सकती है कि, जरायुका भार हल्का किया जाय और भ्रूण कुछ ऊपर उठाया जाय। इस कामके लिये एक मजबूत चादर पेटपरसे पारकर पीठ पर खींचो। चादरमें गाँठ बांध उसे घिरनी पर चढ़ी रस्सीसे बाँधो।

जमीनमें दो खंभे तिरछे गाडे जायँ कि वह गायके पिछले धडके ऊपर मिलें। घिरनी इसमें लटकायी जा सकती है। अथवा खभेके ऊपर एक चिकना बाँस बांधा जा सकता है जिस पर रस्सी सरके।

यदि गाय पैर मोड छातीके वल वैंठे तो कभी कभी यह भी सुभीतेका आसन होता है। उचित उपायसे यह किया जा सकना है। और दूसरे अवसरों पर गायको चित्त लिटाना होता है। अनुप्रस्थ उदयके अनेक मामलोंमें यही आसन सुवीतेका होता है। गाय जव चित्त रहे तव उसके चारों पैर एक साथ बाँध दिये जायँ जिससे वह उलटे पलटे नहीं।

१५१३. गाय और चिकित्सक

चिकित्सक (धात्रीकलाविद्) के लिये यह काम कभी कभी थकानेवाला होता है। ऐसी हालतमें सेवा करनेवालेको वलिष्ठ होनाही चाहिये कि वह तुरत थके नहीं। उसकी वाँह काफी लम्वी होनी चाहिये जिसे वह पूरी तरह भीतर घुसेड वच्चेका जादेसे जादे शरीर छूकर परीक्षा कर सके। वाँह तो लम्वी हो पर उँगलियाँ छोटी और तगड़ी हों जिससे कि वह मजवूतीसे पकड़ सके। छोटी वाँह और लम्वी उँगलियोंवाला आदमी इस कामके लिये अनुपयुक्त है।

धात्रीकलामें चिकित्सकका हाथही मुख्य यन्त्र है। अन्य यन्त्र हैं पर मुख्य काम वाँह, उँगलियों, और कलाईको करना होता है। देहकी चुस्तगीके साथ अनुभव हो तो आदमी चैतुर धात्रीकलाविद् वन जाता है।

चिकित्सकको अगोंकी स्थितिके अनुसार अपना दाँयाँ या वायाँ हाथ व्यवहार करना होता है। जो आदमी दोनों हाथोंका एक समान उपयोग देर तक कर सकता है उसके लिये यह काम "एक हत्थे" आदमीकी अपेक्षा अधिक सरल है।

यदि गाय लेटी रहे तो प्रसवकराने की प्रक्रियामें दोषोंकी मार्जना करनेके लिये चिकित्सकको लेट कर भी काम करना होता है।

१५१४. सुन्न करना : शून्यकका उपयोग

चिकित्सक यह जानले कि, तरह तरहके उपाय करते समय गायको दर्द होता है। बहुधा वह देखता होगा कि, वड़ीदेरके लगातार प्रसवकष्टसे गाय थक जाती है और उठ नहीं पाती। वह कितना थक गयी है इसका अन्दाज करना चाहिये। तमाम

उपाय करनेमे कितना समय लगेगा और इससे गायको कितना कष्ट होगा यह समझना चाहिये।

आजकल चिकित्सक लोगोंका झुकाव यन्त्रका उपयोग करनेके पहले शून्यता कर लेनेका रहना है। इसका कारण स्पष्ट है।

कष्टसाध्य प्रसवमें गर्भोदक बराबर कम होता रहता है। हाथ घुसेड़नेसे उसे अतिरिक्त श्रम शुरू हो जाता है। अब भ्रूणकी स्थिति बदलनेमें दो शक्तियोंका प्रतिकार करना होता है। एक पेटका चाप है और दूसरी भ्रूणकी देहके निकट सरोकारसे जरायुका तनाव। थोडा भी हाथ लगता है तो बडा कष्ट हो सकता है। और इससे सुधारकी सारी चेष्टा बिगड़ जाती है। यदि चिकनईके लिये लस्सा डाला गया है तो वह साराका सारा नहीं तो उसका अधिकाश निकल जाता है। ज्यो ज्यों प्रयास करो भ्रूणके पास हाथ ले जाने और हस्तोपचार करनेका स्थान कमता जाता है। पर यदि शून्यकका उपयोग किया जाय तो पेट और जरायुकी पीड़ा बहुत कुछ मिटेगी इससे देह ढीली होगी और हस्तोपचार करनेके लिये जगह मिलेगी। धात्रीकर्ममे सुषुम्ना-शून्यक (epidural anæsthesia) के पक्षमें श्री वेनेरा जोरके साथ यों लिखते हैं :

"(१) हस्तोपचार करनेमें पीडा या तो होती ही नहीं या बहुत कम होती है। दयाकी दृष्टिसे इसका बड़ा महत्व है।

(२) गर्भोदककी जगह लेनेके लिये जो अलसीका लस्सा चढाया जाता है, जो दूसरी स्थितिमें प्राय. निकल आता है, वह यहाँ तुरत नहीं निकलता पर भ्रूण और जरायुकी दीवालके बीच धीरे धीरे समभावसे फैल जाता है। इस कारण भ्रूण और दीवालमें काफी ढीलापन आ जाता है। इसका फल यह होता है कि, जरायुके भीतर भ्रूण फिसल सकता है।

(३) पेटके चापके अभावमें जरायुकी दीवालके ढीली पड़नेका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि, भ्रूणकी स्थिति ठीक करनेके लिये काफी जगह निकल आती है और माताकी तरफसे जरा भी बाधा नहीं होती। जितनी ज्यादे शून्यता होती है उसी परिमाणमें ढीलापन होता है।

(४) जब तक शून्यता रहती है मल त्याग नहीं होता इसलिये सारी प्रसव करानेकी प्रक्रियाएँ स्वच्छतासे होती हैं और सरलतासे अच्छीतरह निर्वाह होता है।

(५) लेखकका मत है कि, यदि इसका व्यवहार ठीक तरहसे किया जाय तो बिलकुल निरापद होता है।

(६) जरायुके स्वाभाविक संकोचमें बाधा नहीं होती।

पर इसका यह मतलब नहीं कि हर हालतमें इस तरहसे शून्यता पैदा करना नियम ही बना लिया जाय। यदि आभ्यतरिक परीक्षासे पता चले कि, प्रसव आरामसे जल्दी ही हो जायगा तो ऐसी हालतमें इसकी जरूरत नहीं।"—(भेटेरिनरी अब्स्टेट्रिक्स —बेनेश और राइट, पृ० ८)

ऊपरके कथनसे यह स्पष्ट है कि, पशु चिकित्सक "आरामसे जल्दी प्रसव" की उम्मीद जहां हो वहां छोड़ सिर्फ कष्टप्रसवमें ही सुषुम्ना-प्रणाली शून्यकका वह व्यवहार करे तो अच्छा। इस शून्यककी विधि १४८० पैरामें बतायी गयी है।

अस्वाभाविक उदयमें सुधारकी विधियाँ

१५१५. (१) पीछे ठेलना (Retropulsion or Repulsion)

पशुचिकित्सक प्रायः भ्रूणको ऐसी स्थितिमें पाता है कि, और कुछ करनेके पहले वह उस स्थानको अलसीके लस्सेसे चिकनाता है। इसके बाद भ्रूणको पीछे ठेलना है और अपना हाथ घुसेड़ कर देखता है कि भ्रूणकी स्थिति क्या है। स्वाभाविक उदयमें भी यदि प्रसवमें देर हो रही हो तो चिकित्सक हाथ डालकर अगले पैर खोजे और उन्हें बांध बाहर खींचे। भ्रूण जरायुकी ओर ठिल जाता है उसके बाद ही ऐसा करना ऐसे मामलोंमें संभव होता है। यह काम कभी बहुत सरल भी हो सकता है और यन्त्रोंकी सहायताके बिना सिर्फ हाथसे किया जा सकता है। पर अधिकांश मामलोंमें देखा जायगा कि, केवल हाथसे काम नहीं हो सकता। यंत्रकी सहायता लेनी होती है।

पीछे ठेलनेके लिये सबसे उपयुक्त खड़ा आसन है। खड़ा रहने पर भी पिछले पैर ऊँचा उठा देनेसे और सुबीता हो जाता है। क्योंकि इससे जरायु और उसके भीतरकी चीज मार्गसे दूर हट जाती है।

सहायताके लिये कुछ सरल उपयोगी यंत्र हैं। इनके कई रूप हैं। सर्वोत्तम और सबसे अधिक उपयुक्त औजारोंमें एक कूनका क्रच (Kuhn's Crutch) है।

चित्र २११. कूनका क्रच।

कूनके क्रचमें एक सुबीता यह है कि यह दुहरा काम कर सकता है। यह ठेल भी सकता है और खींच भी। इस क्रचके सिरे परकी दोनों नोकोंके छोर पर छल्ले (अगूठी) जैसा छेद होता है। इसमें एक रस्सी पिरोयी रहती है। यह क्रच डा० कूनने फैले पिछले घुटनेको ठीक करनेके लिये बनाया था। पर दूसरे दोषोंके सुधारके लिये भी यह यन्त्र अपरिहार्य है। तसवीरमें पेचदार हत्था दिखाया गया है। यह जरूरी नहीं है। बायीं तरफ घुमानेसे हत्थेका पेच खुल जाता है। हत्थेदार एक ही टुकड़ेवाला क्रच ठीक रहता है। यह लगभग ३३ इञ्च लवा होता है। इस यन्त्रकी सहायतासे ठेलने और खींचनेकी दो विरोधी शक्तियाँ एक साथ लगायी जा सकती हैं। प्रसवके अनेक मामलोंमें जो हाथसे नहीं हो सकता कूनके क्रचसेहो जाता है।

क्लोरल हाइड्रेट जैसे निद्रक औषधका प्रभाव रहने पर भी जरायुमें आक्षेपक सकोच होता है। पर सुषुम्नाशून्यक विधिसे पूरी शून्यता निश्चय होती है। इससे संकोचन नहीं होता और जरायु ढीली रहती है। ऐसी हालतमें रिपेलर क्रचकी सहायतासे पीछेकी ठिलाई हो सकती है। ठिलाईकी कोशिश करनेके पहले प्रजनन मार्ग और जरायुको चिकनानेके महत्व पर जोर देना जरूरी है। ठेलनेके लिये भ्रूणके किसी भागमें रिपेलर लगानेके लिये उसका पाना ही केवल जरूरी नहीं है। अन्य भागोंको खींचने और घुमानेकी जरूरत हो सकती है। ठेलना, घुमाना, बदलना और खींचना वास्तवमें एकही सयुक्त विधि अर्थात् अस्वाभाविक उदय सुधारकी प्रक्रियाके भिन्न भिन्न अग हैं।
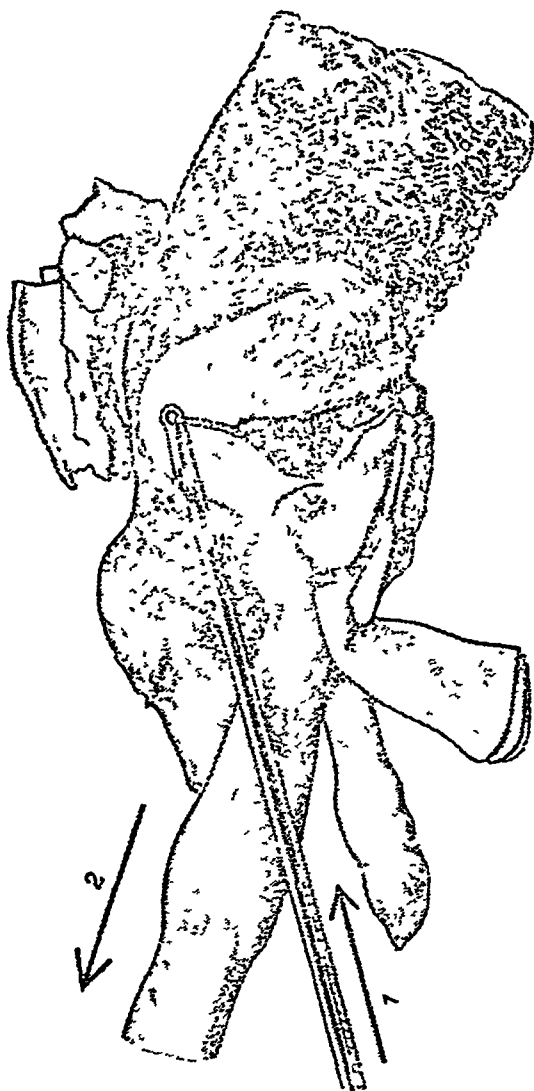
चित्र २१२. सुधारनेका उदाहरण । ....

क्रचसे ठेल और हाथसे खींचकर अगली टांगके फैलानेका सुधार । (बेनेश)
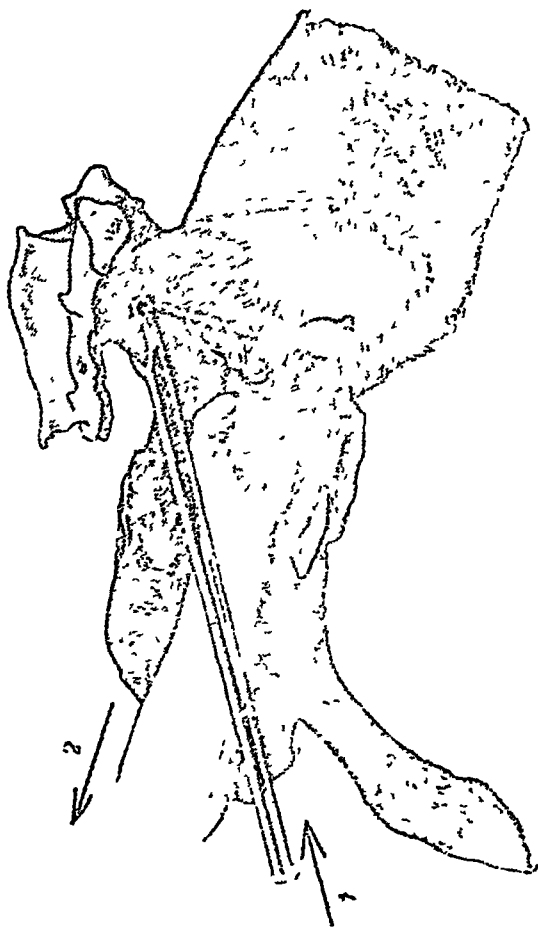
चित्र २१३. सुधारनेका उदाहरण।
ऐंठ और खींचकर हटाना फैलानेका गुबार। (विनेश)

१५१६. (२) घुमाना (Rotation)

बहुत वार भ्रूणको एक या दूसरी ओर घुमाना जरूरी हो जाता है। क्योंकि इससे वह ऐसी स्थितिमें हो जाता है कि विना चोट श्रोणि और भगमें होकर निकल सके। ठेलनेके वर्णनमें जिस तरह शून्य करने और चिकनानेकी विधि वतायी गयी है उसी तरहकी सावधानी इसमेंभी करनी चाहिये। भ्रूणको ठेल देना होता है। पर यह करनेके पहले उसका कोई भाग फंदेमें पकड़ रखना होता है जिससे कि मौका पडने पर वह भाग खींचा जा सके। घुमानेके लिये हाथको श्रोणिके फर्श पर भ्रूणके नीचे करना चाहिये। हाथवाले भागको दाहिने या वांयें घुमानेके लिये वाँह "लिभर" (लट्ठा) का काम करती है।

घुमानेके समय सुवीतेके लिये पेटको ऊँचा किया जा सकता है। प्रायः उसे वगलकी ओर घुमाना काफी होता है। इसके वाद खींच कर भ्रूण सही स्थितिमें किया जा सकता है। खींचनेसे उसके घुमानेमें मदद मिल सकती है।

घुमानेके लिये घुमानेकी दॅताली (Torsion fork) (चित्र २१४) है। पर क्रच, घुमानेकी दॅतालीका काम भी कर सकता है।

चित्र २१४. घुमानेकी दॅताली।

चित्र २१५. सुधारनेका उदाहरण।
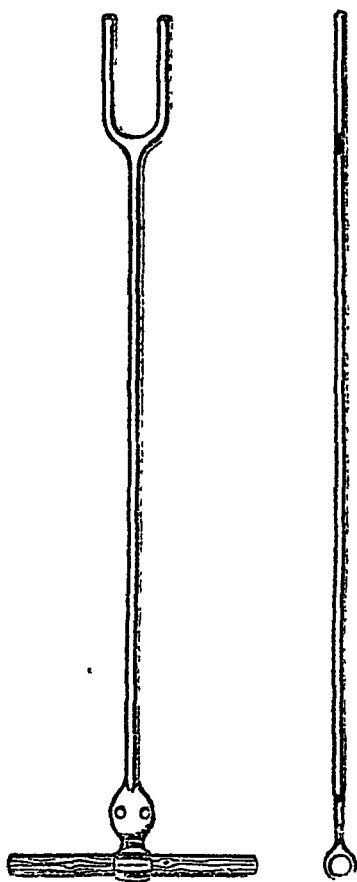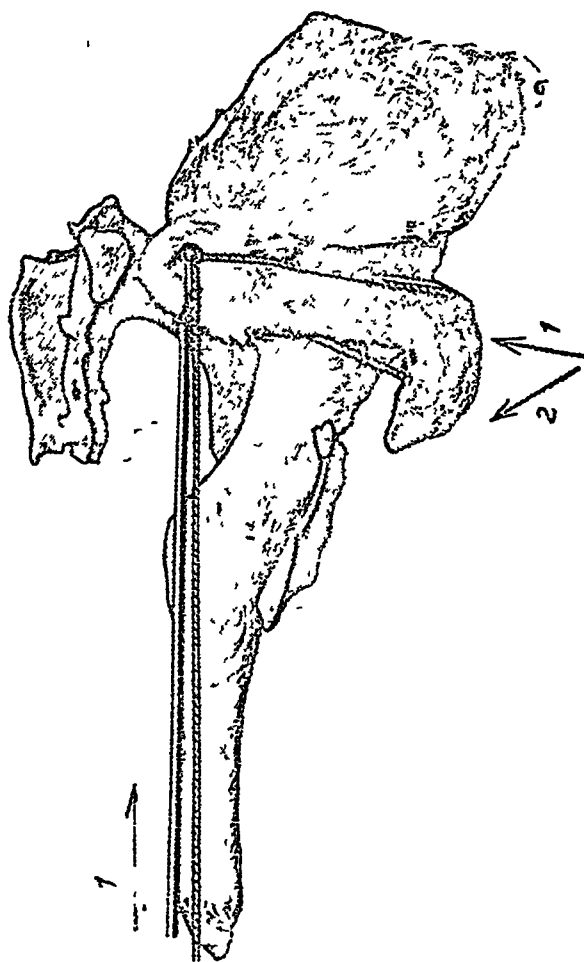
घुटनेके फलावके सुधारके लिये हाथसे ठेलना और रस्सी से खींचना। (त्रैनेश)

१५१७. (३) बदलना (Version)

उपायके द्वारा एक तरहके उदयको दूसरी तरहका करनेका नाम बदलना है। प्रसव हो जाय इसके लिये भ्रूणकी लवी धुरी माताकी लम्बी धुरीके बराबर सीधं होनी चाहिये, अर्थात् बछड़के उदयकी स्थिति अग्रवर्त्ती या पश्चात्वर्त्ती होन चाहिये। अनुप्रस्थ उदयमें ऊपरके दोनों उदयोंमेंसे किसी एकमें उसे बदले विन भ्रूण वाहर नहीं लाया जा सकता। अनुप्रस्थको अग्रवर्त्ती या पश्चात्वर्त्ती उद बनानेको बदलना (Version) कहते हैं। यह करना कठिन काम है। किस किसी पश्चात्वर्त्ती उदयमें भी यह बदलना जरूरी हो जाता है।

इसमें भी पहला जरूरी काम ठेलना है। भ्रूणको ठेलकर उसके किसी दूस भागको श्रोणि-द्वारकी ओर किया जाता है।

इसलिये बदलना दो प्रकारका हो सकता है। सिरको श्रोणिद्वारकी ओर लानेव नाम कपालिक (cephalic) बदलना है और पिछले या श्रोणिभागको आगे लानेव नाम श्रोणिक (pelvic) है। बहुत लोग श्रोणिक बदलनेको कपालिक बदलने अच्छा मानते हैं। इस तर्जीहका कारण यह है कि, श्रोणिक बदलमें कपालिकसे का कठिनाई है। क्योंकि श्रोणिकमें केवल दो पिछले पैरोंसे ही निवटना और ठीक रा पर लाना होता है। पर कपालिकमें दो अगले पैर और सिर तीनसे निवटना औ उन्हे रास्ते पर लाना होता है।

बदलना जरायुके भीतर ही हो सकता है और सो भी जब जरायु पेटमें रहे यदि भ्रूणका कोई भाग जरायुके वाहर निकल गया हो तो उसे पीछे ठेलना होत है। इसलिये जैसे कि और बहुत मामलोंमें जरायुके ढीलेपनकी जरूरत होती है इसमें भी है। यह काम सुषुम्नाप्रणाली की शून्यतासे हो सकता है।

१५१८. (४) तानना और मोड़ना (Extension & Flexion)

ठेलना, घुमाने, और बदलने इन तीन मुख्य उपायोंके करनेमें भ्रूणके अंगकी कुछ सहायक गतियाँ भी जरूरी हैं। जैसे कि, सिर या गरदनके एक या अनेक अंगोंका ठीक करना। झुके और मुड़े अंगोंको खींच सीधा करनेको **तानना** (extension) कहते हैं और इसके उल्टेको **मोड़ना** (flexion)।
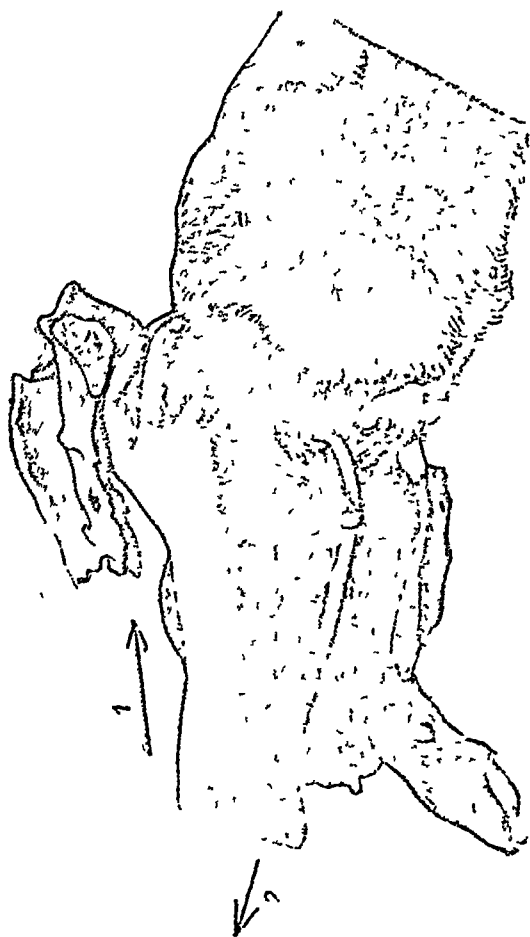
चित्र २१६. सुधारनेका उदाहरण।

रस्सी से खींच और हाथसे ठेल मुडी कलाईका सुधारना। (वेनेश)

इस काममें चिकित्सककी बाँह प्रायः इतनी छोटी निकलती है कि, वह जरूरी भागों तक पहुँच पकड नहीं सकती। ऐसे काममें कूनके क्रचसे बहुत मदद मिलती है। प्रायः मोड़ना और तानना साथ साथ करना होता है।

१५१६. (५) खींचना (Traction)

यन्त्रोंकी सहायतासे भ्रूणको बाहर निकालनेका नाम खींचना है। यदि जरायुके संकोचमें शक्ति कम है या जरायु ढीली है तो भ्रूणको हाथके कौशल से बाहर लाना होता है। पर चिकित्सकके हाथ शायद इस कामके लिये यथेष्ट न हों। ऐसी हालतमें भ्रूणके एक या अनेक भागोंको बाँधकर खींचना होता है। पहले बताया जा चुका है कि, रस्सी बाँधनेका काम केवल खींचना ही नहीं है और भी बहुतसे काम उसके हैं। होनेवाली सभी विधियों या प्रक्रियाओंमें मदद करना रस्सीका काम है।

रस्सी साधारण रस्सीके जैसी ही हो सकती है या जालीदार या गुथे हुए फीते जैसी। यह कहा जा चुका है कि, एक बार काम लेकर रस्सी फेंक देना अच्छा होता है। रस्सी खूब चिमड़ी या लचीली हो। प्रजननकुशल चिकित्सकको विभिन्न व्यासकी ऐसी रस्सियोंके पुल्ले रखना चाहिये। औरतोंके प्रसवके लिये प्रसव चिमटियों (deleivery forceps) का जो महत्व है पशु चिकित्सकके लिये रस्सियों और अंकुसियोंका वही महत्व है। फंदेके छोर पर एक हत्था बाँध देनेसे खींचनेमें सुबीता होता है।

चित्र २१७.
खींचनेके लिये हत्था बँधा रस्सीका फन्दा।

रस्सी और फंदे अस्वाभाविक उदयके सुधार या खींचनेमें जितने उपयोगी हैं उतने ही
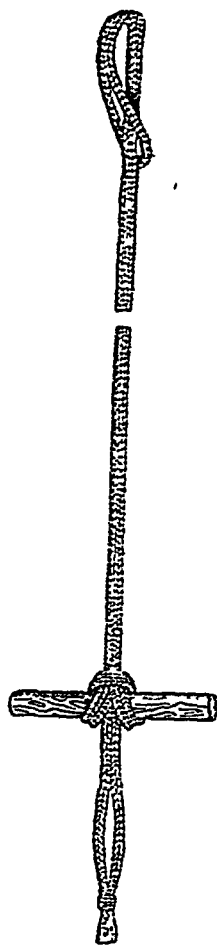
भ्रूणोच्छेदनमें भी। दो अंकुसियोंमें रस्सी पिरो देने पर उनसे ठीक चिमटीकी तरह ही काम लिया जा सकता है (चित्र २२०)। जीवित भ्रूणके लिये भोथी अंकुसियाँ व्यवहार की जाती हैं। सबसे उपयुक्त जगह आँखका कोटर है। चोट पहुँचाये विना इन भोथी अंकुसियोंसे (चित्र २१८-२२१) खींचनेका काम किया जा सकता है। मरे भ्रूण और उनके टुकड़े नुकीली अंकुसियोंकी ही मददसे निकल सकते हैं। इस कामके लिये ये अपरिहार्य हैं।
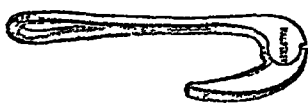
चित्र २१८.
भोथी अँकुसी।

चित्र २१९. छोटी नुकीली
और गोल छोरवाली अँकुसी।
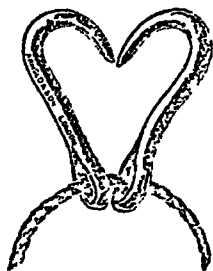
चित्र २२०.
धातृकर्मकी दुहरी अँकुसी।

चित्र २२१.
भोथी अँकुसी

यान्त्रिक खिचावके लिये एक या दो सहायकोंके खींचनेसे काम नहीं भी चल सकता। कभी कभी किसी खम्भेमें घिरनी बाँधकर उसकी मददसे भ्रूण खींचा जाता है। इस या इसी तरहकी और विधियोंमें कठिनाई यही है कि, भले ही आगेसे एक या दो आदमी पकड़े रहें खिचावके साथ गाय भी पीछे हटती है।

बैरनकी मशीन इस तरह बनायी गयी है कि, इससे भ्रूण तो खिंचता है पर गाय स्थिर रहती है। इस यंत्रको बैरनका धात्रीयंत्र (Baron's obstetric

machine) कहते हैं। इसमें घोड़ेकी हैकलसा एक भाग रहता है वह गायके पिछले भागमें पहिना दिया जाता है। हैकलमें तीन डन्डोंको खोंसनेकी जगह रहती है जिनके छोर पर एक पट्टी रहती है। इस पट्टीके बीचमें छेद रहता है जिसमें पेच कसनेके लिये चूडियाँ (घाट) बनी रहती हैं। इस पेचदार छेदसे एक पेचदार डन्डा पार किया जाता है जिसके छोर पर हत्था बना रहता है। इसके दूसरे छोर पर भ्रूणमें बाँधनेके लिये एक साँकल या रस्सी रहती है। इस पेचदार डन्डेके छोर पर एक खाँचा बना रहता है जिसमें एक ढीला छल्ला रहता है। यह गिरे नहीं

चित्र २२२. सुधारनेका उदाहरण।
गुदा-अँकुसीकी सहायतासे भ्रूण खींचना। (बेनेश)

इसलिये एक कील लगा दी जाती है। इसलिये जब डन्डा घुमाया जाता है तब उसकी मरोड़ इस छल्लेसे आगे बढ़ सांकल या रस्सी पर नहीं जाती। जब डन्डेका पेच खोला जाता है तब उससे बँधी सांकल और भ्रूण बाहरकी ओर खिचते हैं। और इधर हैकल गायके पिछले भागको दूसरी तरफ ठेलती है।

यह यत्र ऐसा बनाया गया है कि, खिंचाव केवल भ्रूण पर पड़े। हम यह देख चुके हैं कि वस्तिमार्गमें फँसे भ्रूणको पीछे ठेलनेमें बहुत बड़ी शक्तिकी जरूरत होती है। पीछे ठेलनेमें एक आदमीसे अधिककी शक्ति नहीं लगायी जा सकती। पर खींचनेमें यह बात नहीं है। खींचनेके समय कुछ आदमी यदि गायको आगेसे पकड़ स्थिर रक्खें तो कुछ आदमी भ्रूणको रस्सीसे बांध खींच सकते हैं। पर ठेलनेके समय यह सभव नहीं है। यह हो सकता है कि, उपयुक्त शक्ति लगा भ्रूण ठेला जाय और तब उसे काटकर मांकी जान बचायी जाय। पर यदि पूरा जोर लगाकर ठेला नहीं जा सका तो भ्रूणोच्छेदन (भ्रूण-व्यवच्छेद) नहीं हो सकेगा और तब गायका कष्टसे मरना हमें असहायकी तरह देखना होगा।

जरासे सुधारसे वैरनका यत्र ठेलनेके काममें ठीक उसी तरह आ सकता है जैसे कि, खींचनेके काममें आता है।

१५२०. वैरनका खींचने-ठेलनेका यंत्र (सुधरा हुआ)। इच्छाके अनुसार भ्रूणको ठेलने या खींचनेके लिये।

इस सुधरे रूपमे पिछले भागकी हैकलकी तरह ही एक और हैकल (Coller) होती है। यह हैकल गाडीके घोड़के गलेमें जैसे पहनायी जाती है उसी तरह गलेमें पहना दी जाती है।

अगली और पिछली हैकल रस्सियोंसे एक साथ बांध दी जाती हैं। इसके लिये उनमें अकुसियां लगी रहती हैं। दोनों हैकलें अब सयुक्त हो जाती हैं। पिछली हैकलमें वैरनकी मशीनके सभी पुरजे हैं। भेद इतना ही होता है कि, सांकलकी जगह इसमें एक ही पट्टी और डन्डा होता है। इसके छोर पर कूनका कब लगा रहता है। इसकी जगह रस्सी और अकुसी हो सकती है। कुछ और छोटे छोटे उलट फेर होते हैं। सुधरे यन्त्रका चित्र अगले पृष्ठ पर है।

G और H हैकल हैं। एक, गायके पिछले भाग और दूसरी गरदन पर रहती है। दोनों हैकलें अपनी अपनी जगह पर एक दूसरीसे उन परकी अकुसियोंसे
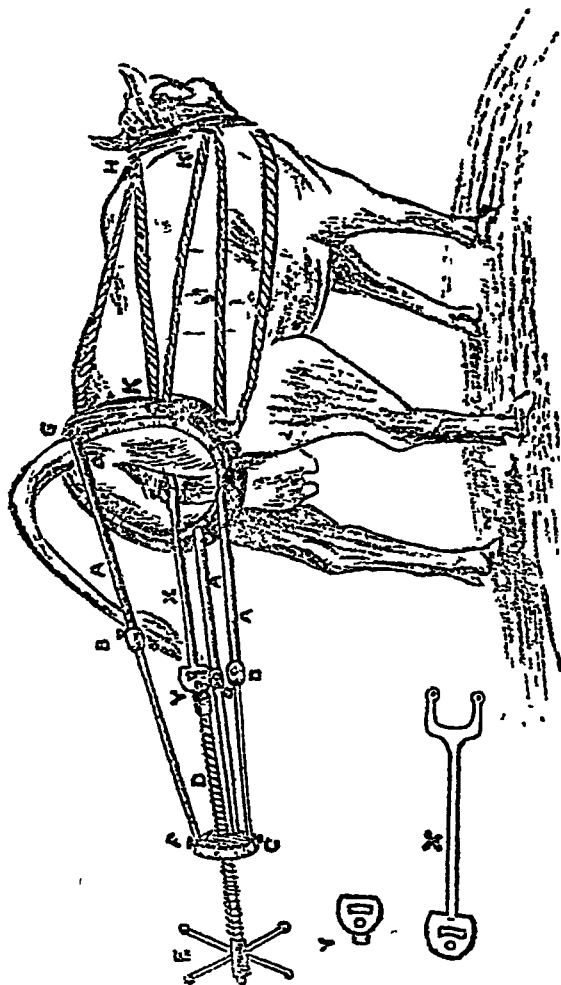
चित्र २२३. बैरनका धात्री यन्त्र (सुधरा)।

GH पिछले भाग और गलेका हैकल। KK अँकुसियाँ जिनमें रस्सियाँ पिरोयी हैं। AB डंडे हैं जो FC पट्टीमें लगे हैं। E हत्था D पेचको घुमाता है जो रिपेलर से जुड़ा हुआ है।

K K रस्सी डाल बँधी हुई हैं। रस्सीसे बाँध देने पर दोनों हैकलें अपनी जगह पर कसी रहती हैं। यदि गाय लेटना चाहे तो उसके पेटके नीचे पुआलके पुल्ले या पुलिंदे रख देना चाहिये कि वह उसे पूरी तरह सँभाले रहें। यदि वह बैठ जाती है तो कोई हानि नहीं।

जब दोनों हैकलें अपनी जगहों पर बैठा दी जायँ तब पिछली हैकलके पुरजे उसमें जोड़े जायँ। इसमें तीन डन्डे A A A होते हैं जो कुछ दूर तक खोखले हैं कि उनमें बढावके डन्डे B B B पेचसे कसे जा सकें। इनके दूसरे छोर पर पट्टी F C रहती है। F C पट्टीसे पेचदार धुरी D पार होती है जिसमें भुजा X लगी रहती है। यह रिपेलर है। लगानेका ढग अलग दिखाया गया है। पेचदार धुरी D के छोर पर X छुट्टा छल्ला Y होकर बैठाया जा सकता है। धुरी D हत्थे E के द्वारा घुमाकर भीतर या बाहर की जा सकती है।

रिपेलर दँताली इस तरह बैठायी गयी है कि, वह भ्रूणको पकड़ सके। दँतालीमें कूनके क्रचकी तरह छल्ले हैं। यह लगावकी जगहपर दँतालीमें पिरोयी रस्सी खींचकर दृढ रखे जाते हैं।

जब सब पुरजे पूरी तरहसे बैठा दिये जायँ तो हत्था E घुमाकर धुरी D को भीतरकी ओर कसो और ठेलना शुरू करो।

पर यदि मशीनको खींचनेके लिये व्यवहार करना है तो रिपेलर-भुजाके बदले अकुसियाँ लगी हुई रस्सी या भ्रूणमें लगे हुए फन्दे काममें लाओ। और धुरीको विपरीत दिशामें घुमाओ कि वह भ्रूणके पाससे पीछे हटे।

१५२१. भ्रूणोच्छेदन : भ्रूणव्यवच्छेद (Embryotomy)

जब पूरे भ्रूणका प्रसव नहीं कराया जा सकता तब यन्त्रोंकी मददसे उसके कुछ भाग काट उसका आकार छोटा करते हैं। यह भ्रूणोच्छेदन या भ्रूणव्यवच्छेद है।

देहके विभिन्न भाग काटकर निकाले जा सकते हैं। यदि माताकी देहमें कोई वैरूप्य हो या भ्रूण विकटाकृति हो, अस्वाभाविक उदय स्वाभाविक न किया जा सके अथवा अटकी देह निकाली न जा सके तो माताकी जान बचानेके लिये बच्चेका एक एक अग काटकर निकालनेकी आवश्यकता आ पड़ती है। ऐसे दिना केवल एक ही हाथसे बच्चेको काट निकालना कठिन और बड़े परिश्रमका काम है। प्रसव

करानेमें देहकी कड़ी मेहनतका जिकर ५१३ पैरामें हो चुका है। भ्रूणोच्छेदन करनेमें यह और अधिक चाहिये।

चिकनानेवाला द्रव कबका वह गया रहता है। झिल्लियाँ चिपचिपी हो जातीं और उँगलियोंमें चिपकनी हैं। भ्रूणके तन्तु शिथिल और फूलते रहते और छुरीसे छटकते हैं। व्यवच्छेद करनेके भाग व्यवच्छेदक से दूर होता है। इन सभी कारणोंसे जितना समझमें आता है उससे भी कहीं जादा यह काम कठिन है। प्रजनन-अवयव छिल जानेके कारण सूज जा सकता है तब तो हाथका घुसाना भी एक समस्या हो जाती है।
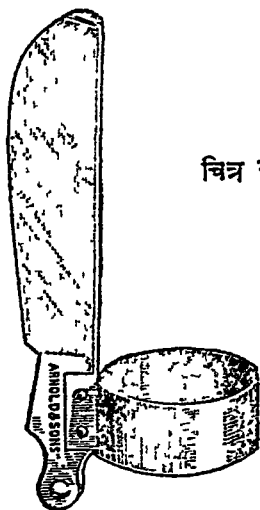
चित्र ३५४. भ्रूणोच्छेदकी उँगली छुरी।
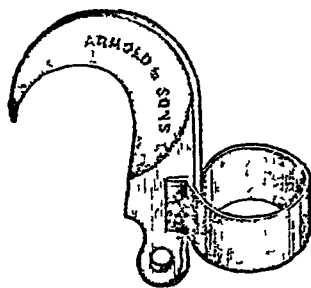
इस काममें अधिकतर काटने, चीरने या कुचलने जैसी कुछ प्रक्रियायें करनी होती हैं। काटनेके लिये अनेक यन्त्र काममें लाये जाते हैं। तेज जेबी छुरी जिसके हत्थेके छोर पर छेद हो, अनेक विशेष आकारकी छुरियोंकी जगह पर अच्छा काम कर सकती है। इसकी कमानी मजबूत होनी चाहिये जिससे कि, वह आसानीसे मुड़ न सके।

इसके हत्थेमें छेद होना जरूरी है। छेदमें रस्सी पिरो चीरफाड करनेवालेकी कलाईसे बाँध दी जाती है। यदि छुरी हाथसे छूट जाय तो रस्सीके सहारे खींचकर फिर पायी जा सकती है। सभी छोटे औजार जो भगके भीतर ले जाये जायँ उनमें

यह प्रवन्ध रहना जरूरी है। नहीं तो वडा उत्पात हो जा सकता है। यदि जेवी छुरी पसन्द न हो तो अपने पसन्दकी चीरफाडकी छुरीका उपयोग करो। छुरीका फलक खुला रहना चाहिये। हत्था मुट्ठीमें हो और नीचेसे उँगली लगाकर धार बचाओ जिससे कि, छुरी सहित हाथ भगमे होकर सरलतासे घुसाया जा सके। भेटेरिनरी छुरियोंके कुछ नमूनोंमें सरकने या खिसकने वाली ओट होती है। जब छुरीसे काम लेना होता है तो ओटको सरका दिया जाता है। दूसरे नमूनोंमें कमानीका प्रवन्ध है जिससे कि, फलक हत्थेमें वन्द रहते हैं और कामके समय

चित्र २२५. साँकल आरी।
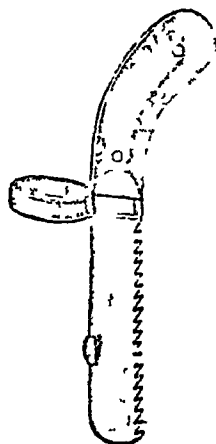
चित्र २२६. हाथ आरी।

उन्हे खटसे वाहर कर लिया जाता है और इस खुली अवस्था में यह दृढ रहता, मुडता नहीं। पर औजारमे जटिलता जितनी कम हो व्यवहारमे वे उतने ही अच्छे होते हैं।

काटनेवाली छुरीके अतिरिक्त प्रायः हड्डी काटनेवाले औजारकी भी जरूरत होती है। यह काम लम्वे हत्थेवाली छेनीसे लिया जाता है। इसकी धार V की तरह होती है। यह तेज होती है पर इसके कोने भोथे होते हैं। ऐसी छेनी घुसानेके वाद उसकी V-जैसी धार हाथसे हड्डीकी ओर करनी चाहिये। हाथसे छेनी

वहाँ रक्खी जाती है और सहायक लोग हथौड़ीसे भगके बाहर उसके हत्थे पर चोट करके हड्डी काटते हैं। हाथ भीतर रहकर छेनीकी धारका सचालन करता है।

कभी कभी तार-आरी (wire-saw) या साँकल-आरी (chain-saw) देह काटनेके लिये उपयोगी होती है। तार-आरी वल्लरदार नलीमें काटी जानेवाली जगह तक पहुँचायी जाती है। तार या साँकल-आरी उस स्थानके चारों ओर फन्देकी तरह रहती है। इसके दोनों छोर बाहरसे खींचे जाते हैं। जिससे चाहा अंग कटता है।

कटे भागको बाहर निकालनेके लिये अंकुसीका उपयोग होता है। नुकीली अंकुसी मांसमें चुभाकर उसकी रस्सी बाहरसे खींची जाती है। भ्रूणोच्छेदनमें स्रुवका भी उपयोग है।

१५२२. कपालोच्छेदन (Craniotomy)

प्रजनन-मार्गसे पार हो जानेके लिये सिरका आकार छोटा करनेकी जरूरत हो सकती है। इस कामके लिये कपालोच्छेदन किया जा सकता है। इसमें छुरीसे सिरमें छेद करना होता है। छेद हो जाने पर उसमें उँगली डाल उसे बड़ा करना होता है। उसके भीतरकी चीज बाहर निकल आती है। खींचने पर खोखली खोपड़ी श्रोणिमार्गमें पिचक जाती है और बाहर निकल आती है।

जब इतनेसे काम नहीं चलता तो निचले जबड़ेमें रस्सी बाँध जहाँतक हो सके खोपड़ीसे उसकी सन्धि काट ली जाती है। खींचने पर आंशिक रूपसे कटा जबड़ा बाहर आ जाता है। इससे सिरको बाहर निकल आनेकी जगह मिलती है।

१५२३. शिरश्छेदन (Decapitation)

यह देहसे सिरका पूरी तरह अलग कर लेना है। इसमें खतरे भी हैं इसलिये जब एकदमसे जरूरी हो जाय तभी यह किया जाय। जैसे कि, द्विशिर विकटाकार बच्चा हो तो शिरश्छेदनमें माताको खतरा रहता है क्योंकि हड्डियोंकी रूखडी नोंक निकल आती है जो उसे चुभ सकती है।

१५२४. अंगच्छेदन (Amputation of the limbs)

यह बहुधा करना होता है। कुशल व्यक्तिके हाथों यह कठिन काम नहीं है। खींचनेके लिये अंगको पहले ही बाँधकर तैयार रखते हैं। तब त्वचा कँधे या श्रोणि-सन्धि पर अलग की जाती है। खींचकर मांस और स्नायुओंको नोंच लेते हैं और अंगको बाहर करते हैं। कभी कभी केवल घुटने तक अंगच्छेदन करनेकी जरूरत होती है। और तब अलग किया भाग बाहर निकल जाता है। उचित हाथके कौशल से यह किया जा सकता है।

१५२५. देहविभाजन

कभी कभी श्रोणिमें धड़ इस ढंगसे फँसता है कि, एक बार उसका एक भाग काटकर निकालना होता है और दूसरी बार दूसरा। इसके लिये भ्रूणको खींचकर जहाँ तक हो सके बाहरकी ओर निकाल लेना चाहिये और अंगके आसपास उसे काटना चाहिये। विभाजनके पहले कुछ चमड़ा चीरकर अलग कर दो और जब विभाजन हो जाय तो यही चमड़ा कटी जगह पर टाँक दिया जाय जिससे बचा भाग गोल हो जाय। तब देहमें नुकीली अंकुसी चुभा दो और बची देहको भीतर ठेलो। तब बचे भागकी स्थिति हस्त कौशल से सही करो और उसे श्रोणिसे बाहर निकाल लो।

१५२६. अन्त्रआदि (Viscera) का निकालना

पेटके भीतरी अवयवोंका पहले निकालना जरूरी हो जा सकता है जिससे कि, बचे हुए अंग निकालनेमें सुबीता हो। पेट फाड़कर अँतड़ी आदि उसके भीतरकी सभी चीजें खींच लो।

हरेक पीड़ित पशुकी अपनी खास समस्या होती है। जो साधारण विधियाँ बतायी गयीं हैं उनसे सिर्फ इन बातोंकी सूचनाएँ मिल जाती है कि प्रत्येक पीड़ित पशुके लिये क्या किया जाना चाहिये।

अध्याय ५८

साधारण ज्ञातव्य बातें और शब्द-परिचय

Alteratives : परिवर्तक : ऑल्टरेटिभ या परिवर्तक उन दवाओंको कहते हैं जो पोषण और मलशुद्धिकी क्रियाओंमें परिवर्तन कर शरीरकी साधारण क्रियाको फिरसे लौटाते हैं। जैसे कि, सखिया, आयडिन, आयोडाइड्स, रसकपूर (कैलोमेल), सोडा वाईकार्व, कुचला और तिक्तरस।

Analgesics : पीड़ाहर : उन दवाओंको कहते हैं जिनसे दर्द दूर होता है। यह शव्द केवल उन्हीं दवाओंके लिये व्यवहार किया जाता है जिनसे दर्द का अनुभव तो दूर हो जाय पर बेहोशी न आवे। जिन पीड़ाहरोंका असर नाड़ीतंत्र पर होता है उन्हें वेदनाशून्यक (anodynes) और जिनका स्थान विशेषपर प्रभाव होता है उन्हें एकांगी शून्यक (local anaesthetics) कहते हैं।

Ankylosis : सन्धिस्तम्भ : सन्धिपरकी अस्थियोंके जुड़ जानेसे हुए कड़ेपनको कहते हैं। जहाँ अस्थियाँ जुड़ नहीं जातीं वहाँ सौत्रिक बंधनोंके कारण सन्धिकी गति रुक जाती है। यह अगले और पिछले घुटनों (knee and hock) की संधियोंमें अधिक होती है।

Anodynes : वेदना-शून्यक : वेदना निवारक दवाओंको कहते हैं जैसे कि, संखिया, कपूर, सोडा सैलीसिलेट।

Antacids : अम्लघ्न : पेटकी अम्लता कम करनेवाली दवाको अम्लघ्न कहते हैं जैसे सोडा बाईकार्बोनेट।

Anthelmintics : कृमिघ्न : कृमिनाशक दवाओंको कहते हैं। मुख्य कृमिनाशक तूतिया, कमला चूर्ण या कवीला, तारपीन और अजवाइन का सत्त

(थाइमल) हैं। क्लोरोफॉर्म, सखिया और चेनोपोडियमके तेल जैसी अन्य दवायें भी काममें आती हैं। इनके जहर लगनेका खतरा रहता है इसलिये ये यहां नहीं बतायी जातीं।

Antidotes : विषघ्न : अगद : विषके प्रभावको विफल करनेवाले पदार्थ विषघ्न हैं। अनेक विषघ्न स्वय विष हैं। इसलिये इनके उपयोगमें सावधानी रखनी चाहिये। कुछ विष और उनके विषघ्न नीचे लिखे जाते हैं :—

खनिजअम्ल (Mineral Acid) : सोडा बाईकार्ब, कैलशियम और मैगनीशियम, कारबोनेट, स्निग्धकर पदार्थ (demulcents), अनुत्तेजक तेल (bland oils), मड।

वत्सनाभ (Aconite) : नमकके तेज घोल जैसा वामक, टारटार एमेटिक।

सखिया (Arsenic) : किसी कार्बोनेटके घोलके साथ ताजा मिलाया फेरस सल्फेट, चूनेका पानी।

कारबोलिक एसिड (Acid Carbolic) : चूनेका पानी, सोडा या मैगनीशियम सल्फेट, अडेकी सफेदी।

तूतिया वगैरह (Copper salts) · तेलके जुलाब, क्षार, स्निग्धकर पदार्थ।

सीसा वगैरह (Lead salts) · मैग सल्फ, तीसीका तेल, दूध।

पारा वगैरह (Mercury salts) : अडे, मड, मैग सल्फ।

मौर्फिया (Morphia) : स्ट्रिकनीनकी सूई।

अफीम (Opium) : लकडीके कोयलेका चूर्ण, जुलाब।

स्ट्रिकनीन (Strychnine) : वामक, क्लोरल हाइड्रेट, उपशामक।

Antiphlogistics · प्रदाहनिवारक औषधि : उन्हें कहते हैं जो प्रतिउत्तापक (counter irritants) हैं, और जिनका उपयोग प्रदाह पर होता है। थन और मोच पर इनका व्यवहार खास तौर पर होता है। केओलिन और ग्लिसरीनमें गन्ध तेलों (essential oils) के योगसे यह बनते हैं। नीचे एक सरल नुस्खा लिखा जाता है :—

केओलिन (चीनी मिट्टी)	...	५ आउन्स
बोरिक एसिड	...	५ ड्राम
ग्लिसरीन	...	४ आउन्स

केओलिनमें पानी मिला गीले आटेकी तरह नरम बनाओ। इसे गरम करो। ग्लिसरीन अलग गरम करो। दोनोंको मिला दो। ठंढा होते समय ½ ड्राम तारपीन मिला दो।

Antiseptics : कोथघ्न औषधि : वह पदार्थ हैं जिनमें पशु या वनस्पतियोंमें जीवाणु पैदाकी सड़ाँद रोकनेकी शक्ति है। कुछ कोथघ्न ये हैं :— पारेके नमक, बोरिक एसिड, आयडिन, सैलीसिलिक एसिड, कारबोलिक एसिडका घोल, पोटास परमैंगनेटका घोल, नीमका पानी, अजवाइनका सत्त और नोन। पारेके नमकोंमें मरक्यूरिक क्लोराइड पानीमें घुल सकता है और सबसे अच्छा है। यह भयानक विष है। रसकपूर (कैलोमेल) पारेका नमक है। यह पानीमें घुलता नहीं है। खानेसे ही इसकी कोथघ्न क्रिया होती है।

Antispasmodics : आक्षेपनिवारक : वे औषध हैं जिनसे आक्षेप और ऐंठन या खिंचाव मिटें। इनकी क्रिया सीधे पेशियों पर हो सकती है अथवा उन पेशियोंका नियंत्रण करनेवाले नाड़ीतंत्र पर। उन्हें यह नाड़ीतंत्र शांत करता है।

क्लोरोफॉर्म जब सुँघाया जाता है तो पहले वह उत्तेजित करता है। इसके बाद नाड़ियोंके अंतिम सिरोंकी अचेतनता या जड़ता पैदा कर पेशियोंको शांत करता है। जड़ता पैदा करके अफीम और मौर्फिया भी आक्षेपोंको शमन करते हैं। क्लोरल हाइड्रेट मस्तिष्क और सुषुम्नाका उपशामक है, और आक्षेप निवारण करता है।

Arhythmia : स्पन्दन-व्यतिक्रम : हृदयकी अनियमित धड़कनको कहते हैं। इसमें बीच बीचमें एक आध धड़कन रुक भी सकती है। इससे हृदयकी किसी बीमारीका पता चल सकता है। पर अकेला यह क्षणिक और अहानिकर है।

Arthritis : संधिप्रदाह : इसका मुख्यरूप आभिघातिक या चोट और वातव्याधिके कारण हो सकता है।

Artificial Respiration : कृत्रिम श्वासक्रिया : पशुओंके लिये इसका वैसा महत्व नहीं जैसा मनुष्योंके लिये है। पर फिर भी डूबने, या साधारण शून्यकके उपचारसे अथवा आग लगनेपर धूँएँसे दम घुटने पर साँस रुक सकती है।

चिकित्सा : सभी बधन खोल दो। मुँह खोल जीभ बाहर निकालो। कठकी अपेक्षा गरदनको कुछ ऊँचा रखो जिससे कि जमा पानी निकल जाय।

पीछेकी लचीली पसलीको दबाओ। इसके लिये दोनों हथेली पसली पर रख देहका कुल भार देकर ४ या ५ सेकेन्डके लिये झुको। फिर दबाव हटालो। इस तरह कई बार ऐसा करो। बड़े पशुकी पसलीपर दबाव डालनेके लिये आदमी बैठे और दबाव हलका करनेके लिये उठे।

पशुकी टाँग दृढताके साथ पकड़ सहूलियतके साथ पेटकी तरफ दो दो सेकेन्डमें मोड़ो और फिर खींचो। अगले पैरोंको रस्सीसे बाँध आगेकी ओर जितना खींचा जा सकता है खींचना चाहिये। कुछ मिनटोंतक यह उपचार करनेके बाद पशुकी करवट बदल देनी चाहिये। साँस चलानेका प्रयत्न तब तक होता रहे जब तक यह न मालूम हो कि पशु मर गया।

Asphyxia : **श्वासरोध :** साँस रुक जानेको कहते हैं। रक्तमें ऑक्सीजनके अभावसे हुई अवस्थामें यह होता है। सरक फन्देसे पशुको बाँधनेपर प्रायः खिंचावसे वह गलेमें कस जाता है। इससे भी श्वासरोध हो सकता है। इससे छूटनेके लिये पशु जितनी कोशिश करता है फन्दा उतना ही कड़ा होता जाता है जिससे गला घुटता है।

इससे छुटकारा पानेकी पशुकी कोशिश पर ध्यान जाना चाहिये। इसके सिवा एक लक्षण जल्दी जल्दी साँस लेना भी है। फिर जल्दी ही वह मुँह खोल लम्बी साँस लेने या हाँफने लगता है। इसके बाद आक्षेप होने लगते हैं। इसके बाद दिलकी धड़कन इतनी मन्द हो जाती है कि मालूम नहीं होती और मृत्यु हो जाती है।

साँस रुकनेसे हुए ऑक्सीजनका अभाव पूरा करनेकी कोशिश शरीर करता है जिससे रक्तचाप बढ़ जाता है। ऊँचे रक्तचापके कारण हृदयके दाहिने भागमें अधिक रक्त जमा हो जाता है। यह हर धड़कनके साथ पूरा बाहर नहीं निकल पाता और इससे हृदय फैल जाता है। बढते चापसे पेशियाँ काम नहीं कर पातीं जिससे हृदयका कार्य बन्द हो जाता है। ऐसी अवस्थामें यदि कोई बड़ी शिरा काट दी जाय तो कुछ त्राण मिलता है।

चिकित्साके लिये कंठपर का दबाव हटाओ और पशुको खुली हवामें रखो। यदि हल्की साँस हो तो कृत्रिम श्वासक्रिया कराओ। अमोनियाँ सुँघानेसे भी कुछ लाभ होता है। यदि गरदनकी शिरायें फूल गयी हों तो मन्याशिराको काट कुछ खून बहा दो। इससे नाड़ी बलवान् हो जा सकती है।

Aspiration : **प्रस्रवण** : शरीरके स्वाभाविक खातोंसे द्रवोंके निकलनेको कहते हैं। निदान या चिकित्सा दोमें से किसी कामके लिये यह किया जा सकता है। चिकित्साके लिये व्रीहिमुखनलीकी सहायतासे अधिक मात्रामें द्रव निकाला जाता है। जैसे कि, जलोदरमें। निदानके लिये अन्तस्त्वक् सूईसे थोड़ासा निकाल लिया जाता है।

Astringent : **कषाय : संकोचक** : कषाय औषधियाँ वह हैं जिनसे रक्तआदिका स्राव रोका जाता है। जैसे कि फिटकरी, तूतिया, पोटाश परमैंगनेट, हर्र।

Atrophy (**एट्रोफी) क्षीणता** : किसी तन्तु या अगके किसी अंशकी कार्यकरी शक्तिके ह्रासको कहते हैं। पर इसके विपरीत किसी अंग या उसके अंशकी वृद्धिका नाम अतिवृद्धि (हाइपरट्रोफी) है। पोषणके अभाव या उस भागमें अच्छा रक्त प्रवाह नहीं होनेसे एट्रोफी या क्षीणता होती है।

Bandage : **पट्टी करना** : क्षतोंकी हिफाजतके लिये पट्टी की जाती है। मनुष्योंकी अपेक्षा पशुओंकी पट्टी करना कठिन है।

अगली टाँगमे लपेटी-पट्टी (roller bandage) काममे लायी जा सकती है। पर दूसरी जगहो पर इस पट्टीसे काम नहीं चलना। वहुपुच्छ (many tailed) पट्टी काममें लानी होती है।

नापके अनुसार हल्का कपड़ा काट लिया जाता है। और उसमें पूँछ वनायी जाती है। फीतेकी तरह मोड़े कपड़े इसमें जोड़े जाते हैं जो लपेटनेके वाद दूसरी छोरकी पूँछोंसे वाँधे जाते हैं।

Belladona : **वेलैडोना** : इसकी जगह धतूरेके पत्तेका लेप काममें लाओ।

Bites : **दंशन** : दशोंको छुतहा क्षत मानना चाहिये। कुत्तेका दश (काटना) इसका मुख्य उदाहरण है। कुत्तेके काटनेसे कुकुरविष (rabies) की छूत लगती है जिससे मृत्यु हो जाती है। देखनेमें सुस्थ कुत्तेके काटनेसे भी अन्तमें छूत पैदा हो जा सकती है। इसलिये जव भी कुत्ता काटे तो पागल कुत्तेकी तरह ही इलाज हो। सर्प दश भी वहुत होते हैं। साँप विषैले और निर्विष भी होते हैं। यदि साँपकी पहचान न हो सके या यह मालूम नहीं हो सके कि, यह साँप निर्विष है तो उसका इलाज विषैलेकी तरह करना चाहिये। प्राथमिक चिकित्साके

लिये दंशकी जगहके ऊपर बांधो। इसके ऊपर एक बन्धन और लगाओ और फिर दंशस्थानको चीर खून बहाओ। इसके बाद चीरेमें पोटाश परमेंगनेट भर पट्टी बाँध दो। पशुकी हालत देख धीरे धीरे बन्धन खोल दो। यदि किसी विषैले साँपने पशुको कुछ देर पहले काटा है तो कुछ करनेको बाकी नहीं रहता। कीमती पशुके लिये मिल सके तो एन्टीमेनम चिकित्सा करनी चाहिये। पशुके आकारके अनुसार मनुष्योंको दी जानेवाली मात्रा बढा दी जानी चाहिये।

Bleeding: Hæmorrhage· रक्तस्राव: रक्त शिरामें रहता है। इसमेंसे निकल आनेपर स्राव शुरू होता है। बाहरकी ओर निकलने पर स्राव बाह्य कहा जाता है। पर यदि किसी भीतरी अवयवसे रक्त चले और भीतरके किसी खातमें ही भरे तो उसे अतस्स्राव कहते हैं। धमनी, शिरा या केशिकाओंके स्राव हो सकते हैं। किसी धमनीके कट जानेसे गभीर आशका हो जाती है। शिरासे रक्त निकलना दबानेसे रुक सकता है। केशिकाओंका स्राव थक्का बन तुरत बन्द हो जाता है। पेटके रक्तस्रावको उदर स्राव (haematemesis) कहते हैं। फेफड़ेके स्रावको फुसफुसस्राव (haemoptysis) और पेशावमें रक्त निकलनेको रक्तमूत्र (haematuria) कहते हैं।

कट जाने पर धमनी सकुचित होती और तन्तुओंसे मिल जाती है। यदि धमनी छोटे आकार की है तो सिकुड़ने और थक्का जमनेसे खून आपसे आप बन्द हो जाता है। कटे घावमें यदि बड़ी फांक हो गयी हो तो उसमें खून भरकर जमता है। यह थक्का पहले मुलायम होता है बाद को कड़ा हो जाता है। इससे रक्त चलना बन्द हो जाता है। पर यदि कोई बड़ी धमनी कट जाय तो तुरत बहुत रक्त निकल जाता है जिससे रक्ताल्पता हो जानेके कारण मृत्यु हो जाती है। जब बहुत खून बहता है तब पशुको बांधकर रखना होता है। इसके बाद क्षत या घावको दबाना और जरूरत हुई तो टांका लगा कर पट्टी बांधनी होती है।

पशुको बांधकर शान्त रखना होता है। पशुकी सींगें पकड़ गलेमें रस्सी बांधो और पिछले पैर छानो जिससे कि, क्षतकी जगह सरलता और बिना भयके छुई जा सके। यह याद रखना चाहिये कि, पशुको जितनाही छटपटाने दिया जायगा उतना ही अधिक रक्त बहेगा और उसे रोकनेमें उतनीही कठिनाई होगी। इस लिये पशुको इस तरह बांधो कि वह छटपटा न सके।

यदि घाव गहरा है और उसके कारण अधिक पीड़ा तथा छटपटानेके सबब क्षततक पहुँचना असंभव हो तो क्षतकी चिकित्सा और रक्तरोध करनेके लिये सर्वशून्यक (general anaesthesia) का व्यवहार करना चाहिये।

बन्धनके द्वारा दवाव डालना पहला काम है। कटे घावमें रक्तस्रावकी जगह का पता लगाना चाहिये। इस कामके लिये रुई या कम्बलका साफ टुकडा नमकके घोलमें भिगा घावमें भरना चाहिये। दो तीन बार ऐसा करने पर घावकी गन्दगी और खुंट या थक्के साफ हो जायेंगे तब धमनी का पता लग जायगा। इसमें कपड़ेका एक टुकड़ा भर कर दावना चाहिये। इससे खून वहना वन्द हो सकता है। कटे अङ्गमें मुलायम रस्सी लपेट उसे इतना ऐंठना चाहिये कि, धमनी पर चाप पड़े और रक्त रुक जाय। इसको "मरोड़नी" या टूर्निकेट (tourniquet) कहते हैं। चाप वढ़ानेके लिये छड़ीके टुकड़ेसे काम लिया जाता है। यदि धमनीका ओर छोर मिल जाय तो उसे धमनीकी चिमटी (artery forcep) से पकड़ बाहर निकालो जौर जीवाणुरहित सूती या रेशमी धागेसे उसे बांधो। इससे खून रुक जायगा।

कभी कभी साधारण रक्तस्रावमें रक्तरोधक पदार्थ (styptics) लगानेसे भी रक्त रुक जाता है।

(१) गरम या ठंढे पानीसे भी रक्त रुक जाता है। गुनगुने पानीसे रक्त वहता है। इसलिये पानी सह सकने लायक काफी गरम चाहे ठंढा ही हो। ठंढे और गरम पानीसे वरफ अधिक अच्छी है।

(२) दागना (Cautery): लोहे आदिकी तपती छड्से दागनेसे खून वन्द हो सकता है। यह तव किया जाता है जव कि, रक्तस्राव ऐसी जगहसे हो रहा है जहाँ कुछ उपचार संभव नहीं। जैसे कि, सींग या हड्डी आदिमें दवी धमनी या शिराका रक्तस्राव होना। उदाहरणके लिये टूटे सींगके भीतर उसको जड़से स्राव होना।

रक्तस्राव रोकनेके लिये रासायनिक पदार्थ हैं:—

(क) पानीमें नमकका तेज घोल।

(ख) फिटकिरीका १० या २० सैकडा घोल अथवा सूखी वुकनी।

(ग) तूतिया।

(घ) कत्था।

(३) बत्ती भरना (Packing) : गहरे और चिथे या छिन्नभिन्न क्षतमें यदि रक्तस्रावकी जगहका पता न चल सके और थक्का जम कर स्रावके रुकनेका लक्षण नहीं दिखायी देता हो तो बत्ती भरना चाहिये। कपड़ेको उबाल जीवाणुरहित कर छोटी छोटी गोलीसी बना लो। इन्हें एक एक कर घावमें ठूँसो। इसके बाद दोनों तरफकी चमड़ी इनके उपर खींचकर चढाओ और टांका लगा दो।

प्रसवके बाद अथवा पुरैन बलात् निकालनेसे इतना स्राव हो सकता है कि, प्राण चला जाय। रोगी को शान्त करो। उस स्थानको कोथघ्न जलसे धोओ। साफ कपडा नमकके पानीमे उबाल कर निचोडो और कोथघ्न अवस्थामें ही उसे ठंढा होने दो। इसके बाद उसे स्रावकी जगह भरो। आठ दस घंटेके बाद स्राव रुकने पर उसे धीरे धीरे बाहर निकाल लो कि थक्के नहीं उचलें।

Blood Defibrinated : **फाइब्रीन-रहित रक्त :** देहमे बहनेवाला रक्त जिन पदार्थोंका बना है वह अलग अलग हो सकते है। खून निकलने पर तीन चार मिनटमें थक्का बन जाता है। इसके थोड़ी देर बाद तलेमें तरल द्रव जमा हो जाता है। इसे रक्तका **सीरम** कहते हैं। जमे रक्तमे रक्तकण (Corpuscles or erythrocytes) और फाइब्रीन होते हैं। सलाई (शलाका) से रक्तको पीटनेपर उसके ऊपर कुछ छिछडे जमा हो जाते हैं। यह **फाइब्रीन** है।

यदि निकला हुआ खून धीरे धीरे ठढा हो तो रक्तकण नीचे बैठ जाते हैं और ऊपरकी ओर निर्मल द्रव निथर आता है। यह **प्लाज्मा** कहा जाता है।

रक्तमें रक्तकण (erythrocytes or corpuscles) और प्लाज्मा होते हैं। प्लाज्मामें सीरम और फाइब्रीन होती हैं। पीटनेसे फाइब्रीन अलग हो जाय तो सीरम बच रहता है।

जिस रक्तमेंसे फाइब्रीन निकाल ली जाती है उसे फाइब्रीन-रहित रक्त (defibrinated blood) कहते हैं। इसमें सीरम और रक्तकण रह जाते हैं।

Breathlessness : **साँस फूलना :** जब किसीको ऐसा मालूम होता है कि, दम घुट रही है तो उसे साँस फूलना कहते हैं। रक्तमें अपर्याप्त ऑक्सीजन मिलनेसे ऐसा होता है। रक्ताल्पतामे पर्याप्त ऑक्सीजन रक्तमे नहीं मिल पाता तब साँस फूलती है। फेफड़ेमें रोग होने पर वह रक्तमें ऑक्सीजन पूरी तरह नहीं मिला पाता जिससे साँस फूलती है और कास, निमोनियाँ और क्षय होते है। हृदयकी

असमर्थतासे भी साँस फूलती है। यदि हृदय आवश्यक रक्त वाहर नहीं निकाल पाता है तो ऑक्सीजनकी कमी होनेसे साँस फूलती है।

Burns and Scalds : **जलना और छाला पड़ना :** ढोर प्रायः जल जाया करते हैं। वहुत अधिक जलने पर कुछ नहीं किया जा सकता है। पर यदि दो चार जगह ऊपर ऊपर जल गया हो तो दर्द दूर करने और घाव जल्दी पूरनेकी चिकित्सा हो सकती है। जरासा जलने पर कैरनके तेलका (Carron oil) व्यवहार सवसे अच्छा है। तिल, तीसी या नारियलके तेलमें वरावर मात्रामें चूनेका पानी मिलाकर यह वनता है। पानीमें चूना घोलकर निथार लेनेसे चूनेका पानी तैयार हो जाता है। इस साफ पानीमें कुछ भाग चूनेका भी घुला रहता है। इस पानीमें समभाग तेल मिला चलानेसे एक अवद्रव वन जाता है। इसे जले पर लगानेसे ठढक पड़ती और घाव भरता है।

फेरवदल कर पिकरिक एसिडके सपृक्त घोलमें रुई या पट्टी भिगाकर लगा सकते हैं। पिकरिक एसिड जलन मिटाती और कोथघ्न है। इसी कामके लिये मैग० सल्फ का संपृक्त घोल भी व्यवहार किया जा सकता है।

जलना सूखे तापसे होता है और छाला आर्द्र ताप जैसे कि, गरम पानीसे होता है। जरासे जलने या छालेमें जादा परीशान होनेकी जरूरत नहीं। कोथघ्न पट्टी करना ही काफी है। पर यही यदि वहुत जादे हों तो भयावह हो जा सकते हैं फेफड़ेकी तरह त्वचा भी विसर्ग या मलशुद्धिका अवयव है। जलनेसे यह नष्ट हो जा सकती है। त्वचाके काम नहीं करने पर देहमें विष जमा हो जाता है। इस कारण मृत्यु हो जा सकती है। यदि जलना गहरा न हो ऊपर ऊपर ही हो तो भी यह हो सकता है। यदि वड़े भागमें यह हो गया हो तो वडा सकट आ सकता है।

चिकित्सा : अधिक क्षत होने पर पहली चिकित्सा वेदनाकी होनी चाहिये। इसके लिये उचित मात्रामें मौर्फियाकी सूई देनी चाहिये। इसके वाद कोथघ्न, पर अनुत्तापक घोलसे क्षत साफ करो। प्राथमिक उपचारके लिये पिकरिक एसिडका सपृक्त घोल भी उत्तम है। इससे जलन मिटती है। यह कोथघ्न है और घाव भरती है। इसके वाद तुरतका तैयार २½ सैकड़ासे ५ सैकड़ा टैनिक एसिडका घोल लगाना चाहिये।

यह ध्यान रखना चाहिये कि, जली जगह पर हवा नहीं लगने देनेसे तकलीफ कम होती और घाव भी भरता है।

Cachexia : शरीरविकार : कैकेक्सिया किसी रोगके कारण किसी अंग या सारे शरीरकी निर्बलताको कहते हैं।

Carcinomata and sarcomata (कार्सिनोमेटा और सारकोमेटा) : शर्करार्बुद और मांसार्बुद . ये अर्बुद साधारण तौर पर कैन्सर या दुष्ट अर्बुदों (मेलिगनेन्ट ट्यूमर) के वर्गमें रखे जाते हैं। इस रोगमें चीरफाड़की जरूरत है।

Caries : दन्तक्षय : अस्थि, दांत या मृदस्थि की छीजनको कहते हैं। साधारण तौर पर दाँतकी छीजन इससे मालूम होती है। इस रोगमें दाँतोंका मुलम्मा (एनामेल) झड़ जाता है या उनमें छेद हो जाते हैं। प्रारम्भिक अवस्थामें मनुष्योंकी तरह ही छेद को सीमेन्टसे भर देते हैं। पर बढी हालतमें स्थानीय शून्यता करके दाँत उखाड़ना होता है।

Carminatives : पाचक और वायुनाशक : पचानेवाली और पेटकी गुम हवा निकालनेवाली दवाओंको कहते हैं। जैसे कि, हींग, कपूर, मेन्थल (पीपरमेन्ट), पपीता, सोडा बाइकार्ब, अजवाइनका सत्त।

Caseation : केजिएशन : पीवका आचूषण होकर तन्तुओंमें पनीर ऐसे पदार्थके होने को कहते हैं। और यह वह सौधीकरण हो कर हो सकता है।

Catarrh : श्लैष्मिक प्रदाह : श्लैष्मिक कलामें उत्ताप होनेको कहते हैं। कठ आदिमें सांसकी राहमें इससे रुकावट होती है। श्लैष्मिक कलाके किसी भागमें इसका प्रदाह हो सकता है। अन्त्र, पेट, जननेन्द्रिय, जरायु और भगके श्लैष्मिक प्रदाह बहुत होते हैं। इसमें श्लैष्मिक कलामें उत्ताप होता है और उससे स्राव चलना है।

Cathartics : रेचक : जुलाव को कहते हैं जैसे कि, रेंडीका तेल, मग० सल्फ०, हर्र, रसकपूर।

Catheters (कैथीटर) : प्रस्रावक : पतली नलियां जिन्हें पेशावके रास्तेमें घुसाकर पेशाब करायी जाती है। ये धातु और लचकीले पदार्थोंके भी बनते हैं। भिन्न भिन्न नापके रबरके प्रस्रावक बहुत उपयोगी हैं। बैलके शिश्नमें मूत्रमार्ग सीधा नहीं होता, पेचीला होता है। इसके शिश्नमें प्रस्रावक घुसाना कठिन काम है। यहाँ धातुके प्रस्रावकसे काम नहीं चलता।

Cauda Equina · अश्वपुच्छक : सुषुम्नाकान्डका छोर त्रिकास्थिमें अनेक पतली नाड़ियोंमें वँट घोड़ेकी पूँछसा हो जाता है। इसीलिये यह नाम है।

Cercaria : तुरङ्याँ : कुछ छोटी कृमियोंके जीवन-चक्रकी मध्यवर्ती अवस्था। (१४१०)

Cholagogues : पित्तनिःसारक : जो पदार्थ पित्तका अधिक स्राव करें। औषधियोंकी सूचीमें साधारण तौरपर नीचे लिखे पित्तनिःसारक हैं : सोडियम सैलिसिलेट, तारपीनका तेल, रसकपूर, मैग० सल्फ०, मुसव्वर।

Chyle (काइल) : अर्धपचित : आँतके निचले भागसे निकलनेवाले अध-पचे आहारको कहते हैं।

Chyme (काइम) : अर्धपचित : पेटसे छोटी आँतके पहले भागमें जानेवाले अधपचे आहारको कहते हैं।

Cicatrix (सिकैट्रिक्स) : क्षतचिह्न : घावके आराम हो जाने पर जो चिह्न रह जाता है उसे कहते हैं।

Cirrhosis (सिरोंसिस) : पीतामय : फेफड़ा या यकृत जैसे कुछ भीतरी अवयवोंकी एक तरहकी रोगावस्था है। इसमें आवश्यक कोषतत्वोंकी जगह सौत्रिक तन्तु हो जाते हैं। यकृतके पीतामयमें यकृतका रंग पीला हो जाता है इसीलिये इसे पीतामय या सिरोंसिस कहते हैं। इसका दूसरा नाम तत्वामय (fibrosis-फाइब्रोसिस) है। जिस अवयवमें यह होता है उसे कडा कर देता है। इसके फलस्वरूप वह सिकुड़ सकता है।

Collapse (अवपात) : हिमाङ्ग : देहकी अत्यन्त दुर्बलता या अवसन्नता के कारण जीवनी शक्तिके चरम ह्रासकी अवस्थाको कहते हैं। नाडी-तन्त्र ग्रस्त होता है, रक्तचाप घट जाता है, हृदयकी गति मन्द हो जाती है और साँस धीमी हो जाती है। मृत्युका कारण हृदयको निष्क्रियता या साँस रुकना हो सकता है।

इसका कारण कठिन रोगोंकी प्रतिक्रिया या सुस्थ पशुओंमे दुर्घटना अथवा भीषण श्रमका होना है। दुर्वल वनानेवाले रोगोंसे हुए अवसन्नतामें पशु पड़ा रहता है। साँस हल्की चलती है और नाड़ीकी गति मालूम नहीं होती। भीषण आघात जनित अवसन्नता में हृदयकी धड़कन वेहद वढ सकती है, पीलापन हो सकता है और पशु पसीनेमें डूब सकता है। पशु प्रायः निर्जीव हो जाता है उसे आसपासका ज्ञान नहीं रहता।

रोगीको दिक न किया जाय और उसे पूरा आराम देनेकी कोशिश हो। पशु यदि बचे तो उसके आराम होनेका पहला लक्षण प्यास है। वह पीना चाहता है।

Colitis : बृहदन्त्र-प्रदाह : बडी आँतके पहले भागके प्रदाहका नाम है।

Coma (कोमा) : मूर्च्छा : मूर्च्छा या कोमा गंभीर अचेतनताको कहते हैं। इसमें रोगीकी प्रतिसंक्रमित क्रियायें नष्ट हो जाती हैं।

Compress : जलोपचार · Fomentation · गरम-जल सेंक : रुई या कपड़ेमेंसे पानी निचोड़ ग्रस्त भाग पर लगानेका नाम कम्प्रेस या जलोपचार है। जब ठंढे पानीका व्यवहार होता है तब उसे शीतोपचार (cold compress) या ठंढी पट्टी बांधना कहते हैं और गरम पानीसे उपचार करनेको उष्णोपचार (hot compress) या गरम पट्टी बाँधना। ठंढी पट्टी जब गरम होने लगे या गरम पट्टी ठंढी होने लगे तो उन्हें बदल देना चाहिये और फिर ठंढा या गरम करके बाँधना चाहिये। कई बार सेंकनेके बाद गरम पट्टी उस स्थान पर रख ऐसी चीजसे ढाकना चाहिये जो पानीमें भीगती नहीं, इसके बाद पट्टी बांध देनी चाहिये। इस तरह गरम पट्टीका ताप शरीरतापके बराबर रहता है और वह अपना काम करती रहती है। नहीं भीग सकनेवाली चीजसे ढकनेका यह अभिप्राय है कि, उसमेंसे नमी और गर्मी उड़ न जाय। नहीं तो वह जगह ठंढी हो जायगी। रेशमी मोमजामा काममें आ सकता है पर यह खर्चीला होगा। केलेके पत्तोंसे भी यही काम निकलेगा और खर्च कुछ नहीं। तेल-कागज (oil paper) भी व्यवहार किया जा सकता है। कागजमें तीसीका तेल पोत उसे सुखाकर यह बनाया जा सकता है। इस तरह कागज सख्त और जल-रोधक हो जाता है।

Congestion : रक्तसंकुलता : रक्तके जमा होनेको रक्तसंकुलता कहते हैं।

Constipation : कब्ज : अनाह : साधारणसे अधिक देरतक मलके नहीं निकलनेको अनाह या कब्ज कहते हैं। असाधारणता कई तरह देखी जाती है। साधारण तौर पर ढोरको विना प्रयास मल उतर आता है। इसमें उसके चलने, काम करने या खानेमें बाधा नहीं होती।

मनुष्य और कुत्ते बिल्लियोंको इस कामके लिये अन्य काम स्थगित रखना और विशेष आसनमें होना होता है। कब्ज ढोर या घोड़ेकी अपेक्षा इन प्राणियोंकी

रोग अधिक है। तो भी ढोरको कब्ज होता ही है। यकृत और अन्त्र की किसी गडवडी, अधिक सूखा चारा खाने या जरूरतसे कम पानी पीनेसे यह हो सक्ता है। पेटके पेशीदौर्बल्यके कारण भी यह हो सकता है।

लक्षण : गोवर कम होता है वह भी लम्बे अंतरकालके वाद। अवस्था विगड़ने पर दर्द और मरोड़े हो सकते हैं। साँसमें दुर्गन्ध हो सकती है। तेज साँससे विपके आचूपणका पता चलता है।

चिकित्सा : दस्त कराना चाहिये। इसके लिये पूरे पानीके साथ १ रत्तल या २० आउन्स मैग० सल्फ० दो। इसके वाद यथेष्ट हरा रसीला चारा और पानी देना चाहिये।

इस उपायसे काम नहीं चलने पर मुसव्वर ½ से १½ आउन्स देना चाहिये। रेंड़ीका तेल भी अच्छा विरेचक है। दवाके साथ साथ गरम पानीकी वस्ति (एनेमा) भी देनी चाहिये। वस्तिमें रेंड़ीके तेलका अवद्रव देनेसे पेट साफ होनेमें सरलता होती है।

Convalescence : **रोगावसानस्थिति :** रोगमुक्त होनेके वादका वह समय जव दुर्वलता शेप रह जाती है और रोगमुक्त व्यक्ति,साधारण काम नहीं कर सकता।

Convulsions : **आक्षेप :** जोरके साथ पेशियोंका संकोच और शिथिलता का वार वार होना। इसके साथ वेहोशी रहती है। सभी अंग छटपट करते हैं। इसके अनेक कारण हो सकते हैं। उनमेंसे कुछ शूल, गर्दनतोड़, हिस्टिरिया (क्षोभोन्माद) दुग्धज्वर, धनुष्टंकार, विप खाना, सुकुमार अंगोंमें परोपजीवी होना, अपचके साथ विषका आचूषण, धनुषी आदि हैं।

चिकित्सा : कारण स्थिर करो। किसी किसी हालतमें उपशामक औषध लाभकारी होती हैं। पर मुँहसे कुछ नहीं दिया जाय। सिरपर शीतोपचार करो और हाथ पैर गरम। चरम पीड़ामें मौर्फिया दे सकते हैं।

Corrosive Sublimate : **कोरोसिभ सवलिमेट :** मरक्यूरिक क्लोराइड और मरकरी परक्लोराइड पर्याय हैं। यह तीव्र कोथघ्न और छूतनाशक है। छूतनाशक घोलके लिये २,००० भाग पानीमें १ भाग काफी है। यह वड़ा क्षयकारक या दाहक विप है। इसलिये इसे खास हिफाजतसे रखना चाहिये। इसे मरक्यूरस क्लोराइड या केलोमेल (रसकपूर) भूलसे भी नहीं समझो।

Counter irritants : प्रति-उत्तापक : प्रति-उत्तापक उन दवाओंको कहते हैं जिनके लगानेसे उत्ताप होता है पर जो पहले के किसी उत्तापको दबानेके लिये लगायी जाती हैं। जैसे कि, मेन्थॉल या पिपरमिन्ट, तारपीनका तेल, सैलीसिलिक एसिड, कारबोलिक लोशन।

Cyanosis : नीलिया । यह एक अवस्था है। इसमे जीभ नीली हो जाती है। यह नीलापन बढ कर ओठ और आँखकी झिल्लीको भी नीला कर दे सकता है। इसका कारण दुर्बल या अतिश्रान्त हृदय अथवा रक्तमे पूरी तरह ऑक्सीजनका नहीं मिलना है। हृदयमें गरमी पहुँचाना और शान्ति इसके लिये जरूरी है। श्वासप्रणालीको उत्तेजना देनेके लिये स्ट्रिकनीनकी सूई लगानी चाहिये। कठिन रोगमे सुबीतेकी कोई ऊपरी शिरा काटकर खून निकाल देना चाहिये, कि, रक्त चाप कम हो।

Cysts (सीस्ट) . थैली खोखले अर्बुद को कहते हैं जिसमे द्रव भरे रहते हैं। कभी कभी यह साधारण अर्बुद की तरह हो सकते हैं। जब पशु कृमियोंके अन्डे खा जाता है तो शरीर-स्रोतके किसी भागमें वह थैलियोंकी तरह बढ सकते हैं जहाँ थैलीके अन्दरके अर्भक किसी अन्य पशुके पेटमे जा विकास पाने तक थैलीबन्द अवस्थामे पड़े रहते हैं। अन्य पशुके पेटमे ये थैलियाँ उस पशुके मासके साथ पहुँचती हैं। थैलियाँ या सीस्टस् गायके डिम्बकोषमे विकसित होती हैं। ग्रन्थियोंसे सलग्न अर्बुदोंमें ये हो सकती हैं।

Datura धतूरा बेलाडोना और इसका गुण एकसा है। इसमे नीचे लिखे औषधि-गुण है :—

पीड़ाहर, आक्षेपहर, मूत्रकष्ट-प्रशमक। यह दूध, पसीना और थूकका स्राव बन्द करता है। हृदयकी पीड़ा और कष्ट, धड़कन, महाधमनीके विकार दूर करनेमे यह बड़ी उत्तम वस्तु है। इसकी अधिक मात्रासे पुतली फैल जाती है और मुँह तथा कन्ठ सूखना है।

Death, Causes of sudden · अचानक मृत्युके कारण : गिल्टी और लॅगडीके कारण अचानक मृत्यु हो जाती है। प्रायः सुस्थ पशु मरे पाये जाते हैं। पहला सन्देह सॉपके काटनेका होना स्वाभाविक है। पर ऐसा बहुत कम होता है। गिल्टी होनेका पहला चिह्न प्राय सुस्थ पशुकी अचानक मृत्यु ही होती

है । तरुण वछरु लँगडीके कारण अचानक मर सकते हैं । तव इन रोगोंके वर्णनमें जो वताया गया है उसके अनुसार छूतनाश और पृथक्करण करो ।

लू लगना अचानक मृत्युका एक और कारण है। उसी तरह हृदयकी निष्क्रियतासे भी मृत्यु हो सकती है । पर ऐसा होने पर कारण स्थिर करनेमें अधिक कठिनता नहीं होती ।

पेट फूलनेसे भी कुछ मिनटमें देखे, अनदेखे मृत्यु हो सकती है । खूव फूले पेटसे मृत्युके कारणका पता चलता है ।

Demulcents : स्निग्धकर : लसिया : महाश्रोतकी श्लैष्मिक कलाकी शान्तिके लिये लसीले पदार्थोंको कहते हैं । प्रदाह और जले भागपर इससे आराम मिलता है और रक्षा भी होती है । यह त्वचापर वाहर भी लगायी जा सकती है ।

गोंद, स्टार्च और तीसीका लस्सा और इसफगोल लसिया हैं । ग्लिसरीन, सुहागा और ग्लिसरीन, सोडियम कारवोनेट, विसमथ कारवोनेट भी क्षतोंके लिये उपयोगी लसिया हैं ।

Deodorants : विगन्धकर : दुर्गन्ध पदार्थोंको ऑक्सीजनकी क्रियासे नष्ट करने या अपनी तेज गन्धसे छिपा लेनेवाले पदार्थोंको कहते हैं । ऑक्सीजनकी क्रियासे नष्ट करनेवाले पदार्थ सचमुच उपयोगी हैं । साधारण उपयोगमें आनेवाली कुछ वस्तुएँ ये हैं :— पोटाश परमैंगनेट, लकड़ीका कोयला, सूखी मिट्टी, कारवोलिक एसिड, तारपीन, युकलिप्टस और व्लीचिंग पाउडर । ये छूतनाशक भी हैं और वहुधा विगन्धकर, छूतनाशक और कोथघ्नका एक ही अर्थ होता है ।

Detergents : चर्मस्वच्छक : सावुन, मदसार (एलकोहल), क्षार, सुहागा आदि जैसी त्वचाको साफ करने वाले पदार्थ हैं ।

Diaphoretics . प्रस्वेदक : उन पदार्थों या उपायोंको कहते हैं जिनसे पसीना चले । ज्वर और प्रदाहमें त्वचाके काममें गडवड़ी पड़ जाती है । इसकारण जो ताप पसीनेसे उड़ता, वह त्वचामें ही रह जाता है । पसीना चलानेका एक उपाय गरम पानीसे धोना है । पर यह उपाय पशुओं, वह भी वड़े पशुओं पर करने लायक नहीं । एसिटेट ऑफ एमोनिया, अफीम और एन्टीमनीके लवण जैसी कुछ दवाओंसे पसीना चल सकता है । पर इस कामके लिये पशुओं पर इनके प्रयोग की मनाही है । क्योंकि इनमें खतरा है ।

Diarrhœa : अतिसार : इसमें पतला दस्त होता है। अतिसार कब्ज या अनाह का उल्टा है। इस रोगमें पाकाशयसे समयसे पहले बिना पचा आहार निकल आता है। यह पाचन-इन्द्रियोंकी अस्वाभाविक अवस्थाका द्योतक है। यह अवस्था यदि कुछ दिनों तक चलती रहे तो भयंकर हो जाती है। कुछ विशेष रोग जैसे खूनीदस्त, दस्त और सफेद दस्त भी अतिसारके ही रूप हैं। इनकी विशेष चिकित्सा होनी चाहिये।

अतिसार वास्तवमें व्यतिक्रमका लक्षण है। केवल दस्त रोकना कोई चिकित्सा नहीं बल्कि और भी बुरा है। कारण का पता लगाकर चिकित्सा करनी चाहिये। साधारण अतिसार पाकाशयका प्रदाह है, ठीक वैसा ही जैसा कि, नाक या कण्ठका प्रदाह होता है। आँत और पेटकी श्लैष्मिक कलामें प्रदाह हो जाता है और वह अपना स्वाभाविक कार्य नहीं कर सकती। इसके कारण लिर्मलिसे और पतले दस्त होते हैं। आमाशयके प्रदाहके बारेमें अलग लिखा गया है।

चिकित्सा : यदि किसी विशेष कारण बिना साधारण अतिसार होने पर हल्के जुलाबसे उत्तापक और दुष्य पदार्थोंको बाहर कर देना चाहिये। अवद्रवके रूपमें रेंडीका तेल बड़ा अच्छा इलाज है। इससे उत्तापका कारण दूर हो जाता है। इसके कुछ घंटे बाद किसी तरह की प्रशामक औषधि देनी चाहिये। जैसे कि, दूध या मन्डके साथ हल्की मात्रामें अफीम। १२ घंटे तक खाना बन्द कर देना चाहिये। खानेका परहेज बहुत जरूरी है। जब तक मल बनने लगे एक या अधिक दिन तक मन्ड देते रहना चाहिये। यदि बहुत दस्त आते हों और ऊपरके इलाज से बन्द न हों तो कत्थेकी तरहके कषाय देना चाहिये अथवा अफीमकी मात्रा बढानी चाहिये। यदि पेटमें सन्धान या उफानकी क्रिया होनेका सन्देह हो तो आन्त्रिक कोथघ्न जैसे कि, सोडियम सैलिसिलेट या अजवाइनका सत्त देना चाहिये। यदि अम्लताका सन्देह हो तो रेंडीके तेलके अवद्रवके बाद पहली चीज चूनेका पानी दिया जाय। मलकी खट्टी गन्ध से या लिटमस पेपरकी जांचसे अम्लताका निश्चय किया जा सकता है। बडी उम्रके पशुको अम्ल मलके साथ अतिसार होने पर खड़ियाकी बुकनीके साथ सोडा बाइकार्ब दिया जाय।

Dip, Cattle : ढोर-अवगाह : अवगाहका हौज बिना ढालका ऐसा बनाया जाता है कि, पशु गोता खा ही जाय। इसके बाद वह तैर कर दूसरे किनारे पर जाता है जो कि ढलुआँ रहता है। हौजमें चाहा घोल रहता है।

गोतेका घोल गन्धक और सखियाका होता है। जब सखियाका गोते का घोल तैयार करना होता है तो उसे (संखिया) कास्टिक सोडाके साथ खौलाकर घोल लेते हैं। फिर उसे पानीसे पतला करते हैं। गोतेके पानीमें ०·१२ से ०·२५ सैकड़ा संखिया हो।

हौजको तैर कर पार करनेके बाद किलनी मरी पायी जायगी। गोतेका घोल तैयार करनेका व्यौरा जाननेके लिये स्थानीय भेटेरिनरी सरजनसे पूछताछ करनी चाहिये। हौजके नक्से आदिके लिये पहले खन्डका ६७६ पैरा देखो।

Dishorning : विशृंगीकरण : पालतू ढोरके लिये सींग बहुत कुछ शोभाकी वस्तु हैं। आदमीकी रक्षामें ढोरके आ जानेके बाद सींगोंकी रक्षात्मक या आक्रमणात्मक आवश्यकता नहीं सी रहती है। जब कोई बलिष्ठ पशु किसी दूसरे पशु या रखवालेको मारना चाहता हो तब सींग भयके कारण बन जाते हैं। बछडेका विशृंगीकरण बिना कष्टके हो सकता है। जरूरत समझी जाय तो नीचे लिखे अनुसार किया जा सकता है :—

४ से ८ दिनके बछड़े विशृंगीकरणके लिये लिये जायँ। सींगके अंकुरको भिगाओ और उस पर कॉस्टिक पोटाशकी बत्ती रगडो। यह क्रिया उसी दिन कई बार की जा सकती है अथवा एक सप्ताह तक हर दूसरे दिन एक बार की जाय। कॉस्टिकके उपचारसे शृंगपदार्थ घुल जायगा और एक पपड़ी पड जायगी। पपड़ी सूख कर झड़ जायगी और उसके साथ सींगका कोष भी। इसी कोपसे सींग बनता है। इस क्रियासे बछड़ेको कष्ट नहीं होता।

आरीसे सींगकी जड काटी जा सकती है। इसमें बहुत पीड़ा होती है। यह अमानुपिक उपाय है। यदि एक महीनेसे अधिकके बछड़ेका विशृंगीकरण करना हो तो क्लोरल हाइड्रेट जैसा सर्वशून्यक देकर करना चाहिये। खून बहना रोकनेके लिये उसे गरम लोहेसे दागना चाहिये अथवा सींगकी जड़ोंमें 8-सूरतकी मरोड़नी बांधनी चाहिये।

Diuretics · मूत्रल : जिन मूत्रोत्पादक दवाओंसे पेशाब होती है उन्हें कहते हैं। जैसे कि, क्षार, रसकपूर, तारपीन, सोडियम लवण, पुनर्नवा।

Docking : बंडा करना : पूँछ काटनेको कहते हैं। स्थानीय शून्यककी सहायतासे घोड़े और कुत्तेपर यह क्रिया जाता है। गाय बंडायी नहीं जाती।

Dosage : मात्रा : यदि सयाने पशुकी मात्रा मालूम हो तो विभिन्न उमरके पशुओंको दवा देनेके लिये मात्रा नीचे लिखे अनुसार दी जाय :—

२ वर्ष और अधिक	...	सयानेकी मात्राका १ भाग।
१ से २ वर्ष	...	$\frac{1}{2}$ भाग।
$\frac{1}{2}$ से १ वर्ष	...	$\frac{1}{4}$ भाग।
३ से ६ महीना	...	$\frac{1}{8}$ भाग।
१ से ३ महीना	...	$\frac{1}{16}$ भाग।

सयाने बैलकी मात्रा साधारण तौर पर सयाने आदमीसे १६ गुना है। जैसे कि, यदि जुलावके मैग० सल्फ०की मात्रा मनुष्यके लिये १ आउन्स है तो इस आधार पर गायकी मात्रा १६ आउन्स या १ रत्तल होगी। पर यह सदा नहीं होता। आदमीको १ आउन्स रेंड़ीका तेल देनेसे जो होता है उसीके लिये गायको २० आउन्स देना होता है।

एकसे तीन महीनेके बछड़की मात्रा सयानेकी मात्राका $\frac{1}{16}$ है जो मनुष्यकी मात्राके बराबर है।

Drowning : डूबना : मनुष्योंकी तरह पशु नहीं डूबते। क्योंकि, वह पानीमें नाक बाहर रखे ठीक उसी तरह तैर सकते हैं जैसे जमीनमें चल। थक जाने, बोझसे लदे रहने, आँधीके कारण लहरके थपेड़ोंके कारण वह डूबते हैं। कभी ऐसा भी होता है कि, किनारे पर दलदल होता है उसमें उनके पैर धँस जानेके कारण भी वह पानीसे निकल नहीं पाते। यदि उन्हें निकाला न जाय तो निकलनेके लिये छटपटा कर वे थकावटसे मर जाते हैं।

पशु यदि डूब जाय तो आदमीकी ही तरह उसकी साँस चलानेकी कोशिश होनी चाहिये। बड़े पशुका पिछला हिस्सा ऊँचा उठाना चाहिये और छोटे पशुकी पिछली टाँगे पकड़ लटकाना जिससे कि पिया पानी पेटसे निकल जाय। मुँह और नाकमें लगी कीच साफ कर दो। पशुको रगड़ कर गरम करो। पशुको चित्त लिटाओ इसके बाद एक आदमी उसकी छातीपर बैठ उसे दबावे और उतरकर भार हटा दे। अतरा देकर इस तरह दबाने छोड़नेसे छातीसे पानी निकल जाता है और उसमें हवा भरती है। इस तरह कृत्रिम साँस चलायी जाती है। यह क्रिया काफी देर जब तक पशु जीता रहे करते जाओ।

पशु पानीमें ३—४ मिनट बिना दम घुटे रह सकता है।

Dyspnoea : श्वासकृच्छ्र : कष्टसे साँस लेनेको कहते हैं। इसमें दम घुटनेसा लगता है।

Dysuria : मूत्रकृच्छ्र : पेशाव नहीं होना।

Dusting powders (डस्टिङ्ग पाउडार) : छिड़कनी वुकनी : छिड़कनी वुकनीमें घोलोंकी अपेक्षा यह सुवीता है कि, इसमें पट्टी करनेकी जरूरत नहीं होती। अनेक रोगोंमें घोल फायदे के होते हैं। पर उनकी घाव या चर्म रोगोंमें पट्टी के विना उसी जगह लगाये रखनेमें कठिनाई है और पशुओंको पट्टी करना कठिन काम है। इसलिये जहांतक छिड़कनी वुकनीसे काम चल जाय पट्टी की जरूरतवाली भीगी दवाकी जगह इसे ही तर्जीह दी जाय। घाव पर कोथघ्न पट्टी करनेके लिये नीचे लिखे नुस्खे उपयोगी हैं :—

(१)	स्टार्च (मैदा)	...	४ भाग।
	वोरिक एसिड	...	४ भाग।
	जिंक ऑकसाइड	...	२ भाग।

यदि कषाय चूर्णकी जरूरत हो तो भूनी फिटकिरी की वुकनी इसमें मिला दो।

(२)	फिटकिरी	...	१ भाग।
	स्टार्च	...	१ भाग।

इसमें कुछ वूँद कारवोलिक एसिडकी मिलाकर १ सैकड़ा मिश्रण वना लो।

Eclampsia (एक्लैम्पसिया) : अपतानक : विभिन्न कारणोंसे उत्पन्न यह अवस्था विषपूर्ण है। प्रसवकालकी एक्लैम्पसिया सवसे ज्यादे होती है। पशु वेचैन हो जाता, भौचक हो देखता और अस्तव्यस्त डोलता है। कभी कभी वह मूर्छित हो जाता है और उसे आक्षेप होते हैं। प्रसवके पहले या वाद भी यह हो सकता है। कृमियोंके कारण भी यह हो सकता है। ऐसी हालतमें इसे धनुषी कहते हैं।

इसकी चिकित्साके लिये क्षार और पानी खूव दिया जाता है कि, विष निकल जाय। विषके कारण दूर किये जायँ। यदि यह कृमियोंके कारण है तो कृमिघ्न दिया जाय।

Electuary : अवलेह : दवाकी वुकनीके साथ सीरा, चीनी, छोआ या मधु मिलानेसे वनता है। यदि पशुको पतली दवा नहीं पिलायी जा सकती हो तो

दूसरा उपाय अवलेह देना है। लेमनजूसकी तरह चूसनेके लिये यह दिया जाता है। पनला अवलेह किसी चिपटी लकड़ीसे मुँहके भीतर ठेस दिया जा सकता है।

Embolism · अवरोधन : यदि कोई छोटा पदार्थ रक्तस्रोतमें पड़ कहीं अटक जाता है तो उसे अवरोधन कहते हैं। वह पदार्थ अवरोधक (एम्बोलस) कहा जाता है। अवरोधनकी स्थितिके अनुसार इसकी गम्भीरता होती है। मस्तिष्क, और हृदयकी पेशियों की शिरायें सबसे भयङ्कर स्थान हैं। मस्तिष्कमें इससे उस स्थानपर मृदुता हो जाती है इस कारण देहके किसी भागमें पक्षाघात हो सकता या मृत्यु भी हो सकती है। यदि अवरोधक इतना बड़ा हुआ कि जिसने कोई बड़े आकारकी धमनी अवरुद्ध हो जाय तो उसे महावरोधक (थ्रोम्बस) कहते हैं। हवाकी अतिमात्रासे हृदयका अवरोधन हो मृत्यु हो सकती है। रक्तस्रोतमें खूनके थक्केसे अवरोधन या महावरोधन हो सकता है।

Embrocations · मालिशका तेल : प्रतिउत्तापक मिला हुआ मालिशका तेल।

Emetics : वामक : वह दवा जो कै करावे। कुत्ते, बिल्ली और सूअर आसानीसे कै करते हैं। घोड़े कभी कभी खायी चीजें मुँहके बदले नाकसे ओकते हैं। यह रोग या गहरे क्षतका सूचक है।

गाय, भेड और बकरी रौंथ करती हैं। यह ओक्ना नहीं है। इन पशुओंको दवासे कै नहीं करायी जा सकती। वामक देनेसे कष्टका कारण बन जाता है। दवा आँतसे होकर पार हो जा सकती है या आचूषित हो सकती है।

Emphysema (एम्फाइसेमा) : वायु-अवरोध : देहके किसी भागमें अस्वाभाविक वायुके होनेको कहते हैं। यह साधारण तौर पर फेफड़ेमें होता है। पर लँगडी जैसे रोगमें कभी कभी वायु पैदा होकर पेशीमें रुद्ध हो जाती है। यह त्वचाके ऊपरसे भी जानी जा सकती है। साधारण वायु-अवरोधका गरोकार निमोनियाँ और पार्श्वशूल जैसे फेफड़ेके रोगसे होता है।

Enema (एनेमा) · वस्ति-कर्म : पेटमें पानी चढानेका नाम वस्ति-क्रिया है। अनाहमें या कब्जमें पेटमें जमा मल बाहर निकालने और दूसरे समय पेट एकदम साफ करनेके लिये वस्ति दी जाती है। पूरे कदके ढोरको इस कामके लिये सादा या साबुनका पानी ४ से ८ गैलन देनेसे काम निकलता है। इसके लिये

लगातार पानी चढानेवाला पप या नली और लबी टीपकी जरूरत होती है। यह रेचक वस्ति है।

कृमि-निस्सारक वस्ति (Vermifuge Enema) से गुदामें चुलचुलानेवाली कृमि निकाली जाती है।

प्रशामक वस्ति अन्नशूलके दर्द या आक्षेपकी शांतिके लिये दी जाती है। इसमें प्रति पाइन्ट ½ आउन्स नमक देते हैं। गरम और ठंडी वस्ति एकके बाद दूसरी देना शूलमें लाभकारी है। गरम वस्तिका पानी बहुत गरम न हो। उसमें हाथ डुबानेसे वह सह्य और सुखकर हो।

यदि शून्यताके लिये क्लोरल हाइड्रेटकी चाही मात्रा किसी कारण मुँहसे नहीं दी जा सकती हो तो एक गैलन पानीमें वस्तिसे दी जा सकती है।

Enteritis : अंत्रशोथ : अतिसार और पेचिश या आमातिसार आदिमें हुए आँतोंके प्रदाहको कहते हैं।

Enzootic (Endemic) : बारहमासी : बारहमासी रोग छूतके वह रोग हैं जो किसी स्थानमें सब दिन होते हैं। महामारी (epizootic or epidemic) वह छुतहे रोग हैं जो विशेष समय पर विशेष स्थानमें हाहाकार मचा देते है। Endemic और Epidemic के लिये क्रमशः Enzootic और Epizootic शब्द व्यवहृत होते हैं।

Enzyme (एन्जाइम) : क्रियाशील-रस : ये जटिल सेन्द्रिय रासायनिक पदार्थ हैं। आहार-तत्वको तोड़ उन्हें आचूषणीय पदार्थ बना देनेकी शक्ति इनमें है। कुछ आहारोंके साथ उनका अपना क्रियाशीलरस रहता है जो विशेष अवस्था होने पर निकलता है। स्राव करनेवाली ग्रन्थियोंमें इनमेंसे अनेक बनते हैं और कुछ वनस्पतियोंमे मिलते हैं।

Epistaxis : नकसीर : नाकसे खून बहना।

Epizootic : महामारी : Enzootic देखो।

Eructation : उद्गार : डकारा : डकारने या अपचे आहारका एकाएक पेटसे मुँहमें आनेको कहते हैं।

Eruption : स्फोटकादि निकलना : त्वचापर फुंसी, दाने, चकत्ते आदिका निकलना है। माता, खुरपका, गोशीतला, डेंगू और पित्तीमें यह होता है। विभिन्न रोगोंमें इनका विभिन्न लक्षण और महत्व है।

Erythema (एरिथिमा) अरुणिमा : त्वचा पर लाल रगके दाने निकलने या उनके लाल होनेका नाम है। इसमें त्वचा या दानोंमें खून आ जाता है।

Escharotics (एस्कैरोटिक) : दाहक : तीव्र दाहक पदार्थोंको कहते हैं।

Exanthemata (एक्सैन्थेमेटा) : स्फोटज्वर : जिन रोगोंमें पित्ती या दाने निकलें।

Expectorants : कफनिस्सारक : श्लेमका कफ निकालनेवाली दवा या पदार्थ। जैसे कि, कपूर, एमेटिक टार्टर, वासक।

Extravasation (एक्सट्रावेसेशन) : अपसार : पर्युत्प्लावन : अपने आधारसे द्रवोंके निकल पड़नेको कहते हैं। चोट लगने, कुचलने या किसी रक्तवहाके फटनेसे यह होता है। मस्तिष्कके इस तरह फटनेको अपस्मार (एपोप्लेक्सी) कहते हैं।

Exudation निस्सरण . पसीनेकी तरहसे द्रवोंके निकलनेको कहते हैं। इस तरह निकले द्रवोंका खातोंमें जमा होना भी यही कहा जाता है।

Fainting, fits, syncope मूर्छा . हृदयगतिके अचानक बन्द होनेको कहते हैं। इसके कारण बेहोशी होती है। मस्तिष्कमें अपर्याप्त रक्त जाने, हृदयकी दुर्बलता या कोई गहरी चोट इसका कारण है।

पशुको चित्त लेटा देना चाहिये। उसका सिर जरा नीचे रखा जाय जिससे कि, मस्तिष्कमें रक्त पहुँचे। उसके सभी बन्धन दूर कर दिये जाय। सिर पर ठढा पानी गिराया जाय।

Fauces (फॉसीज) · मुखमध्यस्थ गह्वर : यह जोडनेवाला छिद्र है। इसकी दीवारें मुँह और गलेके बीच रहती हैं।

Ferments सन्धान खमीर : अपना परिवर्तन किये बिना पदार्थोंमे रासायनिक परिवर्तन करनेवाले पिंड। यह चीनीके घोलको तोड़ उसे सुरा बनाते हैं। ईस्ट या किण्व प्रसिद्ध सधानकारी हैं।

Fibrin : फाइब्रीन : डिफाइब्रीनेटेड रक्त (blood defibrinated) देखो।

Flatulence · कोष्ठवायु : उदराध्मान : पेटमें हवा भरने (गुम होने) को कहते हैं। पेटकी हवा मुँहसे निकलती है और आँतोंमें गुड़गुड़ाने।

Fluctuation : तरंगवत् संचार : सूजनको एक तरफ दवानेसे उसके तरलके कम्पन की अनुभूति दूसरी तरफ मालूम पड़ना। फोंदेमें पीव होने पर यह होता है। शोथमें द्रवका थलथलाना जाना जा सकता है।

Functional & organic Diseases : क्रियागत और अवयवी रोग : क्रियागत रोग वह हैं जो किसी अवयव या तन्त्रके ठीक तरहसे काम नहीं करने पर होते हैं। इसमें वह अंग तो ठीक रहता है पर काम ठीक से नहीं करता। जैसे कि, हृदय, उसकी पेशियों और कपाटिकाओंमें रचना सम्बन्धी कोई दोष न होते भी वह ठीक कार्य नहीं भी कर सकता है जिससे दुर्वलता होती है। मस्तिष्कमे नाड़ीकेन्द्र अक्षत होते भी देहका कोई भाग वेकाम हो जा सकता है। इसके विपरीत अंगविशेषमें हो त्रुटिके कारण अनियमितना या रोग हो सकते हैं। ऐसी हालतमें रोग **अवयवी** कहा जाता है। क्षयमें फेफड़ेमे क्षत होनेके कारण वह ठीक काम नहीं कर पाता। हृदय-कपाटिकाके रोगोंमें हृदय ठीक काम नहीं कर पाता क्योंकि दोष उसी अवयव या अगमें है। ये अवयवी रोग हैं। यदि गहराई से विचारा जाय तो सभी क्रियागत रोग असलमें अवयवी रोग हैं। पर अभी हमारे ज्ञानकी इस स्थितिमें भेद माना जाता है।

Gall stone : पित्ताश्मरी : पथरी : पित्तकोप या यकृतकी पित्तकुल्यामें ये वन जाती हैं। ये किसी मूलकणके चारों तरफ जमती हैं।

Ganglion : नाड़ीग्रन्थि : यह नाडीकोषोंका केन्द्र है। विभिन्न सूत्रोंसे आयी नाड़ी-चेतना इसमें केन्द्रित होती है।

Gluteals : नितम्ब : चूतड़ और उस प्रदेशके ढाँचेको कहते हैं।

Gestation : गर्भ-धारण : यह गर्भ रहनेका पर्याय है।

Hormones : हरमोन : प्रभावी : वह पदार्थ हैं जो रक्तस्रोतमें जाने पर अपने स्राववाले अवयवोंको छोड़ अन्य सभी पर प्रभाव डालते हैं। अधिवृक्क, पोषणिका, चुल्लिका, डिम्बकोष, अन्ड आदि जैसी ग्रन्थियोंके अन्तःस्राव प्रभावी हैं। इनका देह और व्यक्तिके लक्षणपर गहरा प्रभाव पड़ता है।

Hypnotics : निद्रक : नीन्द लानेवाली दवाओंको कहते हैं। जैसे, ब्रोमाइड, क्लोरल हाइड्रेट, छोटा चन्द्रा (सर्प गन्धा)।

Inflammation : प्रदाह : यदि जीवित तन्तुपर क्षत लगता है तो क्षतकी गभीरताके अनुसार उसके प्रतिक्रिया-स्वरूप उसमें प्रदाह होता है।

इस प्रतिक्रियाका रूप ताप, पीड़ा, ललाई, सूजन, और उस अंगके कार्यमें बाधा है।

पहली प्रतिक्रिया धमनी पर होती है। यह फूल जाती है जिससे अधिक रक्त दौड़ता है। इस कारण ललाई और ताप होता है। इसके कुछ देर बाद क्षतस्थानमें श्वेत रक्त कण (क्षत्रकण) के साथ कुछ सीरम भी आता है। इस कारण सूजन हो सकती है। ये श्वेतकण मरम्मत का काम करने और मरम्मतमें सफल हो सकते हैं। तब सूजन मिटती है और रक्त आचूषण होकर प्रवाहमें मिल जाता है। यदि ये मरम्मतके काममें सफल न हुए तो घाव पक जाता है, रक्तप्रवाहमें बाधा पड़ती है। तन्तु नष्ट हो जाते हैं और पीब बनती है। इसके बाद पीब बह सकती है और घाव भरने लगता है।

प्रदाहकी पहली अवस्थामें ठंडा पानी या बर्फ लगाना लाभकारी है। बाद की अवस्थामें शीतोपचारसे कोई लाभ नहीं, सेंकना अधिक अच्छा है। प्रलेप (पुल्टिस) या गरम पानीका सेंक देनेसे गरमी और नमी दोनों मिलती हैं जो लाभकारी हैं। यदि फोड़ा निकलना ही है तो सेंकनेसे वह जल्दी निकल आता है। अधिक पीड़ा हो तो प्रशामक लगाया जा सकता है। धतूराके पत्तेके सूखे चूर्णका लेप बना मुसब्बरके साथ लगानेसे प्रदाहके दर्दमें प्रायः शान्ति मिलती है। यदि प्रदाह किसी विशेष अंगमें है तो उस अंगका रोग होता है और उसका नाम उसीके अनुसार होता है। यदि कंठमें प्रदाह है तो इसे कंठप्रदाह (लेरिन्जाइटिस), यदि फेफड़ेमें है तो निमोनियाँ आदि, इसी भाँति जानो।

Inhalation : सुँघनी : दवाओंका भाफके तौर पर साँसके साथ घोंटनेका नाम है। इस तरह दवाका संपर्क नाक, कंठ, क्लोम, क्लोमशाखा या पूरे श्वासतन्त्रके साथ कराया जाता है।

आक्षेप दूर करने या बेहोशीके लिये क्लोरोफॉर्मका व्यवहार होता है। इसी कामके लिये एमिल नाइट्रेटका व्यवहार किया जाता है। ये सब उड़नेवाले पदार्थ हैं। इनमें रुई भिगा इन्हें सुँघाते हैं।

भाफ की सुँघनी सबसे प्रचलित रूप है। साधारण तौर पर एटोमाइजर (अणुफुहारी) के सहारे सुँघनी दी जाती है। भाफकी सुँघनी किसी बर्तनमें भाफ तैयार कर नलीके द्वारा उसे निकालते हैं। नलीमें जहाँसे भाफ निकलती है वहाँ एक दूसरी नली जुड़ी रहती है। जिसका एक छोर एक दूसरे बरतनके द्रवमें डूबा रहता है जिसमें युकलिप्टस या थाइमल, तेल या तारपीनमें घुला रहता है।

भाफ वगलकी दवाको खींच उसमें मिल जाती है और महीन फुहारेमें निकलती है। इस फुहारको नाक और खुले मुँहके सामने रखा जाता है कि, भाफ साँसकी प्रणालीमें जाय।

कभी कभी दवाको उबलते पानीमें ही डालते हैं। जिससे दवा मिली भाफ निकलती है।

Inunction : मर्दन . दवा मिले तेल मलकर दवा देहके भीतर पहुँचायी जाती है। यह मर्दन क्रिया है।

Inoculation : संचारण : देहके भीतर क्षत या खोंचके द्वारा संक्रामक पदार्थ पहुँचानेकी क्रिया का नाम है। घटनावश शरीरमें वीजाणु-संचारण होनेसे रोग हो जा सकते हैं। रोगोंसे रक्षा करनेके लिये भी देहमें पाछ (टीका) या सूई लगाकर जीवाणु प्रवेश कराया जाता है।

Intussusception . अन्त्रप्रवेश : आँतोंके अवरोधका यह एक रूप है। इसमें आँतका कोई भाग अपने लगे भागपर चढ जाता है। इसका निदान कठिन और चिकित्सा चीरफाड़ (शल्य) वाली है।

Irrigation . धारा स्नान : प्रणालिकासिंचन : किसी द्रवसे किसी खातके धोनेकी क्रिया है। वाहरी क्षत पानीकी धार डालकर धोया जा सकता है। वडी आँत, जरायु या मूत्राशय धोनेमें यह उपयोगी है। एक टोंटीदार नली लेते हैं। नली $\frac{1}{2}$ या $\frac{3}{8}$ इंच व्यास की रबरकी हो सकती है। इसके एक छोर पर बड़ीसी टीप लगी रहती है। टीपमें आवश्यकताके अनुसार सादा या औषधियुक्त पानी भरा रहता है। टोंटी आँतके लिये गुदाके द्वारा और जरायुके लिये भगके द्वारा घुसायी जाती है। घुसानेके पहले जरासा-पानी वहा दिया जाता है जिससे कि उसकी हवा निकल जाय। कई गैलन पानी चढ़ाया जा सकता है जो थोडी देरके बाद वाहर वह निकल सकता है।

इस धारा स्नानसे वडी आँत पूरी तौर पर खाली नहीं हो सकती। पर जितना भी खाली होनी है उससे तथा गुनगुने और ठढे पानीके चढनसे भी पूरी आँतको स्फूर्ति मिलती है। यदि जरायुमें पानी चढाना ही पड़े तो उसमें जरासा पोटाश परमैंगनेटकी लाली मिला देते हैं। इसका अनुपात १ : १००० या १ : २००० है। जब भीतर सड़े सेन्द्रिय पदार्थ होते हैं तो पोटाशकी लालीवाला पानी भूरा या पीला बदरङ्ग होकर निकलता है। यदि पोटाशका पानी रङ्ग बदले बिना निकलने लगे तो

यह समझना चाहिये कि तत्काल कोथीय पदार्थ वह निकल गया है। क्षत धोनेके लिये बोरिक एसिडका हल्का घोल उपयोगी है। कडरा और पेशियोंकी मोच पर लगातार शीतल जलकी धार छोड़नेसे लाभ होता है। जब तीव्र अवस्था बीत जाय तो गरम पानीसे धोना ठीक होगा। इससे उस भागमें रक्त प्रवाहित होगा, जभी लसीकाका आचूषण हो जायगा।

Lathyrism · लैथीरिज्म : यह लैथीरस अर्थात् खेसारीका विष लगना है। यदि बहुत दिनोंतक खेसारीकी दाल बहुत जादे खिलायी जाय तो इस विषका लक्षण पशुमे दिखायी पड़ता है। इसके फलस्वरूप पक्षाघात हो सकता है। इसकी आशङ्का होने पर खेसारी खिलाना बन्द करना ही चिकित्सा है।

Lavage : धौति · आँत और पेट धोनेकी क्रियाका नाम है। उदर-नली (stomach tube) के द्वारा पेट और बस्ति या एनेमासे आंत धोयी जाती है।

Lugol's solution : ल्यूगोलका घोल : यह आयडिन और पोटाश-आयोडाइड का घोल है। इसका योग नीचे लिखे अनुसार है ·—

आयडिन	..	५
पोटाश आयोडाइड	..	१०
पानी	..	१००

Macules : धब्बे : अनेक कारणोंसे हुई त्वचापरके दाग हैं।

Malignant : मैलिग्नैन्ट : सांघातिक · विशेष कारणोसे हुई गहरी अस्वस्थताको कहते हैं। साधारण मलेरिया रक्तको जितनी क्षति पहुँचा सकता है उससे गहरी मैलिगनेन्ट या सांघातिक मलेरियासे होती है। मैलिगनेन्ट अर्बुद, मैलिगनेन्ट शोथ ये सभी कठिन रोग हैं।

Metastasis (मेटास्टेसिस) : स्थानविकल्प : दुष्ट या साघातिक अर्बुद देहके विभिन्न भागमें फैल गौण अर्बुद पैदा करते हैं। इस विधिको मेटास्टेसिस कहते है। ऐसे अर्बुद मेटास्टेटिक अर्बुद कहे जाते हैं।

Mycosis (माइकोसिस) : छत्राक जनित रोग : फफूँद या छत्राकका वृद्धिके कारण हुए रोगोंको कहते हैं। इसके उदाहरण दाद आदि हैं।

Names of parts of body : शरीर अंगोंके नाम अंग्रेजी शास्त्रीय, अंग्रेजी प्रचलित तथा हिन्दी।

अंग्रेजी शास्त्रीय ।	अंग्रेजी प्रचलित ।	हिन्दी ।
Cranium	Fore brain	कूर्पर, करोटी
Occipital region	Poll	चांदी, पश्चिमकपालदेश
Cervical region	Neck	गला, ग्रीवाप्रदेश
Thoracic region	Withers and back	पुट्ठा और पीठ
Lumbar region	Loins	कमर, कटिदेश
Sacrum region	Croup or quarters	नितंब
Coccygeal region	Tail	पूँछ
Scapula	Shoulder blade	कंधा, असफलक
Humerus	Arm	बाँह, प्रगडास्थि
Radius or Ulna	Fore-arm	कलाई, अतःबहिः प्रकोष्ठास्थि
Carpus	Knee	घुटना
Meta Carpus	Cannon	करभास्थि
1st phalanx	Long pastern	प्रथम अगुली-नलक
2nd „	Short pastern	द्वितीय अगुली-नलक
3rd „	Coffin bone	तृतीय अगुली-नलक
Pelvis	Hunch	श्रोणि
Femur	Leg or thigh bone	उरु-अस्थि
Tibia and fibula	Second thigh or gaskin bones	जंघास्थि और अनुजघास्थि
Tarsus	Hock	पाद-कुर्चास्थि, पिछला घुटना
Meta tarsus	Cannon	पादांगुलीमूल-शलाका, करभ
Pharynx	Throat	गला
Oesophagus	Gullet	अन्नवहा
Larynx	Voice box	कंठ
Trachea	Wind pipe	साँस-नली
Rumen	Paunch	रोमंथाशय, झोंक
Reticulum	Honey-comb	जालाशय, मधु-छत्रा

Omasum	Many plies	पूर्वाशय, पन्ना या वहुमन्क
Abomasum	True stomach	पश्चात् आशय, सच्चा पेट
Coronet	Arc of head	मुकुट

Necrosis : तन्तुक्षय : अस्थि-निष्प्राणता : तन्तुओं विशेपकर सौत्रिक तन्तुओं या अस्थिओंकी निष्प्राणताको कहते हैं।

Normal Saline (नॉरमल सेलाइन) . शरीर शास्त्रीय नमकीन जल अर्थात् नमक का साधारण घोल : यह जीवाणुशुद्ध चुलाये (डिस्टिल्ड) पानी और खानेके नमकका घोल है। यह स्फूर्ति देनेवाला है क्योंकि यह ० ९ सैकडा अर्थात् १ पाइन्ट जलमें लगभग ९० ग्रेन नमक का घोल है।

नमकका पानी कुछ देर तक रक्तकी जगह काम दे सकता है। इसलिये गहरे रक्तस्राव या रक्तकी हानिसे हुए सङ्कटको टाल सकता है। जरूरत हो तो सयाने बैल को हर दूसरे घंटे वार वार १ गैलन तक दिया जा सकता है। (१३४२,१४५०)

Nursing : शुश्रूपा : परिचर्या : दवासे अधिक भरोसा शुश्रूपाका करना चाहिये। दवा प्रकृतिको सहायता मात्र ही करती है। और शुश्रूपा भी यही कर सकती है। दवा हानि भी कर सकती है। सफाई, आराम, खिलाने और भूखे रखनेकी जब जैसी जरूरत हो व्यवस्था करो।

Obstetrics धात्रीविद्या : बच्चोंका प्रसव और इस सम्बन्धके रोग तथा असाधारणताओंके विचारको कहते हैं।

Opsonine (आप्सोनिन) : कल्पन : वह पदार्थ हैं जो रक्तरस (सीरम) में रहते हैं और जीवाणुओंको खा लेने और नष्ट करनेकी श्वेतकणकी शक्ति बढाते हैं। रक्तमें यह शक्ति मृत जीवाणुओंकी सूई लगाकर बढ़ायी जा सकती है।

Os (ऑस) : मुख : द्वार देश या मुँह।

Os uteri : गर्भाशयमुख : जरायुका मुँह।

Prolapse : भ्रंस : किसी अंग या ढाँचेके स्थान भ्रष्ट होनेको कहते हैं। गुदा और जरायु या भगका भ्रंस कभी कभी होता है।

महाश्रोतके उत्ताप या उसपर जोर पडनेसे गुदभ्रंस (काछ निकलना) होता है। जरायु और भग भी निकल आ सकते हैं। इन अङ्गोंको १ · १००० (१ रत्तलमें ७ ग्रेन) पोटाश परमैंगनेटके घोलसे साफ करना चाहिये। उसके बाद उसी घोलमें एक तौलिया भिगा कर निचोड़ लो। फिर इस अंगको बैठानेमें प्रायः पशु बाधा देता

है। उसकी बाधा से बैठाना यदि असभव हो जाय तो उसे ऐसी असुविधाजनक स्थितिमें रक्खो कि वह बाधा न दे सके। इस कामके लिये छातीको रस्सीसे कसते हैं। खूब कस जाने पर ट्रनिकेट या मरोड़नीका उपयोग किया जाता है। पशु बाधा देनेकी जब चेष्टा करे तो मरोड़नीको और मरोड़ो इससे वह वैसा नहीं करेगा।

यदि किसी अगका भ्रंस हो जाय और डाक्टरके आने की प्रतीक्षा हो तो उसे १ : २००० पोटाश परमैंगनेटके घोलसे तर कर ढका रखना चाहिये। यदि कोई भीतरी अंग बाहर सूखी हालतमें रहे तो गैंगरीन हो जा सकती है जिससे पशुकी जानको खतरा रहता है।

भ्रस-अग बैठानेके लिये शरीरको क्लोरल हाइड्रेटसे शिथिल किया जा सकता है। इससे पशु बाधा नहीं दे सकेगा और सरलतासे अंग अपने ठिकाने बैठाया जा सकेगा।

Prognosis (प्रॉग्नोसिस) : साध्यासाध्य निर्देश . रोगकी गतिका भविष्य-कथन।

Pyaemia (पायेमिया) : पूति-रक्तदुष्टि : रक्तमें ऐसे परिवर्तन होना जिनसे रक्त-स्रोतमें पूयकण होनेके कारण विभिन्न अंगोंमें फोड़े निकलें। पोलीभैलेन्ट स्ट्रेप्टो-भैक्सीनकी सूई और सल्फापाइरिडीन या एम० बी० ६९३ खिलानेसे भी यह रोग दूर किया जा सकता है।

Sedatives : शामक : प्रशामक : वह दवायें हैं जो उत्ताप मिटाती और शान्ति देती हैं। जैसे कपूर, रेंड़ीका तेल, छोटा चन्द्रा (सर्पगन्धा), धतूरा, अफीम, ब्रोमाइड।

Sinus (साइनस) : विवर : देहके सँकड़े और खोखले गह्वरको कहते हैं।

Spasm : आक्षेप : पेशियोंका अपने आप पीड़ायुक्त सकुचन है।

Sphinctre : संकोचिनी : किसी अंगके मुँह परको गोल पेशी जो मुँह सदा बन्द रखती है और द्रवोंको बाहर नहीं निकलने देती। यह इच्छा करके ढीली की जा सकती है।

Styptics : रक्तरोधक : रक्तस्राव रोकनेवाली दवायें जैसे फिटकिरी, तारपीन।

Tonics (टॉनिक) : बलवर्धक : पुष्टिवर्धक : शरीरको शक्ति देनेवाली दवायें। जैसे संखिया, लोहा, कुचला, अर्जुन, कुनाइन-और सिनकोना।

Tourniquet (टूर्निकेट) : मरोड़नी : साँप काटने या धमनीसे रक्त बहना जैसे अवसर पर रक्त-प्रवाहको कुछ समय रोकनेवाला यन्त्र। अंग विशेपको रस्सी या रूमालसे बाँध देते हैं। अधिक चाप देनेके लिये उसमें पेन्सिल या कोई छडी या शलाका घुसाकर मरोड़ते हैं जिससे बन्धन और कसता जाता है। ध्यान रहे कि, अधिक देर तक रक्तप्रवाह एक दमसे नहीं रोका जाय। क्योंकि, अधिक देर तक रक्तप्रवाह नहीं रहनेसे वह अंग निष्प्राण हो जाता और गैंगरीन हो जाती है।

Truss (ट्रस) : अन्त्रस्थापक : कटिबन्ध : मनुष्योंकी आँत उतरने पर यह खास तौर पर उपयोगमें आता है। इससे दबाकर आँतका उतरना रोका जाता है। पशुचिकित्सामें इसका अधिक उपयोग नहीं।

Trocar canula (ट्रोकर कैनुला) : व्रीहिमुख : यह एक नुकीली छेनी है जिसके दूसरे छोरपर हत्था लगा रहता है। यह एक अङ्गूठीदार नली (कैनुला) में बैठ सकता है। व्रीहिमुख नलीसे आध इंच बाहर निकला रहता है। जलोदर आदि रोगोंमें पानी निकालने और पेट फूलने आदि पर हवा निकालनेमें यह यन्त्र काममें आता है।

नुकीले व्रीहिमुख पर नली या कैनुला चढा कर जलोदरमें चाही जगह पर घुसेडी जाती है। जैसे कि पेट फूलने या जलोदरमें उदर्याकलामें। इसके बाद केवल व्रीहिमुख खींच लिया जाता है और नली रहने दी जाती है। इस तरह जलोदरमें पेटका पानी और पेट फूलने पर उसकी हवा नलीसे होकर बाहर निकलती है। नली निकाल लेने पर छेद अपने आप भर जाता है। छेद करते समय कोथघ्न उपाय कर लेना चाहिये।

Weights & measures : नाप और जोख : ४ डिग्री सेन्टिग्रेड ताप रासायनिक विश्लेषणके काममें आनेवाली भिन्न भिन्न तौल या जोख ग्राम, उसके अंश या गुणित (गुने) हैं। और भिन्न भिन्न नाप हैं क्यूबिक सेन्टिमीटर, उसके अंश या गुणित। पर एक क्यूबिक सेन्टिमीटर (सी० मी०) पानीकी तौल पूरी १ ग्राम होती है। सेन्टिमीटर लम्बाई की नाप भी है। पानीका एक हिस्सा या खंड जिसकी लम्बाई चौडाई और ऊँचाई एक एक सेन्टिमीटर है वह एक क्यूबिक सेन्टिमीटर है। उसका वजन १ ग्राम है। समान समान नापों और जोखोंकी एक सूची नीचे दी जाती है।

लंबाईकी नाप

१ इंच = २·५३९९ सेन्टीमीटर (= २·५४ प्रायः)।
१ फूट = ३०·४७९४ „ (= ३०·४८ प्रायः)।
१ गज = ९१·४३८३ „ या ०·९१४ मीटर।
इंचको सेन्टीमीटर बनानेके लिये २·५४ से गुणा करो।
१ सेन्टीमीटर = ०·३९३७ इंच।
१ मीटर = १०० सेन्टीमीटर = १ गज ३·३७ इंच।
सेन्टीमीटरको इंच बनानेके लिये ०·३९ से गुणा करो।
मीटरको गज बनानेके लिये १·०९ से गुणा करो।

तौलकी नाप

१ ग्रेन = ०·६४८ ग्राम।
= ६४·८ मिलीग्राम।
१ ड्राम = ३·८८८ ग्राम।
१ आउन्स = २८·३५ ग्राम।
१ पाउन्ड = ४५३·५९२ ग्राम। मोटामोटी ½ किलोग्राम।
१ किलोग्राम = १,००० ग्राम।
आउन्स (एवडों०) को ग्राम बनानेके लिये २८·३५ से गुणा करो।
पाउन्डको ग्राम बनानेके लिये ४५३·६ से गुणा करो।
पाउन्डको किलोग्राम बनानेके लिये ०·४५४ से गुणा करो।
१ मिलीग्राम = ०·०१५४ ग्रेन।
१ ग्राम = १५·४३ ग्रेन।
= ०·०३२१ आउन्स।
१ किलोग्राम = १,००० ग्राम।
= २·२०४६ पाउन्ड (एवडों०)
ग्रामको आउन्स बनानेके लिये ०·०३५२ से गुणा करो।
ग्रामको ग्रेन बनानेके लिये १५·४३२ से गुणा करो।
किलोग्रामसे पाउन्ड बनानेके लिये २·२०४६ से गुणा करो या मोटामोटी २·२ पाउन्ड।

घन परिमाण (केपेसिटी) का नाप

१ फ्लुइड ड्राम = ३·५४४ क्यूबिक सेन्टीमीटर (सी० सी० या मिलीलीटर)।
१ फ्लुइड आउन्स = २८·४१२ सी० सी०।
१ पाइन्ट = ५६७·९३३ सी० सी० या ०·५६८ लीटर।
१ गैलन = ४·५४ लीटर।
१ लीटर = १,००० सी० सी० या मिलीलीटर।
= ३५·१९६ फ्लुइड आउन्स।

आउन्सको सी० सी० बनानेके लिये २८·४१२ से गुणा करो।
पाइन्टको सी० सी० बनानेके लिये ५६८·० से गुणा करो।
गैलनको लीटर बनानेके लिये ४·५४ से गुणा करो।

१ क्यूबिक सेन्टीमीटर = १ ग्राम डिस्टिल्ड पानी ४ डिग्री से० ताप पर।
= ०·०६१ क्यूबिक इंच।
= ०·०३५२ फ्लुइड आउन्स।
= १६·८९६ मिनिम।

सी० सी० को आउन्स बनानेके लिये ०·०३५२ से गुणा करो।
लीटरको पाइन्ट बनानेके लिये १·७६ से गुणा करो।
लीटरको आउन्स बनानेके लिये ३५·१९६ से गुणा करो।

१ सी० सी० = $\frac{१}{१०००}$ लीटर = १ मिलीलीटर।
= १ ग्राम डिस्टिल्ड पानी ४ डिग्री से० ताप पर।

१ गैलन = १० रत्तल पानी, २७७·२७४ क्यूबिक इंचमें (४·५४ लीटर) फैला हुआ।

तौल

४ धान = १ रत्ती, गंची
६ रत्ती = $\frac{१}{१६}$ तोला
९६ रत्ती = १ तोला
४ कचा = १ छटाक
१ सिक्की = $\frac{१}{४}$ तोला

८ रत्ती = १ मासा
५ सिक्की = १¼ तोला या १ कंचा
१ तोला = १८० ग्रेन
५ तोला = १ छटाक
२½ तोला = १ आउन्स
४ छटाक या २० तोला = १ पाव
४ पाव, १६ छटाक, २ रत्तल या ८० तोला = १ सेर
१ सेर = २.०५७ रत्तल या पाउन्ड
५ सेर = १ पसेरी, १ धारी
४० सेर = १ मन

ब्रिटिश फार्माकोपियाके तौलकी नाप

१ ग्रेन
४३७ ५ ग्रेन = १ आउन्स
१६ आउन्स = १ पाउन्ड या रत्तल
७००० ग्रेन = १ पाउन्ड या रत्तल

ब्रिटिश फार्माकोपियाके द्रवके घन-परिमाण का नाप

१ मिनिम
६० मिनिम = १ फ्लुइड ड्राम
८ फ्लुइड ड्राम = १ फ्लुइड आउन्स
२० फ्लुइड आउन्स = १ पाइन्ट
८ पाइन्ट = १ गैलन

एपोथेकेरीज (डाक्टरी) तौल

२० ग्रेन = १ स्क्रूपल
३ स्क्रूपल = १ ड्राम
८ ड्राम = १ फ्लुइड आउन्स
१२ आउन्स = १ पाउन्ड या रत्तल

२० फ्लुइड आउन्स = १ पाइन्ट
२ पाइन्ट = १ क्वार्ट
१४ फ्लुइड आउन्स = १ बोतल
१६० फ्लुइड आउन्स = १ गैलन

एवर्डोपाइज (अङ्गरेजी चालू) तौल

१६ ड्राम = १ आउन्स
१६ आउन्स = १ पाउन्ड या रत्तल
२८ पाउन्ड = १ क्वार्टर
४ क्वार्टर = १ हन्डर (हन्ड्रेडवेट)
२० हन्डर = १ टन
११२ पाउन्ड = १ हन्डर
२२४० पाउन्ड = १ टन
१ स्टोन = १४ पाउन्ड

तौल

१ मिलीग्राम	= ग्रामका १/१०००	=	०.००१ ग्राम
१० मिलीग्राम	= १ सेन्टीग्राम	=	०.०१ ग्राम
१० सेन्टीग्राम	= १ डेसीग्राम	=	०.१ ग्राम
१० डेसीग्राम	= १ ग्राम	=	१. ग्राम
१० ग्राम	= १ डेकाग्राम	=	१० ग्राम
१० डेकाग्राम	= १ हेक्टोग्राम	=	१००. ग्राम
१० हेक्टोग्राम	= १ किलोग्राम	=	१०००. ग्राम

नाप

१ मिलीलीटर	= १ क्यूबिक सेन्टीमीटर	-	०.००१ लीटर
१० मिलीलीटर	= १ सेन्टीलीटर	=	०.०१ लीटर
१० सेन्टीलीटर	= १ डेसीलीटर	=	०.१ लीटर
१० डेसीलीटर	= १ लीटर	—	१. लीटर

१० लीटर = १ डेकालीटर = १०' लीटर
१० डेकालीटर = १ हेक्टोलीटर = १००' लीटर
१० हेक्टोलीटर = १ किलोलीटर = १०००' लीटर

नाप और तोल

१ मिलीग्राम ०'००१ = १/६४ ग्रेन
१ सेन्टीग्राम ०'०१ = १/६ ग्रेन
१ डेसीग्राम ०'१ = १½ ग्रेन
१ ग्राम १' = १५½ (१५'४३२) ग्रेन
४ ग्राम (३'९) = १ ड्राम
३१ ग्राम (३१'१) = १ आउन्स
५०० ग्राम (४५३'६) = १ पाउन्ड (एवर्डो०)
१ किलोग्राम = २'२ पाउन्ड (एवर्डो०) (२'२९४६)
१ मिनिम = ०'६१ सी० सी०
१६ मिनिम (१६'२३) = १ सी० सी०
१ फ्लुइड ड्राम = ३'७५ सी० सी०
१ फ्लुइड आउन्स = ३० (२९'५७२) सी० सी०
१ पाइन्ट = ५०० सी० सी० ('४७३१ लीटर अथवा ४७३ सी० सी०)

शास्त्रीय और पारिभाषिक शब्द

A

abdomen उदर, पेड़ू
abductors नायनी
abomasum पश्चांत्-आशय, सच्चा पेट
abrasion रगड़, खोंच, अवदरण
absolute heart weakness निरपेक्ष हृदय-दौर्बल्य
absorption आचूषण
acid अम्ल, तेजाब
—lactic दुग्धाम्ल
acid-fast अम्लसहिष्णु, एसिड-फास्ट
acne कील, मुख-दूपिका
actinomycosis मुखव्रण, कठजिभिया
active immunity सहज क्षमता
acute प्रबल, दारुण, उग्र
aerobic वायुजीवी
afferent संज्ञावह
agglutination test सश्लेष-परीक्षा
albumen अंड-सफेदी, अड-लाल
alveoli वायुकोष, उदूखल
alimentary canal अन्नवहा नली, महास्रोत
alfa-alfa लूसन, अल्फाल्फा
allergy अतिचेतना, एलर्जी
amputation अंगच्छेदन
anaemia रक्ताल्पता
anaerobic निर्वायुजीवी
anaesthesis संज्ञाशून्यता
anaesthetic संज्ञाशून्यक
analgesic वेदनाशून्यक, पीड़ाहर
anaphylaxis अतिग्राहकता
anasarca सार्वदैहिक शोथ
anatomy शारीर-शास्त्र, शारीरसंस्थान-विद्या
anodynes वेदनाशून्यक, वेदना-निवारक,
anus गुद, पायु
antacid अम्लघ्न
antibody प्रतिपिंड
antidotes विषघ्न, अगद
anterior turbinated bone शुक्तिकास्थि
—deep pectoral muscle उरच्छदा

—aorta आगेकी महाधमनी
antigen प्रतिपिंडक
anthrax गिल्टी
aorta महाधमनी
apex चोटी, हृदग्र, हृदयतल
apoplexy अपस्मार, मृगी
appendicular parts शाखायें
appendix उण्डुक, उडुकपुच्छ अन्त्रपुच्छ
aqueous humour तेजोजल, तनुजल
arachis मूँगफली
arm प्रगंड
artery धमनी
articulation सन्धि, जोड
arthrospores पिंडज
ascarides केंचुआ कृमि, लताकार कृमि
ascites जलोदर
asternal अ-उरःफलकीय
atlas चूड़ावलय
atony पेशी-दौर्बल्य
attenuated हल्का, कमजोर किया हुआ
auricular appendix अलिन्दकी चोटी
auscultation श्रवण, आकर्णन
axillary vein कक्षाधरा शिरा
axiomatic स्वतः प्रमाण
axis धुरी
—cylinder सूत्राक्ष
—vertebra दन्तचूड़ा-कशेरु

B

bacteria जीवाणु
balanced diet युक्ताहार
bang's disease संक्रामक गर्भपात, छुतहा गर्भपात
basal metabolism आधारीय प्रसाद्पाक
biceps द्विशिरस्का पेशी
—femoris द्विशिरस्का औवीं पेशी
bi-concave द्वि-नतोदर
bi-convex द्वि-उन्नतोदर
bile पित्त
biological जैविक, जीवशास्त्री, जैव
binocular द्विचक्षु-दृष्टि
black quarter लंगड़ी
bladder वस्ति, मूत्राशय
bland oil मीठा या अनुत्तेजक तेल
blood vessel रक्तवहा
body cell शरीर-कोष
borax सोहागा
ball and socket उदूखल
bony tissues अस्थितन्तु
brachialis कूर्पर द्विशिरस्का पेशी
brady cardia हृद्-मन्दता, हृन्मन्दता

brain cord सुषुम्नाकांड
—matter मस्तिष्क-तत्व
bronchitis ब्रोंकाइटिस, क्लोमशाखा-प्रदाह, कास
bronchus क्लोमशाखा
bull-holder सांढ़की नकेल
by-product उपजात

C

caecum पुरीषोन्डुक, उन्डुक
calcification सौधीकरण
calcium कैलशियम, चूना, सुधा
—carbonate खड़िया, खड़ी
calf बछरु
calf-diphtheria वत्स-रोहिणी
calorie पोषक-ताप, कैलोरी
canine रदनक
cannon करभ
—region शलाकाधिष्ठान, मणिवन्ध
canula कैनुला, नली
capillary केशिका, जालक
carbohydrate कार्बोहाइड्रेट, श्वेतसार
cardiac asthenia हृदय-दौर्बल्य
—plexus हृदयचक्र
carnivora मासभोजी
carpus जानु, कूर्चास्थि
carrier वाहन, वाहक
cartilage तरुणास्थि, उपास्थि
casein केसीन, केजोन, छेना-पदार्थ
castrate वधिया करना
catalyst उत्प्रेरक, प्रतिक्रियाकारी
cathartic विरेचक
caustic soda कॉस्टिक सोडा, दाहक क्षार
cavity खात, दरी
cells कोष
centrifugal केन्द्रापसारी
cercariae तुण्ड्याँ
cerebellum लघुमस्तिष्क, धम्मिलक
cerebro-spinal fluid ब्रह्मवारि, मस्तिष्क-सुषुम्नान्तरीय जल, तर्पक कफ
cerebrum बृहत्-मस्तिष्क, गुरुमस्तिष्क
cervical vertebra ग्रीवा-कशेरु
cestodes पट्टिका कृमि
chemotherapeutical रासायनिक, केमोथेरापी चिकित्सा सम्बन्धी
cholagogue पित्तनिस्सारक, पित्तोत्तेजक
choroid coat कृष्णमण्डल
chromosomes क्रोमोजोमस
chronic जीर्ण, पुरातन
cicatrix व्रण, क्षत-चिह्न दाग
cilia पक्ष्म, मार्जनिका

ciliary body सन्धानमंडल
—process सन्धान-प्रवर्धन
circulatory system रक्तसचारी संस्थान
circumvallate खातवेष्ठित
cirrhosis पीतामय
clavicle (collar bone) हँसुली, अक्षक, कन्धेकी हड्डी, कंठास्थि
clinic रोगशय्या
clot श्यान, थक्का
club गोष्ठी
coccidiosis खूनी दस्त
coccygeal (caudal) अनुत्रिकास्थि सम्बन्धी, पुच्छास्थि सम्बन्धी
collapse अवपात, हिमांग, सर्वांगीन अवसन्नता
collar bone (clavicle) हँसुली, अक्षक, कन्धेकी हड्डी, कंठास्थि
colloid अणुसमूह-दशा
colon वृहदन्त्र, पक्वाशय
colostrum पेउसी
coma अचेतनता, मूर्च्छा.
comminuted खंडक, विचूर्णित
common aorta साधारण महाधमनी
—carotid artery महामातृकाधमनी
compensated heart क्षतिपूर हृदय
complications उपद्रव
components घटक, उपादान
compound यौगिक, मिश्रण
conceive फलना, फरना, गाभिन होना
concentrates पौष्टिक चारा, पौष्टिक
concussion of brain मस्तिष्काघात
conduction परिचालन, परिवहन
conflict द्वन्द, द्वन्द्व
conical शंक्वाकार
congestion रक्तसंकुलता
—of brain मस्तिष्ककी सकुलता
conjunctiva नेत्रवर्त्म
connective tissues वन्धन-तन्तु, संयोजक तंतु
constituents घटक, उपादान
contagious संक्रामक
control परिमापक
convulsions आक्षेप
cornea स्वच्छमन्डल
corpora mammillara वृंताकार पिंड, चूचुक वर्त्तुलक
corpus callosum महासंयोजक, मस्तिष्क-सेतु
corpusle रक्तकण
—red लाल रक्तकण
—white श्वेत रक्तकण
cortex वहिर्वस्तु, वहिस्तर

cosmic विश्वसम्बन्धी, सृष्टितत्व सम्बन्धी
costal cartilage उपपर्शुका
cow-pox गो-वसन्त, चेचक
counter-irritant प्रति-उत्तापक
craniotomy कपालोच्छेदन
cranium कूर्पर, करोटी, करोटिका
cream क्रीम, दुग्धसार, मलाई
crepitation चटचट या पटपट शब्द, करकराहट
cross दोगला, सकर
croupous rhinitis पीनस, नाकडा
crown शीर्ष
crucible घरिया (जिसमें सोनार धातु गलाते हैं)
curative निवारक
culture कृष्टि
cupping सिंगी लगाना
cuticle cell त्वक्कोष, बहिस्त्वक्कोष
cyanosis नीलिमा
cyst सीस्ट, थैली

D

dairy गव्यशाला, गोशाला, गव्यक्षेत्र
—products गव्य
dam जननी
decapitation शिरश्छेदन
degeneration विकृति, हीनावस्था
dehorning विशृंगीकरण
delta नदीका पखा, गगवरार
deltoid असच्छदा, असपिंडिका
demulcents उपदाह-प्रशामक, शामक, स्निग्धकारक
dengue डेंगू, भील, चारमेख, कछवाली
deodorant विगन्धीकारक
dermatitis त्वक्प्रदाह
dermis अन्तस्त्वक्
desiccant शोषक
dewlap झालर
detergents स्वच्छक, परिमार्जक
diagnosis निदान
—differential भेददर्शी निदान
diaphragm महाप्राचीरा, मध्यप्राचीरा
diaphoretic प्रस्वेदक
diplegia पूर्णांग-पक्षाघात
diarrhoea अतिसार
diastole विकाश, विस्तार
dicalcification निस्सौधीकरण
difficult labour मूढगर्भ, कष्टसाध्य प्रसव, कष्टप्रसव
digital extensor करभ-प्रसारणी
—flexor करभ-नमनी, करभ-नकोचनी
direct प्रत्यक्ष

disc चकती
disinfectant छूतघ्न, नि.सक्रामक, रोगाणुनाशक
diuretic मूत्रल, मूत्रकारी, मूत्रवर्धक
dominant प्रधान, प्रबल
draught power भारवाही शक्ति
drum कर्ण-पटह
dry विसुकना
dual purpose द्वि-प्रयोजन
duodenum ग्रहणी
dura mater बाहरी आवरण, कलावरण, वराशिका
dysentery प्रवाहिका, आमातिसार
dyspnea श्वासकृच्छ्र, श्वासकष्ट, श्वासनिरोध
dystokia मूढ़गर्भ, कष्टसाध्य प्रसव
dysuria मूत्रकृच्छ्र

E

ear canal सुरग, कर्णांजली
eclampsia अततानक, एक्लेम्प्सिया
eczema एकजीमा, छाजन
efferent मनोवह, चेष्टावहा
effusion स्राव, रस-निस्सरण, बहाव
electuary अवलेह
embolism अवरोधन
embryotomy भ्रूणोच्छेदन, भ्रूणव्यवच्छेद
emergency inoculation हठात् संचारण
emetic वामक, वमनकारक
enamel दन्तवल्क
endemic बारहमासी बीमारी
endocardium हृदयाभ्यन्तर कला
endogenous गर्भज
enteritis अन्त्रप्रदाह, आँतोंकी सूजन
enzymes एन्जाइम, क्रियाशील रस
epidemics महामारी
epidermis बहिस्त्वक्
epidural वराशिका सम्बन्धी, बाह्यशिराल
epiglottis ग्रीवाप्रच्छदा, अधिजिह्विका
epistaxis नकसीर
erosion बहना
eructation छलक, उद्गार, डकार
ethmoid bone झर्झरास्थि
eye-ball अक्षिगोलक, आँखका कोआ
excretory विसर्ग सम्बन्धी, मलत्याग सम्बन्धी
expiration नि:श्वास, प्रश्वास
extension and flexon तानना और मोडना, प्रसारण और संकोचन
extensor pedis पद-प्रसारणी
external jugular vein अधिमन्या शिरा
extravasation अपसार, पर्युत्प्लावन

F

factor कारण
fallowing चौमास
farm क्षेत्र
fascia प्रावर्णी
fat स्नेह
femur ऊर-अस्थि, उर्वस्थि
fencing वाड़ा
ferment सधान, उफनना, फफदना, खमीर
fetlock टखना, बंजन-खुरी, गुल्फ
fibula अनु-जंघास्थि
fibre tissues सौत्रिक तन्तु
filiform सौत्रिक
fistula नासूर, नाडीव्रण
flakes कतरे, छिलके
flat-worm चिपटी कृमि,
flexor सकोचनी, नमनी
—metacarpi करभ-सकोचनी, करभ-नमनी
fluids द्रव
foetus भ्रूण
foot and mouth disease मुँहपका, खुरपका रोग
foramen magnum महाविवर
fore-arm प्रकोष्ठ
forehead ललाट, कपाल
formula गुर, सूत्र, निर्दिष्ट पद्धति
fracture अस्थिभग
— compound मिश्र अस्थिभंग
— riding आरोही अस्थिभग
— simple सरल अस्थिभग
fragmentary असम्बद्ध
friable भुरभुरा, चूर्णयोग्य
fistula-in-ano भगन्दर
front limb अगली शाखा
frontal bone पुर. कपालास्थि
functional disease क्रियागत रोग
fungi छत्राक, छत्रिका,
fungiform छत्रक
fungus छत्राक, छत्रिका
furrow सीता, नाली

G

ganglion cells नाडीगड
gangrene गैंगरीन
gas वायु, गैस
gastric catarrh पाकाशय-प्रदाह
— juice पाचक-रस
gastritis पाकाशय प्रदाह
gastrocnemius पिण्डिका
genetics प्रजनन-शास्त्र
germicide जीवाणुनाशक
gliding joint सरकनेवाला या प्रसर सन्धि
glomeruli उन्निका

glossopharyngeal nerve कंठरासनी नाड़ी
glycogen मधुरिका, मधुरक, अघुलनशील चीनी
goads अरउआ
goitre घेघा
gonads प्रजनन-ग्रन्थि
grading up कोटि-निर्माण
granulation अंकुरण
grinding teeth चर्वणक दांत
grooves सीता, गडरी, खान, परिखा

H

haemolytic anaemia रंजनीय रक्ताल्पता, रक्तविकृतजनित रक्ताल्पता
haemonchus contortus तार-कृमि
haemorrhagic septicaemia गलघोंटू
hallucinations भ्रम
halters रस्सी, कठपाश, तगही
heat गर्माना, गरम होना
heifers ओसर, कलोर
helminthiasis कृमि-रोग
hemiplegia अर्धांग-पक्षाघात
herd ठट्ठ
hermaphrodites उभयलिंगी
hernia अन्त्रवृद्धि, आंत उतरना
hind limb पिछली शाखा
hinge joint खल्लकोर सन्धि
holding चक
hook worm अंकुशा
horizental plate मध्यफलक, ह्रस्वपत्रक
hormones प्रभावी, उत्तेजक निःस्रव, हरमोन
horn-core शृंगमूल, शृंगमज्जा
host गृही, आश्रयदाता, मेजबान
humerus प्रगंडास्थि
hump-sore कुब्बका घाव
hybrid दोगला
—vigour सकर-तेज
hydrocephalus दीर्घशिर
hydrophobia जलातक
hygiene आचारिक, स्वास्थ्यविधि
hyoid bone कठकास्थि
hypertrophy विकृत वृद्धि, अतिवृद्धि,
hypnotic तन्द्राकारी
hypocalcaemia चूर्णाल्पता, कैलशियम या चूनेकी कमी
hypoglossal nerve जिह्वातालि नाड़ी, जिह्वामूलिनी नाडी

I

ilium जघन-कपाल, श्रोणि-अस्थि
immature पोगड, अप्रौढ़

immunity अनाक्रम्यता, रोगक्षमता
—natural सहज क्षमता
—passive निष्क्रिय क्षमता
in-breeding सपिंड-सवर्धन
incidence विस्तार
incisor teeth कर्तनक दाँत
incubation period प्रच्छन्नकालीन समय, रोगकी प्रच्छन्नावस्था, डिम्बपुष्टिकाल
indirect परोक्ष
inert जड़
infection छूत, सक्रमण
inferior oblique muscles वक्र-अधोदर्शनी
—turbinated bone अध. शुक्तिकास्थि
infra-spinatus असपृष्ठिका अधरा पेशी
infundibula क्लोमकाडिका, कूपिका
ingredient उपकरण
inguinal वक्षणसम्बन्धी, कुक्षिगत
injection इनजेकसन, सूई लगाना
inoculation जीवाणु सचारण
—emergency हठात् सचारण, सकटकालीन सचारण
insecticide कीटघ्न
inspiration श्वासग्रहण
insulin इनसुलिन, सर्वशरीर-पाचक रस
intercostal muscle पर्शुकान्तरिका पेशी
interdependent अन्योन्याश्रय
interparietal bone अन्तर-पार्श्वकपालास्थि
intestinal catarrh आन्त्रिक प्रदाह, आँतोकी सूजन
intramuscular अन्त:पेशी
intravenous अन्त:शिरा
involuntary muscle स्वतन्त्र पेशी
involution प्रसावान्तर-सकोच
iris तारामंडल
irritant उत्तापक

J

jaundice पांडु, कामला
john's disease चाह
joint सन्धि, जोड़
— gliding, प्रसर-संधि, सरकनेवाली संधि
— hinge कब्जेदार सन्धि
jugular vein (anterior) पुरोग्रीविका शिरा
— external अग्रिमन्या शिरा
— internal अनुमन्या शिरा

K

kidney वृक्क, गुर्दा
knee जानु

L

labour pain प्रसव-पीड़ा, पीर
labyrinth गहन
lacerated विदीर्ण, चिथा
lacrymal bone अश्रुपीठास्थि
lactation ब्यान, ब्यांत, स्तन्यप्रदान-समय
lactic acid दुग्धाम्ल
lancet उत्पलपत्र-यन्त्र, छुरिका
larvae अर्भक, ढोला, पिल्लू
larynx कंठ, स्वरयन्त्र
latent period प्रच्छन्नकाल
lateral masses पार्श्वपिन्ड
laws of inheritence आनुवंशिकताके नियम
lens ताल
levator scapulae अंसोन्नमनी पेशी
lice जूँ
ligament बन्ध, बन्धनिका, स्नायुरज्जु
—Nuchæ शिरोग्रीवबन्ध
line-breeding सगोत्र-संवर्धन
liquor amni गर्भोदक
liver यकृत्
— fluke यकृत्-कृमि
live-stock पशुधन
lobe पिंड, खंड, भाग
—of ear कर्णपालिका
longessimus dorsi मध्यपृष्ठिका पेशी
lucern लूसन, अल्फाल्फा
lumbar vertebra कटि-कशेरु
lymph लसीका, रस
lymphatic gland लसीका-ग्रन्थि
— vessel रसायनी

M

maggots कीड़े, पिल्लू
malar bone गंडास्थि
malformation कदाकृति
malignant मारात्मक, सांघातिक, दुष्ट
malnutrition दुष्पोषण
mandible अधोहन्वस्थि
mange पकी खुजली
manipulation हस्तोपचार
manyplies बहुपत्रक-पेट, पूर्वाशय
masseter muscle हनुकूट-कर्षणी, चर्वणी
mastitis थनैला, स्तनप्रदाह
materia medica निघंटु, भैषज्य शास्त्र, द्रव्यगुण
mating समागम
maxilla हन्वस्थि, ऊर्ध्व-हन्वस्थि

maxillo muscular vessel हनु-पेशि-वाहक
median nerve मध्यवाहुका, मध्य-प्रकोष्ठिका नाड़ी
medulla अन्तर्वस्तु, मज्जा
— oblongata सुषुम्ना-शीर्षक
medullary sheath मज्जापिधान
membrane कला, झिल्ली
meninges मस्तिष्कावरण
mesenteric क्षुद्रान्त्र-बंधनी
metabolism प्रसादपाक
— basal आधारीय प्रसादपाक
metacarpi magnus करभनमनी
metacarpus करभास्थि
metatarsus पदांगुलीमूल-शलाका
metritis गर्भाशय-प्रदाह, प्रसूति-ज्वर
microscope अणुवीक्षण यन्त्र
micturition मूत्रास
mid-brain मस्तुलुंग-मध्य, मध्यम-मस्तुलुंग
middle gluteus नितम्बपिंडिका मध्यमा
miracidium पानपत्ती
mitral valve द्विपत्र-कपाटिका
mobile गतिशील
moniezia चूसिका कृमि
monocular vision एकचक्षु-दृष्टि
monstrosity विकटाकृति, दनुजाकृति
monovalent एकयोजी
motor nerve प्रचेष्टनी नाड़ी
mumps गलसूआ, कर्णमूल
muscle पेशी
—involuntary स्वतन्त्र पेशी
—voluntary परतन्त्र पेशी, इच्छानुगा
muscular tissue मांस-तन्तु, पेशी-तन्तु
myocardium हृत्पिंड, हृदयकी पेशी
myocarditis हृत्पिंड-प्रदाह

N

narcotic मादक, निद्राकारी
nasal bone नासास्थि
nasal granuloma नकपितिया
natural immunity सहज-क्षमता
necrosed क्षुन्न, निष्प्राण
necrosis तन्तु-क्षय, अस्थि-निष्प्राणता, प्राणहीनता
negative ऋणात्मक
nematodes केंचुआ कृमि
nephritis वृक्कप्रदाह
nerve नाड़ी
nervous tissue नाड़ी-तन्तु
neurolemma प्राथमिक नाड़ी-पिधान, नाड़ी-कंचुक
neutral प्रशमित

neutralisation प्रशमन
neutrality प्रशमता
navel-ill नवजातका रक्तदोष
nodular worm गाँठक्रमि
non-descript अज्ञातकुल
nostrils नकुना, नाकका छेद, नासारध्र
notch खाँचा, परिखा, दाँता, खात
nucleus मूलकण

O

obstetrics धात्रीविद्या
oedema शोथ
oesophagostoma गाँठ-कृमि
oesophagus अन्नवह, महास्रोत
oestrum ऋतुकाल
omasum पूर्वाशय, वहुपत्रक, पत्रा
olecranon कूर्परकूट
olfactory nerve घ्राण-नाड़ी
opsonic कल्पनक सिद्धान्त, ऑप्सोनिक
opsonins कल्पन, ऑप्सोनिन
optic nerve दृष्टि-नाड़ी, चाक्षुषी नाडी
optimum योग्यतम, अनुकूलतम
orbit चक्षु-कोटर
organic सेन्द्रिय, जैव
organs अवयव, अंग, इन्द्रिय
osmotic pressure अभिसारक दवाव, ऑसमोटिक दवाव
osmosis अभिसरण, ऑसमोसिस
osteomalacia मृद्वस्थि, अस्तिक्षय
outer ear कर्ण-शष्कुली, वहिःकर्ण
ovary डिम्बकोष, डिम्बाशय
ovum डिम्ब, स्त्री-बीज

P

palate bone तात्वस्थि
palatine तालवीय
palliative शामक, उपशामक
palpation स्पर्शन, सस्पर्शन
palpitation हौलदिल, हृत्कंप
pancreas अग्न्याशय
pancreatic juice आग्नेय रस, अग्नि-रस
papillae अनुजिह्वा, स्वादांकुर
paralysis पक्षाघात
paraplegia निम्नांग पक्षाघात, उरुस्तम्भ
parasites परोपजीवी
parathyroid परिचुल्लिका
paresis पेशीका आंशिक पक्षाघात, मृदु पक्षाघात
parietal पार्श्व-कपाल
parotid gland कर्णमूलिक-ग्रन्थि
parotitis गलसूआ, कर्णमूल-प्रदाह
parturition प्रसव
passive immunity निष्क्रिय क्षमता

pasturisation जीवाणुरहित करना
pathology विकृति-शास्त्र
pedigree वंशावली,
pelvic श्रोणि-सम्बन्धी
— girdle श्रोणिचक्र
pelvis of kidney वृक्कालिन्द
per-acute अतिप्रबल, उग्रतम
percussion ताडन, प्रतिघात
pericarditis हृत्कोप-प्रदाह
pericardium हृत्कोप, हृदयधरा कला
peristalsis अपकर्षणी, क्रिमि-गति
peritonium उदर्यकला
peritonitis उदर्याप्रदाह
permanent teeth द्विज दाँत
pernicious साघातिक
patella जान्वस्थि
petrous temporal bone
शङ्खास्थिका अश्मकूट
phalanges अंगुलिनलकास्थि,
अंगुलिनलक
pharmacology औषधिक्रिया-शास्त्र
pharmacopia औषधि-निर्माण-विद्या
pharyngitis कंठप्रदाह, गलप्रदाह
pharynx गल, ग्रसनिका
physiology शरीरक्रिया-शास्त्र
pia mater भीतरी आवरण,
चीनांशुका
pica भक्षक रोग
pigment रजक-द्रव्य, रजन
pineal हृक्कन्दिका, कैशोर-ग्रन्थि
pituitory पोषणिका
placenta पुरैन, नाल, कमल,फूल-
पुरइन
plasma रक्तद्रव, प्लाज्मा
plateau पठार
pleura उरस्या, फुस्फुसधरा कला
pleurisy उरस्या-प्रदाह, पार्श्वशूल,
फुस्फुसधरा-प्रदाह
poll चाँदी
polyvalent बहुयोजी
portal vein प्रतिहारिणी शिरा
positive धनात्मक
posterior aorta पीछेकी
महाधमनी
—deep pectoral उरश्छदा पेशी
—turbinated अध. शुक्तिकास्थि
—venacava अधरा महाशिरा
precipitate प्रक्षेप
premaxilla पुरोहनु, अधोहन्वस्थि
prepotent प्रबलवीर्य
presentations उदय
prevalence विस्तार
preventive निरोधक
primipara पहला गर्भ
probe शलाका
processes प्रवर्धन
prolapses भ्रंस रोग
prolific बहुप्रसवा 1216

pronators विवर्तनी पेशी
protoplasm जीववस्तु
pterygoid जतूकाचरण
pubic bone भगास्थि
puerperal प्रसूतिक
pulmonary artery फुस्फुसाभिगा धमनी
—veins फुस्फुसाभिगा शिरा
pupa कुप्पा
pupil तारा, पुतली, कनीनका
pyelonephritis वस्तिकाप्रदाह, वृक्कमें जीवाणुकी छूत
pylorus मुद्राद्वार, अनुग्रहणिका, निर्गम-द्वार
pyogenic पूयकारी
pyramids शिखरिका, मुकुलिका

Q

quarters पिछला भाग

R

rabies कुकुर-विष
radiation विकीर्णन
radius बहिःप्रकोष्ठास्थि
ravine बेहड़
reactors प्रतिक्रियाधारी
reagent विकारक
recessive गौण
record लेखा
recovery निवृत्ति, रोग-निवृत्ति
recti muscle दर्शनी पेशी
red corpuscles लाल रक्तकण
rediae सलाइयाँ
refıaction आवर्तन
rejuvination कायाकल्प
relative सापेक्ष, तुलनात्मक
relative heart weakness सापेक्ष हृदयदौर्बल्य
renal cells वृक्क-कोष
reproductive cell उत्पादक कोष
reptile सरीसृप
reserve रखांत, रक्षित क्षेत्र
resolution निर्गलन
retina दृष्टिमडल
retropulsion पीछे ठेलना
rheumatic arthritis सन्धि-प्रदाह, सन्धिवात, गठिया
ribs पर्शुका, पसली
rickets फक्क, सुखडी
riding fracture आरोही अस्थि-भंग
rinderpest माता
rotation घुमाना, फेरा, आवर्त्तन,
ringworm दाद
round worm केंचुआ कृमि
ruminants रोमन्थक, रौंथ करनेवाले

S

sacral त्रिक सम्बन्धी

sacrum त्रिकास्थि

saliva लाला, थूक, लार

sanitary स्वास्थ्य-सम्बन्धीय, स्वास्थ्य-रक्षा-विषयक, आचारिक

saprophytes शवजीवी

saturated सप्टृक्त

saturation point संपृक्तताकी सीमा

scapula असफलक

scar mark गूत, दाग

sclerotic coat शुक्लमंडल, शुक्लवृति

sebaceous gland मेदस्रावी, स्नेहस्रावी, वसा-ग्रन्थि, मेदोग्रन्थि

sedative शामक, प्रशामक

segment टुकड़ा

selection वरण

semilunar valve अर्धचंद्राकार कपाटिका, अर्धेन्दु-कपाटिका

semitendinosus जानु-कर्षिणी, कडरा-कर्षिणी

sensitive चेतनाशील

sensory nerve ज्ञान-नाडी

septicaemia रक्तविकार, रक्त-विकृति, रक्तदुष्टि

septum of nose नासिका पटल, नासा-मध्यप्राचीर

serum सीरम, रक्तवस्तु, रक्तरस, लसीका

sesamoid चणकास्थि

sheath सुतान

simple fracture सरल अस्थिभंग

sinus नासूर

sire जनक

skeleton ठठरी, अस्थिपंजर, कङ्काल

skimmed milk दुद्धी

skull खोपड़ी

sling छीका पट्टी, सीका पट्टी

slip in noose सरकफन्दा

small intestine छोटी आँत, क्षुद्रांत्र

socket कोटर

soft palate कोमल तालु, मूर्द्धा

solar सौर्यचक्र, सौरचक्र

somnolence ऊँघ, तन्द्रा

spasm चमक, हड़कन, आक्षेप

spaying जरायु-कर्तन

species वंश, कुल

specific gravity आपेक्षिक गुरुत्व

sperm पुंबीज, शुक्र

sphenoid जतूकास्थि

sphincter संकोचनी

sphincter ani गुदौष्ठ, गुदसंकोचनी

spine पृष्ठवंश

spinal cord सुषुम्ना नाड़ी

— nerve ग्रीवा-पृष्ठगा नाड़ी, मेरुजा, सौषुम्निकी नाड़ी

spleen प्लीहा

splenius शिरोग्रीव-विवर्तनी
spore रेणु, बीज
sporocysts रेणु-थैली
sporozoites रेणुज
sprain मोच
squamous शंखचक्र
standard मान
stand-still स्थिरगति,
starch स्टार्च, श्वेतसार
— equivalent स्टार्च इक्वीभेलेन्ट, एस० ई०, स्टार्च तुल्यांक
stenosed संकुचित
stereoscopic द्विचक्षु-दृष्टि
sterile बाँझ, वन्ध्या
sterilise जीवाणु-रहित करना, जीवाणु-शोधन
sternal उरीय, सउरःफलकीय
sternum उरःफलक
stifle घुट्ठी
stimulant स्फूर्तिद
stocksman पशुपालक
stomach आमाशय, पेट
stomatitis मुखप्रदाह, मुँह आना, मुँह फलना, निनावाँ
striated धारीदार
strongyles छोटे केंचुवे
stud-buffalo अरना
stye गुहेरी, विलनी, कुम्भिक
styptic रक्तस्राव-रोधक
sub-acute अप्रवल
subclavian vein अक्षाधरा शिरा
subcutaneous अन्तस्त्वक्
sublingual gland जिह्वाधरीय लालाग्रन्थि, अधोजिह्वा-लालाग्रन्थि
submaxillary gland हन्वधरीय लालाग्रन्थि, अधोहनु-लालाग्रन्थि
sub-scapularis अंसांतरिका पेशी
suckers चुसनियाँ
sun-stroke लू लगना
superficial gluteus नितम्वपिंडिका वहिस्था पेशी
superior maxilla ऊर्ध्व हन्वस्थि
—oblique muscles वक्र-ऊर्ध्व-दर्शनी पेशी
supinators विवर्तनी, करोत्ताननी पेशी
suppuration पीव भरना
suprarenal अधिवृक्क
supraspinatus अंसपृष्ठिका उत्तरा पेशी
surgery शल्य-चिकित्सा, चीरफाड़
surra सड़ा
susceptibility ग्रहणशीलता
suture टाँका, सूचीकर्म
sympathetic nerve पिंगला नाड़ी, स्वतन्त्र या समव्यथी नाड़ी
symptom लक्षण
synovial fluid श्लेष्मद

—membrane श्लेष्मधरा कला
synthesis संश्लेषण
syphon हंस-नली
system संस्थान
systolic संकोची

T

table आँकड़ा
tanning कमाना, टैनिंग
tapering गावदुम, शक्वाकार
tape worm पट्टिका कृमि
tarsus पाद-कूर्चास्थि
taste buds स्वादांकुर
teat चूची, चूचुक
technicions कर्मकुशल
temporal bone शखास्थि
tetanus धनुष्टकार
tetany धनुषी
tendons कडरा
tensor vaginae femoris
उरुकचुकाकर्षणी
testes वृषण, अन्डकोष
theorist तत्वविद्
therapeutics चिकित्सा
Therm थर्म
thorax उरःपजर
three day fever डेंगू, भील, चारमेख
thoracic duct वामा रसकुल्या
— vertebra पृष्ठ-करोरु
thrombus महावरोधन
thymol अजवाइनका सत्त
thymus बालचुल्लिका, बाल-ग्रैवेयक
thyroid चुल्लिका, ग्रैवेयक
tibia जघास्थि
tick fever जर्द बुखार
ticks किलौरी, किलनी, अठौरी
tidal air वेलावायु, प्रवाही वायु
tissues तन्तु
trachea क्लोमनलिका, श्वास-नालिका
traction खींचना
transmission अनुप्रेरण
transverse section
अनुप्रस्थ भाग
trapezius पृष्ठच्छदा पेशी
traumatic क्षतघ्न
trematodes चिपटी कृमि
triceps त्रिशिरस्का
trigeminal nerve त्रिधारा नाडी
trocar व्रीहिमुख
tubers कन्द
tuberculosis क्षत, [illegible], यक्ष्मा
turbinated bone शुक्तिकास्थि
tympanites पेट फूलना

U

udder थन
ulna अन्तःप्रकोष्ठास्थि
ultra-microscopic पराणुवीक्षणोत्तर
अणुवीक्षणोत्तर

ultra-visible virus दृष्टिपर रोगाणु
umbilical cord नार, नाभिरज्जु,
unit इकाई
unsaturated असंपृक्त
uraemia विषाक्तमूत्र, वृक्कसन्यास, मूत्रावरोधजनित रक्तकी विषमय अवस्था
ureter गवीनी, मूत्रनाली
urethra मूत्रप्रशेक
urticaria पित्ती
uterus जरायु, गर्भाशय

V

vaccination टीका, पाच, पाछ
vagina भग
vagus nerve प्राणदा नाड़ी
valvular disease हृत्कपाटिका रोग
vasomotor रक्तचालक नाड़ी, धमनी-नियंत्रणी
veal भील, बछड़ेका मांस, वत्स्य मांस
vein शिरा
vena cava महाशिरा
version बदलना
vertebra कशेरु, कशेरुका, कशेरुक
vertebral artery, vein मस्तिष्कमातृका धमनी, शिरा
— column मेरुदन्ड, पृष्ठवंश
vertical plate चालनीपटल, दीर्घपत्रक
vertigo चक्कर
vicious circle बुराईका चक्कर, शैतानी चक्कर, शैतानी फेर, कुचक्र
villus अंकुरिका
virulent दारुण
virus रोगाणु
— ultra-visible दृष्टिपर रोगाणु
viscera धड़का खात, अन्त्र, अँतड़ी आदि
vitreous humour मेदोजल, सान्द्रजल
volume घनमान
voluntary muscle परतंत्र पेशी, इच्छानुगा
vomer bone सीरिकास्थि
vulva भगोष्ठ

W

warble flies कुकुर-मक्खी
weighted पसँघा
white scour सफेद दस्त
wing bone पखवाली अस्थि, पक्षास्थि
wire worm तार कृमि
withers पुट्ठा
womb कोख

Y

yeast खमीर, किण्व

Z

zoology प्राणिशास्त्र
zygote उत्पादक-कोष

जीवाणु की गोष्ठी और स्वभावके अनुसार छुतहे और संक्रामक रोगोंका वर्गीकरण।

(१) बैक्टीरिया-जीवाणुजनित रोग

गोष्ठी	जीवाणुका नाम	रोगोंके स्वभाव
कोक्कसी	स्ट्रेप्टो और स्टैफिलो कोक्कस	पायेमिया (पूति-रक्तदुष्टि) जयेन्ट इल (सफेद दस्त) नेभेल इल (नवजातका रक्तदोष) मेस्टाइटिस (स्तनप्रदाह)
बैक्टेरिएसी	पैसूच्यु रेला बोभिसेप्टिका बैक्टेरियम कोलाइ (एशेरिकिया कोलाइ) ब्रुसेला	पैसूच्यूरेलोसिस (गलघोंटू) नेभेल इल (नवजातका रक्तदोष) ब्रुसेलोसिस (छुतहा गर्भपात)
बैसिलेसी	बैसिलस एन्थ्रोसिस क्लौस्ट्रिडियम चौभी क्लौस्ट्रिडियम टिटेनी	एन्थ्रेक्स (गिल्टी) ब्लैकक्वार्टर (लंगड़ी) टिटेनस (धनुष्टकार)
एक्टिनोमाइसिटेसी	एक्टिनोमाइसिस बोभिस	एक्टिनोमाइकोसिस, (कठजिभिया)
माइको बैक्टेरिएसी	माइको बैक्टेरियम ट्यूबरकुलोसिस माइको बैक्टेरियम पैरा-ट्यूबरकुलोसिस फ्यूसिफॉर्मिस नेक्रोफोरस	ट्यूबरक्लोसिस (यक्ष्मा) पैरा-ट्यूबरक्लोसिस (बाह) काफ डिफ्थेरिया, (बल्गलोग्नी)

(२) प्रोटोज़ोआ जीवाणुजनित रोग

गोष्ठी	प्रोटोजोआ	रोग
एमेरिया	एमेरिया ज़ुर्नाइ	कोक्सीडियोसिस या खूनी दस्त
पिरोप्लाज्म या वैवेसिया	वैवेसिया विगेमिना	पिरोप्लाज्नोसिस या टिक फीभर (लालपेशाव या जर्द बुखार)
ट्राइपेनोसोमा	ट्राइपेनोसोमा एभेन्सी	ट्राइपेनोसोमियासिस या सर्रा

(३) दृष्टिपर रोगाणुजनित रोग
(अल्ट्राभिजिवल भाइरसजनित रोग)

गोष्ठी	रोगोंके स्वभाव
(भाइरस रोगाणु)	रिन्डरपेस्ट—माता । फूट एन्ड माउथ डिज़ीज—मुँहपका, खुरपका । डेंगू—तिनदिना बुखार । काउपॉक्स—चेचक, गो-शीतला । कन्टेजियस प्लूरोनिमोनियाँ–संक्रामक प्लूरो निमोनियाँ । रेबिज—कुकुर-विष ।

1218

अनुक्रमणिका (निर्देशिका)

[दोनों खडोंकी]

झ

ट

ठ

ड

ढ

त

थ

फ

म

ज

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	८	वढ़ती प्रतिफल	वढ़ते प्रतिफल
१३	२१	और अपना	और अपने
१४	६	प्राणियों व समाजमें	प्राणियों तथा समाजमें
१५	१	कृतिम	कृत्रिम
१५	२२	आन्धी	आँधी
२१	१६	फगसम्रों	छत्राकम्रों
२१	२३	वीमारीका	वीमारीके
२८	७	पुष्टिकारी	पुष्टिकारक
२८	१४	हरी व	हरी तथा
३५	४	यही	यही वात
३५	२२-२३	मनुष्यका सारे पशु जगतसे	सारे पशु जगतसे मनुष्यके
३८	६	पूरी	पूरा
४५	१५	शास्त्र ।	शास्त्रीय
४५	२९	जैसे	जैसी
४६	१७	उसके	उसकी
४९	१५	पाये	पायी
५०	१६	जनसकुल और उद्योगो व कृषि प्रधान	जनसकुल, उद्योगी और कृषि प्रधान
५१	१४	वड़े लाटका	वड़े लाटके
६३	१५	छीण	क्षीण
	१	झूमके	झुमके
६७	२३	वुड़े	वूढे

शुद्धिपत्र : ३।≈

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६८	१२	गिनना	गिनाना
६९	१२	कुह्मार	कुम्हार
६८	२८	उपजका	उर्वरताका
७०	२	तत्वोंको	तत्वोंको
७२	१७	यह आवादी	यहाँको आवादी
९४	१९	चोकड़	चोकर
९९	२	कुटाइ	कुराइ
१०२	२७	खेरी	खीरी
१०७	८	विशुखती	विसुकती
१०९	१६	वड़ी होती है	वडा होता है
११३	२०	अदूर दृष्टिवाले	अदूर दृष्टिवाली
११९	१३	लिये जादे नहीं	लिये नहीं
१२१	१३	शाही कमीशन	शाही कमीशनने
१२६	१३	दुग्धी	दुद्धी
१३९	१९	भुल	भूल
१५१	२८	विभाजमें	विभाजनमें
१५२	१	मूलकरण	मूलक्रण
१५६	२७	मामूलीके	मामूलीकी
१६३	२८	होते हैं तो	होते तो हैं
१७४	२९	पालनेवाले	पालनेवाली
१८३	२४	भूखे मरतो	भूखी मरती
१८८	२३	चाराके	चारेके
२०१	१२	किया होता	किये होते
२१२	१९	फायदा	कायदा
३२९	२५	राहिरा	रोहेड़ा
३४३	२०	चुल्हे	चूल्हे
३७९	१४	पास-पड़ोसीके	पास-पड़ोसके

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३९४	५	आदिका	आदिके
३९४	७	अर्थमें	अथमे
३९५	१०	इसे	इसको
४०१	६	खेती	खेत
४१०	१	पूसामें	पटनेमें
४११	२४	चारेका	चारेको
४११	२७	जमीन्दारोंके	जमीन्दारोंकी
४८१	२	सूखी सामान	सूखा सामान
४९७	१२	पुआलका	पुआलके
५०७	१४	गायके	गायको
५११	६	हरा चारा	हरे चारे
५८९	१४	कोल्लुनटाई न्याम	कोल्डुनडाउ घास
५९०	१२	सबसे वहले	सबसे पहले
७७७	९	तापकी क्रिया	श्वासकी क्रिया
८२३	१०	केन्द्रोपसारी	केन्द्रापसारी
८८७	१०, १२, १५, २४	कूर्पर	कूर्पर
८९७	४	सीरका	सीरिका
८९९	१७	सीरका	सीरिका
९१८	११	Gastroconemius	Gastrocnemius
९१८	चित्र १०६	अस्थियाँ	पेशियाँ
९२४	२	श्वाग नलिका	श्वास नलिका
९२७	१६	ग्रहणा	ग्रहणी
९३३	३	महामात्रिका	[illegible]
९४२	१	अनुवीक्षण	अनुवीक्षण
९४२	२७	वाया रसकुल्या	[illegible]
९५३	१०	दढे	टेढ़े
९७९	२६	कउरासनी	[illegible]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०१५	१४	मादक	निद्राकारी
१०१६	९	प्रतिशत	प्रति हजार
१०५१	२५	सर्वांगीन	स्वभावज
११८४	३	नेभिल	नेभेल
११९४		भरनोमियाँ	भरनोनियाँ
१२११	२४	स्तनन्ध्यों	स्तनन्धयों
१२१८	१५	नौंक	नोक
१२४०		थियार्सेनामाइन	थियोआर्सेनामाइन
१२४७	१९	माता	गिल्टी
१२६८	१	वहिस्त्वक्	वहिस्त्वक्
१३९३	७	कूर्पर	कर्पर
१४०५	१०	श्वास-नालिका	श्वास-नलिका
१४०५	२२	क्षत	क्षय